HARISHANKAR PARASAI : LIFE AND WORKS—A STUDY

हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व और कृतित्व

एक अध्ययन

A THESIS SUBMITTED TO THE COCHIN UNIVERSITY OF
SCIENCE AND TECHNOLOGY FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

कोचिन विज्ञान एवं तकनिकी विश्वविद्यालय की
पीएच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध

SUBMITTED BY

THIPPESWAMY

Lecturer Dept. of Hindi
University of Mysore, Manasagangotri
Mysore-570 006

प्रस्तुत कर्ता

तिप्पेस्वामी

अध्यापक हिन्दी विभाग मैसूर विश्वविद्यालय
मानसगंगोत्री मैसूर-५७०००६

Supervising Guide

Dr. N. RAMAN NAIR

Prof. & Head, Dept. of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Cochin-682 022

निर्देशक

डॉ० एन. रामन नायर

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कोचिन विश्वविद्यालय, कोचिन

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE & TECHNOLOGY, COCHIN

1988

DECLARATION

This entire Research work is the result of my own study carried out under the supervision of Dr. N. Raman Nair, Prof. & Head of the Department of Hindi, Cochin University, Cochin, and has not been submitted previously in part or full for any Degree, Diploma, Fellowship of this or any other University.

THIPPE SWAMY

CERTIFICATE

This is to Certify that this Thesis is a bonafide Research work carried out by Sri Thippeswamy, under my supervision and I Certify that this Thesis is fit for submission to the University for the award of Ph.D. Degree.

Dr. N. Raman Nair

• मैं तो हमेशा झूठ की तलाश में रहता हूँ ।
कोने कोने में झूठ को ढूंढता फिरता हूँ ।
झूठ मिल जाता है तो बहुत खुश होता हूँ ।

• लेखक की दो नहीं तीन आँखें होती हैं । •

— हरिशंकर परसाई

प्रस्तावना

हरिशंकर परसाई आधुनिक हिन्दी के श्रेष्ठ कथाकार, निबंधकार और महान मानवतावादी साहित्यकार हैं जिनकी प्रखर वैचारिकता ने एक ओर इस देश की अर्थहीन पारंपरिक मूल्यों से आवृत्त मानसिकता को मानवीय धरातल पर चिंतन करने को प्रेरित किया है तो दूसरी ओर उनकी अनुपम कथाशैली ने आधुनिक हिन्दी को सर्वथा नया आयाम दिया है । परसाई का साहित्य मानवीय मूल्यों का जबरदस्त प्रतिपादन करता है जो कि मनुष्य के स्वार्थ, लोभ, ईर्ष्या एवं प्रेम के अभाव में कुंठित हैं। परसाई मनुष्य को उनकी इन सीमित परिधियों से बाहर निकालकर एक व्यापक भावभूमि पर प्रतिष्ठापित करने के प्रति आस्थावान हैं । यह आस्थामयी दृष्टि और जीवन-प्रेम परसाई साहित्य का मूल स्वर है । परसाई ने अपनी कहानियों एवं निबंधों में व्यक्ति, समाज एवं देश की सीमाओं, कमियों और उनकी नैराश्यात्मक जीवन दृष्टि का अपने व्यंग्य द्वारा अनावरण करके, उस आलोक की ओर दिशा-निर्देश किया है जहाँ जाना चाहिए । इस दृष्टि से परसाई की दृष्टि एक मसीहे की दृष्टि है जो कि शुद्ध अंतःकरण और मानव कल्याण के प्रति समर्पित है ।

व्यंग्य - वर्तमान हिन्दी साहित्य को परसाई का विशिष्ट योगदान है और व्यंग्य को "शैली" के रूप में प्रतिष्ठापित करके उसे सर्वाधिक शक्तिवान बनाने का श्रेय परसाई को है, इस अर्थ में परसाई व्यंग्य के आचार्य हैं । उन्होंने व्यंग्य की क्षमता और सामर्थ्य को उजागर रखा है । परसाई के व्यंग्य आधुनिक समाज की भ्रांतियों एवं विसंगतियों के दास्तान ही नहीं मगर आधुनिक भारत के सामाजिक, राजनीतिक जीवन के दस्तावेज भी हैं ।

हरिशंकर परसाई के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालनेवाले अनेक आलोचनात्मक लेख हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं जिनकी अपनी सीमाएँ हैं । परंतु समग्र रूप से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का सही मूल्यांकन-विवेचन अभी नहीं हुआ है । तथापि कमला प्रसाद द्वारा संपादित "आँखन देखी" एक महत्वपूर्ण

ग्रंथ है जिसमें संकलित लेखकों ने परसाई के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने तथा उनके कृतित्व का मूल्यांकन करने के सार्थक प्रयत्न किये हैं। इस ग्रंथ में संकलित परसाई के कुछ साक्षात्कार भी उनकी सृजनधर्मिता के महत्वपूर्ण अंशों से अवगत कराने में सहायक हैं। और राजकमल प्रकाशन से छः खंडों में प्रकाशित "परसाई ग्रंथावली" के हर खंड के आरंभ में विद्वान आलोचकों ने तत्संबंधी खंड की महत्ता और उसमें संकलित सामग्री का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इन दोनों महत्वपूर्ण प्रयासों से परसाई के अध्येताओं को निश्चय ही नई दृष्टि और दिशा-निर्देश मिलते हैं। इनके अलावा परसाई के कृतित्व पर अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हुए हैं और "व्यंग्यश्री" पत्रिका ने एक विशेषांक भी प्रकाशित किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध हरिशंकर परसाई के व्यक्तित्व और कृतित्व के गंभीर अध्ययन का परिणाम है। यहाँ परसाई के महान व्यक्तित्व एवं विराट कृतित्व का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत करने का प्रामाणिक प्रयास किया गया है। परसाई का संघर्षशील व्यक्तित्व तथा उनके अध्ययन-अनुभव और चिंतन के अभूतपूर्व संयोग से विकसित जीवन-दर्शन - इन दोनों का अपूर्व प्रतिबिंब उनकी कृतियों में देखा जा सकता है। परसाई का व्यक्तित्व और कृतित्व अभिन्न हैं, अपने में अलग-अलग इकाई नहीं किन्तु ऐसा अविच्छिन्न कि पृथक् करके देखना बिलकुल असंभव है। प्रस्तुत शोध प्रबंधकार ने उपरोक्त अंश को रेखांकित करके परसाई की कृतियों का विश्लेषण इस शोध-प्रबंध में प्रस्तुत किया है। परसाई को प्रेमचंदोत्तर युग के सशक्त कथाकार निबंधकार, युगबोध के प्रति जागरूक लेखक एवं मानवतावादी साहित्यकार के रूप में तथा व्यंग्य-विधा के अ सशक्त हस्ताक्षर के रूप में प्रस्तुत करने और मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया ■ गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय "परसाई का व्यक्तित्व - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" है जिसमें परसाई के संघर्षशील व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों का अध्ययन है। व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ और सामाजिक स्थितियाँ परसाई को प्रभावित करने की शक्तियाँ हैं जिनके विश्लेषण के द्वारा

परसाई के व्यक्तित्व की विशिष्टताओं को रेखांकित किया गया है । प्रस्तुत अध्याय में मानव नियति के नायक और मसीहे के रूप में परसाई को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है ।

द्वितीय अध्याय "व्यंग्य की परिभाषा, व्यंग्य का स्वरूप, व्यंग्य की आवश्यकता और व्यंग्य की सीमा" का विवेचन करता है । व्यंग्य के सैद्धांतिक पक्ष का व्यापक विवेचन प्रस्तुत अध्याय में प्रस्तुत हुआ है । व्यंग्य के मूलस्रोत का अन्वेषण करके, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्रचलित विभिन्न काव्य-सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में उसका विवेचन करके व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया गया है । व्यंग्य किसी एक काव्यसिद्धांत का आश्रयी नहीं अपितु सभी काव्यसिद्धांतों में उसका समावेश है, इस दृष्टि से व्यंग्य का दायरा अत्यंत विशाल है, इसकी परिकल्पना का धरातल व्यापक है । प्रस्तुत शोध प्रबंधकार ने व्यंग्य के संबंध में अनेकों प्रसिद्ध अधिकृतों से अपनी असहमति प्रकट करते हुए अपने मत प्रकट किये हैं। व्यंग्य का स्वरूप, उसकी आवश्यकता और सीमाओं पर प्रस्तुत प्रबंध में मौलिक चिंतन प्रकट किया गया है । आधुनिक भारतीय साहित्य में व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास इस अध्याय में हुआ है ।

तीसरा अध्याय है - हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हिन्दी साहित्य में परसाई का स्थान" जिसमें हिन्दी साहित्य के संदर्भ में व्यंग्य साहित्य का ऐतिहासिक परंपरा का सिंहावलोकन और मूल्यांकन करने के साथ ही साथ परसाई का स्थान निर्दिष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । इस अध्याय में व्यंग्य किस प्रकार अपने प्रहारों से सामाजिक जागृति पैदा करता आया है, इसका मूल्यांकन किया गया है । हिन्दी की समृद्ध व्यंग्य साहित्य की परंपरा परसाई में अपनी चरम वृद्धि प्राप्त कर पाई है । प्रस्तुत अध्याय में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि परसाई में जातीय परंपरा प्राणवान हुई है ।

चौथे अध्याय में - "हरिशंकर परसाई की विचारधारा और दर्शन" का विवेचन किया गया है । अनुभव, अध्ययन और चिंतन से परसाई के जीवन-दर्शन को स्थापित किया है । एक अर्थ में उनका समग्र कथासाहित्य कहानी की शिल्प में विचारों का

समृद्ध है और समस्त निबंध वैचारिकता के प्रमाण हैं। प्रस्तुत अध्याय में (सम)कालीन व्यक्ति, समाज एवं देश की ज्वलंत समस्याओं पर परसाई द्वारा व्यक्त (कि)ए विचारों का विश्लेषण किया गया है। साथ ही परसाई के "दर्शन" के मूलस्रोत पर यानी मार्क्सवादी जीवन दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है जिसने परसाई की रचनाधर्मिता में मानवीय अंतःकरण की सुगंधी भरी है।

"परसाई का कथालोक - एक विश्लेषण" - इस शोध प्रबंध का पंचम अध्याय है जिसमें परसाई के कथासाहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का गंभीर विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है और उनकी सम्पूर्ण कथाराशि का सिलसिलेवार विभाजन करके उनकी विशिष्टताओं की व्याख्या एवं मूल्यांकन किया गया है। परसाई की कहानियों में आक्रांत एवं विक्षुब्ध मन की तड़पन है, वर्तमान के असामंजस्यमयी जीवन विधानों के प्रति आक्रोश है। वस्तुतः स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक एवं सामाजिक जीवन के अधःपतन एवं मूल्यहीन जीवन विधानों को परसाई की कहानियाँ अत्यंत मार्मिक किन्तु कलात्मक परिधान में अनावरण करती जाती हैं। हमारे सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का ऐसा कोई काला पक्ष नहीं है जो परसाई की कहानियों में उजागर नहीं हुआ हो। इस परिप्रेक्ष्य में परसाई की कहानियों का विवेचन, विश्लेषण और मूल्यांकन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है। इसी अध्याय में परसाई के रेखाचित्रों एवं उपन्यासों का भी मूल्यांकन है। प्रस्तुत अध्याय में परसाई को समकालीन हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कथाकार के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

षष्ठम अध्याय है - "परसाई का निबंधलोक - एक विश्लेषण"; जिसमें उनके वैचारिक एवं ललित निबंधों का विवेचन करके उनके विशिष्ट अंशों को रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है। परसाई इस देश के अग्रणी चिंतक हैं, उनकी चिंतनधारा देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रवाहित होकर यहाँ की सुषुप्त मानसिकता को जागृत करने में सफल हुई है। वास्तव में परसाई अपने समकालीन जनता से जिस रूप में जुड़े हुए हैं, उस रूप में जुड़ा हुआ लेखक दूसरा कोई नहीं है। यह अत्यंत सुखद आश्चर्य है कि परसाई ने अपने वैचारिक एवं ललित निबंधों में वर्तमान जनता की समस्याओं पर अत्यंत गंभीरता से अपना चिंतन प्रकट किया है। प्रस्तुत अध्याय में उपरोक्त अंशों पर

विस्तार से विवेचन किया गया है और हिन्दी निबंध साहित्य को परसाई के योगदान का विवेचन किया गया है ।

सप्तम अध्याय है - "परसाई की भाषा और शैली" । इस अध्याय में परसाई का एक सशक्त व्यंग्य शिल्पी के रूप में सोदाहरण मूल्यांकन किया गया है । भाषा को अत्यंत संवेदनशील बनाने के साथ ही उन्होंने उसकी सृजनशील क्षमता का विकास ही विस्तार किया है । मानवीय संवेगों को शब्दों में आबद्ध करने की कला में परसाई का कोई प्रतिद्वंदी नहीं है । इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय में परसाई की रोचक भाषा-शैली की खूबियों पर प्रकाश डाला गया है । और अष्टम अध्याय के उपसंहार में परसाई के प्रस्तुत अध्ययन के परिणामों का सार दिया गया है ।

मैंने यह शोध-प्रबंध कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष डॉ. रामन नायरजी के समर्थ निर्देशन में तैयार किया है । डॉ. रामन नायरजी की विद्वत्ता अनुभव और सहृदयता का लाभ मैं ने निस्संकोच उठाया है । इस शोध-विषय के पंजीकरण से शोधकार्य की समाप्ति तक वे निरंतर प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देते रहे और शोध प्रबंध लिखने के दौरान हर सोपान पर अपने विद्वत्तापूर्ण सुझाव व निर्देशन देकर प्रस्तुत शोध प्रबंध को इस रूप में प्रस्तुत कराने का सारा श्रेय डॉ. रामन नायरजी को है । सबसे बढ़कर उन्होंने मुझे पुत्रवत् स्नेह और प्यार दिया है । मेरे व्यक्तित्व और साहित्यिक जीवन में डॉ. रामन नायरजी का ऋण-भार मुझ पर इतना है कि उसे शब्द-कृतज्ञता द्वारा उतारा भी नहीं जा सकता है और शब्दों द्वारा कृतज्ञता प्रकट करके उसे हल्का भी नहीं करना चाहता ।

हरिशंकर परसाई जोकि प्रस्तुत शोध प्रबंध के केन्द्र व्यक्ति और शक्ति हैं, छात्रजीवन से मेरे अत्यंत प्रिय लेखक रहे हैं । उनकी स्वस्थ विचारधारा ने मुझे प्रभावित किया है, उनका जीवन-दर्शन मुझे बेहद प्यारा लगा है, उनके जीवन संघर्ष ने मुझे बल दिया है । मुझे अतीव खुशी है कि इनका गंभीर अध्ययन करने का मौका मुझे मिला आदरणीय परसाईजी का मैं आभार मानता हूँ जिन्होंने अपने स्नेहपूर्ण पत्रों से मुझे उपकृत किया है ।

कोचिन विश्वविद्यालय एवं वहाँ के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना परम कर्तव्य मानता हूँ जिन्होंने इ यह शोध-कार्य करने का मौका प्रदान किया और अपने स्नेहशील एवं मधुर व व्यवहार से प्रभावित किया है ।

मैसूर विश्वविद्यालय के पत्राचार एवं अविरत शिक्षा संस्थान के निदेशक श्री के.एस.परशिवमूर्तिजी जोकि मेरे गुरुवर्य भी हैं, की मुझ पर विशेष कृपा रही है, जिन्होंने निरंतर प्रेरणा एवं उत्साह भरने के साथ ही साथ अपने संस्थान के ग्रंथालय का पूरा उपयोग कर लेने की अनुमति प्रदान की और इस शोधकार्य को पूरा करने में मदद की है, अतः मैं इनका आभार मानता हूँ ।

मैसूर विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी, कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की लाइब्रेरी, मैसूर के भारती हिन्दी विद्यालय की लाइब्रेरी से मैंने इस शोध-कार्य दौरान भरपूर सहायता प्राप्त की है जिनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मेरा कर्तव्य है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को तैयार करने में मैंने सैकड़ों विद्वज्जनों के ग्रंथों का अध्ययन किया है, और उनके ग्रंथों से सामग्री ली है । इन सभी विद्वानों के प्रति मैं अपना आभार मानता हूँ ।

मेरे शोध-अध्ययन के दौरान डा.मे.राजेश्वरय्याजी, डॉ.तरगु कृष्णमूर्तिजी, श्री बी.एन. नागराज रावजी , श्री रामरावजी, श्री बी.एन.मंजुनाथय्याजी, डॉ.एम.एन. सुरुंजप्पजी ने मुझे सहयोग दिया है जिनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ । अंत में अपनी पत्नी श्रीमती नागरत्ना के उदार एवं स्नेहशील व्यवहार का स्मरण करता हूँ और स्मरण करता हूँ श्री एन.गणेश का जिन्होंने अत्यंत प्रेम से प्रस्तुत शोध प्रबंध को टाइप करके उपकार किया है ।

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय - हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 1-24

द्वितीय अध्याय - व्यंग्य की परिभाषा, व्यंग्य का महत्व, व्यंग्य की आवश्यकता, व्यंग्य की सीमा 25-84

भूमिका - व्यंग्य की पृष्ठभूमि 25, रस का विवेचन और हास्य 30, हास्य और व्यंग्य : पाश्चात्य और भारतीयों की दृष्टि - एक तुलनात्मक सर्वेक्षण 38, व्यंग्य की परिभाषा - पाश्चात्य एवं हिन्दी आलोचकों का दृष्टिकोण 51, पाश्चात्य विद्वानों की व्यंग्य संबंधी परिभाषाएं - विश्लेषण और मूल्यांकन 54, हिन्दी साहित्यकारों की व्यंग्य संबंधी परिभाषाएं - विश्लेषण और मूल्यांकन 60, व्यंग्य का स्वरूप, महत्व और व्यंग्य की आवश्यकता - एक विवेचन 64, व्यंग्य की सीमा 78

तृतीय अध्याय - हिन्दी व्यंग्य साहित्य की परंपरा और परसाई का स्थान 85-145

भूमिका - 85, भारतेंदु हरिश्चंद्र 92, प्रताप नारायण मिश्र 94, पंडित बालकृष्ण भट्ट 98, बालमुकुंद गुप्त 101, चंद्रधर शर्मा गुलेरी 105, महावीर प्रसाद द्विवेदी 106 प्रेमचंद 110, महादेवी 116, रामचंद्र शुक्ल 120, हजारी प्रसाद द्विवेदी 126, शिवपूजन सहाय 128, भगवती चरण वर्मा 129, श्रीलाल शुक्ल 131, यादवेन्द्र शर्मा "चंद्र" 133, श्रवण कुमार गोस्वामी, प्रदीप पंत 134, नरेन्द्र कोहली 136, हरिशंकर परसाई 140

चतुर्थ अध्याय - हरिशंकर परसाई की विचारधारा और दर्शन 146-165

मानव नियति का मसीहा - 146, साहित्य और साहित्यकार 147, नारी मुक्ति आंदोलन 149, आलोचना 150, साहित्य में श्लील-अश्लील 152, हिन्दी 154, मार्क्सवादी जीवन दर्शन 156, वर्तमान के प्रति परसाई का दृष्टिकोण 163, व्यंग्य और परसाई की रचना-प्रक्रिया 165

पंचम अध्याय - हरिशंकर परसाई का कथा-संसार - एक विवेचन 172-318

परसाई की कहानियों की मुख्य प्रवृत्तियाँ 172, परसाई का कथा साहित्य-विवेचन - राजनीतिक जीवन की विसंगतियाँ राजनीतिक दलों की तनाव एवं

सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता, उनके नारों का खोखलापन, उनके सिद्धांत पक्ष और कर्मपक्ष के असामंजस्य, दल-बदल की प्रवृत्ति, विधायकों के अजीबो गरीब गैरजिम्मेदार व्यवहार 181, शिक्षा जगत की विसंगतियाँ, आचार्यों के पाखंड व्यवहार, शिष्य प्रति अत्याचार, मास्टरों की शातदियाँ, उपकुलपति एवं मास्टर की नियुक्तियाँ, बुद्धिजीवियों का द्वंद्वात्मक व्यक्तित्व 213 धर्म और आध्यात्म जीवन की विसंगतियाँ, शोषण भ्रष्टाचार नैतिक अधःपतन 231, भारतीय सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ, वर्ग चेतना, उच्च वर्ग, मध्यवर्ग एवं निम्नमध्यवर्ग के परिवारों में प्रेम, नारी वर्ग की मानसिकता, दफ्तरों में भ्रष्टाचार, बनते बिगड़ते रिश्ते 241, साहित्यकारों और प्रकाशन व्यवसाय पर परसाई का व्यंग्य, प्रतिष्ठा और सम्मान की लालसा, कविता को ड्यूटी समझनेवाले सामाजिक साहित्यकारों का शोषण, झूठी क्रान्तिकारिता 254,

परसाई की लघुकथाएँ 259, बदचलन या चरित्रहीन 261, दहेज समस्या 262, देशभक्ति, कवियों का कागजी विद्रोह 264, कानून का अंधाधुंध पालन, राजनीति-संसद की बहस, मंत्रियों का चारित्र्य 265, भ्रष्टाचार - भाई भतीजावाद, शिक्षाओं का करिश्मा 266, ढोंगी भक्ति एवं जाति 268, युवावर्ग की ढोंगी क्रान्ति, कथनी-करनी में विरोधाभास 269,

परसाई के रेखाचित्र 272

परसाई के उपन्यास - तट की खोज 285, रानी नागफनी की कहानी - स्वरूप विश्लेषण - 295, साक्षात्कार - लोकसेवा आयोग 304, पत्रकारिता 306, प्राध्यापकों की गुलामी 307, दहेज 308, डाक्टरों की असलियत 309, कविता, संगीत और चित्रकला - विभिन्न दृष्टिकोण 310, प्रेम का रीतिकालीन स्वरूप, राजनीतिक क्षेत्र की विसंगतियाँ 312, साधु संतों के असली चेहरे 313.

षष्ठम अध्याय - परसाई का निबन्धलोक 319

भूमिका 319 परसाई के वैचारिक निबन्ध 322, राजनीतिक क्षेत्र की नौटंकी 326,

कांग्रेस सरकार का प्रशासन 329, जनता सरकार का प्रशासन 335, धर्म 339, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार 343, संस्थाओं एवं प्रतिष्ठानों की यथार्थता 344, सफेद-अमानवीय दृष्टि, मिलावटी संस्कृति 346, शिक्षकों की समस्याएँ 348, नेताओं का चरित्रांकन - दो उदाहरण 350, ब्राह्मण और हरिजन - शोषक और शोषित 353.

परसाई के साहित्यिक निबन्ध - एक सर्वेक्षण 356 परसाई की भूमिकाएँ - सृजनक्रिया की आधारभूमि 367, परसाई के ललित निबंध - 370, कविता और यथार्थता 377 दफ्तर और आम आदमी की विवशता, स्नान-कुर्सी धर्म का संकेत 379 नीलकंठ - दुख प्रदर्शन का विधान 381, निंदा - एक अपूर्व रस 382 अभिनंदन - किसी ढिंढोरा पीटने का विधान 384, चंदा - आधुनिक जीवन का अभिशाप 385, श्रद्धा - मुँह बंद करने का एक विधान 388, पहला सफेद बाल - आत्मावलोकन का प्रेरणास्रोत 389, कहावत - अनुभवों की संचयिता 391

सप्तम अध्याय - हरिशंकर परसाई की भाषा और शैली

अष्टम अध्याय - उपसंहार ।

प्रथम अध्याय

हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व : एक विवेचनात्मक अध्ययन

हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्वः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता इस बात में है कि यहाँ के कवियों, ऋषियों एवं दृष्टाओं ने अपने आत्म प्रकाशन तथा व्यक्तिगत विचारों की अभिव्यक्ति को अपनी सर्जनात्मकता के संदर्भ में नगण्य स्थान दिया, अपने "स्व" को बिल्कुल नकार कर अपने को उस असीम का अंग या उसके हाथ का खिलौना या अपने को "राम का कुतिया" मानने तक विनय भावना प्रकट की। परमात्मा के भूम व्यक्तित्व के सामने अपने अल्प व्यक्तित्व को बिल्कुल शून्य सम माना। उनका मानना था कि जीवन चार दिनों का है जिसका मानव सेवा में सार्थक उपयोग किया जाय। अतएव मानव-सेवा, आध्यात्मिक साधना में तल्लीन इन कवियों का मन अपने "स्व" की अभिव्यक्ति में कभी टिका ही नहीं। परिणामस्वरूप इन भक्तों एवं कवियों में उद्देश्यपूर्वक कहीं भी ऐसा उल्लेख शायद ही मिलता होगा जिससे उनके बारे में व्यक्तिगत जानकारी मिल सके, तथापि उनकी रचनाओं में प्रासंगिक रूप से प्राप्त होनेवाले व्यक्तिगत उल्लेखों के आधार पर उनके व्यक्तित्व को, तथा रचनाओं में अभिव्यक्त विचारों के आधार पर उनके कृतित्व को मूर्त रूप देने के प्रयास किए जा रहे हैं।

आम आदमी के व्यक्तित्व से साहित्यकार का व्यक्तित्व इस बात में भिन्न होता है कि आम आदमी अपनी चारों ओर के तमाम संकटों, विसंगतियों एवं विद्रूपों को बिना किसी प्रतिक्रिया के स्वीकारता है, उन्हें भोगता है जबकि साहित्यकार उनका आलोचनात्मक एवं विवेचनात्मक दृष्टि से परखता है और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। आम आदमी जिन समस्याओं से मुँह मोड़कर वास्तविकताओं का अपना भाग्य या विधि के रूप में स्वीकारता है तो साहित्यकार उन वास्तविकताओं के पीछे जो षड्यंत्र, अमानवीय सिद्धांत, शोषक रूप होते हैं उनकी पड़ताल करके इनके प्रति अपना आक्रोश, असमाधान व्यक्त करता है। आम आदमी समस्याओं को किनारा करके हट जाता है जबकि साहित्यकार समस्याओं से जूझता है। कलम रूपी तलवार से उनपर आक्रमण करता है। आम आदमी, मात्र अपने कष्टों की परवाह करता है, उनमें कोई प्रतिबद्धता नहीं रहती है जबकि साहित्यकार लोक मंगल को अपना लक्ष्य बनाता

है और एक सिद्धांत और एक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध होता है, आस्थावान होता है । साहित्यकार अपने संवेदनशील हृदय से मनुष्य के अंतरंग को समझने, समाज की गुत्थियों को सुलझाकर समाज को दृष्टि-दर्शन प्रदान करता है । समष्टि को व्यष्टि में व्यष्टि को समष्टी में देखने का उदारतावादी दृष्टिकोण प्रामाणिक साहित्यकार अपनाता है । अर्थात् [illegible] लेखक का व्यक्तित्व उसके आत्मबल से, संघर्ष से, प्रतिबद्धता से स्थापित होता है । जो लेखक अपने परिवेश से प्रभावित नहीं होता, उसके संकटों से अपना सिर नहीं खपाता वह साहित्यकार नहीं, महज़ लिपिकार होता है ।

व्यक्तित्व के निर्माण में फ्रायड के अनुसार सहयोग देनेवाले अंशों से इड, इगो और सुपर इगो का प्रमुख हाथ है । इड कामनाओं का पुंज है जहाँ व्यक्तियों के अंतर्मन में इच्छाओं का बवंडर निकलता है और ये कामनाएँ अपनी तृप्ति का मार्ग एनकेन प्रकार से ढूँढने को प्रतिबद्ध रहती हैं । इगो में इन की कामनाएँ सामाजिक मर्यादा और सीमाओं को ध्यान में रखकर अपने को नियंत्रित करती हैं और समय पाकर बुरा और अच्छा व्यवहार करने के लिए तत्पर होती हैं जबकि सुपर इगो में व्यक्ति हमेशा आदर्श और सामाजिक नैतिकता के प्रति आकृष्ट रहने को बाध्य होता है । किसी भी हालत में इस अवस्था में वह अपनी कामनाओं के साथ समझौता करने को तैयार नहीं रहता है । उसका मनोस्थैर्य, दृढ़चित्त यहाँ अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वचनबद्ध रहता है । पक्की मनोधारणा की इस अवस्था में व्यक्ति का व्यक्तित्व इड और इगो को लाँघकर अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए प्रतिबद्ध रहता है । इनकी "स्व" कामनाएँ सुपर इगो में लोकमंगल की कामना से आपूर्त होती हैं । फ्रायड का मानना है कि व्यक्ति में इन तीनों का विकास क्रमशः होता है, प्रौढ़ अवस्था तक आते-आते सुपर इगो का विकास होता है जिसके कारण उसके व्यक्तित्व का विकास होता है और उसमें प्रखरता आती है । इनके अतिरिक्त शारीरिक तनाव, संघर्ष और भय के सामूहिक या अकेले के दबाव से व्यक्ति के मस्तिष्क में भी अनुभव और सुखात्मक या दुखात्मक यातनाएँ या यंत्रणाएँ दाखिल होती हैं जिनके सेवनों की गति के अनुसार व्यक्ति अपने कार्यविधानों को निर्धारित करता है । लेखकों में उसके ये संवेग सृजनात्मक लेखन के

के माध्यम से प्रस्फुटित होते हैं, यहाँ लेखक की सारी अनुभूतियाँ समयानुकूल जागृत होकर अपने आकार पाती हैं ।

फ्रायड के इन मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में हम परसाई के व्यक्तित्व का विश्लेषण करेंगे तो स्पष्ट होता है कि उनके आक्रोश में यंत्रणाएँ हैं, संघर्ष हैं । अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए, बिना टिकट के रेलयात्रा सफर करना अपराध मानते हुए भी, बिना टिकट के रेलयात्रा करना, अपनी क्षुधा की पूर्ति के लिए रेल्वे स्टेशन पर बैठे किसान के फलों की चोरी करने का निश्चय करना आदि वास्तव में इगो के स्तर पर संघर्ष के लिए अपना समर्थन कर लेते हैं । वैसे उनके सामने सुपर इगो का लक्ष्य है जिससे हाथ धोने के लिए वे कदापि तैयार नहीं होते । उनके बचपन के दिनों के कष्ट, गरीबी, यातनाएँ बाद में लेखकीय व्यक्तित्व में इस प्रकार मूर्त हुई हैं कि उन सबसे लड़ने का साहस सुपर इगो के कारण संभव हो पाया है । उनकी बुआजी का यह कथन - "डरो मत, किसी से डरो मत" वाला संदेश परसाई के अंतर्मन में एक स्थायी भाव के रूप में घर कर गया है ।

युंग ने फ्रायड से भी आगे चलकर व्यक्तित्व के निर्माण के सिद्धांतों का विश्लेषण किया है । इनके अनुसार अहम, (इगो) वैयक्तिक सुप्त चेतना, (पर्सनल अनकॉशियस), उसकी मनोग्रंथियाँ (कॉम्प्लेक्सस्), सामूहिक अचेतन (कलेक्टिव अनकॉशियस) और मानवकल्पन के मूल अथवा आदिम स्वरूप (अर्किटाइपस्), परसोना अथवा मुखावर्त (मास्क) एनीमा तथा एनीमस एवं छाया (शेडो) अथवा व्यक्तित्व का प्रच्छन्न अथवा अचेतन गुण हैं । अर्थात् व्यक्ति की सुप्त-चेतना में न केवल उसकी अपनी सुप्त अनुभूतियाँ समय पाकर जागृत होती हैं अपितु हर व्यक्ति अपनी परंपरा, अपनी जातीय परंपरा, यहाँ तक कि समस्त मानवजाति के अनुभवों को अपने पाथेय के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी लेता जाता है जिसकी अभिव्यक्ति अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के माध्यम करता है । युंग के अनुसार व्यक्ति के अंदर अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी चिंतन (थिंकिंग), भावना (फीलिंग), संवेदन (सेनसेशन) तथा सहज बोध (इनट्यूशन) नामक चार मानसिक कार्य व्यापार होते हैं । इस सामूहिक अचेतन का वर्तमान के साथ घनिष्ठ संबंध होता है और इसीके आधार पर संस्कृति

का विकास संभव होता है । इस चिंतन, अनुभूति, संवेदना, सहज बोध के फलस्वरूप व्यक्ति परिवेश की विसंगतियों, विद्रूपों एवं मानव के व्यापारों का निरीक्षण करता है और अपने संस्कारों के अनुरूप उन्हें विश्लेषण करता है । यहाँ साधारण व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की सीमा को अपने तक ही सीमित रखता है, दुनिया के संघर्षों से, सामाजिक असमानताओं की परवाह करना तो दूर, स्वयं अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का भी सामना करने का प्रयत्न करता है । वह सिर्फ समझौता और राजीभाव को अपनाता है । ठंडा स्वभाव ऐसे व्यक्तियों का जन्मजात गुण होता है । मनस्तापी व्यक्तित्ववाला नकारात्मक व्यक्तित्व को प्रश्रय देकर मानव विरोधी, समाज विरोधी, रवैया अपनाकर अपने से और समाज से द्वेष करता है, घृणा करता है । ऐसे व्यक्तित्व-वालों से सामाजिक कल्याण संभव नहीं हो पाता है । मगर सृजनात्मक व्यक्तित्ववाले कभी अपने से, अपने परिवेश से समझौता नहीं करते और नकारात्मक दृष्टि अपनाकर समाज के प्रति द्वेष की भावना नहीं बढ़ाते । किन्तु ये स्वतंत्र व्यक्तित्व के होते हैं, सकारात्मक चिंतन करते हैं, मानव प्रेमी होते हैं । वर्तमान की वास्तविकताओं को सुधारने में आस्था रखते हैं, रचनात्मक कार्य-प्रणालियों में ये उत्साह दिखाते हैं ।

परसाई इस सर्जनात्मक व्यक्तित्व के धनी हैं, अपनी जातीय परंपरा तथा मानव कुल की यंत्रणाओं, उसके अच्छे संस्कारों एवं उसके ह्रासग्रस्त मूल्यों से परिचित हैं, उसकी मनोग्रंथियों से आत्मसात किए हुए हैं । अतीत का सघन बोध, वर्तमान के प्रति सजगता और भविष्य के प्रति आस्था का संगम है इनका सर्जनात्मक व्यक्तित्व । अपने अनेकों अभावों के बावजूद भी, उनकी चिंता न करके अपने "स्व" के बाहर जो मजबूरियाँ, पीड़ाएँ तथा यातनाएँ हैं, उन्हें अत्यंत सहानुभूति से देखने के द्वारा अपनी पीड़ा का उदात्तीकरण करने का अद्भुत साहस परसाई में है । यही कारण है कि परसाई का व्यक्तित्व पराजय को एक मूल्य के रूप में कभी स्वीकार नहीं करता, बदले में पराजित व्यक्तियों की धमनियों में आशा और उत्साह संचार करने की प्रबल शक्ति उनके सर्जनात्मक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी उपलब्धी है । साथ ही सामाजिक परिवेश के संदर्भ में हर कहीं दिखायी देनेवाली विघटनकारी प्रवृत्तियों को देखकर निराश और पलायनवादी और समझौतावादी होने के बजाय उनसे लड़ने का संकल्प परसाई की

रचनाओं के मूलद्रव्य हैं। इस दृष्टि से परसाई का व्यक्तित्व संघर्षों की अग्निशेष-टिब्बा पर फूटा हुआ ज्वालामुखी है।

परसाई का व्यक्तित्व काल के क्रूर थपेड़ों को सहकर बना है। बचपन की गरीबी, परिवार की ज्यादतियाँ, बड़े होने के नाते परिवार की नाव को चलाने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी निभाते-निभाते जीवन के प्रांगण में परसाई का प्रवेश हुआ। मस्ती से खेलने और आराम से पढ़ने-लिखने की उम्र में परसाई का साक्षात्कार जीवन के कटु अनुभवों से हुआ। यानी 1936-37 में प्लेग के कारण माँ चल बसीं, तो पिता इस कदर टूटे और हार गए कि अपनी पत्नी के देहांत के बाद 5-6 साल जीए तो जरूर किन्तु ऐसे कि "लगातार बीमार, हताश, निष्क्रिय और अपने से ही डरते हुए।"[1] पिता परिवार का खंभा थे, यह खंभा टूटा था जिसके गिर जाने की संभावना हमेशा सामने थी। अपनी पाँच संतानों में से एक बेटी की शादी पिता ने बीमारी की हालत में ही की, तथापि पिता की मृत्यु के बाद अपने भाई-बहनों की जिम्मेदारी परसाई के कंधों पर पड़ी। तब की अपनी मनस्थिति की ओर इशारा करते हुए परसाई लिखते हैं - "पाँच भाई-बहनों में माँ की मृत्यु का अर्थ मैं ही समझ सकता था - सबसे बड़ा था।"[2]

परसाई होनहार बालक थे, पढ़ने-लिखने, खेलने और खाने में अव्वल थे मगर पारिवारिक संकटों ने इनकी पढ़ाई में बाधा पहुँचाई जिसके फलस्वरूप अपने भविष्य निर्माण की अपेक्षा अपने साथ जन्मे भाई बहनों के हित को ध्यान में रखकर अपनी स्कूली पढ़ाई यानी मैट्रिक परीक्षा पास करते ही नौकरी पकड़ी - जंगल विभाग में। जंगल विभाग की भाग-दौड़, परिश्रमपूर्ण नौकरी ने जीवन की मजबूरियों से आत्मसात कराया - "जंगल में सरकारी टपरे में रहता, ईंटें रखकर, उन पर पटिए जमाकर बिस्तर लगाता, नीचे जमीन चूहों ने पोली कर दी थी। रात-भर नीचे चूहे धमाचौकड़ी करते रहते और मैं सोता रहता। कभी चूहे ऊपर आ जाते तो नींद टूट जाती पर मैं फिर सो जाता।"[3] जीवन के शुरू में हुए अनुभव परसाई के अचेतन मन में इस प्रकार जमकर रह गए कि जीवन से जैसे जैसे कटु अनुभव मिलते गए वैसे वैसे उनको सहने का स्थैर्य और धैर्य जंगल विभाग की

नौकरी के दिनों की ज्यादतियों से मिला । अपने उन दिनों के अनुभवों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए परसाई कहते हैं - 'चूहों ने बड़ा उपकार किया । ऐसी आदत डाली कि आगे की जिंदगी में भी तरह-तरह के चूहे मेरे नीचे उधम करते रहे हैं, साँप तक सरसराते रहे हैं, मगर मैं पटिए बिछाकर पटिए पर सोता रहा हूँ । चूहों ने ही नहीं, मनुष्यनुमा बिच्छुओं और साँपों ने भी मुझे बहुत काटा है - पर 'जहर-मोहरा' मुझे शुरू में ही मिल गया ।[4] परसाई के इन शब्दों से उनकी जीवन-यात्रा के संघर्ष का पता चलता है जोकि जोखिमों से लबालब भरा रहा, साथ ही परसाई के उस अटूट साहस और अदम्य धैर्य का भी संकेत मिलता है जिसने कभी भी झुकना नहीं जाना । सहानुभूति या अनुकंपा से बिल्कुल नफरत करने की धारणा इनमें आरंभ से रही है । कहते हैं कि 'बेचारे परसाई' का मौका ही नहीं आने दिया । उसी उम्र से दिखाऊ सहानुभूति से मुझे बेहद नफरत है । अभी भी दिखाऊ सहानुभूति वाले को चाँटा मार देने की इच्छा होती है, जब्त कर जाता हूँ, वरना कोई शुभ-चिंतक पिट जाते ।[5] परसाई का जीवन काँटों का झूला रहा है, इन काँटों पर ऐसे कदम रखते आए कि काँटों की नोक टूट गई मगर परसाई के पाँव सुरक्षा से रहे ।

परसाई के व्यक्तित्व में द्वंद्व की मात्रा शुरू से ही सबल रही हैं । यह द्वंद्व व्यक्ति के मन की अच्छाई-बुराई को प्रस्तुत करके किसी एक को चुनने के लिए प्रेरित करते हुए द्वंद्व में डालता है । दुर्बल मन का व्यक्ति अपनी सहज कामना को दबाकर समाज से स्वीकृत मूल्यों के पीछे चलता है, किंतु परसाई के जीवन में ऐसे संदर्भ भी आए जिन्हें उन्होंने न चाहते हुए भी किया, द्वंद्व के नेत्यात्मक रूप को बड़े धैर्य के साथ चुना । गलत को गलत जानते हुए भी अपनी मजबूरियों के कारण उन्हें करने में संकोच नहीं किया और अपनी करनी का समर्थन करने की प्रतिभा तथा चालाकी भी उनमें थी । जैसे - बिना टिकट सफर करना, पकड़े जाने पर अंग्रेजी के माध्यम से सुशिक्षित बाबुओं को प्रभावित करना, निस्संकोच भाव से किसी से भी उधार माँगना, समय पड़ने पर पेट की भूख का शमन करने के लिए चोरी करने तक निश्चय करना, ये कुछ प्रसंग हैं जिनके द्वारा उनका द्वंद्व उनके व्यक्तित्व पर आक्रामक होकर हमला करता था ।

परसाई ने अपने जीवन में इतने मस्तमौलापन एवं बेफिक्रपन का रवैया अपनाया है कि व्यक्तिगत जीवन की सुख-सुविधाओं को नजरंदाज किया है । नौकरी करना, छोड़ना, किसी की भी सहानुभूति या अधीनता से स्वीकार न करने की मनोवृत्ति के फलस्वरूप लेखन को आजीविका का साधन मानने का निश्चय करना - ये सब वास्तव में एक ओर परसाई के आवारापन एवं बेपरवाही को रेखांकित करते हैं तो दूसरी ओर उनके अतीव मनोबल और आत्मविश्वास को रेखांकित करते हैं जिसके मूल में उनकी बुआजी की जीवन दृष्टि एवं संस्कार क्रियाशील हैं । शुरू की गरीबी के दिनों में जबकि घर में दो वक्त का खाना मयस्सर नहीं था तब, बुआ कहती - "चल कोई चिंता नहीं" । परसाई के अनुसार बुआजी का यह वाक्य उनकी ताकत बना । इसी ताकत से परसाई ने अपने व्यक्तित्व को ऐसा संवारा कि विपदाओं के बावजूद भी जीने की जिजीविषा बनाये रखी । इस ओर संकेत करते हुए परसाई लिखते हैं - " मैं डरा नहीं । बेईमानी करने में भी नहीं डरा । लोगों से नहीं डरा तो नौकरियाँ गईं । लाभ गए, पद गए, इनाम गए । गैर जिम्मेदार इतना कि बहन की शादी करने जा रहा हूँ । रेल में जेब कट गयी, मगर अगले स्टेशन पर पूड़ी साग खाकर मजे में बैठा हूँ कि चिंता नहीं । कुछ हो ही जायेगा । और हो जायेगा ।[6] परसाई के व्यक्तित्व में यह जो निश्चिंत-बेफिक्र-मस्तमौलापन है, वह उनके अनेकों रेखाचित्रों में प्रस्फुटित हुआ है । रामदास, एम.एल. मास्टर मनीषीजी के जीवनविधान में हम परसाई के व्यक्तित्व को ही देख सकते हैं ।

परसाई के व्यक्तित्व में सुपर-इगो याने कुछ बनकर दिखाने और कुछ करने की इच्छा शुरू से बलवती रही है । इसलिए ही कितने ही कष्टों एवं जिम्मेदारियों के रहते हुए भी व्यक्तित्व और चेतना का अवसान नहीं होने दिया । लेखक होने की कल्पना भी जब नहीं थी तब भी अपनी अस्मिता पर चोट लगने नहीं दी, अपने परिवेश से समझौता नहीं किया । बदले में इन सारी वास्तविकताओं के बीच से ज्वालामुखी की भाँति इनका व्यक्तित्व स्थापित हुआ । उनके शब्दों में " मैं ने तय किया - परसाई, डरो किसी से मत । डरे कि मरे । सीने को ऊपर ऊपर कड़ा कर लो । भीतर तुम जो भी । जिम्मेदारी को गैर जिम्मेदारी के साथ निभाओ । जिम्मेदारी

को अगर जिम्मेदारी के साथ निभाओगे तो नष्ट हो जाओगे और अपने से बाहर निकलकर सबमें मिल जाने से व्यक्तित्व और विशिष्टता की हानि नहीं होती। लाभ ही होता है। अपने से बाहर निकलो, देखो, समझो और हँसो।[7] एक स्वस्थ मन की चिंतन-दिशा को ये पंक्तियाँ उभारकर रखती हैं।

इसी जीवन दृष्टि का परिणाम है इनकी व्यक्तिगत पीड़ा का विलयन विश्व पीड़ा में हुआ। उन्होंने महसूस किया कि गरीबी एवं पीड़ा मात्र वे ही भोग रहे हैं न उन्हीं तक सीमित है। अपनी व्यक्तिगत परिधि के बाहर की दुनिया का दारिद्र्य, शोषण, भूख, बीमारी एवं निरीहता को देखकर इस संवेदनशील व्यक्ति यानी परसाई का दिल मसोसने लगा। व्यक्ति जीवन से राष्ट्रजीवन तक की अनेकों विसंगतियाँ जैसे भ्रष्टाचार, अनाचार, नैतिक अधःपतन आदि ने परसाई के व्यक्तित्व को ऐसा ललकारा कि इन सबको जड़ उखाड़ने का निश्चय किया। जड़ को उखाड़ने का अस्त्र बनाया, कलम उनकी हथियार बनी। "लेखक" बनने की प्रेरणा के बारे में परसाई ने लिखा है - इन्हीं सब परिस्थितियों के बीच मेरे भीतर लेखक कैसे जन्मा, यह सोचता हूँ। पहले अपने दुखों के प्रति सम्मोहन था... अपने को दुखी मानकर और मनवाकर आदमी राहत भी पा लेता है...मैं ने देखा, इतने ज्यादा बेचारों में मैं क्या बेचारा। इतने विकट संघर्षों में मेरा क्या संघर्ष... मेरा अनुमान है कि मैंने लेखनको दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। दूसरे, इसीमें मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा, तीसरे, अपने को अपविशिष्ट होने से बचाने के लिए मैं ने लिखना शुरू किया।"[8]

परसाई ने अपने लेखन-कर्म को भावुकता से मानव तथा मानवता की महिमा का गायन करने के लिए, अमूर्त सत्ता की स्तुति और उससे मिलन की उत्कंठा की पूर्ति के लिए, एवं तत्कालीन साहित्यकारों की भाँति भारतमाता के स्तवन के लिए नहीं अपनाया, किन्तु मानवता का ह्रास, दरिद्रों की पीड़ा से उनका भावुक और संवेदनशील मन इस प्रकार मथ उठा कि लिखना अनिवार्य हो गया, साथ ही भारतमाता के नाम पर देश को दीवाल बनानेवाले नेता, पूँजीपति और महाजनों के मुखौटों को निर्भीकता

से उखाड़ने को अपने लेखन का मकसद बनाया । कविता लिखने की उस उम्र में परसाई यथार्थ को वाणी दी, युग बोध को स्वर दिया, झूठ को पलट किया अर्थात् अपनी अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य का सहारा लिया । उन्होंने व्यंग्यबाणों से हर झूठ पर वार करने का बीड़ा जो चालीस साल पहले उठाया था वह आज भी जारी है । इस दृष्टि से परसाई का व्यंग्य नियति की गाथा नहीं अपितु नियति के बंधन से मानव को मुक्त करके उसे नितांत वैचारिक धरातल पर खड़ा करके सोचने को प्रेरित करनेवाला ज्वालामुखी है ।

व्यंग्यकार बनने की महत्वपूर्ण शर्त यह है कि अपने व्यंग्य द्वारा किसी बात की विसंगति को वह उभारता है तो उसके सामने समूचे मानव इतिहास, साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र का अच्छा ज्ञान होना चाहिए जिससे कि सही को आदर्श मान सके, उसे स्वीकार कर सके । परसाई के विक्षुब्ध अस्तव्यस्त, लापरवाह जीवन में पढ़ाई में बाधाएँ आने के बावजूद भी लिखने, तो भी व्यंग्य लिखने के लिए ही शुरू किया तो उन्होंने बहुत सारा पढ़ा, चिंतन-मनन किया । परसाई की रचनाओं के अध्ययन से उनके गहन अध्ययन, गंभीर-चिंतन मंथन का पता अपने आप लगता है । उनकी इस अध्ययन प्रवृत्ति ने हिन्दी साहित्य को वैचारिक दृष्टि दी है । परसाई ने विचारों, वाद-विवादों का जैसा आलोड़न किया है, वैसे और किसी ने शायद ही किया हो ।

परसाई में मानव प्रेम, जीवन के प्रति आस्था अपनी चरमसीमा में है । उनका व्यंग्य लेखन कठोर तथा चाबुक सा काम करता है, मगर इनका हृदय असीम सहानुभूति, अनुकंपा से ओतप्रोत है । अपने स्वभाव का विश्लेषण करते हुए परसाई कहते हैं कि " मैं बहुत, संवेदनशील और बेचैन तबीयत का आदमी हूँ । " इस स्वभाव के कारण ही इनका तादात्म्य उन बेसहारे लोगों के साथ हो सका और उनके दुखदर्द को आत्मसात कर सका । उनका लेखन कुंठा, निराशा, निर्वासन और अकेलेपन की प्रस्तुति नहीं है ।

परसाई का शुरू से ही भारतीय राजनीति से निकट संबंध रहा है, इस दृष्टि

से परसाई का कृतित्व एक विशाल अर्थ में स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनैतिक इतिहास का सफल व्याख्यान प्रस्तुत करता है । देश के भविष्य को निर्धारित करने में यहाँ की पार्टी बाजी का क्या योगदान रहा है, इसका अत्यंत मार्मिक विवेचन परसाई में मिलता है ।

परसाई का राजनैतिक जीवन भी कांग्रेस के समाजवादी गुट के नेताओं के संपर्क में आने से शुरू हुआ जोकि 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के हीरो थे । मगर इन समाजवादी नेताओं से भी इनका मोहभंग हुआ । अपने राजनैतिक जीवन के बारे में और इन समाजवादियों के बारे में परसाई ने अपनी आत्मकथा में लिखा है - "मैं समाजवादियों के साथ था । विधिवत् ये समाजवादी 1948 में कांग्रेस से बाहर आए और समाजवादी दल बनाया । अध्यक्ष थे आचार्य नरेन्द्र देव । वास्तव में पार्टी चलाते थे जय प्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया और अशोक मेहता । जयप्रकाश नारायण ने आगे चलकर समाजवादियों के लिए लाल टोपी पहनने का नियम बना दिया । डॉ.लोहिया ने इसका उपहास किया और कभी लाल टोपी नहीं पहनी । अशोक मेहता अपनी दाढ़ी में क्रांतिकारी की छवि रखते थे ।.... 1952 तक समाजवादियों से मेरा काफी मोह भंग हो गया था । ये कांग्रेसी ही थे । वही संस्कार थे । जरा क्रांतिका थी । भाषा तीखी तीव्र सी थी । पर अधिकांश को कोई समझ नहीं थी समाजवाद की । ये भावुक लोग थे । गरीबों से सहानुभूति थी । इनका समाजवाद यह था । हाय ! एक तरफ गरीब की झोंपड़ी और उसीसे लगा अमीर का बंगला । हाय ! यह अन्याय है । गरीबी, अमीरी का भेद मिटना चाहिए । ये न इतिहास जानते थे, न अर्थशास्त्र, न समाजशास्त्र । पहले महात्मा गांधी की जय बोलते थे, अब जयप्रकाश नारायण की जय बोलते थे ।'[9] यह है समाजवादियों की प्रतिबद्धता । तीखी मोहक भाषा में लोगों को भ्रमजाल में डालनेवाली समाजवादियों की कांग्रेसी संस्कृति के कारण ही समाजवादी दल का विघटन होता गया । ये वे समाजवादी थे जो समाज में परिवर्तन लाने के लिए कांग्रेस से अलग हुए थे, जो बाद में उसी कांग्रेसी मंत्री मंडल में शामिल होने को राजी हुए । समाजवादियों के व्यक्तित्व के विरोधाभासों और दोहरी नीतियों की राजनीति से परसाई का मोहभंग हुआ । समाजवादी पार्टी का इस बाद में निरंतर विघटन ही इस बात का साक्षी है ।

अपने ज़माने के प्रखर गांधीवादियों के द्वंद्व व्यक्तित्व का भी परिचय परसाई को था । आचार्य कृपालानी के संबंध में परसाई लिखते हैं कि " आचार्य कृपालानी गांधीवादी थे..... कृपालानी अविश्वसनीय और बूढ़े गांधीवादी थे । संसद में उन्होंने कहा था - "गांधी जी के इस देश को सेना और हथियारों की क्या ज़रूरत है । हम क्यों इतना पैसा इन पर खर्च करते हैं, हमने अहिंसा की शक्ति से एक साम्राज्य को पराजित किया है । मगर जब चीन का हमला 1962 में हुआ, तब इन्हीं कृपालानी ने सबसे तीखा हमला रक्षा मंत्री कृष्ण मेनन पर किया कि देश को रक्षा के लिए तैयार नहीं किया । कैसे गांधीवादी होते हैं । पहले कहते थे कि इस रक्षा मंत्री को पैसा मत दो । बाद में आरोप लगाते हैं कि इस रक्षा मंत्री ने सुरक्षा की तैयारी नहीं की ।[10]

कांग्रेसियों, समाजवादियों और गांधीवादियों के जीवन की विसंगतियों से, उनके अपने सिद्धांतों के प्रति अनास्थामयी दृष्टिकोण से परसाई का मन उकता गया । देश और देशवासियों के स्वातंत्र्यपूर्व दिनों के वे सारे सपने स्वातंत्र्योत्तर दिनों के राजनैतिक व्यक्तियों के स्वार्थ और अधिकार हथियाने के चक्कर में चूर-चूर हो गए । परसाई के अनुसार, "स्वाधीनता आंदोलन में भावुकता अधिक थी और आर्थिक-सामाजिक, क्रांति के तत्व लगभग नहीं थे । हमने स्वतंत्रता में बहुत जल्दी बहुत अधिक आशा कर ली थी और एक बड़ी क्रांति के बाद निर्माण का जो उत्साह होता है वह गायब था । फिर बहुत जल्दी राजनैतिक-आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार फैल गया ।[11] इस परिस्थिति में परसाई का व्यक्तित्व एक ऐसे सिद्धांत और दर्शन की खोज करने लगा था जहाँ पर मानव-कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता हो । संयोग से सन् 53-54 में परसाई का संपर्क कम्युनिस्ट पार्टी से हुआ, और मार्क्सवादी दर्शन से उनका निकट परिचय हुआ । परसाई के सर्जनात्मक व्यक्तित्व को एक निश्चित रूप और एक निश्चित दिशा देने का श्रेय मार्क्सवाद को है । परसाई कहते हैं - "संयोग से मेरा संपर्क कम्युनिस्ट पार्टी से हुआ और मार्क्सवादी दर्शन तथा साहित्य से मेरा परिचय हुआ । अध्ययन से और समाजवादियों के संपर्क से मैं ने बहुत कुछ सीखा । अब मेरी दृष्टि साफ़ है । मैं श्रमिक आंदोलन से भी तभी संबद्ध हो गया । मेरा अनुमान है कि सन् 53-54 में मार्क्सवाद के

प्रभाव में आ गया । तभी मेरा संपर्क मुक्ति बोधजी से हुआ और उन्होंने मेरे मार्क्सवादी विचारों को मजबूत किया तथा दृष्टि को बिल्कुल साफ और सही कर दिया ।[12] सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता का जहाँ तक सवाल है, परसाई का राजनैतिक झुकाव कम्युनिस्ट और मार्क्सवादी चिंतनधारा के प्रति है । परसाई के साहित्य में मार्क्सवादी दर्शन की अभिव्यक्ति मिली है ।

हिन्दी व्यंग्य विधा के कर्णधार परसाई के व्यंग्य के स्वरूप को लेकर उन्हें सुधारवादी, परिवर्तनकामी, क्रांतिकारी, आंदोलनकारी आदि विशेषणों से अभिहित करते हुए नाना प्रकार के अभिप्राय प्रकट किये गये हैं । और इन पर परसाई ने भी स्पष्टीकरण दिया है । इन तमाम उपाधियों को नजरंदाज करके परसाई अपने को मात्र लेखक मानते हैं । एक लेखक के नाते समाज में परिवर्तन लाना, सामाजिकों की मानसिकता में परिवर्तन लाना उनका उद्देश्य रहा है । सुधार, आंदोलन या क्रांति आदि का मशाल लेकर "बाजार" में उतरने के लिए एक वैचारिक भूमि तैयार करने का अर्थात् परिवर्तन के लिए जनता में जागृति पैदा करने का काम परसाई के अनुसार लेखक को करना होता है । वे इसीको लेखक की प्राथमिक शर्त मानते हैं । इस दृष्टि से परसाई अस्मिता के उद्घोषक हैं । उनका कहना है - " मैं सुधार के लिए नहीं बल्कि परिवर्तन के लिए लिखता हूँ, यह कहने का मेरा यह अर्थ नहीं है कि मैं और मेरे जैसे परिवर्तनकामी लेखक केवल लेखन से समाज बदल देंगे । ऐसा दावा करना तो अहंकार और मूर्खता है ।... हम लेखक कुल इतना कर सकते हैं कि इस असमान व्यवस्था की सड़ांध को उजागर करें और परिवर्तन की चेतना निर्माण करें ।[13] परसाई के कृतित्व में परिवर्तनकामी हृदय का स्पंदन सर्वत्र पायी जाती है । परसाई कलम की सीमा से भी परिचित हैं । मात्र लेखन से इस देश में न क्रांति होगी, न परिवर्तन होगा, इस कठोर सत्य से भी अवगत हैं । इनकी दृष्टि में परिवर्तन सामूहिक प्रयास का परिणाम होता है । परसाई कहते हैं - " मैंने कभी यह दावा नहीं किया कि मेरे लेखन मात्र से कोई परिवर्तन हो जानेवाला है । असंख्य लोग हैं - मजदूर हैं, किसान हैं, गरीब लोग हैं जो परिवर्तन के लिए लड़ रहे हैं यही सफल होंगे, मैं उनके साथ कलम लेकर पैदल चलनेवाला हूँ ।[14] परसाई लेखक और लेखन की सीमाओं से अच्छी तरह परिचित हैं, तथापि परिवर्तन की

अपना लक्ष्य मानकर परसाई की रचनात्मकता गतिशील रही है ।

परसाई स्वभाव से भावुक और निर्मल अंतःकरण के होते हुए भी गंभीर व्यक्तित्व के लेखक हैं । मानवता के पक्ष पर परसाई में कठोरता, उग्रता एवं गंभीरता तब उभर आते हैं जबकि असामाजिक एवं मानव विरोधी तत्व अपना सिर उठाने लगते हैं । कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व से तीव्र रूप से प्रभावित परसाई में कबीर के संवेदनशील हृदय और उनके उग्रत्व का अद्भुत संगम है । परसाई के हाथ में व्यंग्य की लकुटिया है - मानवविरोधी तत्वों पर वार करने के लिए, मानव-गरिमा की रक्षा करने के लिए । परसाई इसी मानव-गरिमा के प्रति प्रतिबद्ध हैं । इसलिए वे लेखन को मनोरंजन का माध्यम नहीं मानते अपितु जीवन की आलोचना मानते हैं, जिस लेखन से मानव समुदाय का भला न हो, उसमें परिवर्तन न हो, उस लेखन को परसाई लेखन ही नहीं मानते । निरा हास्य भी उनका अभीष्ट नहीं है मगर उनका हर व्यंग्य इतना सूक्ष्म और सशक्त होता है कि वे जहाँ विसंगति का उद्घाटन करते हैं वहाँ हास्य को भी प्रश्रय देते हैं । " कला जीवन के लिए " - वाला सिद्धांत परसाई का है । अपनी कैफियत लिखते हुए परसाई ने लिखा है - " तो यह हँसना और हँसाना, विनोद करना अच्छी बातें होते हुए भी मैंने केवल मनोरंजन के लिए कभी नहीं लिखा । मेरी रचनाएँ पढ़कर हँसी आ जाना प्रासंगिक है - मेरा यथेष्ट नहीं । और चीज़ों की तरह मैं व्यंग्य को उपहास, मखौल न मानकर, एक गंभीर चीज़ मानता हूँ । साहित्य के मूल्य जीवन मूल्यों से बनते हैं ।[15] अपने लेखन के बारे में उनकी यह सफाई है जिससे स्पष्ट है कि परसाई की लेखनधर्मिता समाज के प्रति प्रतिबद्ध है ।

परसाई की इस प्रतिबद्धता में तब भी कोई अंतर नहीं आता है जबकि सरकारी प्रतिष्ठानों से पुरस्कार लेने के अवसर आते हैं । परसाई के अनुसार इन पुरस्कारों को लेते समय लेखक को सत्ता का गुलाम नहीं बनना चाहिए, उसकी अपनी अस्मिता पर चोट लगने नहीं देनी चाहिए । इन पुरस्कारों के प्रति अपना रवैया स्पष्ट करते हुए अनेकों स्थानों पर प्रसंगवश परसाई ने स्पष्ट किया है - " सम्मान और धन किसे बुरा नहीं लगता । मुझे किसी अभिनंदन समारोह में माला पहिनने और अभिनंदन पत्र लेने में रुचि नहीं है । मेरी रुचि उन पैसों के ऊपर रहे जो मिलता है । कोई

मेरा सम्मान करना चाहे तो मैं उनसे कहूँगा कि मुझे देने के लिए धन का इंतजाम तुम कर लो और अभिनंदन पत्र मैं खुद लिखकर छपा दूँगा ।[16] व्यावहारिक दृष्टि से साहित्यकार को पुरस्कार के नाम पर आनेवाले पैसे स्वीकार करने में कोई "बुराई" न देखते हुए भी परसाई ऐसे पुरस्कारों, सम्मानों और "नाम" के वास्ते कुछ भी करने के लिए तैयार रहनेवाले लेखकों का व्यंग्य " जिंदगी और मौत का दस्तावेज " नामक निबंध में बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है । आत्मस्थ व्यंग्य के माध्यम से परस्थ व्यंग्य जो यहाँ है वह सम्मान लोभी साहित्यकारों की खिल्ली उड़ाता है ।

परसाई बड़े अध्ययनशील साहित्यकार रहे हैं । अपने लेखकीय जीवन को आरंभ करने के पहले अपने को लेखकीय व्यक्तित्व के अधिकारी बनाने के लिए परसाई ने इतिहास समाज, राजनीति, मनोविज्ञान, संस्कृति और विश्व के श्रेष्ठ साहित्य का गंभीर अध्ययन चिंतन-मंथन किया है जिसके परिणामस्वरूप इनके व्यक्तित्व को एक ठोस आकार मिला, अच्छे संस्कार मिले । भारतीय साहित्य एवं दर्शन से भी परसाई का निकट परिचय है, विभिन्न विचार धाराओं को आलोचनात्मक दृष्टि से इनके विवेचन करने की तीक्ष्ण सूक्ष्मानुभूति है । विश्वसाहित्य के महत्वपूर्ण साहित्यकारों और वैचारिकों की विचारधारा एवं उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से परसाई का व्यक्तित्व और कृतित्व प्रभावित हुआ है । रूसी लेखकों में से मायकोवस्की, दस्तोवस्की, चेखव, शोलोखोव, फ्रांसीसी लेखकों में से मोपासा, अनातोले फ्रांस [illegible] बाल्जाक, लुइ अरागाँ, कामू, सार्त्र, अंग्रेजी लेखकों में से शेक्सपियर, डिकन्स, बर्नार्ड शा, वेल्स, जान आस्टिन, टामस हार्डी, अमेरिकी लेखकों में से ओ.हेनरी, सिन्क्लेयर, लूइस हेमिंग्वे, लैटिन अमेरिकी कवि पाब्लो नेरुदा जैसे महान लेखकों को जैसा परसाई ने अध्ययन, मनन किया है , वैसे हिन्दी के दूसरे कवि ने शायद ही किया हो ।

इन सबके कृतित्व से साक्षात्कार रहने के कारण ही परसाई की रचनात्मक अभिव्यक्ति में कहीं भी द्वंद्व या विरोधाभास नहीं है । परसाई की कोई भी रचना हो वहाँ महज कहानी या घटना नहीं रहती अपितु एक दर्शन होता है, वैचारिकता होती है, मनोवैज्ञानिक तथ्य होता है । इस दृष्टि से परसाई का कृतित्व मानव इतिहास का एक अविभाज्य अंग बन जाता है ।

गद्य के क्षेत्र में परसाई का सर्जनात्मक व्यक्तित्व बहुआयामी है । कहानी, निबंध, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संपादन और उपन्यास के क्षेत्र में इनका योगदान अनन्य है । परसाई की रचनाएँ संख्या की दृष्टि से भले/ ही कम रही हों, किन्तु जितना है वह हमारे देश के सामाजिक राजनैतिक इतिहास का अभिन्न अंग है क्योंकि यहाँ परसाई वास्तविकताओं से पाठकों को साक्षात्कार कराते हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं मध्यवर्गीय जीवन का इतिहास लिखनेवालों के लिए, देश के गरिमामय इतिहास लिखनेवाले इतिहासकारों के लिए परसाई की रचनाएँ इस इतिहास के दूसरे पक्ष को सशक्त रूप से उभारकर रखती हैं । इस दृष्टि से परसाई की कोई रचना - कहानी या उपन्यास या निबंध या रेखाचित्र-उद्देश्य हीन नहीं है । हर कहीं एक मूल्य, एक जीवनदर्शन प्रतिपादित हुआ है । परसाई के साहित्यिक जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धी उनका विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में अपने साहित्यिक जीवन के शुरू के दिनों से लिखता आ रहा स्तंभ लेखन है । अपने साहित्यिक जीवन में लगभग चार दशकों से नियमित रूप से स्तंभ लेखन परसाई ने किया है, इस क्षेत्र में परसाई का प्रतिद्वंदी विरले ही प्राप्त होंगे । आम तौर पर स्तंभ लेखन करनेवालों के प्रति, उनकी विद्वत्ता के प्रति पाठक संदेह की दृष्टि से देखते हैं, उनके लेखन को मात्र समसामयिक महत्व का बताकर नज़रंदाज किया जाता है, 'शाश्वत' साहित्य नहीं माना जाता है । मगर परसाई का स्तंभ लेखन एक अपूर्व अपवाद है । इन्होंने अपने स्तंभ लेखन के द्वारा लोगों में वर्तमान के प्रति जागृति, समसामयिक विचारों का बोध और हमारी सांस्कृतिक जगत से नाता जोड़े रखने का प्रयास किया है । इनकी वस्तु मुख्य रूप से राजनीति होते हुए भी राजनीति के विद्रूपों, भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश करके जनता में राजनैतिक चेतना जागृत कराने में परसाई के इन स्तंभलेखों के महत्वपूर्ण स्थान है । यहाँ की प्रांजल भाषा, मुहावरेदार शैली, और विचारों की संप्रेषणीयता की अपूर्व क्षमता के कारण यहाँ विचारों के पुनरावर्तन के बावजूद भी पाठक अपूर्व सुख का अनुभव करता है । भारतीय जनमानस को प्रभावित करने में इन लेखों का अपना महत्व है ।

परसाई के व्यक्तित्व की खास विशेषता है, जहाँ आम आदमी टूट सकता है वहाँ परसाई तनकर खड़ा होते हैं । जहाँ साधारण व्यक्ति पलायन एवं निराशा से ग्रस्त

हो सकता है, वहाँ परसाई प्रगाढ़ जीवन प्रेमी एवं अत्यंत आस्था से जीवन से प्यार करने लगते हैं। यह क्षमता भी उसी व्यक्ति में आ सकती है जिसमें अप्रतिम मनोबल हो, परसाई ऐसे मनोबल से हैं। खुद पिटे जाने के प्रसंग में भी पीटनेवालों के प्रति दया, करुणा के साथ ही साथ उनके प्रति और भी ज़ोरदार व्यंग्य करने से न चूकने का अद्भुत साहस इनमें है। सुकरात, ईसा, गांधी जैसे महान व्यक्तियों के संदेश का पाथेय परसाई की मानस में है, इसलिए ही पिटे जाने की घटना पर परसाई की प्रतिक्रिया "पिटने-पिटने में फर्क" नामक निबंध है जोकि उनकी ऐसी मनोभावना का सूचक है - "पिटाई की सहानुभूति के सिलसिले में जो लोग आये, उनकी संख्या काफी होती थी। मैं उन्हें पान खिलाता था। जब पान का खर्च बहुत बढ़ गया, तो मैंने सोचा, पीटनेवालों के पास जाऊं और कहूं - "जब तुमने मेरे लिए इतना किया है, मेरा यश फैलाया है, तो कम से कम पान का खर्च देदो। चाहो तो एक बेंत और मार लो।[17] इस निबंध में परसाई अपने जीवन में हुए अन्यान्य प्रसंगों में पीटे जाने के संदर्भों का उल्लेख करते हुए उन प्रसंगों में सहानुभूति दिखाने के लिए आये लोगों की स्वार्थपरता का व्यंग्य किया है।

कुछ वर्ष पहले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की कुछ सांप्रदायिक शक्तियों ने परसाई के व्यंग्य प्रहारों का सहन करने का साहस न दिखाकर उनपर हमला करके पीटा। पीटकर अपनी कायरता का प्रदर्शन किया और सहारा अपनी कुटिलता जनता के सामने ज़ाहिर की तो परसाई ने और भी साहस और निष्ठुरता से असामाजिक तत्वों पर लिखकर लेखकीय व्यक्तित्व का आदर बनाये रखा जोकि एक लेखक की महत्वपूर्ण उपलब्धी है।

परसाई की रचनाओं में व्यक्तित्व की रक्षा का अद्वितीय रूप देखा जा सकता है। किसी भी मूल्य पर परसाई अपने व्यक्तित्व पर आंच आने नहीं देते। प्रायः हम देखते हैं कि साहित्यकार प्रतिष्ठित हो जाता है तो उसे आराधनाभाव से देखनेवालों का, उसे "अज्ञेय" बनानेवालों का लंबा तांता ही लग जाता है जिसमें अपने "श्रद्धाकुसुमों" को अर्पित करके लेखक अ अ अ के स्वर को दबाने का या उसे अपना पक्षधर बनाने का प्रयास किया जाता है दुनिया में इन श्रद्धा कुसुमों पर लट्टू हो जानेवालों की संख्या ही ज्यादा है, परसाई ही एक अपवाद हैं जिन्होंने श्रद्धालुओं को निस्संकोच ठुकराया है। लेखकीय

व्यक्तित्व, चरित्र और अस्मिता की पहचानने के लिए "प्रेय" बनना अस्वीकार करते हैं । परसाई के अनुसार "प्रेय" बनने का मतलब है "नाम् परसन्" होना । परसाई कहते हैं - "प्रेयस बन जाने की इस हल्की सी इच्छा के साथ ही प्रेय मेरा डर बरकरार है । प्रेय बन जाने का मतलब है "नान परसन्" - अव्यक्ति हो जाना । प्रेय वह होता है जो चीज़ों को हो जाने दे । किसी चीज़ का विरोध न करे जबकि व्यक्ति की चरित्र की, पहचान ही यह है कि वह किन चीज़ों का विरोध करता है । मुझे लगता है, लोग मुझसे कह रहे हैं तुम अब कोने में बैठो ।[18] मगर परसाई का व्यक्तित्व प्रेय बनने के लिए राजी कब होगा जबकि उनके रगरग में प्रशासकों के दंभ, झूठ और उनके मुखौटों को उखाड़ रखने का कभी न दबनेवाला उत्साह और तेज है । लोक-रीति से बिल्कुल भिन्न व्यक्तित्व है उनका ।

हरिशंकर परसाई के व्यक्तित्व का विश्लेषण के संदर्भ में उनके आत्मीय दोस्त मायाराम सुरजन और हनुमान प्रसाद वर्मा के व्यक्तिचित्रों का विशेष रूप से उल्लेख होना चाहिए । "विश्वमनधर्मी रचनाकार" मायाराम सुरजन का अपने ढंग का एक आत्मीय व्यक्तिचित्र है जिसमें परसाई के फक्कड़, लापरवाह एवं अस्तव्यस्त व्यक्तिगत जीवन के नाना पहलुओं को, उनकी गरीबी, जिम्मेदारी, मजबूरी, निराशा, पीड़ा और संत्रासों के बड़े ही मार्मिक अंकन किया गया है । इन सबके बावजूद भी परसाई के व्यक्तित्व में मानवजीवन के प्रति छलकनेवाले प्रेम एवं उल्लास का अत्यंत आत्मीय ढंग से रेखांकित किया गया है । साथ ही उनकी सृजनधर्मिता की भूमिका और मानवीय अनुकंपा को उन कमजोरियों और दुर्बलताओं के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है । मायाराम के यह वक्तव्य द्रष्टव्य है - "परसाई विचारों से मार्क्सिस्ट हैं, यह कहकर मैं कोई भूल नहीं कर रहा हूँ । ऐसी विषम स्थितियों में रहकर कोई भी सोचने समझनेवाला मार्क्सवादी हो ही जायेगा । बढ़ती हुई जिम्मेदारियाँ और घटते हुए आर्थिक स्रोत । समाज की सहानुभूति से ही तो नहीं जिया जा सकता । परसाई को समाज ने मीठे कम, कड़वे ज्यादा अनुभव दिये । लेकिन जीवन की इस कड़वाहट का उन्होंने सदुपयोग किया । वे अपने निराशाओं में समाज की सहानुभूति बटोरने में लगने के बजाय आर्थिक प्रसंग में राजनीति और साहित्य का अध्ययन करने में जुट गये । हिन्दी में ऐसे बहुत कम रचनाकार

है जिसमें विश्व की राजनीति और साहित्य का सधा हुआ बोध है ।[19] परसाई के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी ताकत समस्त विश्व की पीड़ा को आत्मसात करके उससे और प्रेरणा-शक्ति ग्रहण कर आगे बढ़ने में है ।

"जबलपुर और लेखक के रिश्ते" - शीर्षक व्यक्तिचित्र भी एक अंतरंग व्यक्ति चित्र है जिसमें हनुमान प्रसाद वर्मा ने परसाई के चरित्र के विशिष्ट गुणों का अंकन किया है । जबलपुर के वैचारिक-स्तंभ हरिशंकर परसाई के व्यक्तित्व, दर्शन एवं विचारों का विश्लेषण किया है - " वे जो लिखते हैं वही जीते हैं - जो भाषा बोली जाती है वही लिखी जाती है, उसमें कोई भेद नहीं है और यही कारण है कि अन्य लेखकों से भिन्न वे ऐसे एकमात्र लेखक हैं, जिनकी रचनाओं में उनके पाठकों का बहुत एक्टिव पार्टिसिपेशन सक्रिय योगदान। है....उनकी कथाओं और रेखाचित्रों में अंकित अधिक पात्र उनके आसपास के ही पात्र है । वे व्यक्ति या घटना को पकड़कर एक ऐसा सर्वमान्य ताना-बाना बुनते हैं कि उससे समूचा समाज और सभ्यता का खोखलापन बाहर आता है । समाज की विद्रूपता और थोथे आदर्श परसाई के लिए रुचिकर नहीं है ।[20] परसाई का व्यक्तित्व यथार्थ से जुड़ा है, यथार्थ को उभार रहा है, यथार्थ को ध्यान में रखकर भविष्य को संवारने का सपना देख रहा है । कोरा आदर्श, जनता को भ्रम में डालनेवाले नारों से परसाई सख्त विरोध करते हैं ।

परसाई महान मानवतावादी लेखक हैं, वे निरीश्वरवादी हैं साधु-संतों में, मंदिर-मठों में, जाति-पाँति में धर्मक्रियाओं में तत्संबंधी क्रिया कलापों में इनकी कोई आस्था नहीं है । इनका आराध्यदेव दरिद्र, हारा हुआ आदमी है । उसकी बेहतर जिंदगी इनका लक्ष्य है । सर्वोदयी समाज का निर्माण इनका सपना है । इनके मानवतावादी स्वरूप का दर्शन इनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सर्वत्र किया जा सकता है । जहाँ जहाँ मानवता पर प्रहार हुआ है वहाँ परसाई ने अपने व्यंग्य के अग्नि-बाणों से उनपर आक्रमण किया है । मूल्यों के स्थापक, नैतिकता के सशक्त पक्षधर परसाई न केवल व्यक्ति को अपितु इ पूरे समाज को मानव मूल्यों की दीक्षा देने के आकांक्षी हैं ।

इस युग के श्रेष्ठ कवि, चिंतक मुक्तिबोध के व्यक्तित्व और कृतित्व से परसाई का निकट से संबंध था । परसाई ने स्वयं स्वीकार किया है कि मुक्तिबोध के [illegible] स्नेह-संपर्क के कारण ही उनके जीवनदर्शन को एक निश्चित रूप मिला । परसाई के कई वैचारिक-विश्वासों एवं सिद्धांतों को लेकर मुक्तिबोध की सम्मति या स्वीकृति इस बात को पक्की करती थी वे ठीक ढंग से सोच रहे हैं । परसाई और मुक्तिबोध के आपसी संबंधों पर मायाराम सुरजन का कहना है - मुक्तिबोध से परसाई प्रारंभ से ही प्रभावित रहें । फिर मुक्तिबोध चाहे नागपुर में रहे हों या राजनांदगांव में, परसाई का संपर्क निरंतर बना रहा और वे एक दूसरे की शंकाओं का निराकरण करते थे । यद्यपि परसाई पर मुक्तिबोध का प्रभाव स्पष्ट है फिर भी यह भी उतना ही सच है कि मुक्तिबोध भी परसाई से उतने ही प्रभावित रहे । यदि मैं यह कहूँ कि मुक्तिबोध को अपनी कोठरी से बाहर निकालने में परसाई का अदृश्य हाथ था, तो ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी । वर्षों से लिखी जा रही उनकी पांडुलिपियाँ इकट्ठी होती जा रही थीं । परसाई ने उनके क्रमबद्ध प्रकाशन की व्यवस्था की ।...उनकी बीमारी में लगभग पूरे ही समय परसाई मुक्तिबोध के पास रहे । इन दिनों के वैचारिक आदान-प्रदान ने एक दूसरे की विचारधारा को और पक्का किया। मुक्तिबोध भी परसाई के व्यक्तित्व और कृतित्व की प्रखरता को समझते थे । उनकी प्रगतिशील विचारधारा से, मानवीय अंतःकरण से इतना प्रभावित थे कि परसाई में उन्होंने बड़ी संभावनाएँ देखीं थीं । उनके आरंभिक कथासंग्रह "तब की बात और थी" की रचनाओं के संदर्भ में मुक्तिबोध की लिखी समीक्षा की इन पंक्तियों में परसाई की रचना-क्षमता को रेखांकित किया गया है - "उनकी कृतियों में प्रकट जीवन का एक व्यक्तित्व है, उसका एक अटूट उद्देश्य है और गुण समन्वित उसकी एक पृथक शैली है । इतनी उपलब्धी के लिए भी बहुत तपस्या लगती है ...जो पाठक "तब की बात और थी" पढ़ेंगे, उन्हें परसाई की क्षमता का पता लग जायेगा । मेरे ख्याल से उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी "एक घंटे का साथ" है, जो वस्तुतः हिन्दी की उच्च कोटि की कहानियों में से है । ....किन्तु परसाई जी की शक्ति का सबसे बड़ा सामर्थ्य संवेदनात्मक रूप से यथार्थ का आकलन है, चाहे वह राजनैतिक प्रश्न हो या चरित्रगत । हमारे यहाँ की साहित्यिक संस्कृति ने सचाई के प्रकटीकरण पर जो हदबन्दी कर रखी है, उसे देखते हुए भी परसाई

की कला सहज ही पाठ्यवस्तु हो जाती है ...परसाई इनमें वस्तुतः मौजूदा तरुण पीढ़ी की राजनैतिक, सामाजिक तथा मानवीय दृष्टि प्रकट करते हैं... परसाईजी की और भी वृहत सफलताओं के हम आकांक्षी हैं । हम उनके आगे के विकास को देखते रहेंगे । "[22] मुक्तिबोध की कामना फलित हुई है । परसाई आज के मूर्धन्य लेखकों में से हैं । आज उनकी रचनाओं को प्रकाशित न करना किसी भी पत्रिका के लिए, और उनकी किसी भी कृति को प्रकाशित करना हर ही प्रकाशन-संस्थाओं के लिए गौरव का विषय रहा है । परसाई ने अपनी बेबाक यथार्थ सामाजिक तस्वीरों के माध्यम से एक विशाल पाठक वर्ग का निर्माण किया है जो इनकी रचना में इतना विश्वास रखता है कि परसाई को आधुनिक कबीर समझता है, परसाई की रचना के बगैर पत्रिका को पढ़ने में रस नहीं पाता है क्योंकि परसाई में इन पाठकों को तृप्त करने की अद्भुत शक्ति है । आम पाठक वर्ग जिन विसंगतियों को भोगता है, घुटन का अनुभव करता है, स्वयं अभिव्यक्त करने में असमर्थ होकर तिलमिलाने लगता है तो उन्हीं को परसाई की रचनाओं में अभिव्यक्त पाकर आत्मतोष का, विरेचन का अनुभव करता है । परसाई के आक्रोश में अपना आक्रोश विलयन करके एक अद्भुत सुख का अनुभव करता है । एक लेखक की सफलता के लिए इससे बड़ा प्रमाण पत्र और क्या हो सकता है ?

परसाई की जीवन यात्रा जितना संघर्षमय रही है उतना ही संघर्षमय रही है उनकी साहित्यिक यात्रा । परसाई की ख्याति आजकल ऐसी है जिसकी कल्पना उन्हें उन दिनों नहीं थी, इस ओर संकेत करते हुए परसाई ने अपने संस्मरण में लिखा है - " मेरी जानकारी में अब यह डेढ़ रुपये की पुस्तिका 'हँसते हैं, रोते हैं' अलभ्य साहित्य की हैसियत से पच्चीस-तीस रुपयों में बिकती है । मुझमें अगर तब समझ होती कि कुछ साल बाद मैं "दुर्लभ" और "अलभ्य" लेखक होनेवाला हूँ, तो मैं ही अपनी इस पुस्तक की सौ प्रतियाँ रखे रहता । वह पुस्तिका अब "अलभ्य ग्रंथ" कहलाती और बीस-तीस गुनी कीमत में बिकती । पर मैं उन भाग्यवान लेखकों में नहीं हूँ जिनमें एक साथ दो प्रतिभाएँ होती हैं - रचना की और व्यापार की ।[23] परसाई अपना पहला ग्रंथ संकलन "हँसते हैं, रोते हैं" के प्रकाशन के लिए प्रकाशक को ढूँढते रहे फिरे, और अंत में स्वयं प्रकाशित किया, छपी हुई पुस्तकका प्रेस बिल चुकाने के लिए मित्रों की मदद लेनी पड़ी । और उन्हें बेचने के लिए झोले में पुस्तकें भरकर घूमना भी पड़ा । प्रकाशन और बिक्री

की समस्या के बावजूद भी "हँसते हैं, रोते हैं" का स्वागत अच्छा हुआ । इन कहानियों में अभिव्यक्त करुणा और सामाजिक पक्षधरता के कारण विद्वानों एवं पाठकों ने खूब सराहा । यहाँ तक कि "सरस्वती" के अंक में पदुमलाल पन्नालाल बख्शी ने लंबी सी टिप्पणी लिखकर परसाई की रचनाधर्मिता एवं व्यंग्यक्षमता को सराहा था । अपनी पहली पुस्तक की प्रतिक्रियाओं पर परसाई ने लिखा है - "पहली पुस्तक "हँसते हैं, रोते हैं" सब बिक गयीं । इसमें मेरे लेखन के दो प्रकार थे । कुछ अत्यंत करुण प्रसंग थे, मेरे और परिवार के भोगे हुए दुख के । लोग कहते थे कि एक दो कहानियाँ तो बिना रोये पढ़ी नहीं जा सकतीं । इसके सिवा कुछ व्यंग्य कथाएँ थीं । ये कहावत और सुभाषित की तरह लोगों की जबान पर आ गयीं । दुख को लिख लेने से मैं हल्का हो गया, मुक्त हो गया । मैं ने अपने "मैं" को विस्तार दे दिया, दूसरे अभिव्यक्ति का मेरा प्रधान माध्यम व्यंग्य हो गया ।[24] वास्तव में परसाई के कृतित्व की सफलता का कारण "दुख का विस्तार" और "व्यंग्य" है । अपनी पहली कृति में ही परसाई ने यह आभास दिया था कि वे भविष्य के महत्वपूर्ण प्रतिभावान लेखक होंगे ।

हरिशंकर परसाई का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी नामक गाँव में 1924, अगस्त 24 को हुआ । गरीब परिवार यानी जंगलमें कोयला बनाने और बेचनेवाले एक साधारण श्रमिक के भरपूर परिवार में जन्मे परसाई की गरीबी और संघर्ष परंपरा का पाथेय है, बपौती है । परिवार की जिम्मेदारी स्कूल के दिनों से ही, माँ के मरते और पिता के रहते ही, कंधों पर आयी जिसका निर्वाह परसाई आज भी कर रहे हैं । अपने बंधुओं और परिजनों के सुख के लिए अपना सारा समय और परिश्रम का दान देने के लिए शुरू से प्रतिबद्ध होने के कारण व्यक्तिगत सभी सुख को तिलांजली देकर आजीवन अविवाहित रहे । परसाई जी एक प्रतिष्ठित लेखक-मात्र लेखन व्यवसाय पर निर्भर रहनेवाला लेखक - होने के बावजूद भी परिवार की जिम्मेदारियों के कारण जिन आर्थिक दुस्थितियों को भोग रहे हैं उनकी ओर इशारा करते हुए मायाराम सुरजन लिखते हैं : - बिना किसी निश्चित आमदनी के परसाई आर्थिक संकट में उलझे ही रहते हैं । कभी किसी अखबार की हालात ठीक नहीं हुई या किसी अखबार में लंबी हड़ताल हो गई तो

उनकी रचनाओं का पारिश्रमिक भी समय पर नहीं आता । स्नेह सम्मेलनों या उत्सवों में न जा सकने के कारण भी आमदनी पर आघात हुआ ही है । घर खर्च की बात अलग, टेलिफोन कटने तक की नौबत आ जाती या मकान का किराया पट नहीं पाता ।.... छोटा भाई अस्वस्थ है और बेरोजगार भी । उसकी सहायता भी करनी होती है । लेकिन स्वाभिमान ऐसा कि किसी की मदद नहीं लेते । किसी मुलाकाती ने उनके नाम पर अर्थ संग्रह की अपील निकाल दी तो उसका खंडन फौरन प्रकाशित कर दिया ।[25] यह है परसाई की आर्थिक मजबूरी और उसे नजरंदाज करने की अद्भुत हिम्मत ।

परसाई स्वयं अध्यापक और [illegible] शिक्षाविद भी हैं । अपने अध्यापकीय जीवन के दौरान शिक्षाक्षेत्र के निकटतम संपर्क में आने के कारण वहाँ की समस्याओं से इतने अच्छे ढंग से परिचित हुए कि परसाई निश्चित रूप से अनुभव करते हैं कि आज हम राष्ट्रीय चारित्र्य निर्माण की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं, प्रोफेसर, अध्यापक अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा खो गये हैं । अपने संस्मरण में एक शिक्षाविद् के नाते इस पर गंभीर चिंता प्रकट की है - " मैंने एक विश्वविद्यालय में भाषण देते समय अध्यापकों और छात्रों से कहा था - लोग आप लोगों से बहुत आशा रखते हैं । आपमें से अधिकांश अध्यापक सरस्वती की भक्ति के कारण नहीं आये, विद्यादान को पवित्र मानकर नहीं आये । आप सिर्फ नौकरी कर रहे हैं....अगर कोई यह भ्रम पाले हैं कि ये आचार्यगण प्रकाश देते हैं, हमें पिछड़ेपन से खींचकर बाहर निकालते हैं, आधुनिक बनाते हैं और वैज्ञानिक दृष्टि देते हैं, तो इस भ्रम को निकाल दें । तुलसीदास के जमाने में तो कुल ब्राह्मणवाद होगा, पर आज विश्वविद्यालय में कान्यकुब्ज ब्राह्मणवाद और सरयूपारी ब्राह्मणवाद है । यह क्या प्रक्रिया है कि हम जितना ज्यादा पढ़ते हैं उतना ही पीछे जाते हैं ?....मैं कहता हूँ आपमें जो विज्ञान पढ़ाते हैं, 'डाक्टर आफ साइंस' हैं, वे सिर्फ लेबोरेटरी (प्रयोग शाला) में ही वैज्ञानिक दृष्टि रखते हैं, बाहर अवैज्ञानिक हैं । आप प्रयोग शाला से बाहर आते ही जादू-टोना वाले हो जाते हैं ।[2] परसाई जैसे शिक्षा जगत पर व्यक्त किये गये विचारों पर अधिक गंभीर रूप से विचार करने की आवश्यकता आज सबसे ज्यादा है । परसाई मानते हैं कि "असल में आजादी

के बाद से मूल्यों में गिरावट आती गई है, मूल्यपद्धति ही बहुत बदल गई है । इस मूल्य पद्धति के केन्द्र से मनुष्यता हट रही है ।[27]

परसाई को इस मनुष्यता की चिंता है । मनुष्यता ही बेपरवाह करनेवाले अध्यापकों की बढ़ती संख्या के प्रति वे दुखी हैं । परसाई ने ऐसे अध्यापकों को भी देखा है जो सचमुच अपने छात्रों और समाज के प्रति प्रतिबद्ध थे, जो मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान देते थे । परसाई अपने स्कूली जीवन की यादों को ताजा करते हुए केशवचंद्र बन्ना मास्टर का उदाहरण देते हैं और कहते हैं - "बन्ना साहब ने ही मुझे साहित्य के संस्कार दिये और ज्ञान की अनंत पिपासा दी । उन्होंने मुझे इतिहास चेतना दी और इतिहास बोध दिया । पर मैंने तब एक पंक्ति भी नहीं लिखी । मैंने आठ साल बाद लिखना शुरू किया । प्रेरणा वहीं थी.... मैं खुद अध्यापक रहा हूँ, सैकड़ों अच्छे अध्यापक भी देखे हैं । पर केशवचंद्र बन्ना सरीखा कोई नहीं । इस प्रकार संत नो पुटेर ।[28] परसाई रेखांकित करते हैं कि दो पीढ़ियों के अंतराल में मूल्यों का विघटन कुछ तेजी से हो रहा है । बन्ना साहब और ऐसे ही अनेकों अध्यापक एक ध्रुव पर हैं तो दूसरे ध्रुव पर आज के विश्वविद्यालय के वे प्रोफेसर और छात्र हैं जोकि इनकी रचनाओं में जीवंत हैं । परसाई के व्यक्तित्व और कृतित्व में इन मानव मूल्यों की स्थापना के लिए एक प्रामाणिक संघर्ष है ।

1985 तक हुई प्रकाशित परसाई की संपूर्ण रचनाएँ परसाई ग्रंथावली नाम से छै भागों में प्रकाशित हैं । और इधर प्रकाशित "तुलसीदास चंदन घिसैं" उनके स्तंभलेखों का महत्वपूर्ण संग्रह है ।

परसाई का उनकी अमूल्य साहित्य साधना का समादर करके विक्रम विश्वविद्यालय ने डी॰लिट की मानद उपाधि से सम्मान किया है तो उनकी व्यंग्य रचनाओं का संग्रह "विकलांग श्रद्धा का दौर" पर केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने 1982 में अपना पुरस्कार देकर व्यंग्य विधा को तथा परसाई को पुरस्कृत किया है । भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य के नाते सोवियत रूस की यात्रा परसाई ने 1961 में की और नाना कारणों से कुछ यात्राओं पर वे जा नहीं पाये । परसाई की रचनाएँ अंग्रेजी और अन्यान्य

भारतीय भाषाओं अनूदित होकर पसंद की गई हैं ।

परसाई अपनी हर कहानी में उत्तम पुरुष का प्रायः प्रयोग करते हैं अर्थात् लेखक ही यहाँ का केन्द्र है, दूसरे शब्दों में इस समाज एवं देश की तमाम विसंगतियों का शिकार है यहाँ का नायक अर्थात् लेखक । अपने जीवन में भोगे हुए यथार्थों की अभिव्यक्ति इनके कृतित्व में हुई है । इस दृष्टि से व्यक्ति परसाई को किनारा करके उनके कृतित्व की, उनके कृतित्व को किनारा करके व्यक्तित्व की कल्पना तक नहीं की जा सकती है । भारतीय जनता परसाई में अपने को और उनके कृतित्व में अपने समाज की विसंगतियों के दर्शन कर रही है ।

परसाई का साहित्य आधुनिक युग का ज्वलंत इतिहास है, अपने समय का प्रामाणिक प्रतिबिंब । "गंगा" मासिक की संपादकीय टिप्पणी के अनुसार - "अब यह नाम एक व्यक्ति या प्रख्यात लेखक का नाम नहीं है - यह नाम एक दौर - एक रचनात्मक युग का पर्याय है । भारतेंदु काल से चली आ रही है व्यंग्य की महराती, सूखती, बाढ़ की तरह उमड़ती परंपरा को परसाई ने एक सघन सामाजिक बोध दिया है और साहित्य के इतिहास के लिए न लिखकर अपने समय के लिए लिखा है । "परसाई युग" एक जीवंत युग है ।[29] उपरोक्त पंक्तियों में परसाई के बहुमुखी व्यक्तित्व का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, और आगे के अध्यायों में उनके कृतित्व का अध्ययन विस्तार से प्रस्तुत किया गया है ।

<u>संदर्भ सूची</u>

1,2,3,3,5 आँखन देखी पृष्ठ 25

6,7,8 वही पृष्ठ 27

9,10 गंगा मासिक जून 87 - पृष्ठ 9-10

11, 12 आँखन देखी 33

13, 14 वही 36,37

15,16, वही 30,39

17. परसाई ग्रंथावली भाग-4 पृ. 253

18 वही पृ. 230

19,20,21,22 आँखन देखी पृ. क्रमशः 59,80,60 और ।

23. गंगा - मासिक का संपादकीय

द्वितीय अध्याय

व्यंग्य की परिभाषा, व्यंग्य का स्वरूप, व्यंग्य की आवश्यकता, व्यंग्य की सीमा

व्यंग्य की परिभाषा, व्यंग्य का स्वरूप, व्यंग्य की आवश्यकता, व्यंग्य की सीमा

भूमिका : व्यंग्य की भावभूमि

हास्य का स्थायी भाव हास है यानी हँसी । इस हँसी का संबंध मनुष्य के साथ उस दिन से है जिस दिन से वह अपने परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगा । यह हँसी उसके सुख की अनुभूति का सूचक भी है और विषाद की स्मितिरेखा भी । सुख एवं आनंद के क्षणों की हँसी उल्लास का संकेत है दुख के क्षणों में झलकनेवाली हँसी विषाद का प्रतीक है । मानवीय भावनाओं का मंथन हँसी में देखा जा सकता है । हँसी का समाजवाद ऐसा निराला है कि यहाँ न ऊँच-नीच का, गरीब-अमीर का, बच्चे-बुढ़ापे का, राजा-रंक का कोई अंतर नहीं है । हँसी के साम्राज्य में सब समान हैं । सब हँसते हैं । इस हँसी पर न किसी का काबू है न किसीकी हुकूमत । हँसना और रोना मनुष्य के लिए परमात्मा के दो वरदान हैं । इसकी शिक्षा कोई नहीं देता है । हँसने और रोने की कला का कोई आचार्य नहीं है । इसलिए ही हम तीन महीने के बच्चों की किलकारियों में हँसी का उन्मुक्त रूप देखते हैं, तो उसीके रोने में हृदय की पुकार को सुनते हैं । हँसना और रोना मनुष्य के सुख और दुख के व्यक्तरूप हैं । हँसने और रोने से हृदय का परिष्कार होता है, हल्का होता है । इस दृष्टि से दोनों परस्पर पूरक हैं । डॉ. सुंकापुर का कहना है - "हँसी और रोना कहाँ से आए ? क्या हम यों कह सकते हैं कि हँसी से रोना निकला और रुलाई से हँसी निकली । विचार करने पर पता चलता है कि रुलाई और हँसी का संबंध सूक्ष्म है । सहानुभूतियों से संबंधित ये दोनों एक दूसरे के पूरक होने पर भी एकदम बिलकुल उल्टी दिशा में निकलती है । हँसी सूर्योदय है, रोना मानो सूर्यास्त है । उदय और अस्त के लिए जिस प्रकार सूर्य ही जिम्मेदार है उसी प्रकार हँसी और रुलाई के लिए मन ही जिम्मेदार है...मन में भाव उभर आते हैं तो हँसी और रुलाई का जन्म होता है । चित्तवृत्ति में हास भाव का जन्म हो तो हँसी, शोक का जन्म होतो रुलाई उभर आती है । रुलाई से हँसी, हँसी से रुलाई जन्म नहीं लेती है । ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं - पूरब-पश्चिम सिक्के के चेहरे जैसा ।[1]

यह हँसी विश्वव्यापी है । स्वर्ग के देवता, मर्त्य के मानव, पाताल के असुर, यहाँ तक कि भूत-प्रेत भी हँसते हैं । हँसी मानव की सहज प्रवृत्ति है । इतना ही नहीं, कहा जाता है कि आस्ट्रेलिया के सरोवरों में दिखाई देनेवाले पक्षी, केन्या का सुना पक्षी, हाइना, गोरिल्ला आदि पक्षी एक अजीब प्रकार की आवाज़ करके हँसते हैं जोकि मनुष्य की हँसी से मेल खाती है । उनकी यह हँसी सुनने पर लगता है मानो वह मनुष्य की हँसी ही हो । उनकी हँसी का स्वरूप मानव की हँसी के स्वरूप से भिन्न हो सकता है मगर सुखदुख शोकादि का माध्यम तो वह है ही । इस संदर्भ में हैज़लिट का कहना है कि "Man is the only animal that laughs and weeps"(Hazlitt-English Comic Writers-1946,Lecturer -Pp-1).

इस कथन का आशय यह है कि मानव की हँसी का अपना वैशिष्ट्य है । मानव का चेहरा हँसी का रंगस्थल है । हँसी का फौव्वारा हृदय की भावनाओं के अनुरूप निकलते ही चेहरे का रंगरूप उसी के अनुरूप बदलता है यह क्रिया मनुष्य की स्नायुओं का कमाल है जोकि अन्य प्राणियों के लिए नहीं है । मनुष्य की हँसी प्रकट भी हो सकती है, गुप्त भी रह सकती है यानी अपनी हँसी पर संपूर्ण रूप से नियंत्रण रखने की क्षमता बुद्धि से नियंत्रित मनुष्य मात्र को है नकि प्राणी को ।

इस दृष्टि से हँसी मनुष्य की अपनी संपत्ति है, हँसना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है । हँसी उसकी स्वाभाविक क्रिया है। जो मनुष्य हँसता नहीं वह एक अजीब व्यक्तित्व वाला कहलाता है, समाज उसे परहेज भावना से देखता है । इसलिए हँसी में विश्व को अपने में समाने की अद्भुत क्षमता है तो रोने में अपने को विश्व में विलयन करने की सामर्थ्य है । जीवन इन दोनों का समवेत नाम है ।

खलीलजिब्रान ने दुख और सुख यानी रुलाई और हँसी के महत्व को स्वीकार करते हुए यहाँ तक कहा है कि "Tears that purify my heart and reveal to me the secret of life and its mystery. Laughter thus brings me closer to my fellowmen. Tears with which I join the broken hearted, Laughter that symbolises joy over my very existence. (Introduction to Tears and Laughter-1956, Jaico Books).

भरत मुनि के अनुसार "हास्य प्रमथदैवतः" ।भरत-नाट्यशास्त्र अध्याय-6 सूत्र 44। हास्य रस के लिए गणपति ही आदि देवता है । गणपति का विकृत रूप ही हँसी जाता है । मतलब यह है कि हँसी परमात्मा के जैसे अनादि है, अनंत है ।

हँसी बहु आयामी है, बहुरूपिया है, इंद्रधनुषी है । संदर्भ के अनुसार पूछनेवाली हँसी का संदर्भानुसार अर्थ होता है, पर हँसी के पीछे एक बात छिपी रहती है । संक्षेप में अगर कहना हो स्थूल रूप से हँसी का दो भागों में विभाजन कर सकते हैं । एक - मोहक हँसी, दूसरा - मारक हँसी, मोहक हँसी में चुंबक की शक्ति होती है, यह मन-भावन होती है, उसमें समस्त जगत को अपने में समाहित करने की सम्मोहकता होती है, बुद्धदेव की स्मिति, श्रीकृष्ण की हँसी आदि पहली कोटि में आती है । मारक हँसी नावक का तीर है, उसका विपक्षी पर बड़ा गंभीर प्रभाव पड़ता है । इस हँसी का मुख्य लक्ष्य दूसरे पर चोट करना होता है । तेनाली रामकृष्ण के हास्य में, कबीर के व्यंग्य में इसका रूप हम देख सकते हैं । बालकृष्ण की हँसी पर यशोदा अपना सुधबुध खो लेती है, राहुल की किलकारी की मृदु मंजुल ध्वनि में यशोदरा का दुःख-भार एकदम तिरोहित हो जाता है जबकि मारक हँसी उस्तुरे की भाँति होती है - सामनेवाले पर एकदम प्रहार करती है । इस हँसी की ओर संकेत करते हुए शेक्सपियर ने कहा है कि " I am stabbed with laughter."
ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि द.रा.बेन्द्रेजी ने भी मोहक हँसी और मारक हँसी की ओर संकेत करते हुए कहा है कि - " एक रक्षा करती है, दूसरी खत्म करती है मानव के हृदय रूपी सागर-मंथन से उद्भूत हँसी के इन दो भागों में एक अमृत है तो दूसरा विष है । अमृतमय हँसी स्वयं हँसकर हँसाती है वह सात्विक हँसी है, रसपूर्ण होती है, विषमय हँसी दुत्कारने योग्य है रसाभास की हँसी है ।[3]

यह जरूरी नहीं है कि हँसी के पीछे कोई स्पष्ट कारण हो और कारण का अनुकरण करके हम हँसते हों । मगर हँसने के बाद हँसने के कारण की चिंता करते हैं और हमारी हँसी का क्या प्रभाव हुआ - इस संबंध में सोचा भी करते हैं । बच्चों

से लेकर बूढ़ों तक हँसते हैं जिसके कई कारण होते हैं - अनाड़ियों, नकलों पर हँसते हैं, अजीब वेशधारियों पर हँसते हैं व्यंग्य चित्रों की असम रेखाओं में चित्रित व्यक्तियों पर हँसते हैं। प्राणियों की अजीब आवाज़ों पर हँसते हैं। असंतुलित मानसिक अवस्थाओं पर हँसते हैं - इस प्रकार हँसी के लिए विशिष्ट कारण की ज़रूरत होगी, ऐसी बात नहीं है। हँसी पर नियंत्रण बड़ी मुश्किल से संभव होता है। जैसाकि अधिकारी की अच्छाई, बुराई और उलटे व्यवहारों के आगे नौकर खुले रूप से नहीं हँसता है क्योंकि ऐसा हँसना अधिकारी के प्रति अपमान समझा जाता है। और कभी ऐसा भी संभव है कि अधिकारी की तसल्ली के लिए उसकी हँसी पर नौकर हँसते हैं और बाद में किये पर ठहाका मारते हैं।

हँसी मन का परिष्कार करती है जो हँसता न नहीं वह मानसिक रोगी कहलाता है। इसलिए हमारे यहाँ मुक्त हँसी को तन्दुरुस्ती का लक्षण माना गया है। प्लेटो से लेकर फीब्लमन तक अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने हँसी के संबंध में कुछ सिद्धांत प्रतिष्ठा किये हैं। इनमें से कुछ ने हँसी को शारीरिक बताया है (Physiological) तो कुछ ने मानसिक (Psychological) बताया है और कुछ ने उसे शारीरिक और मानसिक दोनों बताया है। हर्बर्ट स्पेन्सर ने यहाँ तक कहा है कि "Laughter ismerely an overflow of Surplus Energy".

इसके अनुसार हँसी मात्र शारीरिक क्रिया है, शरीर की अतिरिक्त शक्ति हँसी के रूप में बाहर प्रवाहित होती है और भावनाओं से उसका कोई संबंध नहीं है। हँसी शारीरिक क्रिया है, इस बात को पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता क्योंकि भावनाओं के उद्वेलन से, उनके जागरण से हँसी फूटती है और तदनुसार चेहरे की स्नायु काम करती है। बगैर भावनाओं के स्नायुओं का संचार नहीं होता कहाँ है? उदास, भावनाशून्य व्यक्तियों में स्नायुओं का संचार क्यों नहीं होता? इसलिए कह सकते हैं कि हँसी का कारण भावना है। हँसी के उद्गम के संबंध में प्लेटो के विचार माननीय है जिनके अनुसार हँसी का उद्गम किसी न किसी कारण से होता है - "That which is comic contains a contradiction: but the Spectator is chiefly concerned with the conflictinf sensations arcused by this contradiction. (Quoted from James Feibleman in "In Praise of Comedy-1939,Pp-74).

जब असमानता को देखते हैं, सुनते हैं तो दर्शक एवं श्रोता के मन में भावोद्रेक होता है । ये भाव फौव्वारे की भाँति चेहरे पर उभर आते हैं तो वे हँसी कहलाते हैं याने भावों की परिणति हँसी में होती है ।

मनोविज्ञानियों का मानना है कि हँसनेवाले का अहं हँसी के लिए कारण है । इसीको प्लेटो ने "Superiority theory" कहा है । जिस पर हँसा जाता है वह हँसनेवाले की दृष्टि में अयोग्य है, विरूप है, अधम है । इसीको मद्दे नज़र रखकर अलेक्जांडर बेन नामक विद्वान ने कहा है -

"Why do we laugh at the defective, at the abnormal? Because we feel our superiority, we feel that we are normal, that we xxxxxx possess the power, the energy, which the object of ridicule lacks, such feelings of superiority is joyful. ..we feel bigger, because anotherbelittled: we feel the joy of superiority, because another one has been made inferior: We are raised, because another has been humiliated."
(The Psychology of Laughter-1919).

इसके अनुसार हँसी हँसनेवाले की अहमियत का द्योतक है और दूसरे के अस्तित्व को बिल्कुल नज़रंदाज करके उसको अत्यंत क्षुद्र बताया गया है जबकि 18वीं सदी के आलोचक गोटशेड ने अरस्तू के "Contrast theory" का समर्थन किया और कहा कि दो वस्तु और दो व्यक्तियों के बीच के असंतुलित एवं अजीबो गरीब व्यवहार हँसी के कारण बनते ।

"We only laugh at that which seems absurd to our understanding."

इस अनोखे असामंजस्य पर हँसने का मूल कारण आनंदानुभूति है । उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि इन विद्वानों ने बाहरी कारणों को हँसी का आलंबन माना है । अब सवाल उठता है कि हँसी व्यक्तिनिष्ठ है या वस्तुनिष्ठ ? वस्तुनिष्ठ माननेवालों ने बाहरी जगत में हँसी का आलंबन ढूँढने का प्रयत्न किया । यदि हँसी वस्तुनिष्ठ होती तो हर व्यक्ति को बाहरी जगत के सभी असामंजस्य पर हँसना पड़ता । किन्तु ऐसा नहीं हो रहा है । किसी भी अजनबी, विद्रूप और विकार पर कुछ लोग हँसते नहीं हैं । अतः हम कह सकते हैं कि हँसी व्यक्तिनिष्ठ है, बाहरी जगत के प्रति संवेदना की अभिव्यक्ति का संबंध व्यक्ति के हृदय से होता है । आनंद के क्षणों में मनुष्य को सारा विश्व आनंदमयी दिखाई देता है और दुख के क्षणों में उसे सारा विश्व दुखमयी नज़र आता है । इस दृष्टि से हँसी भौतिक क्रिया न रहकर मानसिक क्रिया है । हँसी आनंदानुभूति अथवा

व्यक्तिगत उन्माद की उपलब्धी है । इस ओर संकेत करते हुए कृष्ण मेनन ने कहा है -
"The cause of laughter is more intimately connected with ourselves, the subject, then with the object, and laughter has to be explained subjectively rather than objectively."
(A Theory of Laughter-Krishna Menon-1931, Pp 17,18).

मैक्स मेक्स ने भी हँसी को अंतरंग की चीज़ बताया है । इसलिए ही हम सुख में हँसते हैं और दुख में रोते हैं -

"We are pleased because we laugh
We laugh because we are pleased"

हँसी की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, वह कभी व्यक्तिगत आनंदानुभूति से, कभी है दूसरे की विकृतावस्था से जन्म लेती है । हँसी की भूमि से यह विषय अनुभूमित हो रहा

रस का विवेचन और हास्य

रस शब्द बहुत प्राचीन है । न केवल भारतीय काव्यशास्त्र में अपितु यहाँ के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में भी "रस" की चर्चा मुख्य रूप से आई है । वेद उपनिषदों और दर्शन ग्रंथों में इसकी चर्चा है, आध्यात्मिक साधना की अंतिम परिणति की आनंदानुभूति के संदर्भ में रस का उल्लेख है, काव्य की सफलता के केन्द्र बिन्दु के रूप में रस चर्चा का विषय रहा है । लौकिक जगत में भी रस का व्यापक प्रयोग है । ह रस दर्शन, साधना एवं काव्य के क्षेत्र में भले ही विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ हो तथापि रस की उपलब्धी आनंदानुभूति में है । छान्दोग्योपनिषद् का यह श्लोक रस के अर्थ की व्यापकता की ओर संकेत करता है ।

एषां भूतानां पृथिवी रसः/ पृथिव्या अपो रसः/ अपामोषधयो रसः/ ओषधीनां पुरुषो रसः/ पुरुषस्य वाक् रसः/ वाचः ऋग् रसः ।

तैत्तरीयोपनिषद् का यह श्लोक और भी अर्थपूर्ण है -

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदीभवति अर्थात् यहाँ सब कुछ रस है । जो रस को प्राप्त करता है वह आनंद की अनुभूति प्राप्त करता है । इस दृष्टि से सारा विश्व आनंद से परिपूर्ण है, रस से आवृत्त है ।

भारतीय काव्यशास्त्र में रस का महत्वपूर्ण स्थान है । रसानुभूति साहित्य का चरम लक्ष्य है । काव्यशास्त्र के अन्यान्य सिद्धांतों का उद्देश्य भी यही रसानुभूति है । चाहे "वाक्यं रसात्मक काव्यं" (विश्वनाथ - साहित्य दर्पण अध्याय 1 सूत्र 3) में हो चाहे रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द हो रसानुभूति के बिना काव्य की सार्थकता नहीं होती रस शब्द के व्यापक प्रयोग की चर्चा करते हुए डॉ तिप्पेरुद्रस्वामीजी ने लिखा है - "रस" शब्द बहुत प्राचीन है, ऋग्वेद संहिताओं में इसके अनेक प्रयोग उपलब्ध हैं और संदर्भानुसार भिन्न भिन्न अर्थ इससे निकलते हैं । कहा जाता है कि दो विभिन्न अर्थों के धातुओं से यह शब्द निकला है ।

भारतीय काव्यशास्त्र वास्तव में शब्दों का विवेचन करनेवाला इतिहास है । ऐसे अनेकों शब्दों में "अलंकार" और "रस" भी हैं । एक विशाल अर्थ में काव्य की शोभा जिस किसीसे बढ़े उसे "अलंकार" कहा जा सकता है । तो उस शोभा से जो आनंदानुभूति प्राप्त होती है उसे "रस" कहा जा सकता है ।

भारतीय काव्यशास्त्र में रस का महत्वपूर्ण स्थान है । चाहे पूरा काव्य हो, चाहे उसकी इकाई वाक्य हो, रसात्मक रहने पर ही आस्वाद्य योग्य होता है, आनंदानुभूति का कारण बनता है । रसविहीन काव्य शब्दों का जाल होता है ।

रस संबंधी चर्चा भरत से लेकर आधुनिक पंडितों तक सभी विद्वानों ने की है । खासकर रस विषयक चर्चा भरत के नाट्य शास्त्र में व्यापक रूप से आई है । भरत ने नाट्यशास्त्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस-निष्पत्तिः । अर्थात् विभाव, अनुभाव, संचारी भावों का परिपाक ही रस है । रस की उक्त व्याख्या को और स्पष्ट करते हुए भरतमुनि ने आगे कहा है कि -

यथा हि नानाव्यंजनौषधिसंयोगो यथान्नं सा नयेत

एवं भावारसाश्चैव भावयंति परस्परं ।

अर्थात् नाना द्रव्यों से युक्त अनेक व्यंजनादि अन्न के साथ मिलकर जिस प्रकार स्वाद दें उसी प्रकार भावाभिनय से जाग्रत स्थायीभाव शेष भावों के संयोग से रसोत्पत्ति

करते हैं । ठंडे पानी में शक्कर, नींबू का रस, इलायची के दाने डालकर पीने से मन प्रसन्न होता है, उसी प्रकार अनेकों भावों से स्थायी भाव समुचित रूप से पुष्ट होकर जाता है तो रसोत्पत्ति होकर मन को आनंद मिलता है । भरत मुनि ने अपनी इस रसव्याख्या में यद्यपि स्थायी भावों का उल्लेख नहीं किया है तथापि अन्यान्य स्थानों पर रसोत्पत्ति के लिए स्थायीभावों के महत्व को स्वीकार किया है । इस श्लोक में "स्थायी भाव" का उल्लेख क्यों किया नहीं गया है - इस पर विचार करते हुए अभिनवगुप्त, शंकुक आदि आचार्यों ने भरत का समर्थन किया है ।

" मन एक सरोवर है जिसमें बाहर से एक एक पत्थर कंकड़ डालता है तो वहाँ तरंगें निकलकर चारों ओर फैलती जाती है, उसी प्रकार मन बाहर की घटनाओं के प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए निरंतर तरंगित होता रहता है । इन्हींको "भाव" कहकर इनमें स्थायी भाव, संचारी भाव नाम से भरत ने दो भाग किए हैं - स्थायी भाव वे हैं जो हमेशा मन में स्थायी रूप में रहते हैं । इनके साथ कभी कभार आते-जाते रहनेवाले और भी अनेक भाव हैं जिन्हें उन्होंने संचारी अथवा "व्यभिचारी" भाव कहे हैं । लोक में निरंतर प्रतिक्रिया के लिए लालायित रहनेवाले ये भाव कला-परिधि में इस लौकिक प्रतिक्रिया को खोकर आस्वाद्य बनते हैं । इस आस्वादन से लोकानुभव से भिन्न एक विशिष्ट अनुभव होता है । इस लोक से अलभ्य एक विशिष्ट आनंद को ये प्रदान करते हैं । आनंद रूपी अनुभव ही रस है इस आनंद का अन्वेषण मन में रहनेवाली एक प्रवृत्ति है ।"[5]

मनुष्य का मन नाना प्रकार की चित्तवृत्तियों का आगार है जोकि बाहरी और अंदरूनी घात-प्रतिघातों से स्पंदित होता रहता है । अतः मनुष्य के मन में जन्म लेनेवाली भावनाओं का अंदाजा लगाना और उनका विभाजन करना भी मुश्किल है । आधुनिक मनःशास्त्रियों ने मनुष्य के भावों का विश्लेषण विभाजन करने का प्रयास तो किया है मगर वे भी असंदिग्ध रूप से यह नहीं बता रहे हैं कि इतने ही भाव हैं । इसका यह मतलब हुआ कि मानव की चित्त वृत्तियाँ असंख्य हैं जोकि मनुष्य के मन में वासना के रूप में जन्म से मरण तक साथ में रहते हैं जो समय पाकर जागृत होते रहते हैं ।

स्थायी भाव मनुष्य के चित्त में हमेशा रहते हैं क्योंकि प्रसंगानुकूल जागृत होते रहते हैं । भरत ने इन स्थायी भावों को आठ माना है -

" रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भय तथा

जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायी भावाः प्रकीर्तिताः ।। "

ये सारे स्थिर भाव याने स्थायी भाव हैं । हर रस के पीछे एक स्थायी भाव रहता है । जहाँ रति हो वहाँ शृंगार, हास हो तो हास्य, शोक हो तो करुणा, क्रोध हो तो रौद्र, उत्साह हो तो वीर, भय हो तो भयानक, जुगुप्सा से बीभत्स, विस्मय से अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है । यह भरत के नाट्य शास्त्र में प्रतिपादित आठ रस हैं । चूँकि भरत ने नाट्यशास्त्र के संदर्भ में रस की विवेचना की थी, उनमें शांतरस का उल्लेख नहीं आया है मगर बाद में काव्य के संदर्भ में शांत रस को एक रस के रूप में स्वीकार करके आचार्यों ने उसका स्थायी भाव "शम" बताया ।

रसोत्पत्ति के संबंध में भरत मुनि की व्याख्या को लेकर पक्षविपक्ष में परवर्ती आचार्यों ने अपनी अपनी दृष्टि से चर्चा करने का जो प्रयास किया है इससे साहित्य में रस का महत्व साबित होता है । भरत के अनुसार रस स्थायीभावों के आस्वादन से प्राप्त होनेवाली एक अलौकिक मानसिक आनंदानुभूति है । साथ ही सौंदर्यानुभूति की परमस्थिति को अभिव्यक्त करनेवाले भाव का दूसरा नाम ही रस है । [illegible] रसानुभाव की स्थिति में दर्शक अथवा पाठक का मन बाह्य संसार को भूल जाता है, मन का अहंभाव, मन की चंचलता मिट जाती है तब आनंद ही आनंद है । रसनिष्पत्ति के समय न वहाँ विभाव रहते हैं न अनुभाव रहते हैं ।

पंडितों का कहना है कि काव्यसृष्टि ब्रह्मसृष्टि से बढ़कर है । मम्मट ने भी अपने काव्यप्रकाश में कहा है -

नियतिकृत नियमरहिताः ह्लादैकमयीमनन्य परतंत्राम्

नवरसरुचिरां निर्मितिमादधति भारती कवेर्जयती ।

ब्रह्मसृष्टि में के अनेकों बंधन होते हैं । नियति के नियमों से वह नियंत्रित है जहाँ सुख की तुलना में दुःख ही ज्यादा है किन्तु संसार की दुःखदायिनी चीज़ें और अनुभव

काव्यसंसार में पदार्पण करते ही आह्लादमय बन जाते हैं, पाठकों को एक अपूर्व लोक में ले चलते हैं। इस अपूर्व लोक की आनंदानुभूति का नाम है काव्यानंद। पंडित विश्वनाथ ने इस काव्यानंद को ब्रह्मानंद माना है। ब्रह्मानंद का यह सुख लौकिक सुख को विस्मृत कर देता है। काव्यानंद बनाम ब्रह्मानंद सब रसों का मूल है।

हास्य का जो स्थान मनुष्य के जीवन में है वही स्थान साहित्य में हास्य का है। मन की चित्तवृत्तियों का सूक्ष्म विभाजन किया जाय तो अनेकों स्थायी भाव और रसों की परिकल्पना की जा सकती है मगर भरत ने उन भावों का मुख्य रूप से विभाजन करके रस की संख्या आठ निर्धारित की है -

" शृंगार हास्य करुणा रौद्र वीर भयानकाः
बीभत्साद्भुत संज्ञौचेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।। "

ये आठ भेद के रस भरत के रससूत्र में प्रतिपादित हैं। किन्तु परवर्ती आचार्यों ने रस-संख्या को बढ़ाने के प्रयत्न भी किए हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्रजी ने "रस संख्या की वृद्धि करने में विद्वानों की होड़ा होड़ी का बड़ा सुंदर विवेचन किया है - रसों के संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि जिन स्थायी भावों से भावन होता है, जिन्हें सामाजिक का हृदय ग्रहण करता है या जो सामाजिक के हृदय में व्यक्त हो सकते हैं, वे ही रसरूप में माने गए हैं... नए ही रस मानने का कारण यही है।...भक्ति में उपासना के चार भाव माने गए - दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत। भक्ति के क्षेत्र में ये सभी रसरूप माने जाते हैं। उन्होंने एक ही भक्तिरस माना। आगे चलकर साहित्य में वात्सल्य के परिपाक से "वत्सल" नाम का रस भी माना गया। भारतेंदु बाबू ने 13 रस माने हैं। प्रसिद्ध नौ रसों में भक्ति, वात्सल्य, सख्य और चार नए नाम जुड़े हैं साहित्याचार्य मम्मट ने देव, गुरु, पुत्र, मित्र आदि के प्रति होनेवाली रति (प्रेम) को केवल भाव माना है। इनमें से देवविषयक रति भक्ति है, जिसके चार भावों का ऊपर उल्लेख हो चुका है। गुरु विषयक रति में प्रधानता दास्य की होती है। इस दास्य की अभिव्यक्ति तुलसीदास के काव्य में परिपूर्ण हुई है... मित्र विषयक रति की व्यंजना काव्यों में विशेष रूप से "सुदामाचरित" लेकर लिखे गए कुछ खंडकाव्यों में दिखाई देती है। उनमें कृष्ण और सुदामा की मैत्री क्या रसरूप नहीं मानी जा सकती। जैसे नरोत्तमदास

के "सुदामाचरित" में रस क्या माना जाय । सख्य रस ही तो मानना पड़ेगा।...
नायकों के जो चार भेद माने गए धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीर प्रशांत ।
वे चारों पृथक पृथक रसों से संबद्ध नायक हैं । इसीसे "उदात्त" और "उद्धत" नामक
दो अन्य रस माने गए ।... "रसतरंगिणी" में क्या "माया रस" माना गया है
आजदिन नाना प्रकार के आंदोलनों और समाजसेवा या राष्ट्रसेवा में विशेष रूप से तत्पर
रहनेवाले व्यक्तियों में प्रवृत्तियों का प्राधान्य है । इस प्रकार के कार्यकलापों के वर्णन
से सामाजिक को मायारस का आस्वाद मिलेगा ।... आचार्य रामचंद्र शुक्ल तो प्रकृति
के प्रति होनेवाले प्रेमभाव से सामाजिक रू के लिए प्रकृतिरस मानते हैं ।[6] रसों की संख्या
में वृद्धि लेखक और आलोचकों की भिन्न भिन्न रुचि किस प्रकार बदलती आ रही है -
इसका आचार्य मिश्रजी ने उपरोक्त पंक्तियों में बड़े ही मनोरंजक ढंग से वर्णन किया है ।

रसों की संख्या के निर्धारण में मत भेद तो है तथापि सभी आचार्य भरत के आठ
रस और काव्य के संदर्भ में प्रतिपादित शांतरस को भी मिलाकर नौरस स्वीकारते हैं ।
मगर रसों का महत्व बताते समय फिर चर्चा इस बात पर शुरू हुई कि कौन सा रस मुख्य
है और कौनसा रस अमुख्य है तथा कौन सा रस किस रस पर आश्रित है । भरत के
अनुसार शृंगार, रौद्र, वीर, बीभत्स मूल रस है जिनसे हास्य, करुणा, अद्भुत, भयानक
रस ब उद्भूत होते हैं । भरत के इस विभाजन पर आपत्ति करनेवालों का मानना है
कि बीभत्स रस केन्द्र साधन हैं - असह्य चीजें यथा रक्त, पीब, हड्डी, मांस आदि ।
यह रस आस्वादन योग्य नहीं है । अतः इसको प्रधान स्थान नहीं मिलना चाहिए
जबकि हास्य रस अपनी गंभीरता एवं शालीनता से लोक मानस को विशिष्ट आनंद
प्रदान करता है, उसे प्रधान स्थान मिलना चाहिए । भरत ने रसों का क्रम निर्धारित
करते समय हास्य को द्वितीय स्थान में रखा तो है मगर मुख्य रसों तथा अमुख्यरसों का
विभाजन करतेव समय हास्य को अमुख्य ब मान लिया । हास्य रस को प्रमुख रस माने
या न माने यह तो मानव जीवन में घुलमिल गया है जिसके बिना जीवन शुष्क एवं बोझिल
लगता है । हास्य बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी का मन उल्लसित करता है । कन्नड़
के सुप्रसिद्ध साहित्यकार ने ठीक ही कहा है कि "हास्य रहित जीवन मूर्तिविहीन
मंदिर की भाँति है, कांतिरहित ज्योति की भाँति है । काले बादलों से आवृत्त
जीवन रूपी आकाश में चाँदनी सी उजाले की भाँति है ।[7]

हास्य रस को शृंगार की अनुगामिनी मानकर भरत ने हास्य की उत्पत्ति शृंगार से मानी है । शृंगाराद्धि भवेद्धास्यः - भरतसूत्र। मगर मात्र शृंगार तक ही उसकी सीमा नहीं है । वास्तव में वह चित्त का विकास है जो प्रीति का विशिष्ट रूप है । प्रीतिविशेषः चित्तस्य विकासो हास उच्यते - भाव प्रकाश। आगे भरत ने हास भाव की व्याख्या करते हुए लिखा है -

"परचेष्टानुकरणाद् हास समुपजायते।" नाट्यशास्त्र - अध्याय-7 सूत्र ।9।
हास्य का उद्गम बाहरी जगत में है, बाहरी जगत की अटपटी चीजें, अलंकृत भाव हास्य के विभाव हैं । इसकी चर्चा करते हुए नाट्यशास्त्रकार ने लिखा है -

तथ विकृत वेषालंकार धाष्ट्र्य लौल्य कुहका
असत्प्रलाप व्यंगदर्शन दोषोदाहरणादिभिः
विभावैरुत्पद्यते । नाट्यशास्त्र अध्याय - 6, सूत्र 48।

दूसरों के विकृत वेषालंकार, लज्जाहीन विभाव, इंद्रिय-लोलुपता, गाली-गलौज असंबद्धता, दूसरों पर दोषारोपण आदि हास्य के विभाव हैं ।

जहाँ तक हास्य की व्याख्या का सवाल है, लगभग सभी आचार्यों के सूत्रों में समानता दिखाई पड़ती है । मगर हास्य रस के कारण बताने में विविधता दिखाई पड़ती है । अभिनवगुप्त ने कहा है -

अनौचित्य प्रवृत्तिकृतमेव हि हास्य विभावत्वं
अर्थात् अनौचित्य ही हास्य का कारण है, संसार की जो भी वस्तु या व्यक्ति औचित्य का सीमोल्लंघन करके व्यवहार करता है तो वहाँ हास्य का आविर्भाव होता है । इस अनौचित्य को पाश्चात्य विद्वानों ने विसंगति शब्द से अभिहित किया है । अर्थात् जहाँ अनौचित्य या विसंगति होती है वहाँ हास्य होता है ।

मानव जीवन में मौजूद इन विसंगतियों, विषमताओं और विद्रूपों से हास्य की सृष्टि करके उदात्त आनंद की सृष्टि करता है कवि । हास्य की इन मूल सामग्रियों का भरत ने तीन भागों में विभाजित किया है -

विसंगति - यदि मूर्ख अपने पांडित्य का ढिंढोरा पीटता जाता है, यदि कायर वीर के जैसे अभिनय करता है, यदि दुर्जन सज्जन का स्वांग रचता है तो विसंगति जन्म लेती है ।

वैषम्य - यह सुनकर कि दुबला पतला आदमी मोटी तगड़ी औरत से शादी करता है, नाटा आदमी शिखर छूने का प्रयत्न करता है, हम हँसते हैं। याने उनके व्यक्तित्व के असंतुलित विधान हमें हँसाने के कारक हैं ।

विरूप - अंगविकृति हास्य को जन्म देती है । गणपति का रूप, विकलांगता इसके उदाहरण हैं ।

सामाजिक संदर्भ में यह विसंगति, विषमता, विरूप जब कि दिखाई पड़े तब लेखक व्यंग्य के माध्यम से उनपर हँस भी सकता है तथा विषाद भी व्यक्त कर सकता है । इस दृष्टि से व्यंग्य में हँसना तो शर्त नहीं है ।

आगे भरत ने हास्य के दो भेद माने हैं - आत्मस्थ और परस्थ । "द्विविधश्चायं आत्मस्थः परस्थश्च" ।नाट्यशास्त्र, अध्याय-6, सूत्र 48 का अगला गद्य भाग। याने आत्मस्थ जहाँ विदूषक या पात्र स्वयं हँसता है परस्थ जहाँ वह दूसरों को हँसाता है । स्वयं भी हँसकर दूसरों को भी जब कि हँसाया जाता है तब आत्मस्थ-परस्थ होता

भरत और अन्यान्य भारतीय काव्यशास्त्रियों ने रसों का विवेचन करते समय रस को शृंगार के बाद स्थान तो दिया मगर उसका महत्व बताते समय उसको अमुख्य रस साबित किया । और शृंगारादि अन्यान्य रसों का जितना विवेचन हुआ, उतना विवेचन हास्य रस का नहीं हुआ । या यों कहना ठीक होगा कि हास्य संबंधी विस्तृत विवेचन भारत में हुआ ही नहीं है । यदि हुआ भी है तो गंभीरता से हुआ नहीं है हास्य को मात्र विकृति और अनौचित्य के संदर्भ में विवेचन करके छोड़ दिया हास्य को मात्र रंजनीय माना गया मगर सामाजिक संदर्भ में उसका विवेचन हुआ नहीं है हास्य के स्वरूप एवं उसके भेदों का विवेचन करते समय भरत ने कहा कि इसके निम्नांकित भेद हैं - स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित, अतिहसित इन सबमें व्यक्ति की बाह्य प्रकृति पर हँसे जाने का ही वर्णन मिलता है । डॉ. सुंकापुर का मत है -

"हास्य से उद्भूत होनेवाली हँसी अथवा हास्य को - 1. आत्मस्थ 2. परस्थ नाम से दो भागों में बाँट सकते हैं। इनमें से पहला सौम्य है तो दूसरा चालाक। पहला वाला रस हास्य है तो दूसरा वाला व्यंग्य। सत्य हमेशा एक ही होता है तो असत्य अनेकमुखी। रस हास्य का एक ही चेहरा तो व्यंग्य के अनंत चेहरे हैं। हास्य का लंबा-चौड़ा विवेचन करनेवाले भारतीय व्यंग्य से परिचित रहते हुए भी उसका अलग रूप से विवेचन नहीं किया। उन्होंने माना होगा कि वह हास्य के अंतर्गत ही आ जाएगा।[8]

संस्कृत में काव्य मीमांसियों ने हास को स्थायी भावों में एक मानकर हास्य को एक रस के रूप में पहचाना, मगर हास्य के संबंध में गंभीर चिंतन भारत में हुआ ही नहीं।

<u>हास्य और व्यंग्य: पाश्चात्यों और पौर्वात्यों की दृष्टि: एक तुलनात्मक सर्वेक्षण</u>

हास्य का गंभीर विवेचन पाश्चात्य आलोचकों ने किया है। उनका कामदीय सिद्धांत हास्य सिद्धांत से अपेक्षाकृत अधिक गंभीर एवं गहरा है। इसलिए पाश्चात्य काव्यशास्त्र के कामदी साहित्य की विधाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने से व्यंग्य की स्पष्ट रूपरेखा हमें मालूम होगी -

1. वाक्चातुरी (विट) 2. हास्य (ह्यूमर) 3. विनोद (कामिक)
4. व्यंग्योक्ति (आइरनी) 5. व्यंग्य (सटायर) 6. विदूपता, मुक्त हँसी (फार्स)

<u>विट</u> : (वाक्चातुरी)

आज की विचारधारा के अनुसार विट और ह्यूमर कामिक विधा के अंतर्गत ही आते हैं। मगर आलोचना के इतिहास में विट और ह्यूमर अलग-अलग अर्थों के संदर्भ में विकसित होते आए हैं।

17वीं शती के आरंभ में विट एक प्रमुख परिकल्पना थी जो कि कृति के मूल्यांकन का एक मापदंड भी था। तब विट विदग्धता के अर्थ में प्रयुक्त होता था। तथापि मुख्य रूप से आश्चर्यचकित करनेवाले एवं विरोधाभासों से युक्त अलंकारों के लिए विट शब्द का प्रयोग होता था। बुद्धिमत्ता तथा चालाकीपन इसके प्रमुख अंग हैं। जान लाक के

ही विट है । प्रभावकारी विट में घटना में अप्रत्याशित मोड़, चुटी चुटी पैदा करनेवाला अंत दिखाई देता है । उदा - "1. The only sure way to double your money, is to fold it and put in your pocket."

- अमेरिकी हास्यकार अबे मार्टिन

2."History repeats itself Historians repeat each other."

- फिलिप गुडेला

अंग्रेजी "विट" शब्द हिन्दी में वचन विदग्धता, उक्ति चमत्कार के अर्थ में प्रयुक्त होता है । हिन्दी शब्द सागर के अनुसार 'विट ' वह चमत्कारपूर्ण उक्ति है जिससे लोगों का मनोविनोद हो ।' एडिसन नामक विद्वान के अनुसार "पदार्थों" के संबंध दर्शन से पाठकों में प्रसन्नता और आश्चर्य की चमत्कृति उत्पन्न हो और उसमें भी विशेष चमत्कृति जान पड़े उसे विट कहते हैं ।

विट का अपना संसार है । हास्य विकृतियों एवं विद्रूपों पर एकदम निकल आनेवाला फौव्वारा है तो विट में स्वस्थ मानसिकता का, तीक्ष्ण मति का होना अनिवार्य है । चूंकि विट शब्द और अर्थों के श्लेष प्रयोगों से भी जन्म ले सकता है, विट करनेवाले को भाषा पर विशिष्ट अधिकार रखना पड़ता है । कल्पनाशील होना पड़ता है । बिन्दु में सिंधु भरने की क्षमता रखनी पड़ती है, विट नावक की तीर की भाँति है जो कि पाठकों पर तभी प्रभाव डाल सकता है जबकि उसमें मर्म को छूनेवाला अंश हो । कन्नड़ के सुप्रसिद्ध हास्यकार टी.पी. कैलासम् ने मैटर आफ मनी को मेट्रिमोनि कहकर विट तो किया है और साथ ही मेट्रिमोनि का संबंध मैटर आफ मनी से जोड़कर व्यंग्य भी किया है । हिन्दी के भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कवियों में यह विट बड़ी समृद्ध मात्रा में प्राप्त होता है । अतः कहा जा सकता है कि "It is a qualification of the mind, that raises and enlives cold sentiments and plain propositions, by giving them an elegant and surprising turn."

सहजता, तीक्ष्णता, हास्य, वाग्विदग्धता, व्यंग्य आदि विट याने वाक्चातुरी के मुख्य गुण हैं । विट की पराकाष्ठा को निम्नांकित दो प्रसंग और भी स्पष्ट करते हैं -

सुप्रसिद्ध नाटककार शेरिडन ब्रिटिश पार्लिमेंट का सदस्य था । पार्लिमेंट में एक बार भाषण देते समय आवेश में उन्होंने कहा - " इस सदन में उपस्थित लोगों में पचास प्रतिशत सदस्य गधे हैं । सदन में कोलाहल शुरू हुआ । सदस्यों ने आग्रह किया कि शेरिडन अपने शब्दों को वापस लें । सभापति ने भी निर्णय दिया ऐसे शब्दों का प्रयोग सदन में न होना चाहिए । तब शेरिडन ने शांतस्वर में कहा - मैं सदस्यों से माफी चाहता हूँ । इस सदन के पचास प्रतिशत/सदस्य गधे नहीं हैं । मैंने जो कहा था, उसे वापस ले रहा हूँ । यहाँ का विट अत्यंत प्रभावकारी है । सुननेवाले समझने में काबिल होते हैं तो उनके लिए विट तलवार की धार है ।

हास्य का मूल उद्देश्य हँसाना ही है पर विट का मूल उद्देश्य वाक् चातुरी के द्वारा श्रोता को असमंजस में डालना और अपनी क्रिया पर दुबारा सोचने को मजबूर करना है । विट का अर्थ समझ में आने पर हँसना जो होता है वह विट की मार्मिकता का फल होता है । हास्य में बौद्धिकता का होना ज़रूरी नहीं है जब कि विट में बौद्धिकता का होना ज़रूरी है ।

आइरनी (वक्रोक्ति)

यद्यपि 'आइरनि' शब्द प्राचीन है मगर इसकी परिकल्पना साहित्य के इधर के वर्षों में उभर आई । "EIRONEIA" नामक शब्द एक अलंकार का नाम था जो कि एक आडंबरपूर्ण भाषा-प्रयोग के अर्थ में ग्रीक में प्रयुक्त होता था । वाद-विवाद के तंत्र के अर्थ में रोमन भाषा का "IRONIA" शब्द प्रयुक्त होता है । "IRONY" के रूप में 1952के बाद यह शब्द अंग्रेज़ी में प्रचार में आया । इसका व्यापक प्रचार हुआ 18 वीं शती के बाद । इन आरंभिक दो सौ वर्षों में "IRONY" एक अलंकार का नाम था । इसके लिए - 1. हृदय की भावनाओं को छिपाकर ठीक उसके विरुद्ध बतियाना, 2. प्रशंसा देने के लिए गालियाँ देना और गालियाँ देने के लिए प्रशंसा करना, अर्थों के अलावा अभिनय, आडंबर दिखाना जैसे अर्थ भी थे । साहित्य कृतियों के संदर्भ में नाटकीय व्यंग्य की परिकल्पना 19वीं शती में आई । 18वीं शती के उत्तरार्द्ध एवं 19वीं शती के पूर्वार्द्ध में जर्मन में दर्शन शास्त्र और सौंदर्यशास्त्र संबंधी जो चर्चा हुई तब "IRONY" शब्द

में 75 अर्थ आविर्भूत हुए । फ्रेड्रिक श्लेगल, ए.डब्ल्यू. श्लेगल, कार्ल सोलजर आदि विद्वान व्यंग्य के प्रमुख चिंतकों में से हैं ।

इस सदी के पूर्वार्द्ध में कुछ विशिष्ट लक्षणों से युक्त साहित्य कृतियों के संदर्भ में व्यंग्य शब्द का प्रयोग होना शुरू हुआ । जीवन की संकीर्णता अथवा मूल्यों की सापेक्षता का बोध करवाने, सीधे अर्थों की अभिव्यक्ति करनेवाले वक्तव्यों की अपेक्षा विशाल एवं समृद्ध अर्थों का उद्घाटन करने के लिए सरलीकरण और अंधविश्वास के खतरे से बचने के लिए अथवा किसी भी दूसरे कारण से साहित्य-कृति परस्पर विरोधी अर्थों व दृष्टि को बिना किसी टीका-टिप्पणी के प्रस्तुत करती है । नई आलोचना ऐसी कृतियों को व्यंग्य कहती है ।

यह आइरनी शब्द अपना अलंकार वाला अर्थ खोकर व्यक्ति एवं सामाजिक जीवन के संदर्भ में आत्मान्वेषण एवं सत्यान्वेषण का अर्थ ग्रहण करता गया, व्यंग्य साहित्य के द्वारा व्यक्ति एवं समाज के दोषों पर प्रहार करनेवाला अस्त्र बन गया । व्यंग्य भावनाओं के संघर्षों का पर्याय बन गया । इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यंग्य सैद्धांतिक पक्ष बन गया । ए.आर.थाम्सन के अनुसार " व्यंग्य से भावनाओं का संघर्ष रहता है । व्यंग्य भावात्मक भी है, बौद्धिक भी है । उसको ग्रहण करनेवाला निश्चित एवं शांत रहना चाहिए । उसका अनुभव करने के लिए व्यंग्य को शिकार बने व्यक्ति के प्रति अथवा खंडित आदर्श के प्रति दुखी होने की संवेदना चाहिए । इसके अनुसार व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य हर्ष एवं दुख को जगाना होता है । मगर व्यंग्य में वेदना का होना अनिवार्य नहीं है । दुख के बिना व्यंग्य जन्म ले सकता है । दुख वेदना के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है । वैसे व्यंग्य के शिकार के प्रति पाठक के मन में सहानुभूति उत्पन्न हो सकती है न कि वेदना । व्यंग्य का गुण सहानुभूति है, वेदना नहीं है । व्यंग्य के उसके स्वभाव के अनुसार अनेक भेद किए गए हैं - यथा 1. ड्रामैटिक आइरनी (नाटकीय व्यंग्य) नाटकीय व्यंग्य का यह मतलब नहीं है कि यह मात्र नाटकों से संबंधित है । साहित्य की अन्य विधाओं में भी यह आ सकता है । वास्तविक जीवन में नाटकीयता एवं नाटकीय व्यंग्य को पहचान सकते हैं ।

कॉमिक आइरनी (हर्ष व्यंग्य) - यह नाटकीय व्यंग्य का एक भेद है जो कि शताब्दियों
स में भी उपलब्ध होता है ।
[illegible] आइरनी आफ फेट (नियति व्यंग्य) यह नियति पर विश्वास करनेवालों की परिकल्पना है ।
सेल्फ आइरनी (आत्म व्यंग्य) - यहाँ अपने आप पर व्यंग्य किया जाता है ।
कन्वरसेशनल (औपचारिक व्यंग्य) - यहाँ का व्यंग्य अत्यंत गंभीर होता है । यहाँ की ध्वनि तार्किक, वैचारिक और भावुक न होकर सामान्य एवं सहज रहता है ।

इस प्रकार व्यंग्य के नाना भेदों और उपभेदों की परिकल्पना आलोचकों ने की है, तथापि इसके दो प्रमुख भेद सर्वमान्य हैं - 1. शाब्दिक व्यंग्य (वर्बल आइरनी) शाब्दिक व्यंग्य करते समय व्यंग्यकार जान बूझकर व्यंग्य कसने लगता है । इसमें वह ढोंगी आचरणों एवं मुखौटों के पीछे जो असली रूप होता है उसका अनावरण करता है । 2. परिवेशीय व्यंग्य अथवा अनुद्देशित व्यंग्य (सिचुएशनल आइरनी अथवा अनइन्टेन्शनल आइरनी) - यहाँ व्यंग्यकार किसी घटना या वस्तु या क्रिया में मौजूद स्थितियों पर व्यंग्य करता है ।

शाब्दिक एवं परिवेशीय व्यंग्य सम्मिलित रूप में साहित्यिक कृति में आ सकते हैं, इस दृष्टि से ये दोनों अलग अलग होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं ।

परिवेशीय व्यंग्य का सामाजिक वातावरण में अपना महत्व होता है क्योंकि सैद्धांतिक मुद्दे यहाँ उभर आते हैं । कोई लेखक किसी एक प्रसंग को क्यों व्यंग्य योग्य समझता है ? इस प्रश्न के जवाब में जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण नज़र आते हैं उसके प्रति व्यंग्यकार की प्रतिक्रिया परिवेशीय व्यंग्य का प्रमुख लक्षण होता है । यह वस्तुनिष्ठ व्यंग्य है ।

व्यंग्य विधा इधर के वर्षों से स्वतंत्र रूप से विकसित हो रहा है । व्यंग्य के अनेक रूपों, सामान्य गुण-लक्षणों का परिशीलन करने पर पता चलता है कि साहित्य एवं सांस्कृतिक दृष्टि से दिनों दिन इसका महत्व कितना बढ़ रहा है ।

भारतीय काव्यशास्त्र में इस आइरनी को ध्वनिकाव्य के समानार्थक माना जाय अथवा वक्रोक्ति के समानार्थक माना जाय, इसमें अभी मतैक्य नहीं है । ध्वनि और वक्रोक्ति के अंतर्गत जो बातें चर्चित हैं उन बातों की चर्चा आइरनी के अंतर्गत पाश्चात्य साहित्यकारों ने की है । अतः वक्रोक्ति तथा ध्वनि का परिचय प्राप्त करने से व्यंग्य का स्वरूप स्पष्ट होता है । कुंतक के अनुसार काव्य या साहित्य साधारण वक्तव्यों से युक्त नहीं रहना चाहिए, वक्रोक्ति रहित काव्य काव्य ही नहीं है । कुंतक ने " वक्रोक्तिजीवित " में वक्रोक्ति के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा " वक्रोक्ति के लिए वक्रभाव ही कारण है "
प्रश्न - वह ।शब्द, अर्थ दोनों का एक ही अलंकार। कौन सा है ?
उत्तर में कहते हैं ।वक्रोक्ति ही शब्द तथा अर्थ दोनों का एकमात्र अलंकार है। प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है । वैदग्ध्य अर्थात् चातुरतापू कविकर्म ।काव्य निर्माण। का कौशल उसकी भंगी शैली या शोभा उससे भणिति अर्थात् ।वर्णन। कथन करना । विचित्र ।असाधारण। प्रकार की वर्णन शैली ही वक्रोक्ति कहलाती है ।[9]

भारतीय काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है इसे एक मात्र काव्यालंकार ही कहा जाता है । इस दृष्टि से भामह, दंडी, रुद्रट आदि का विवरण अन्यान्य आचार्यों के विवरण से भिन्न है । रुद्रट के अनुसार वक्रोक्ति का मतलब एक काव्यालंकार है । श्लेष ही वक्रोक्ति का सार सर्वस्व है ।

वक्रोक्ति का महत्व बाद में इतना माना गया कि उसे मात्र अलंकार स्वीकार करके अलंकार सर्वस्व माना गया । भामह ने स्वीकार किया कि वक्रोक्ति ही काव्य का केन्द्र है और काव्य लिखने का चमत्कारपूर्ण विधान है -

न नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम्
वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृति ।

वक्रोक्ति का संसार निराला है । यहाँ शब्द चमत्कार पर है और है आलोचना, टीकाटिप्पणी परोक्ष रूप से की जाती है । परोक्ष टीका-टिप्पणी से उभरनेवाला अर्थ समझ में आ जाय तो उसका प्रभाव ही दूसरा होता है । इसीलिए वक्रोक्ति का व्यंग्य

वाच्यार्थ से भिन्न होता है । "उसके घर में रोज़ नाच-त्योहार है ।" या "हमारे गाँव का अनाथालय अनाथ है", "उस आसामी को जगाने के लिए ज़मीन-आसमान एक करना चाहिए" - ऐसे वाक्यों से ध्वनित होनेवाला अर्थ वाच्यार्थ से भिन्न है । इसलिए ही यह वक्रोक्ति है । वक्रोक्ति दूसरे की कमी की, उसकी दुर्बलता की ओर इशारा करती है । शैलीकारों का वक्रोक्ति-प्रयोग में अपना महत्व है । अन्योक्तियाँ भी वक्रोक्ति के ही अंश हैं । मनुष्य की दुर्बलताओं व दोषों की व्यंग्यात्मक प्रस्तुती अन्योक्तियों से संभव है । वक्रोक्तिवाद जिस व्यक्ति की आलोचना करना चाहता है उस पर सीधा प्रहार न करके अप्रस्तुत का - पशु-पक्षी या किसी वस्तु-वर्णन ऐसा करता जाता है कि उसके गुण-अवगुण उस पर लागू होते जाते हैं । पर्यायोक्ति अलंकार भी वक्रोक्ति सा है । जिस प्रकार का व्यंग्य कवि करना चाहता है उसे चमत्कृत रीति से दूसरे ढंग से करे तो वह पर्यायोक्ति अलंकार बनता है । वक्रोक्ति के इन सारे भेदों के स्थूल परिचय से व्यंग्य के नाना आयाम उद्घाटित होते हैं ।

चाहे साहित्य में हो, चाहे सामान्य व्यवहार में हो, शब्दों की एक अजीब दुनिया है । हर शब्द के एकाधिक अर्थ होते हैं और उन अर्थों की नाना ध्वनियाँ होती हैं । शब्द की इस शक्ति को काव्यशास्त्र में "वृत्ति" कहा गया है । किसी शब्द को ह सुनते हैं तो तुरंत उसका वाच्यार्थ बोध जाता है । मगर विशिष्ट संदर्भों में विचार किया जाय तो उसका दूसरा अर्थ ही निकल आता है।

ध्वनिकार आनंदवर्द्धन ने काव्य की आत्मा संबंधी चर्चा को अपने ध्वनि सिद्धांत से एक नया मोड़ दिया । ध्वनि के महत्व को प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा कि रस वह है जो कवि से अभिव्यक्त होकर पाठक अथवा सहृदय का आस्वाद बनता है । रस के माध्यम से कवि और सहृदय के बीच संबंध स्थापित होता है । मगर सवाल यह है कि अनुभवगम्य रस को अपने में साकार करके उसे सहृदय तक पहुँचाने की काव्य शक्ति कौन सी है ? क्या वह रीति है ? या अलंकार ? इनके बावजूद भी काव्य का मर्म समझ में नहीं आता है । काव्य का मर्म पाठकों या सहृदयों के मर्म को छूना है तो उसमें इन सबसे विशिष्ट और अलग एक शक्ति होगी जिसे आनंदवर्धन ने "ध्वनि" शब्द से अभिहित किया है । ध्यान देने की बात यह है कि आनंदवर्द्धन ने ध्वनिसिद्धांत का समर्थन करते समय न

रस सिद्धांत का निराकरण किया न अलंकारों का न रीति का । क्योंकि अपनी अपनी सीमा में इन सबका अपना महत्त्व है ही । किन्तु आनंदवर्धन के अनुसार ये ही सब कुछ नहीं है । वास्तव में ये कवि के मूलभाव की अभिव्यक्ति में पोषक हैं । इन भूषण स्वरूपी सोने में तभी सुगंधी आयेगी जबकि काव्य इन सबको आत्मसात् करके विशिष्ट अनुभव और अर्थ प्रदान करता है । ध्वनि के बिना अलंकार और रीति व्यर्थ है, इसलिए अनंत अर्थों की संभावनाओं से युक्त ध्वनि काव्य का अंतस्तत्त्व है । हमारे देश में अनेकों महाकाव्य अपने पांडित्य और अलंकारादि गुणों से विद्वत्समाज का आदर पा चुके हैं, मगर कुछ ही महाकाव्य ऐसे हैं जिनसे ध्वनित होनेवाले अर्थों व ध्वनियों से कालजयी बने हैं । हमारे रामायण और ■ महाभारत ऐसी कालजयी कृतियाँ हैं जो अनंत ध्वनियों की अक्षय-निधि हैं, कवियों के लिए निरंतर स्फूर्ति के भंडार हैं । वहाँ का हर पात्र व हर प्रसंग दिनों दिन ■ नये अर्थ प्रदान करने में समर्थ हैं जिसका मुख्य कारण उन काव्यों की ध्वनि है । इस ध्वनि को आनंदवर्धन ने " प्रतीयमान " कहा है । काव्य का माध्यम वाणी ही है किन्तु यह वाणी वाच्यार्थों - लक्ष्यार्थों से भिन्न एक विशिष्ट अनुभव को प्रदान करता है जोकि सहृदयों के मर्म को छू लेता है - मर्मको छू लेनेवाला अनुभव आनंदवर्धन की दृष्टि में प्रतीयमान है -

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणी महाकवीनाम्

यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं, विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु (ध्वन्यालोक 1-4)

प्रतीयमान कुछ और ही चीज ■ जो रमणियों के प्रसिद्ध (मुख, नेत्र, श्रोत्र, नासिकादि) अवयवों से भिन्न (उनके) लावण्य के समान, महाकवियों की सूक्तियों में (वाच्य अर्थ से अलग ही) भासित होता है ।

महाकवियों की वाणियों में वाच्यार्थ से भिन्न ही प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है जो प्रसिद्ध अलंकारों अथवा प्रतीत होनेवाले अवयवों से भिन्न, सहृदय-सुप्रसिद्ध, अंगनाओं के लावण्य के समान (अलग ही) प्रकाशित होता है । जिस प्रकार सुंदरियों का सौंदर्य पृथक दिखाई देनेवाला समस्त अवयवों से ■ भिन्न सहृदय नेत्रों के लिए अमृत तुल्य कुछ और ही तत्त्व है, व इसी प्रकार वह (प्रतीयमान) अर्थ है ।[10]

यह प्रतीयमान शक्ति काव्य की आत्मा है । बिहारी के काव्य में इसके अपूर्व उदाहरण प्राप्त कर सकते हैं । उदाहरण के लिए -

अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान
वह चितवन औरै कछू जिहिं बस होत सुजान ।

यहाँ " वह चितवन औरै कछू " में सौन्दर्यानुभूति की असीम कल्पना का फौव्वारा है जो कि प्रतीयमान शक्ति है । यह प्रतीयमान शक्ति एक ऐसी अनुभूति है जिसका संबंध शब्दों के तथाकथित निश्चित अर्थों से नहीं अपितु उन अर्थों की परिधि के बाहर के अर्थों से है । आनंदवर्धन ने इसी को रेखांकित किया है -

शब्दार्थशासन ज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते
वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् (ध्वन्यालोक 1-8)

वह (प्रतीयमान अर्थ) शब्द-शास्त्र (व्याकरणादि) और अर्थशास्त्र (कोशादि) के ज्ञान मात्र से ही प्रतीत नहीं होता, वह तो केवल काव्यमर्मज्ञों को ही विदित होता है । क्योंकि केवल काव्यार्थ तत्त्वज्ञ ही उस अर्थ को जान सकते हैं । यदि वह अर्थ केवल वाच्य रूप ही होता तो शब्द और अर्थ के ज्ञानमात्र से ही उसकी प्रतीति होती । वह व्यंग्य अर्थ और उसको अभिव्यक्त करने की शक्ति युक्त कोई विशेष शब्द (ही) है । शब्द मात्र (सादेशब्द) नहीं ।[11]

कवि की वाणी में यह प्रतीयमानता नहीं होती तो ? हमारे सारे काव्य एकदम वाच्य बन जाते और शब्द कोश आदि की सहायता से हम काव्य के मर्म से साक्षात्कार करते । मगर हकीकत यह है कि काव्यार्थों का संबंध मात्र शब्दार्थों तक शब्द-कोषों तक सीमित नहीं है । इसके आगे भी है । वह है - काव्य तत्त्व । वह काव्यतत्त्व का रहस्य ही ध्वनि है । इस रहस्य को जो समझता है वह महाकवि बनता है । यह व्यंग्योपप्रधान भाषा कवि वाणी बनती है । इसका मतलब यह नहीं है कि काव्य को समझने के लिए काव्य परिकरों की बिलकुल आवश्यकता नहीं है । साहित्य व्यंग्यार्थ प्रधान होने पर भी वाच्यार्थ का भी अपना महत्त्व है । वास्तव में वाच्यार्थ के माध्यम से ही व्यंग्यार्थ समझना है । तत्त्वार्थी सहृदय केवल वाच्यार्थ से ही तृप्त न होकर आगे जाता है । तब जाकर व्यंग्यार्थ समझ में आता है । यह व्यंग्यार्थ ही ध्वनि है । इसको स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है -

यत्रार्थः शब्दोवा
तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थों
व्यक्तः काव्यविशेषः
सध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।

अर्थात् जहाँ चाहे अर्थ हो या शब्द हो अपने को अथवा अपने अर्थ को अप्रधान बनाकर व्यंग्यार्थ को पंडितों ने ध्वनि विशेष कहा है ।

- ध्वनि के इस स्थूल परिचय से मालूम होता है कि व्यंग्य की आत्मा ध्वनि है । ध्वनि का व्यापक अर्थ और उसके भेदों-प्रभेदों का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट उभर आती है कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में आइरनी का जो सिद्धांत है उसके समांतर यह ध्वनिसिद्धांत है ।

काव्य की आत्मा संबंधी चर्चा में हम "वक्रोक्ति" को काव्य की आत्मा मान लें या ध्वनि को, किन्तु इन दोनों का लक्ष्य एक ही है व्यंग्यार्थ का प्रस्फुटन । यह व्यंग्य साहित्य की आधारभूत सामग्री है ।

सटायर ।व्यंग्य।

व्यंग्य के पर्यायवाची शब्द के रूप में अंग्रेजी का "सटायर" शब्द प्रचलन में है । सटायर में व्यंग्यकार अद्भुत अथवा विसंगतियों से युक्त हास्य अथवा घटना अथवा पुरुष को अपना अस्त्र बनाकर व्यंग्य की तलवार चलाता है । इसके मूल में मजाक, तिरस्कार परिहास, कोप आदि भावनाएँ काम करती रहती हैं । हाँ, दूसरे को एकदम निकृष्टता से देखना अथवा उसका मजाक उड़ाना ही व्यंग्य का मूलभूत स्वर नहीं है तथापि व्यंग्य में इन दोनों अंशों में एक अन्वय मौजूद रहता है । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि हास्य ।ह्यूमर। एवं व्यंग्य के बीच का प्रमुख अंतर यह है । मनुष्य की अ-परिपूर्णता, दुर्बलताओं एवं दोषों को अपना लक्ष्य बनाकर हँसने के समय हास्य अपनी सीमा की मर्यादा का उल्लंघन करके बाहर नहीं जाता है, मतलब यह हँसी, विनोद तक वह सीमित रहता है जबकि सटायर में "हँसी" एक अस्त्र बनकर काम करती है । यहाँ हँसी विषय के सीने पर बन्दूक सा हमला करती है इस व्यंग्य के लिए जैसा कि कोई व्यक्ति भी शिकार

हो व सकता है वैसे ही समाज, देश, संस्था, दल भी शिकार हो सकते हैं । इससे कोई भी बच नहीं सकता है । सटायर ।व्यंग्य। का मुख्य उद्देश्य यथार्थता को आदर्श से जोड़ना होता है । सटायर के व्यंग्य पर प्रकाश डालते हुए नार्थोप फ्राइ नामक विद्वान ने कहा है कि

सटायर की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें भले ही अल्पमात्रा में ही क्यों न हो प्रभावकता ।फैंटेसी। वांछनीय है । तीसरी विशेषता यह है सटायर के लिए जो वस्तु चुनी जाती चाहिए उसमें हास्यास्पद लगनेवाली वस्तु का होना भी जरूरी है और सबसे बढ़कर यहाँ व्यंग्यकार एक व नैतिक मापदंड के सहारे ही व्यंग्य करने निकलता है ।

व्यंग्य का आलोचकों ने दो भागों में विभक्त किया है - 1. प्रत्यक्ष व्यंग्य । ।फार्मल ।डाइरेक्ट। व्यंग्य। 2. अप्रत्यक्ष व्यंग्य ।इनडाइरेक्ट व्यंग्य।
प्रत्यक्ष व्यंग्य में व्यंग्यकार का संबंध या तो सीधा पाठक से रहता है या तो रचना के f चरित्र के साथ चलनेवाले संवाद के रूप में रहता है । अप्रत्यक्ष व्यंग्य में व्यंग्य की वस्तु रचना के चरित्रों के रूप में दिखाई पड़ते हैं जिनकी विचारधाराएँ, वार्तालाप एवं क्रियाओं पर व्यंग्यकार की टिप्पणियाँ और टीकाएँ एवं उनकी शैली हास्य की सामग्री बनती हैं ।

साहित्य में सटायर ।व्यंग्य। का महत्वपूर्ण स्थान है । और सटायर।व्यंग्य। करना भी कम जोखिम का काम नहीं है । यह सटायर ।व्यंग्य। उस्तुरे की भाँति कभी अपने पर कभी दूसरे पर किया जाता है । इन दोनों संदर्भों में व्यंग्यकार को असीम मनोबल की जरूरत पड़ती है । व्यंग्य का मूल मकसद सुधारवादी भावना है ।

व्यंग्य दूसरों के दुर्गुण का पर्दाफाश करके समाज के स्वास्थ्य को संवारता है । इस दृष्टि से व्यंग्यकार को दूसरों के बेईमी और अपनी व्यवहार महत्व के बन जाते हैं इसीको उद्देशित करके बायरन कवि ने यहाँ तक कहा है ।कि कि

डॉ. सुकापुर के शब्दों में व्यंग्यकार की वाणी तिरछी होती है जबकि उसका हृदय साफ-सीधा होता है - समरेखा की भाँति । उसकी वाणी के चोट खानेवाले को मारती नहीं है, उसकी रक्षा करती है । वैद्य शल्यचिकित्सा करता है - रोगी को बचाने के लिए न कि मारने के लिए । उसकी दवा ओठों के लिए भले ही कड़ुवा लगे पेट को मीठापन ही देता है, उसी प्रकार व्यंग्यकार की कड़ुवी बातें व्यंग्य के शिकार बननेवालों को अच्छा ही करता है । इसलिए कुर्की ने कहा कि व्यंग्यकार वैद्यों की भाँति है । व्यंग्य शक्कर से लेपित क्विनाइन गोली की भाँति है । खाली क्विनाइन किसीको अच्छा नहीं लगता मगर उस पर शक्कर लेपन हो जाय तो खानेवाला खुशी से खाता है । ठीक इसी प्रकार व्यंग्य में प्रत्यक्ष निंदा के लिए हास्य का लेपन चाहिए । थोड़ा बहुत व्यंग्य सम्मिलित हो जाय तो कठोर से कठोर निंदा भी जाने अनजाने हृदय में प्रवेश करता है । इसलिए ही टेलहसन ने कहा है -

सटायर (व्यंग्य) जो कि पाश्चात्य साहित्य में ह्यूमर याने हास्य की एक विधा के रूप में वर्णित है । पर हास्य और सटायर का संबंध अविच्छिन्न है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं ।

<u>कॉमिक अथवा उन्मुक्त हँसी (विकट हास्य), अनुकरण अथवा मूल की विद्रूपिका</u>

कॉमिक भी हास्य-व्यंग्य का एक भाग ही है जिसे हम असंगत अनुकरण भी कह सकते हैं । इसका मुख्य उद्देश्य उत्प्रेक्षा के माध्यम से मूल पर हँसी उड़ाना या मूल के गंभीर अर्थ पर पर्दा डालकर वहाँ की शैली का ऐसा अनुकरण करना जिससे कि हास्य का उद्घाटन भी हो और व्यक्ति, समाज एवं परिवेश का व्यंग्य भी हो । दूसरे शब्दों में कॉमिक के व्यंग्य का मकसद शैली अथवा भावनाओं के विकृत एवं विकल करना, प्रमुख, गंभीर अथवा उदात्त वस्तुओं की गंभीरता को हल्का बनाना है । आधुनिक आलोचक पैरोडी को कॉमिक के अंतर्गत स्वीकार करते हैं । कॉमिक के दो भाग हैं - उदात्त कॉमिक (हाई कॉमिक) और साधारण (सामान्य) कॉमिक (लो कॉमिक)
उदात्त कॉमिक में जब वस्तु साधारण होती है तो उसके अनुकरण के लिए जैसी शैली का प्रयोग किया जाता है वह उदात्त होती है ।

साधारण पैरोडी में वस्तु गंभीर होती है तो उसके अनुकरण के लिए जिस शैली एवं रूप का प्रयोग किया जाता है वह साधारण होती है ।

पैरोडी के द्वारा किसी कृति या कृतिकार या किसी साहित्य विधा पर व्यंग्य किया जा सकता है । गंभीर वस्तु को हास्यशैली में लाकर उसका महत्व मंद कर देना और हल्की चीज़ को गंभीर रूप और शैली में प्रस्तुत करके ईंट को पहाड़ बनाना - इस विधा की विशिष्टता है । मगर इन दोनों से हँसी का फौव्वारा निकलता ही है साथ ही दोनों संदर्भों में व्यंग्य प्रकट होता है ।

आर्थर सिम्स नामक लेखक ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि पैरोडी की कला का प्रस्फुटन हास्य द्वारा किया जाता है जिसमें मूल कविता के प्रति प्रेम के भाव का भी ध्यान रखा जाता है । अच्छी पैरोडी का सौंदर्य उसकी मूलरचना की परिकल्पना में है । सबसे सहज सरल पैरोडी शाब्दिक होती है जो प्रसादगुणपूर्ण अत्यंत प्रसिद्ध कविता को लेकर एक दो शब्दों या पंक्तियों के परिवर्तन द्वारा की जाती है जिससे भिन्न अर्थ निकले परंतु मूल का रूप नष्ट न हो । शैली की पैरोडी उच्चकोटि की मानी जाती है। पैरोडी कार का तत्संबंधी कविता से या कवि से प्रेम का होना जरूरी नहीं । क्यूँ क्योंकि वह उस कविता को इसलिए पैरोडी के लिए चुनता है जिसकी शैली पैरोडी कर के अनुकूल हो, मज़ाक, हास्य, व्यंग्य की अभिव्यक्ति के लिए सहायक हो ।

भारतीय भाषाओं में पैरोडी साहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है । मेघदूत के बदले में काकदूत लिखा गया है, कबीर, बिहारी और अन्यान्य कवियों के अनुकरण पर पैरोडी साहित्य प्रकाशित हुआ है ।

पैरोडीकार को भी मूल रचनाकार के जैसे प्रतिभावान् एवं सर्जनात्मक शक्ति से युक्त होना चाहिए । क्योंकि मूल रचना के अनुकरण में हँसी, मज़ाक, व्यंग्य का परिपाक लाना आसान काम नहीं है । निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि पैरोडी व्यंग्याभिव्यक्ति का सशक्त साधन एवं विधा है ।

व्यंग्य की भावभूमि का विवेचन अब तक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। वास्तव में हास्य और व्यंग्य एक सिक्के के दो रूप हैं। किन्तु अंतर इस बात में है कि जहाँ हास्य अपना लक्ष्य प्राप्त करके सार्थकता का अनुभव करता है वहाँ से व्यंग्य क्रियाशील होता है। हास्य का उद्देश्य मनोरंजन, हँसी मजाक है तो व्यंग्य में लोकमंगल की भावना समाविष्ट है। हास्य उद्भूत होकर समाप्त होता है व्यंग्य का प्रभाव लोक मानस पर शाश्वत और प्रभावकारी होता है। हास्य की हँसी सरत् की सुप्रवाहिनी है तो व्यंग्य का ≋ मानसिक तुमुल समुद्र का गर्जन है।

हास्य के विभिन्न प्रकारों की संक्षिप्त समीक्षा से यह बात स्पष्ट होती है कि चाहे भारतीय काव्यशास्त्र हो, चाहे पाश्चात्य काव्यशास्त्र, हर कहीं ध्वनि तत्व को महत्व का सिद्धांत माना गया है। यह ध्वनि हास्य का भी मूल है और व्यंग्य का भी। शब्दार्थ से लेकर पूरे महाकाव्य की सार्थकता तभी है जबकि वह शब्द या ≋ महाकाव्य अपने अभिप्राय को पार करके जाता हो और कुछ विशिष्ट की ध्वनित करता हो। "व्यंग्य" और व्यंग्यार्थ जैसी शब्दावलियों का प्रयोग भारतीय काव्यशास्त्र में बराबर होता आया है जबकि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में नाना पारिभाषिक शब्दावलियों द्वारा व्यंग्य और व्यंग्यार्थ का विस्तृत विवेचन किया गया है। आधुनिक साहित्य में तो यह व्यंग्यार्थ शक्ति एक स्वतंत्र रूप धारण कर चुकी है जिसके मूल में हास्य है, वक्रोक्ति है, ध्वनि है, सटायर है आयरनी है।

<u>व्यंग्य की परिभाषा : पाश्चात्य एवं हिन्दी आलोचकों का दृष्टिकोण</u>

व्यंग्य शैली की विशिष्टता का दूसरा नाम है। और आधुनिक युग में तो इसका विकास इस प्रकार हुआ है कि साहित्य की अन्यान्य विधाओं की भाँति "व्यंग्य" विधा का भी विकास हुआ है इस विधा में रचित साहित्य का स्वतंत्ररूप से विवेचन हो रहा है। मगर "व्यंग्य" काव्यशास्त्रों में प्रयुक्त किस शैली या सिद्धांत विशेष का पर्याय माना जाना चाहिए - इस पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डा. नगेन्द्र ने व्यंग्य को "सटायर" का पर्यायवाची माना है तो डा. रामकुमार वर्मा ने "आइरनी" को व्यंग्य का समानार्थक स्वीकार करते हुए पाश्चात्य साहित्य में उपलब्ध हास्य के पाँच मुख्य रूप माने हैं -

1. सटायर ।विकृति। - आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तु स्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना 2. कैरीकचर ।चित्र या अतिरंजना। किसी भी ज्ञात वस्तु या परिस्थिति को अनुपात रहित घटाकर या बढ़ाकर हास्य उत्पन्न करना 3. पैरोडी - ।परिहास। उदात्त मनोभावनाओं को अनुदात्त संदर्भ से जोड़कर हास्य उत्पन्न करना 4. आयरनी ।व्यंग्य। किसी वाक्य को कहकर उसका दूसरा दूसरा ही अर्थ निकालना और 5. विट ।वचन वैदग्ध्य। शब्दों तथा विचारों का चमत्कारपूर्ण प्रयोग ।[13] डा. हरदेव बाहरी ने अपने कोष में सटायर का अर्थ देते हुए उसके प्रहसन काव्य, विद्रूपात्मक साहित्य, व्यंग्यिका और व्यंग्य शब्द की व्याप्ति का परिचय दिया है । हिन्दी साहित्य कोष में सटायर को व्यंग्यगीत कहा गया है और पैरोडी को इसीका एक रूप माना है । कामिल बुल्के सटायर के लिए व्यंग्यिका, व्यंग्य रचना व्यंग्यकाव्य अर्थ दिया है । डा. रणवीर लिखते हैं - सटायर को प्रहसन कहना तो खैर दो बहुत भिन्न भिन्न संकल्पनाओं का गड्डमड्ड करना है, उसे विद्रूपात्मक साहित्य कहना भी अधिक उचित नहीं है । "व्यंग्य" शब्द भारतीय साहित्यशास्त्र में अपना एक निश्चित परंपरागत अर्थ रखता है, जो सटायर से कहीं व्यापक है । इसलिए उसे व्यंग्यकाव्य या व्यंग्यसाहित्य कहना भी ठीक नहीं है, ये दोनों शब्द वस्तुतः ध्वनिकाव्य के ही पर्याय हैं । सटायर को व्यंग्य गीति कहना तो और भी बेकार है क्योंकि व्यंग्यात्मकता को गीति में सीमित करने की धारणा अपने आप में बड़ी विडंबनापूर्ण है, इसलिए उसके लिए सर्वाधिक लोक प्रचलित शब्द "व्यंग्य" को ही स्वीकार कर लिया जाना चाहिए ।[14] डा. रणवीर भी प्रस्तुत संदर्भ में "व्यंग्य" का ठीक समानार्थी पद सुझाने में असमर्थ हुए हैं । वास्तव में भारतीय ध्वनिकाव्य के सिद्धांतों में प्रयुक्त शब्दावलि तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रयुक्त शब्दावलियों का सूक्ष्माध्ययन करने से जो भेद-प्रभेद दिखाई देते हैं वे व्यंग्य के विभिन्न आयाम ही हैं । वक्रोक्ति-ध्वनि-आइरनी-सटायर-वि आदि एक दूसरे के पूरक और पोषक हैं । इन सबका समग्र रूप व्यंग्य है । डा. रणवीर भी आखिर विभिन्न विद्वानों के अभिप्रायों का जायजा लेने के बाद सटायर व्यंग्य का पर्याय मानकर इसी अभिप्राय पर पहुँचते हैं - सटायर तो खैर व्यंग्य है ही विट और आइरनी भी उससे अधिक संबंधित है ।[15] आगे इनका अभिप्राय और स्पष्ट हुआ है - व्यंग्य अपने साधन के रूप में श्लेष, आयरनी, संदर्भविपर्यय या वाग्वैदग्ध्य में से किसी तरीके का

प्रयोग करता है । अर्थात् या तो एक ही शब्द के अधिक अर्थों का लाभ उठाता है या एक अच्छे शब्द को बुरे अर्थ में प्रयुक्त करता है या किसी शब्द को या शब्द समूह को। उसके प्रकृत संदर्भ से हटाकर किसी दूसरे ही संदर्भ में लाता है या किसी और तरीके से वाक्यों और उनके अर्थों से खेलता है । फिर उसके मूल में तो किसी न किसी प्रकार की शब्दों की, विचारों की, जीवन यथार्थ की, - असंगति रहती है या वह किसी तथ्य को घटा-बढ़ाकर, या तोड़ मरोड़कर या विकृत करके प्रस्तुत करता है ।[16] व्यंग्य के अंदर समाहित होनेवाले विभिन्न अंशों की ओर लेखक ने यहाँ प्रकाश डाला है । और अंत में लेखक इस निर्णय पर पहुँचता है कि व्यंग्यकार तथ्यों को तोड़ने मरोड़ने का काम भी करता है । लेखक के इस अभिप्राय को मानना इसलिए संभव नहीं है कि व्यंग्यकार अपनी ओर से तथ्य को तोड़ता मरोड़ता नहीं अपितु तोड़ी मरोड़ी वस्तुओं में, तथ्यों में विसंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से रेखांकित करता है । व्यंग्यकार का उद्देश्य हालतों से न समझौता करना है न आँखें मूँदकर अपनी राह पकड़ना मगर उनपर वार करना उनका उद्देश्य है, हालातों को ठीक करना उनका मकसद है । यहाँ आकर व्यंग्य और व्यंग्यकार की जिम्मेदारी गुरुतर होती है - श्री धनंजय वर्मा के अनुसार

" रचनात्मकता के लिहाज से हास्य अधिक स्पष्ट ही नहीं, निस्संदेह शिथिल लेखन भी है । वह अपने मनमौजीपन में, एक तरंग जिसे मौज की तरंग भी आप कह सकते हैं । में वह मौजूद विचित्रताओं, विषमताओं और कमजोरियों पर हँसता है जबकि हास्य अधिक अनुशासित रचनात्मकता की वजह से तेज, सख्त और तुर्श होता है । हास्य में आपको अक्सर ही एक किस्म की गीली भावुकता मिल जाएगी, लेकिन व्यंग्य मानसिक और बौद्धिकता प्रौढ़ता के बिना लिखा ही नहीं जा सकता । हास्य के जितने उपकरण हैं वे अक्सर ही दया और सहानुभूति के पात्र भी होते हैं । इसके विपरीत व्यंग्य के जितने भी उपकरण होते हैं वे लगभग हमेशा ही हमारे मानवीय प्रतिवाद, प्रतिरोध और प्रहार के पात्र होते हैं । हास्य में हास्यास्पद के साथ एक समानधर्मिता भी हो सकती है, बल्कि होती भी है लेकिन व्यंग्य अपने पात्र के साथ एक कलात्मक दूरी बनाए रखता है और उसमें माध्यम का अवरोधक गुण होता है ।[17]

पाश्चात्य विद्वानों की व्यंग्य संबंधी परिभाषाएँ: विवेचन और मूल्यांकन

व्यंग्य आधुनिक संदर्भ में एक सशक्त शैली विधा है जिसके अंतर्गत समस्त मानवीय संसार के अंतर्विरोधों, विषमताओं और टेढ़ेमेढ़े रूपों का मार्मिक चित्रण समाहित है और व्यंग्य शाश्वत मानवीय मूल्यों का आग्रह के साथ प्रतिपादन करता है। व्यंग्य को पारिभाषित करने के प्रयास देशविदेश के विद्वानों ने किए हैं जिनका अवलोकन करने से व्यंग्य का स्वरूप स्पष्ट होता है -

1. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका - साहित्यिक विधा के रूप में "व्यंग्य" हास्यास्पद अथवा असामान्य के प्रति हँसी उड़ाना अथवा क्षोभ के भावों की सशक्त अभिव्यक्ति है। साहित्यिकता एवं हास्य उसके अवयव हैं।

2. आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी - पद्यात्मक अथवा गद्यात्मक कृति जिसमें तत्कालीन मूर्खताओं का मजाक उड़ाया जाता है। कभी कभी गलती से इस विधा का उपयोग किसी व्यक्तिविशेष अथवा कुछ व्यक्तियों के समूह की मूर्खताओं की हँसी उड़ाने के लिए भी किया जाता है।

3. अंग्रेजी समालोचक पीरस ने सटायर की परिभाषा इस प्रकार दी है - व्यंग्य लेखन "उष्ण कावड" लेखन के रूप में प्रारंभ हुआ सटायर का अर्थ "मक्सकालाx" है। लैटिन साहित्य में व्यंग्यलेखन पद्यमय निबंध में मालीक्लीज के रूप में प्रारंभ हुआ। शनैः शनैः इसका मानी मलीअबाला रूप समाप्त हो गया। व्यंग्य में आलंबन के विकृत रूप का मजाक उड़ाया जाता है अथवा उसकी समानता किसी हास्यास्पद अथवा असामान्य तत्व से वचन-वैदग्ध्य की सहायता से की जाती है।[18]

4. हम्बर्ट वोल्फ ने व्यंग्यकार की परिभाषा इस प्रकार दी है - व्यंग्यकार का स्थान उपदेशकतथा हाजिरजवाब के मध्य में होता है। यद्यपि व्यंग्यकार का उद्देश्य भी वही होता है जो उपदेशक का किन्तु वह वचन विदग्धता की सहायता से अपना कार्य करता है। उसे घृणा तथा प्यार दोनों ही करने चाहिए क्योंकि उसे अशिव के प्रति वितृष्णा उत्पन्न करनी है तथा शिव के लिए प्रेम। इस प्रकार वह एक फरिश्ते के से कार्य में हाथ बँटाता है व्यंग्यकार केवल सत्य की प्रतिष्ठा पर ही बल नहीं देता वरन् वचन विदग्धता की सहायता से पाप का घड़ा फोड़ता है तथा ढोंग का पर्दाफाश करता है।[19]

5. मैथ्यू हाग्वर्थ के अनुसार व्यंग्य की परिभाषा है कि व्यंग्य चेतावनी देता है कि मनुष्य वह आतरनाक जानवर है कि जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की असीमित क्षमता है और यदि व्यंग्य द्वारा इस तत्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर दी जाती है तो पर्याप्त है । मनुष्य के गौरव का वर्णन करना कवियों का कार्य है ।[20]

6. प्रसिद्ध समालोचक मेरीडिथ ने व्यंग्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है । बहुधा वह समाज की गंदगी की सफाई करनेवाला होता है । उसका प्रमुख कार्य सामाजिक विकृतियों की गंदगी को साफ करना होता है।

7. प्रसिद्ध व्यंग्यकार जानथन स्विफ्ट ने व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार की है - व्यंग्य एक प्रकार का शीशा है जिसमें देखनेवाले को अपने मुँह के अतिरिक्त प्रत्येक का मुँह दिखलाई देता है । यही कारण है कि विश्व में व्यंग्य का स्वागत किया जाता है तथा बहुत कम लोग इससे अपने को पीड़ित अनुभव करते हैं ।[22]

उपर्युक्त विदेशी विद्वानों की परिभाषाओं के विवेचन से लगता है कि इनमें से किसी ने सहायक को, किसी ने आइरनी को, किसीने विट को व्यंग्य का मूलाधार बताया है और इन सबके सम्मिलित रूप को भी व्यंग्य कहा गया है । यहाँ किसीने व्यंग्य की परिभाषा देने का प्रयास किया है तो किसीने व्यंग्यकार की ओर संकेत किया है । इस प्रकार हम देखते हैं, उपर्युक्त परिभाषाओं का अलग-अलग विवेचन करने से हर परिभाषा या व्यंग्य पर तत्संबंधी लेखक का वक्तव्य अधूरा लगता है तथा वह व्यंग्य के किसी एक पहलू पर प्रकाश डालता है । मगर इन सभी परिभाषाओं के विवेचन से जो तथ्य उभर आते हैं उनसे व्यंग्य का अभीष्ट स्पष्ट होता है ।

1. व्यंग्य एक साहित्यिक विधा है ।
2. व्यंग्य तत्कालीन मूर्खताओं एवं आलंबन के विकृत रूपों का मजाक उड़ाता है ।
3. व्यंग्यकार न उपदेशक है न हाकिम जवाबदार ।
4. व्यंग्यकार सत्य की प्रतिष्ठा पर ही बल नहीं देता है वरन् वचन विदग्धता की सहायता से पाप का घड़ा फोड़ता है तथा ढोंग का पर्दाफाश करता है ।
5. व्यंग्य इस बात की चेतावनी देता है कि मनुष्य खतरनाक जानवर है और मनुष्य के गौरव का वर्णन करना कवियों का कार्य है ।

6. व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है। उसका कार्य सामाजिक विकृतियों को साफ करना होता है।
7. व्यंग्य करते समय व्यंग्यकार दूसरों के दोषों को देखता है न अपने दोष।

विदेशी विद्वानों की इन परिभाषाओं की जो सीमाएँ हैं, वे इस प्रकार हैं -
1. मार्गेट ने अपनी परिभाषा में व्यंग्य को "हास्यास्पद" और "असामान्य" के प्रति हँसी उड़ाना अथवा क्षोभ के भावों की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकारा है। "हास्यास्पद और "असामान्य" जो हैं विकृत होते हैं जिनसे "हास्य" की निष्पत्ति हो सकती है और क्षोभ में दयनीय भावना समाहित रहती है। फलस्वरूप निकलनेवाली वाणी में हार्दिक सहानुभूति की भावना निहित रहती है न कि पैनी दृष्टि। अतः यहाँ व्यंग्य नहीं रहता है। हास्य का व्यंग्य में क्या स्थान होगा, यह भी विचारणीय है। मार्गेट मानते हैं कि व्यंग्य में हास्य का होना जरूरी है। मगर हकीकत यह है कि व्यंग्य में हास्य का होना जरूरी नहीं है, यह एक शर्त नहीं है। व्यंग्य को हास्य से स्वतंत्र मानते हुए शेरजेन मर्स मानते हैं - " हास्य व्यंग्य के लिए साधन के रूप में भले ही प्रयुक्त होता रहे, कभी व्यंग्य का साध्य नहीं बन सकता। व्यंग्य में हास्य की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है और कुशल हाथों में पड़ा हुआ व्यंग्यास्त्र स्वयं अपनी ही हँसी का उपकरण बन सकता है।[23] कहा गया है कि व्यंग्य में हँसी का क्या सारा है। मतलब यह हुआ कि व्यंग्य में हास्य का होना जरूरी नहीं। क्योंकि व्यंग्य अपने में स्वतंत्र है।

आक्सफोर्ड की व्यंग्य संबंधी परिभाषा की सीमा भी इसी बात में है कि यहाँ कहा गया है कि तात्कालीन मूर्खताओं तथा कभी कभी व्यक्तियों या समूहों की मूर्खताओं पर मज़ाक या हँसी उड़ाना ही व्यंग्य की परिभाषा है। व्यंग्य सोद्देश्य होता है। हँसाना और मज़ाक उड़ाना व्यंग्य का न साध्य है न उद्देश्य। यह तो हास्य का काम है। व्यंग्य एक ऐसा गंभीर माध्यम है जो व्यक्ति से लेकर समाज की किसी भी विसंगति या विद्रूप को डंके की चोट मारता है। व्यंग्य एक महान ईमानदार, तटस्थार्ट और गंभीरव्यक्ति का जीवन दर्शन है जो हर विद्रूपमय, विसंगतिमय, अतार्किक, झूठी असामान्य स्थिति में कभी खामोश होकर कभी मुखर होकर अपना काम करता है यह

स्थितियों, विसंगतियों और असत्यों द्वारा प्रदत्त तनाव से मुक्ति का एक साधन है । सजगता रहित स्थितियों में व्यंग्य भेर जिम्मेदार हो सकता है, इसलिए श्रेष्ठ, गंभीर और पूरा असर व्यंग्य के लिए हल्केपन से बचना बाता जरूरी है क्योंकि वह स्वयं कहीं कहीं हल्केपन ओछेपन और हीन मनोवृत्तियों को उभाड़ने के प्रति कृत संकल्प होता है । यद्यपि व्यंग्य का प्रयत्न हँसाना नहीं होता, तथापि हँसते-हँसते विसंगतियों को व्यक्त करना उसका अभिप्राय हो सकता है ।[24] अतः स्पष्ट है कि व्यंग्य एक गंभीर शैली है जिसमें हँसी मजाक का कोई स्थान नहीं है ।

श्री पोद्दार की परिभाषा व्यंग्य की विकास-रेखा प्रस्तुत करती है और कहती है कि व्यंग्य विकृत रूप का हास्यास्पद अथवा असामाजिक तत्व की वचन वैदग्ध्य की सहायता से आलोचना करती है । हास्यास्पद और विकृति के बारे में टिप्पणी ऊपर की गई है । मगर हाँ, व्यंग्य की सफलता इस बात में है कि वह असामाजिक तत्वों के प्रति वह आक्रमक हो । उन असामाजिक तत्वों जोकि समाज की प्रगति के रोड़े हैं, का पर्दाफाश करना व्यंग्यकार का प्राथमिक कर्तव्य होता है । यह कर्तव्य साफ-सीधी भाषा में, सीधी शैली में करे, यह संभव नहीं हो पाता है । वे तत्व इतने मोटे चमड़े के होते हैं कि जिनपर वार करने के लिए पैनी वाक् चातुरी या वाग्विदग्धता का प्रयोग अवश्यंभावी होता है । व्यंग्य का साधन उसकी वाक्-क्षमता है । इस दृष्टि से प्रस्तुत परिभाषा का अपना महत्व है ।

हम्बर्ट वोल्फ ने व्यंग्यकार को उपदेशक का पर्याय माना है । किन्तु क्या व्यंग्यकार के वाग्बाणों एवं उसकी वक्रदृष्टि की चोट को सरल सहज रूप से लेने की मनःस्थिति आखिर कितने लोगों में पाई जाती है जो गलत रास्ते पर चलते हैं । उपदेशक की वाणी में शांत सरलता, शीतल स्निग्धता और असीम संयम रहता है जबकि व्यंग्यकार की वाणी में विक्षुब्धता, कठोरता और भयंकर आक्रोश रहता है । भगवान बुद्ध और ईसा जैसे महान व्यक्ति की स्थिति रेखा की तुलना क्या हम कबीर से कर सकते हैं ? कहाँ शांतता और कहाँ उग्रता । उपदेशक का हृदय कुसुम सा कोमल होता है जबकि व्यंग्यकार का हृदय वज्र सा कठोर होता है । मगर यह कठोरता मानवद्वेष से उत्पन्न नहीं होती

अपितु सकारात्मक होती है । इस दृष्टि से व्यंग्यकार को उपदेशक कहना कहाँ तक उचित है, यह संदिग्ध बात है । मगर जैसाकि होल्फ्रे ने कहा है व्यंग्यकार सत्य का प्रतिपादक होता है । सत्य उसकी प्रतिबद्धता है । व्यंग्यकार की प्रतिबद्धता होती है सत्यकथा के प्रति बौद्धिक और विवेक सम्मत दृष्टिकोण के प्रति तथा जीवन, जगत, मनुष्य के हर पक्ष में व्याप्त विसंगतियों को संवेदना हेतु देते हुए, आवश्यकता पड़ने पर उसकी आलोचना करने के प्रति ।[25]

मैथ्यू हावर्ड मानते हैं कि मनुष्य खतरनाक जानवर है जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की क्षमता है और इसका उद्घाटन करना व्यंग्यकार का कार्य है और मनुष्य का गौरव गान करना कवियों का काम है, विचारणीय है कि मनुष्य को एकदम "खतरनाक जानवर" मानना कहाँ तक संगत है ? हमारे यहाँ मनुष्य को "सबसे सुंदरतम सृष्टि" कहा गया है इस वक्तव्य से ऐसा लगता है कि लेखक का कोई विश्वास मनुष्य पर है ही नहीं और उसका सरोकार केवल उसके बुरे कामों से है । क्या यह दृष्टि गलत नहीं ? माना कि मनुष्य की अपनी दुर्बलताएँ हैं, परिणामस्वरूप मूर्खतापूर्ण कार्य करना उसके स्वभाव का एक पहलू है । इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं है कि मनुष्य में अच्छाइयों का बिलकुल कोई अस्तित्व ही नहीं । यह मानकर चलना कि मनुष्य खतरनाक है, उससे द्वेष ही किया जाय, स्वस्थ दृष्टि नहीं है मगर उसकी गलतियों एवं कमियों को दूर करने का प्रयास करना, उसे उदात्त भावों की ओर ले जाने का काम साहित्यकार और व्यंग्यकार को करना पड़ता है । व्यंग्यकार को मानवविरोधी दृष्टि अपनानी नहीं चाहिए । असल में व्यंग्य की दृष्टि अत्यंत मानवीय है, मानवप्रेमी है, इसलिए ही व्यंग्यबाण मनुष्य और समाज के हित के लिए प्रयोग किए जाते हैं । व्यंग्यकार समाज की भलाई के लिए, समाज के अंग के रूप में स्थित मनुष्य को सुधारना चाहता है । हावर्ड के अनुसार मनुष्य का गौरवगान करना जिस प्रकार कवियों का कार्य है, वैसे ही मानव एवं मानवीयता की गरिमा को स्थापित करना व्यंग्य एवं व्यंग्यकार का काम है ।

विस्कट की व्यंग्य संबंधी परिभाषा में व्यंग्य का स्वरूप निखर नहीं है । क्योंकि इनका मानना है कि व्यंग्यकार दूसरों के दोषों को देखने के प्रति जितनी दिलचस्पी

दिखाता है उसकी दिलचस्पी अपने आत्मावलोकन में के प्रति वह दिखाता नहीं है । अर्थात् उसके गुणदोषों को वह बिल्कुल नकारता जाता है । क्या यह स्वस्थ दृष्टि है ? वास्तव में व्यंग्य में आत्म-व्यंग्य का अपना विशिष्ट महत्व है । सफल व्यंग्यकार आत्मव्यंग्य के द्वारा बाहर की विसंगतियों का पर्दाफाश करता जाता है । "आत्मव्यंग्य में रचनाकार अपने बहाने स्वयं को कुरेदने का रास्ता बनाकर ऐसी तीक्ष्ण अभिव्यक्तियाँ कर जाता है जिन्हें दूसरों के माध्यम से कहने पर दोस्ती के सारे रास्ते दुश्मनी में तब्दील हो सकते हैं, सौहार्द और आत्मीयता हमेशा के लिए समाप्त हो सकती है । इसलिए व्यंग्यकार किसी और बहाने नहीं अपितु अपने बहाने विसंगतियों को छीलता है, दूसरों को अपने पर हँसने का मौका देकर उन्हीं विसंगतियों की समझ पैदा करता है ।"[26] व्यंग्यकार की प्राथमिक शर्त यह होती है कि वह नैतिकता का पहरेदार हो । स्वयं अनेक दर्दों का पतित होकर सारे संसार को पवित्र बनाने का संकल्प करे, यह उचित नहीं है । सच्चा और श्रेष्ठ व्यंग्य वह है जहाँ व्यंग्यकार आत्मस्थ होकर अपने दोषों का व्यंग्य कर ले और तटस्थ रूप में परस्थ याने दूसरों का भी व्यंग्य करे ।

ऊपर उक्त सभी परिभाषाओं में से मैरी डिथ की परिभाषा व्यंग्य के उद्देश्य एवं स्वरूप को अपने में समाने में समर्थ हुई है । यहाँ लेखक ने व्यंग्य का लक्ष्य स्पष्ट किया है उसकी जिम्मेदारी की ओर संकेत किया है । व्यंग्यकार की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह समाज की विसंगतियों और विद्रूपों पर वार करे । इस दृष्टि से व्यंग्यकार सच्चे अर्थ में नैतिक ठेकेदार है, उसका नैतिकता व्यंग्य की नैतिकता है । " वास्तव में व्यंग्य एक नैतिक अस्त्र होता है जो उसी व्यक्ति पर असर भी करता है जिसकी कोई नैतिकता नहीं है ।[27] यह व्यंग्यास्त्र किसी भी क्षेत्र पर हावी हो सकता है । जहाँ अनैतिकता हो वहाँ इसका अस्तित्व भ उभर आता है ।

अब तक म हमने व्यंग्य की परिभाषा एवं उसके स्वरूप पर कुछ विदेशी विद्वानों के मन्तव्यों का विवेचन किया है और उसकी सीमाओं की ओर भी संकेत किया है । जैसाकि इसके पहले भी इशारा किया जा चुका है व्यंग्य का दायरा अत्यंत विशाल है, इसकी परिकल्पना का धरातल व्यापक है । विट (वाग्वैदग्ध्य) ह्यूमर (शुद्ध हास्य) सटायर (व्यंग्य

आडम्बरी (वक्रोक्ति) इत्यादि अपने में स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं। विदेशी विद्वानों के जैसे भारतीय आचार्यों ने भी हास्य के भेद-उपभेदों ध्वनि-वक्रोक्ति का विवेचन तो किया है, मगर इन सबका साध्य विकृतियों, विसंगतियों, विद्रूपों ढोंगी आचरणों पर कटाक्ष करना ही है। व्यंग्य इन सबका समग्र रूप है।

आज के भारतीय साहित्य के संदर्भ में कहना है तो व्यंग्य साहित्य की एक विधा के रूप में उभर आया है, जिसने विशेष रूप में अपना स्थान कायम कर रखा है, व्यंग्य आधुनिक मानसिकता का जबरदस्त संवहन माध्यम बना है।

हिन्दी साहित्यकारों की व्यंग्य संबंधी परिभाषाएँ - विवेचन और मूल्यांकन

अब हिन्दी के साहित्यकारों ने व्यंग्य की परिभाषा एवं उसके स्वरूप पर जो चिंत किया है उसका परिचय प्राप्त करें -

वीरभारत तलवार के अनुसार -

" व्यंग्य का स्रोत भाषा की वक्रता या चमत्कार नहीं है, व्यंग्य का स्रोत भाषा की शाब्दिक या आर्थिक असंगति नहीं है बल्कि व्यंग्य समाज की वस्तुगत परिस्थि में निहित असंगतियों की भाषा में अभिव्यक्ति है, बेशक यह अभिव्यक्ति अपने साथ कुछ विशेष साहित्यिक गुणों को अपने में धारण किए होती है। जैसा कि व्यंजना या लाक्षणिकता का गुण व्यंग्य की भाषा में निहित होता है लेकिन यह व्यंग्य की भाषाग विशेषता है, यह व्यंग्य की विषयवस्तु है नहीं है। व्यंग्य का स्रोत वस्तुगत परिस्थिति के बीच की असंगतियाँ हैं।"

प्रदीप सक्सेना मानते हैं कि

" व्यंग्य जिसका उत्स व्यंजना शक्ति में अंतर्निहित है, अक्सर हास्य के साथ जुड़कर अपनी सार्थकता से वंचित होता रहता है हास्य निम्नस्तर साहित्य मूल्यों में से एक है जो व्यंग्य पर घात ही करता है। व्यंग्य " सोशल रिफॉर्मेशन रेवोल्यूशन " के लिए सा प्रतिबद्ध सच्चे साहित्य का अभिन्न अंग है। अस्त्र है। उसकी तीक्ष्णता जितनी [illegible] और पैठनेवाली होगी उतना ही उसका असर न छूटनेवाला होगा। "29

अमृतराय का कहना है कि

" व्यंग्य साहित्य की बहुत ही समर्थ और विशेष रूप से सामाजिक विधा है। दिशा काल में जहाँ तक झूठे आडंबर की और पाखंड की व्याप्ति है, वहाँ तक व्यंग्य का भी क्षेत्र है - अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल परिवेश का मिलना या न मिलना दूसरा ही प्रश्न है।[30]

अजातशत्रु ने कहा है कि

" व्यंग्य लेखक के लिए इतना बहुत है कि वह अपने आसपास की विसंगतियों को देखे। स्थानीय, राज्यीय या देशीय स्तर पर उनकी प्रभावशीलता पर विचार कि करे और उस क्रम के हिसाब से, उसी तरह की जबरदस्त लड़ाई लड़े।[31]

डॉ. नर्मदेश्वर प्रसाद का कहना है कि

" व्यंग्य अन्याय या शोषण से जुड़ी हुई वास्तविकता को विकृत करता है और इस तरह यह संदेश देता है कि जो है वह सही नहीं है और अगर सामाजिक क्रिया नहीं की गई तो उसका परिणाम क्या निकलेगा। यह तनाव से मुक्ति पाने का भी एक ताकतवर माध्यम है। "[32]

डॉ. महेन्द्रनाथ भटनागर कहते हैं कि

व्यंग्य शब्द-शक्ति का एक अंग है जो किसी व्यक्ति, समाज, वस्तु या स्थिति की विरूपता प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है... व्यंग्य भाषा को अनेक अभिनव अर्थों से विभूषित करता है। जीवन जगत विरूपताओं की पूर्ण अभिव्यक्ति के निमित्त ही मानव ने व्यंग्य का आविष्कार किया होगा। तदुपरांत, उपयोगिता के फलस्वरूप, अभिव्यंजना के साधनों में व्यंग्य का स्थान बना। व्यावहारिक उपयोगिता के कारण उसका उत्तरोत्तर प्रचलन बढ़ना भी स्वाभाविक था। भाषा में पाये जानेवाले अनेक व्यंग्य-प्रधान मुहावरों के जन्म का यही रहस्य है।[33]

रामनारायण मानते हैं कि

" व्यंग्य उस सर्जन की तरह है, जो समाज के सड़े गले अंग को काटकर उसे स्वास्थ्य और आनंद प्रदान करता है। लेकिन व्यंग्य का यह दुर्भाग्य रहा है कि उसे भी हास्य में ही ले लिया जाता है। बर्नार्डशॉ का कहना है कि समाज की कड़ी से कड़ी आलोचना करने पर भी मैं सरे बाज़ार कोड़े खाने से इसलिए बच गया कि लोगों ने मेरी बात को हँसी में उड़ा दिया।[34]

डा॰शंकर पुणतांबेकर का कहना है कि

" हम जिसे व्यंग्य का प्रहार कहते हैं वह इसी कथन शैली में निहित होता है । परिवेश की विसंगतियों को देखने की सूक्ष्म दृष्टि हर साहित्यकार में हो सकती है - होती ही है, किन्तु उसे वाणियन में प्रस्तुत कर पाना - उन विद्रूपताओं को ऐसी शैली में पिरो देना है कि उससे हमारा वैचारिक मन एक झटके के साथ आलोड़ित विलोड़ित हो उठे, केवल व्यंग्यकार के लिए ही संभव है । "... व्यंग्य युगीन परिस्थितियों में निहित अंतर्विरोधों की अभिव्यक्ति है । इसमें शब्दों का चमत्कार, भाषा की वक्रता तथा झटका देनेवाली शैली का प्रयोग होता है ।[35]

कन्हैयालाल नंदन का कहना है कि

" व्यंग्य हास्य से बहुत आगे की चीज़ है । हास्य विकृति का रस लेकर वर्णन करता है, विकृति के विरोध में पैदा होनेवाली तीव्र बौद्धिक प्रतिक्रिया व्यंग्य के अंतर्गत आती है । हास्य शब्द के कौतुक से भी पैदा हो जाता है, मसखरेपन से भी उत्पन्न किया जाता है, लेकिन व्यंग्य के पीछे विचार की एक गहरी सरणि होती है, जो हँसी भी पैदा कर लेती है, लेकिन उस हँसी के बाद उभरती है कचोट तिलमिलाहट जो सोचने को मजबूर करती है । व्यंग्यकार को सावधान वहीं रहना पड़ता है, जहाँ एक हल्की सी फाँस होती है कि जिसके इस पार मात्र परिहास का उथला जल होता है और उस पार होती है विकृति के विरोध में आवाज़ बुलंद करने की ताकत । इस फाँस को पहचानना सफल व्यंग्य लेखन के लिए बहुत ज़रूरी होता है ।"[36]

श्रीकांत चौधरी के अनुसार -

" व्यंग्य का उद्देश्य मनोरंजन कभी नहीं होता, वरन व्यक्तिगत या समाजगत विसंगतियों, कुरूपताओं और दोषों की निर्मम चिकित्सा और स्वस्थ चेतना का निर्माण करना होता है । ज़िंदगी के किसी भी अस्वाभाविक पहलू पर व्यंग्य हो सकता है । कहानी या कविता के साथ भी यह बात लागू होगी तथा उनका सृजन व्यक्ति के श्रेष्ठ उच्चकोटि के मानवीय पहलू को लेकर भी हो सकता है, व्यंग्य में यह कोई अच्छा आधार नहीं बन सकता । व्यंग्य में हृदयपक्ष नहीं होता, अर्थात् भावुकता का कपोल कल्पना व्यंग्य का दुर्गुण है । व्यंग्य में बुद्धिपक्ष ही प्रधान होता है । अधिकाधिक वैज्ञानिक दृष्टि व्यंग्य में अनिवार्य है ।"[37]

कहानी और व्यंग्य के बीच का अंतर बताते हुए अजातशत्रु कहते हैं कि

" कहानी शांत करती है। व्यंग्य चुभता है। कहानी सोचने को विवश करती है। व्यंग्य उसके आगे उत्तेजित भी करता है। वास्तव में जब युगमूल्य ध्वस्त हो गए हों, राजनीति का पतन हो गया हो, जनजीवन में त्राहि-त्राहि मची हो, तब व्यंग्य अपने पूरे "फार्म" में सामने आता है, और गंभीर साहित्य से ज्यादा प्रभावी साबित होता है, वह विरोध है, वर्णन नहीं। कहानी शायद विसंगति का वर्णन करती है, व्यंग्य उसका सीधा विरोध करता है। "[38]

डॉ. श्यामसुंदर घोष मानते हैं कि

" व्यंग्य एक परिपक्व और स्थायी मानसिकता की उपज है यह परिपक्वता अनायास नहीं आती। यह अनुभव-ऊष्मा की उपज है। इसलिए व्यंग्य लेखन भावुकतामूलक लेखन से भिन्न होता है...व्यंग्य के पीछे जो मानसिकता होती है वह एक परिपक्व और स्थायी मानसिकता होती है। "[39]

डॉ. शेरजंग गर्ग ने कहा है कि

" व्यंग्य न तो किसी विसंगति को मात्र हँसी मज़ाक में उड़ा देने या ह्यूमर आउट कर देने का नाम है और न हीं कुंठा का कोई पुतला तैयार करके उस पर व्यंग्यकार के तरकश के तीरों का इस्तेमाल करने की क्रिया। व्यंग्य का उदय तो युग की सचाई के साथ होता है जिसमें कलाकार की संवेदना का मिश्रण उसे युगांतरकारी रचना का दर्जा प्रदान कर सकता है। व्यंग्य द्वारा दी जानेवाली सजा ईश्वर प्रदत्त सजा के मुकाबले ज्यादा सख्त होती है। "[40]

उक्त उद्धरणों से व्यंग्य की परिभाषा और उसका स्वरूप स्पष्ट हो चुका है। आधुनिक विद्वानों ने व्यंग्य को अलंकार के रूप में नहीं अपितु स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकार किया है। प्राचीन साहित्य में व्यंग्य एक शब्द शक्ति के रूप में - नाना अलंकारों के माध्यम से - अभिव्यक्त होता था जबकि आधुनिक साहित्य में उसका कायाप हुआ। आधुनिक गद्य और पद्य साहित्य में व्यंग्य की आंशिक रूप से यत्र तत्र पहचान तो है तथापि इधर के वर्षों में व्यंग्य का विकास एक स्वतंत्र विधा के रूप में हुआ है। कुछ शास्त्रीय समीक्षक व्यंग्य को केवल एक "शब्द शक्ति" के रूप में ही स्वीकार करते

मुझे यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि हिन्दी साहित्य के रीतिकाल का व्यंग्य या तो एक शब्द-शक्ति था, या अन्योक्ति, वक्रोक्ति अथवा समासोक्ति जैसा अलंकार। किन्तु समय और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ विधाओं का भी विकास होता है और नई विधाओं का निर्माण भी। इस व्यंग्य को आज के संदर्भ में देखें तो पायेंगे कि आज के व्यंग्य-उपन्यासों, व्यंग्य निबंधों, व्यंग्य कथाओं तथा व्यंग्य नाटकों में व्यंग्य एक शब्द अथवा अलंकार मात्र नहीं है। उसका विकास हो चुका है और वह शास्त्रकार से माँग करता है वह व्यंग्य विधा के लक्षणों का निर्माण करे।" [41] वास्तव में व्यंग्य लेखन टेढ़ी खीर है, "सूली ऊपर सेज पिया" है। व्यंग्य का उद्देश्य व्यक्ति, समाज, देश, धर्म की विसंगतियों, अव्यवस्थाओं का बिना किसी संकोच के पर्दाफाश करके स्वस्थ समाज का निर्माण करना है। सार्थक व्यंग्य की सफलता इस बात में है कि जबकि व्यंग्यकार अपने कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की सूक्ष्मताओं पर, बारीकियों पर अधिकार रखता है। व्यंग्यकार भले ही कितने ही बुद्धिमान हो, भलाई-बुराई का बोध रखता हो, सहृदय हो, अभिव्यक्ति के मामले में वह जागरूक नहीं रहेगा तो उसका उद्देश्य ही निरर्थक होगा। फलतः उसके व्यंग्य का कोई प्रभाव नहीं होगा। इस दृष्टि से व्यंग्यकार की जिम्मेदारी दुहरी है - पहला, वस्तु को व्यंग्य का बाना पहनाने में, दूसरा अभिव्यंजना की सूक्ष्मताओं को ग्रहण करने में।

व्यंग्यकार की परिधि में, ऐसा कोई विषय नहीं है जो नहीं आता हो। व्यक्ति व्यक्ति के अंतर्संबंधों से लेकर समाज एवं देश के अंतःसंबंधों तक का हर विषय उसकी प्रस्तुत सामग्री है। दूसरों के का ढोंगीपन, दुर्जनों के दुर्गुण सामाजिकों का पागलपन, व्यवस्था की अव्यवस्था - ऐसा कोई भी विषय उसके दायरे में आ सकता है। इसीको मद्देनज़र रखकर बायरन कवि ने यहाँ तक कहा कि

"Fools are my theme, Let satire be my song."

व्यंग्य का स्वरूप, महत्व और व्यंग्य की आवश्यकता - एक विश्लेषण

साहित्य कांता सम्मत हो, उपदेशात्मक हो - ऐसी नाना बातों को साहित्य के संदर्भ में कहा गया है। मगर व्यंग्य का ताल्लुक न उपदेश से है न कांतासम्मत

हितवचन में । वह तो एकदम नावक का तीर है जो कि विपक्षी पर घाव करता जाता है । उपदेश का इस समाज में कोई स्थान नहीं है क्योंकि उपदेश को उपदेशकों की दुर्बलता के रूप में स्वीकार किया गया है । उसके लिए तो कबीर की प्रखर वाणी की चोट बिहारी का उक्ति-चातुर्यवाला व्यंग्य ही चाहिए । वैसे भारतीय साहित्य के संदर्भ में तो भक्तियुगीन फक्कड़ संतों का व्यंग्य समाज पर क्या प्रभाव करता गया, इसका परिचय तो साहित्य के हर पाठक को है । व्यंग्यकार हर विसंगति या विषमता पर शब्दों का प्रहार करता है जिसकी चोट इस प्रकार असहनीय होती है कि चोट खानेवाले की हालत दयनीय होती है । इस दृष्टि से व्यंग्यकार सद्विचारों का प्रतिपादक होता है । सामाजिक सुस्थिति के लिए निरंतर ~~प्रय~~ परिश्रम करनेवाला व्यंग्यकार जो व्यंग्य कसता है वह आक्रोशान्वित होते हुए भी उसका हृदय बड़ा सरल होता है । डॉ.एम.एस. तुंकापुर का कहना है कि - ' व्यंग्यकार की वाणी टेढ़ीमेढ़ी होने पर भी उसका हृदय सीधी रेखा की भाँति सरल है । उसकी वाणी की चोट अपने विपक्षी को मारती नहीं अपितु रक्षा करती है । डाक्टर शल्य चिकित्सा करता है - रोगी की तबीयत सुधारने के लिए न कि उसकी हत्या करने । उसकी दवा अधरों को कडुवा लगकर जैसा कि पेट को हित करती है उसी प्रकार व्यंग्यकार की कडुवी बातें व्यंग्य के लिए बलि होनेवाले की भलाई ही करता है । इसलिए ही बुजुर्गों ने कहा है कि "व्यंग्यकार एक वैद्य है"। व्यंग्य शक्कर लेपित क्विनाइन टीके की भाँति है । मात्र क्विनाइन किसी के भी मन को भाता नहीं है । जबकि उसमें शक्कर मिल जाय तो मजे से खाते हैं । इसी प्रकार व्यंग्य में सीधा दुत्कार न होकर उसमें हास्य का लेपन होना चाहिए ।[42]

व्यंग्यकार हर कोई नहीं बन सकता है क्योंकि व्यंग्यकार बनने का मतलब खतरा मोल लेने के बराबर है । क्योंकि व्यंग्यकार और व्यंग्य के बीच सापेक्ष संबंध है । व्यंग्यकार की कलम से जो व्यंग्य प्रस्फुटित होता है उससे व्यंग्यकार के चरित्र का, उसकी कथनी और करनी का, उसके जीवन की असंगतियों का भी प्रतिफलन होता है । यदि यहाँ तालमेल नहीं बैठता है तो वह व्यंग्य अपने व्यंग्यकार का ही व्यंग्य करता है तथा वह हँसी मज़ाक का विषय बनता है । अतः व्यंग्यकार को चाहिए कि वह सच्चरित्रवाला हो, अच्छाई-बुराई का भेद रखता हो, नैतिक-दायित्वों का पालक हो । डॉ.तुंकापुर लिखते हैं - व्यंग्य वह अस्त्र है जिसका उपयोग मारने के लिए नहीं अपितु रक्षा के लिए किया जाता

इस अस्त्र का उपयोग हमारे जीवन की रक्षा के लिए होनी चाहिए, उसे मारक अस्त्र नहीं बनना चाहिए । इस बात का पता व्यंग्यकार को पहले ही रहना चाहिए ।[43] व्यंग्यकार के व्यंग्य-धर्म पर विचार करते हुए श्रीकांत चौधरी का कहना है कि किसी भी वाद या पार्टी से प्रतिबद्ध होकर व्यंग्यकार अपने सृजन में ईमानदार नहीं हो सकता एक सिद्ध व्यंग्यकार के लिए वह शिकार भी नहीं है । सक्रिय तटस्थ और निरपेक्ष दृष्टि व्यंग्य के लिए आवश्यक है । इस मायने में व्यंग्यकार सर्वाधिक अद्यतन और प्रगतिशील होता है । इस उसके व्यंग्य मर्म शलाकों पर पड़नेवाले हथौड़ों की चोटें हैं जो पहले तो चिनगारियाँ पैदा करती हैं और फिर लोहा ठंडा होकर एक इच्छित आकार ग्रहण कर लेता है ।[44]

इस बात की ओर संकेत किया जा चुका है कि व्यंग्यकार का नैतिकता के मामले में क्या दायित्व है, तथापि व्यंग्यकार भी साधारण मनुष्य है, नाना दुर्बलताओं का वह शिकार रहता है । उनकी व्यक्तिगत दुर्बलताओं का वह शिकार रहता है । मगर उनकी व्यक्तिगत दुर्बलताओं का शिकार पाठकों को नहीं होना पड़ना चाहिए । दूसरे शब्दों में व्यंग्य में व्यक्तिगत द्वेष का कोई स्थान नहीं है । व्यंग्य प्रतिशोध का माध्यम नहीं होना चाहिए । यदि ऐसा होगा तो व्यंग्य विधा का दुरुपयोग मानना पड़ेगा । व्यंग्य "सहृदयता" प्रधान होना चाहिए, तभी वह कल्याणकारी होगा । इसी ढंग को मद्देनज़र रखकर वाल्टेर कहा करते थे कि मेरे हाथ में राजदंड नहीं है, लेखनी है । अतः व्यंग्य सदाशय से युक्त होने से वह लोक मंगलकारी होगा ।

व्यंग्य लोकरंजनकारी भाव नहीं अपितु लोकोपकारी भाव है । व्यंग्य का मूल उत्स आक्रोश है जोकि जहाँ भी विसंगतियाँ, असामाजिक तत्वों का अस्तित्व होता है, अपना बोलकर हके की चोट मारता है । तिलमिलाने को मजबूर करता है । व्यंग्य समाज का दवा है जोकि कड़ुवा तो है ही, शारीरिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य के लिए नितांत वांछनीय है ।

साहित्य में व्यंग्य की आवश्यकता और अनिवार्यता का सवाल हर काल की रचनात्मकता के साथ जुड़ा रहता है जोकि समाज के प्रति प्रतिबद्ध है । साहित्य में

उदात्तभावनाओं का चित्रण करके धीरोदात्त नायकों के चित्रण करके उनके देवत्वीकरण के द्वारा उनके अटूट और निर्द्वंद्व - अपराजित आदर्शों को समाज के सामने इदमित्थम् के रूप में स्थापना करना और खलनायक को अवगुणों का केन्द्र बनाकर उसे एकदम पतित सिद्ध करने की परिपाटी यौगिक परंपरा से चली आई है, यह समाज के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करती है । यहाँ का संघर्ष मानवीय-अमानवीय भावनाओं का संघर्ष होता है, यहाँ की जय-पराजय, हार-जीत सभी बनाई लीक पर दुष्टों को दंड शिष्टों के रखवाले अंश को रेखांकित करती है ।

जीवन के प्रति आस्था, मानवीय मूल्यों का इतना व्यापक समर्थन हमारे काव्यों में प्राप्त होता है कि यहाँ अनास्थाओं, कुंठाओं तथा मानव सहज दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करके आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है । इस प्रकार हमारा प्राचीन साहित्य उदात्त भावनाओं का दास्तान है, लोकोत्तर नायकों का इतिवृत्त है । तथापि व्यंग्य के अस्तित्व को साहित्य में नकारा नहीं जा सकता है । एक व्यापक अर्थ में हमारे सभी काव्य जीवन के व्यंग्य की मौजूदगी को रेखांकित करते हैं । मानव जीवन इतना संश्लिष्ट है, संकीर्ण है कि यहाँ यह दावा कभी नहीं किया जा सकता है कि अमुक ने मानव जीवन को उसके अनुभवों के साथ साक्षात्कार किया है, अर्थात् जीवनानुभूति का पंथा इतना बड़ा है, अनुभव है कि किसी निश्चित दायरे की पकड़ में न आनेवाला है ।

सृष्टि के इस नियमन में व्यंग्य का अस्तित्व है । सृष्टि के नियमानुसार मानव समुदाय एक होते हुए भी इस सृष्टि में निहित विसंगतियों में व्यंग्य की जड़ है । व्यंग्य की आधारभूमि इस सृष्टि में मौजूद अनेकों विरोधाभासों एवं द्वंद्व हैं जिनके प्रति लेखक/व्यंग्यकार जबकि इनके प्रति संवेदनशील रहता स है तब व्यंग्य का जन्म होता है इस दृष्टि से व्यंग्य प्रतिक्रियावादी मन आकुलावस्था का द्योतन प्रतीक है । स तीखा एवं स्वस्थ व्यंग्य तब मुखरित होता है जबकि लेखक को इस बात का विश्वास होता है स कि वह सृजनात्मक प्रतिभावान हो और वह आलोचक की तीक्ष्ण मति से युक्त हो । वस्तुनिष्ठ दृष्टि, यथार्थता का बोध, भावनात्मक हृदय, वैचारिकता की परख और कलात्मक अभिव्यक्ति - जैसी विशिष्ट बातों से वाकिफ हो । चूँकि व्यंग्य हमेशा सत्य

के अन्वेषण में क्रियाशील रहता है, सत्य सदा सापेक्ष होता है, अतः व्यंग्यकार को इस सापेक्ष सत्य के मर्म का ऐसा उद्घाटन करना होता है जिससे कि वह सत्य जीवनमूल्य के रूप में स्थापित हो । जीवन का "सत्य" व्यक्ति सापेक्ष होने के कारण व्यंग्यकार जिस "सत्य" का वर्तमान में उद्घाटित करता है वह भविष्य में "झूठ" भी हो सकता है । अतः व्यंग्यकार यदि इस बात से अवगत रहता है तो वह वक्ता या पाठक को भ्रम में डालने नहीं जाता । बदले में जीवन की यथार्थता में मौजूद "व्यंग्यस्थिति" का बोध कराता जाता है । इस दृष्टि से व्यंग्य का भ्रमों से नहीं, अपितु यथार्थ से नाता होता है । व्यंग्य की सार्थकता जीवन की आलोचना तटस्थ होकर निभाने में है ।

व्यंग्य के चरित्रों में प्रबुद्ध मानसिकता की नितांत आवश्यकता है । व्यापक जीवनानुभव, तर्कबुद्धि, पूर्वाग्रह रहित जीवन दृष्टि व्यंग्य को तेज और पैनी बनाती है । इन तीनों के मेल से जो व्यंग्य प्रसूत होता है, उससे जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करने में स्थायी जीवन मूल्यों के प्रति आस्था जागृत करने में, अभिधात्मक अर्थों की सीमा के बाहर जाकर विशाल अर्थों का उद्घाटन करने में, पुराने एवं ध्वस्त जीवन मूल्यों से निसृत विचारों के प्रति जिज्ञासात्मक कुतूहल को बनाये रखने में मदद मिलती है । विभिन्न अनुभवों, स्थितियों, संदर्भों और जीवन दृष्टियों से ग्रसित यथार्थताओं की समीक्षा व्यंग्य अत्यंत सक्षम ढंग से करता है । इस दृष्टि से व्यंग्य जीवन की निर्मम कसौटी है । यह कार्य शब्दों के माध्यम से ही हो, यह आवश्यक नहीं है । "व्यंग्य शब्द-संपदा में तो है ही, विविध शारीरिक चेष्टाओं, प्रक्रियाओं, कार्यकलापों के बीच आवर्तित है । उस व्यंग्य की इयत्ता मात्र चित्तवृत्ति के क्षणिक संतोष प्राप्त कर लेने तक है । ये विविध बिन्दु वक्तृ वैशिष्ट्योत्पन्न व्यंग्य, वस्तु वैशिष्ट्योत्पन्न व्यंग्य तथा बोधव्य वैशिष्ट्य, वाच्य पर निर्भर करते हैं । पृथक-पृथक ये बिन्दु यों हैं - 1. वक्तृ वैशिष्ट्य की विशेषता के कारण 2. बोधव्य की विशेषता के कारण 3. काकुध्वनि की विशेषता के कारण 4. वाक्य वैशिष्ट्य के कारण 5. वाच्यार्थ की विशेषता के कारण 6. व्यक्ति के सान्निध्य की विशेषता के कारण 7. प्रसंग की विशेषता के कारण 8. देश की विशेषता के कारण, और 9. काल की विशेषता के कारण...व्यंग्य किसी भी पूर्णत्व के अभाव के आघात और संबंधित वस्तु के प्रति चैतन्य लाभ और उसके रिक्तांकन का प्रयास है ।[45]

व्यंग्य के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह दूसरों से छला ही रहे अथवा दिखावे को यथार्थ सत्य मान लिये हो। व्यक्ति की मूर्खताओं में भी व्यंग्य फूट सकता है। उदाहरण के लिए, अनजाने में कुएँ में गिर पड़नेवाला व्यक्ति अनुकंपा अथवा सहानुभूति का अधिकारी होता है x न कि व्यंग्य का शिकार। मगर यह घटना व्यंग्य का रूप तब लेती है जबकि यह व्यक्ति जानबूझकर रात में देखे कुएँ में दिन में गिर पड़ता है। यहाँ "मूर्खता" एवं छले जाने की अपेक्षा एक और गंभीर अंश जुड़ा हुआ है जिसे कि हम ।अहं। अथवा उस व्यक्ति के असीम "झूठा आत्मविश्वास" कह सकते हैं। इस झूठे आत्मविश्वास के कारण वह व्यंग्य की वस्तु बनता है। इसी प्रकार एक और उदाहरण देख सकते हैं कि कोई जेबकतरा जबकि दूसरे की जेब काटता रहता हो, तब उसके घर में चोरी हो तब वहाँ व्यंग्य नहीं होता। किन्तु यह जेबकतरा दूसरे की जेब काटता रहता हो तब कोई तीसरा इसीकी जेब काटे तब व्यंग्य निकलता है। व्यंग्य के लिए व्यक्ति का झूठा आत्मविश्वास अथवा अहं जिस प्रकार कारण हो सकता है, उसी प्रकार उसकी मूर्खता अथवा गैरजिम्मेदारी भी जिम्मेदार हो सकती है। इन दो उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि चाहे कुएँ में गिरा व्यक्ति हो या जेब कटवाया हुआ व्यक्ति हो, वे वास्तविकताओं से अनभिज्ञ हैं, यहाँ तक कि अपनी जानकारी की परिधि के बाहर के "सत्य" या "यथार्थ" से उनकी कोई पहुँच नहीं है। व्यंग्य की आवश्यकता यहाँ इसलिए है कि वह उनकी असलियत का अनावरण करता है। x वास्तविक सत्य और यथार्थ के बीच के अंतर को समझाना व्यंग्य का लक्ष्य हो जाता है।

व्यंग्य का केन्द्र व्यक्ति-समाज-देश है, यहाँ की सब हकीकतें - हरकतें हैं, असम स्थितियाँ हैं जोकि व्यक्ति एवं सामाजिक भावों से नियंत्रित हैं। यहाँ इस बात को रेखांकित करने की आवश्यकता है कि व्यंग्य बिल्कुल बौद्धिक प्रक्रिया की उपज नहीं है अपितु व्यंग्य में भावनाओं का चक्कर भी होता है। इस दृष्टि से यह भावात्मक भी है और बौद्धिक भी है। व्यंग्यकार जिस पर व्यंग्य कसता है, इस दौरान जिन वैषम्यों एवं सत्यों का उद्घाटन करता है, उनके प्रति तीव्र निर्मम होकर व्यवहार करे तो उनके प्रति अन्याय होगा, इसके बदले में व्यंग्य के शिकार बने व्यक्ति की हालातों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए और व्यंग्य के लिए कारण बने कारणों के प्रति व्यंग्यकार x के मन में समवेदना होनी चाहिए।

व्यंग्य एक उदात्त भावना है जिसके मूल में समाज के गिरते हुए मूल्यों के प्रति हार्दिक अनुकंपा होती है । व्यंग्य के लिए निर्लिप्त दृष्टि की साधना आवश्यक है जिसके बिना व्यंग्य का उदात्त रूप नहीं निखरता है । व्यंग्य स्वच्छ, समुज्ज्वल, तटस्थ, वस्तुनिष्ठ लोकमंगलकारक तब होता है जबकि व्यंग्यकार भी संवेदनशील, विचारवान गंभीर स्वभाव का हो ।

व्यंग्य अपने आप में साध्य नहीं है, साधारण व्यक्ति को सारा संसार अपरिवर्तनीय दिखाई देता है । यहाँ की गतिविधियों से उसका कोई सरोकार नहीं रहता है । मगर व्यंग्य के लिए आवश्यक है कि वह संसार से लेकर व्यक्ति के आचरण और आदर्श पक्ष से आत्मीयता बनाये रखे । अपना समझकर क्षति करे । इस मायने में व्यंग्य एक जीवन दृष्टि है जिसे जो अपनाता है वह अपनी पैनी चिंतनधारा, सत्यासत्य को परखने की तीक्ष्णशक्ति और उदार मानवतावादी दृष्टिकोण से सामाजिक यथार्थताओं को परखता है और शब्दों द्वारा व्यंग्य का बाना पहनाता है ।

व्यंग्य ने हर देश और हर काल में अपनी प्रासंगिकता को जीवंत रखा है । परिवार की परिकल्पना से विश्वचेतना तक फैली हुई मानव चेतना के विकासक्रम में जब कभी व्यतिक्रम आया है तब व्यंग्य ने अपने तीखे प्रहारों और आलोचनाओं से ऐसे धक्के दिए हैं जिनके परिणामस्वरूप मानव समुदाय का योगक्षेम बना हुआ है । व्यंग्य समाज में एक आवश्यक जागरूक प्रतिहार के रूप में जीवंत रहने के कारण सामाजिक व्यवस्थाओं और मर्यादाओं की रक्षा हो पाई है । इस दृष्टि से व्यंग्य समाज का अनिवार्य उपादान है तो व्यंग्यकार हमारे जीवन मूल्यों के शिक्षासाकार हैं । व्यंग्य का मकसद व्यवस्था में फैली अव्यवस्था का, व्यक्ति व्यक्ति के बीच के संबंधों में तनावपूर्ण स्थिति लाने में सहायक जातिधर्म संबंधी मिथ्याचारों का और नैतिकता के ठेकेदारों के रूप में अनैतिकता को धोते धोते आप बचकर, निरीहों की असतों के जिम्मेदार ढोंगियों के प्रति निर्मम होकर धक्के छुड़ाते हुए साहित्य के इतिहास में व्यंग्य अत्यंत प्रभावशाली शस्त्र के रूप में क्रियाशील रहा है । वैसे हर संवेदनशील कवि/लेखक की आत्मा में व्यंग्य का होना अनिवार्य है । हर साहित्यकार जो जहाँ मानवीय भावनाओं के उत्थान की बात करता है वहाँ उभर आई विकृतियों तथा उसके लिए कारणीभूत परिस्थितियों का भी वर्णन

करता है । हर लेखक की दृष्टि जिस बिन्दु से नकारात्मक होती है उसी बिन्दु के पीछे वह मानव के पतन, मूल्यों के ह्रास होते देखकर तीव्र विषाद का भाव प्रकट करता रहता है । इस परिप्रेक्ष्य में हर सृजनात्मक कृति में व्यंग्य रहता है । इस व्यंग्य का उद्देश्य सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का निर्माण करना होता है ।

यह आवश्यक है कि लोक हितकारी व्यंग्य नैतिकता की अवधारणा पर किसी भी मूल्य पर आँच आने नहीं दे । क्योंकि व्यंग्य की आत्मा नैतिकता ही है । मगर सवाल यह है कि इस नैतिकता का मानक रूप क्या हो । वैसे नैतिकता सापेक्ष तत्व है, अलिखित संविधान है जोकि व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने का विधान है । बचपन में माता पिता उन्हें यह संस्कार देते हैं तो बढ़ते बढ़ते यह संस्कार समाज देता है । स्वस्थ समाज के स्थापन में इन नैतिक संस्कारों का अपना विशिष्ट महत्व है । समाज के नैतिक संस्कार जितने परिष्कृत होंगे उतना ही वह समाज परिष्कृत माना जायेगा । डॉ० राजमल बोरा कहते हैं - "समाज में नैतिक विधान होता है । यह विधान लिखा हुआ नहीं होता किन्तु फिर भी यह विधान लिखे हुए विधान से अधिक शक्तिशाली होता है । समाज का यह विधान जितना अधिक सुगठित और व्यवस्थित होगा, समाज उतना ही सुसभ्य और सुसंस्कृत होगा । यह बात मानी हुई है कि सभ्य समाज में सरकार की आवश्यकता कम होती है ।"[46] नैतिक मूल्यों की जागृति की अहसास समाज को जिस तीव्रता से होगी उतनी ही कम मात्रा में समाज में अन्यायों की कमी होगी । वैसे सरकार कानून बना सकती है, दंड दे सकती है । मगर इन कानूनों की आँखें बचाकर असामाजिक तत्व सिर उठाते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं । इसलिए नैतिकता का भय जब तक व्यक्ति को सालता रहेगा, तब तक समाज सुरक्षा का अनुभव करेगा । नैतिकता का ह्रास जब हो तब व्यंग्य अपना सिर उठायेगा और व्यंग्य ऐसे असामाजिक तत्वों पर चाबुक चलाकर समा को चेतावनी देता रहेगा और मानवीय [illegible] गरिमा की [illegible] करता रहेगा ।

इस समाज की त्रासदी यह है कि यहाँ विचार सिकुड़े जाते हैं, सत्य मरोड़ा जाता है, अपनी नाक सीधे व्यवहार किये जाते हैं परिणामतः जिसकी लाठी होती है उसकी भैंस हो जाती है । समाज के नियामक स्वार्थी लोग होते हैं । इसका डॉ० राजमल बोरा

ने ऐसा विश्लेषण किया है - " आज तक का इतिहास इस बात का साक्षी देता है कि जिसकी उसकी हुई, जिसके पास शक्ति है और जिसके पास शक्ति है उसीकी तूती बोलती है और उसीके नियम चलते हैं । वही विधान है और वही कानून है । इसलिए किसी विद्वान ने ठीक ही कहा कि .... " नैतिकता और कुछ नहीं, वह शक्तिशालियों का स्वार्थ है " । अपनी इच्छा से जिसे वे सत्य कहें, वह सत्य है और जिसे वे असत्य कहें, वह असत्य है, जिसे वे ठीक कहें वह ठीक है और जिसे वे गलत कहें, वह गलत है । नियंत्रण का अधिकार समाज के अन्य संचालक विशिष्ट वर्ग के हाथ में ही रहा है । जानड्यूई का कथन - " जब तक नैतिकता की मानव प्रकृति से और दोनों की परिवेश से अखंडता स्वीकार नहीं कर ली जाती, तब तक हम जीवन की विकटतम एवं महानतम समस्याओं से निपट लेने में विगत अनुभव की सहायता से वंचित रहेंगे । ठीक और विस्तृत ज्ञान तो विशुद्ध प्राविधिक समस्याओं के समाधान में प्रचलित रहेगा ही । प्रकृति, मनुष्य तथा समाज की अविच्छिन्नता की विवेकपूर्ण स्वीकृति से ही केवल नैतिकता का विकास हो सकता है, जो धार्मिक तो हो, पर कट्टर न हो, महत्वाकांक्षी तो हो पर भावुक न हो, परंपराओं से बंधा न होकर वास्तविकता के अनुकूल हो, लाभों की गणना का रूप तो धारण न करे पर व्यवहार कुशल हो स्वच्छन्दवादी न हो पर आदर्श प्रिय अवश्य हो " नैतिकता के वास्तविक स्वरूप का बोध कराता है ।[47]

नैतिकता का मूल आधार मानवता के प्रति आस्था की भावना है । अनैतिक मूल्य जब मानवता पर आक्रमण करने लगते तो व्यंग्याग्नि उन्हें ध्वस्त करने के लिए आगे बढ़ती है । व्यंग्य नैतिक मूल्यों के पहरेदार के रूप में सामाजिकों को अच्छाई-बुराई, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म की बारीकियों का मर्म समझाकर समाज को न्याय पथ पर ले जाने का महत्वपूर्ण जिम्मा अदा करता है । व्यापक मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में व्यंग्य सहायक होता है ।

हमारे सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत आचरणों में नैतिक मूल्यों का मूल्यांकन प्रायः अपनी-अपनी दृष्टि से किया जाता है । उदाहरण के लिए भगवतीचरणवर्मा के उपन्यास "चित्रलेखा" में आनेवाली पाप-पुण्य की चर्चा को देख सकते हैं । बीजगुप्त और कुमारगिरि के व्यक्तिगत जीवन-शास्त्र के संदर्भ में पाप-पुण्य के मूल्यों का प्रतिपादन

करते हैं और अंत में उपन्यासकार इन दोनों को अत्यंत तटस्थ होकर विवेचन करके इस नतीजे पर आता है कि पाप-पुण्य की परिकल्पना व्यक्ति की निजी दृष्टि पर निर्भर रहती है । भगवती बाबू जैसे व्यंग्यकार भी पाप और पापी पर व्यंग्य न करके इसका निर्णय करने का दायित्व पाठकों पर ही छोड़ देते हैं । परसाई के कथापुरुषों में जब कि ऐसे सवाल उठते हैं तो वे हाथ आए अवसर को नहीं छोड़ते । तुरंत व्यंग्य द्वारा इनके खोखलेपन पर प्रहार करते हैं और व्यंग्य का सही स्थान पर उपयोग करते हैं । मानवीय मूल्यों का समर्थक व्यंग्यकार को चाहिए कि मानव विरोधी तत्वों का खुले आम विरोध करे । व्यंग्य अपने मूल स्वभाव में निर्माणात्मक होने के कारण हर मूल्य पर जीवन के किसी भी क्षेत्र में मानव विरोधी तत्व उभर आएँ, उनका विरोध उसे करना चाहिए । नैतिक शोषण के खिलाफ तथा अन्य सामाजिक परंपराओं, रीतियों, बेड़ियों का खंडन भी व्यंग्य को करना है । एक ऐसा कुशाग्रपन और पैनापन लाना है जो पूँजीवाद और इसके बंधु-बांधवों को काटकर रख दे । अपने निजत्व को पाने के लिए, सच्चे मानवीय इतिहास के निर्माण के लिए, छिड़े हुए इन्सान के मुक्तियुद्ध में व्यंग्य को आमूल परिवेश को समूल छीलना होगा । व्यंग्य साहित्य की अक्षय निधि और काव्यकला का अभिन्न अंग होकर अपनी सिद्धि और सार्थकता को प्राप्त कर सकेगा ।[48]

व्यंग्य विचारों की अंतःसलिला का परिणाम होता है । प्रतिगामी विचारवाले, स्वार्थी और मनुष्य के प्रति अनास्था रखनेवाले लेखक न व्यंग्य लिख सकते हैं न व्यंग्यकार बन सकते हैं । व्यंग्य जोखिम उठानेवाला काम है । व्यंग्य धीर नैतिकता का पक्ष लेकर क्रियाशील रहता है । इसका मतलब यह नहीं कि व्यंग्य नैतिकता के उपदेशक के रूप में अप चरित्र अदा करता है । व्यंग्य उपदेश का ढिंढोरा नहीं पीटता है, बदले में व्यक्ति एवं समाज की मानसिकता में बदलाव या परिवर्तन लाने का आग्रह लेकर चलता है ।

साहित्य के इतिहास के व्यापक अध्ययन से यह अंश स्पष्ट जाहिर होता है कि व्यंग्य का पूँजीवादी सभ्यता अथवा सामंती संस्कृति अथवा जड़ता से स्थापित व्यवस्था की प्रतिक्रिया के रूप में प्रत्यक्ष जन्म हुआ है । इस ओर संकेत करते हुए डॉ॰ रामविलास शर्मा का किया विश्लेषण मार्के का है - " जमीन्दार, किसान, कारीगर, पुरोहित, बनिया

- ये सब सामंती व्यवस्था में होते हैं, उसके भीतर पनपनेवाला व्यापारिक पूँजीवादी व्यवस्था में भी । दोनों व्यवस्थाओं में उनकी स्थिति एक सी नहीं होती । श्रम और स्वामित्व का संबन्ध आधार टूटता है, नये आर्थिक संबंधों के आधार पर वर्गों का पुनर्गठन आरंभ होता है । विवेचन में सुविधा के लिए हम वर्ण और वर्ग में भेद कर सकते हैं । कबीर-तुलसी के समय में वर्ण टूट रहे हैं वर्ग बन रहे हैं ... वर्णव्यवस्था के विघटन की प्रक्रिया अनेक रूपों में प्रकट होती है । एक रूप है साधु समाज का निर्माण ।

संतन जात न पूछो निरगुनिया
साध,ब्राह्मन साध छत्तरी, साधै जाती बानियाँ
साधन माँ छत्तीस कौम हैं, टेढ़ी तोर पुछनियाँ

तुलसीदास ने संतों और असंतों में जो भेद किया है, वह इसी प्रक्रिया का फल है । कबीर-तुलसी के समाज की पहचान के लिए दो सूत्र काफी हैं । एक विलास, दूसरा गरीबी । समाज व्यवस्था बदल रही है, भक्त कवि खूब अच्छी तरह देख रहे हैं, क्यों बदल रही है, उनकी समझ में नहीं आता । सबसे बड़ा कष्ट दरिद्रता का है । प्रभु की शरण में जाने से सारे कष्ट दूर हो जायेंगे । इसलिए सभी भक्तों में शरणागत वाला भाव प्रबल है । अपनी दशा को वे आसानी से पूर्व जन्म के कर्मों का फल नहीं मान लेते । जिन नियमों को ईश्वरकृत और शाश्वत माना गया था, उन्हें वे बारबार चुनौति देते हैं । विधाता की देन है कलियुग, उसकी बाढ़ है भक्ति ।[47] डा. रामविलास शर्मा के अनुसार भक्तियुगीन समाज की सामंती व्यवस्था में वर्ण टूटे, वर्ग बने । वर्गीय समाज की पीड़ा का हरण करने के लिए साधुसमाज का निर्माण होता गया और आपी दरिद्रता को दूर करने के लिए भगवच्छरण में । इस विवेचन में डा. शर्माजी ने समस्या को हल्का बनाने का प्रयत्न किया है । क्या कबीर ने भक्तिकालीन पूँजीवादी वर्ण-वर्ग के विरोध में आवाज़ उठाई, व्यंग्य किया, वह शोषित समाज की ध्वनि नहीं थी ? आश्चर्य की बात यह है कि कबीर के रहस्यवादी गीतों में सामाजिकता की झलक कहीं नहीं मिलती है जबकि तुलसी के काव्य में इस संसार की मातदियों का निवारण करने के लिए राम से बराबर विनती की जाती है । चाहे रहस्यवादी के रूप में, चाहे भक्त के रूप में हो कबीर और अन्यान्य संत कवि अपनी दरिद्रता, हीनता का निवारण करने के लिए निवेदन नहीं मत करते हैं, क्यों नहीं बैठते हैं, बदले में कबीर और अन्य संत वास्तविकता की भूमि पर

खड़े होकर जब बोलते हैं तो सामाजिक - धार्मिक अंतर्विरोधों पर तीखा व्यंग्य करते हैं। तीर्थाटन करनेवालों, सिर मुंडन करनेवालों, पत्थर पूजकों एवं शोषकों की खिल्ली उड़ाते हैं। उनको सुधारने के प्रति बदले उनमें बदलाव का आग्रह करते हैं। ऐसे समाज का सपना देखते हैं जहाँ न वर्ण हो, न धर्म, केवल मनुष्य हो। तुलसी में समन्वय के नाम पर दासीभाव, समझौता की भावना है, उनमें असामाजिक तत्वों के प्रति मुठभेड़ करने का साहस नहीं है जबकि कबीर के काव्य में सामाजिक असंतुलन के परिणामस्वरूप आकुल, क्रांति का मशाल है, साखी है, आक्रोश है और पुराने मूल्यों से ग्रस्त समाज को परिवर्तित करने का आग्रह है। इन सबका समवेत स्वर व्यंग्य के रूप में निखर उठा है। यदि हम यह कहें कि कबीर अपने तथा अपने समाजवादियों के कष्टों को दूर करने के लिए भगवद्-शरण में गए, कबीर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व के प्रति न्याय नहीं कर रहे हैं। वास्तव में कबीर जनवादी चिंतक रहे। व्यंग्य उनके काव्य का प्रमुख स्वर रहा।

कबीर का आविर्भाव हिन्दी साहित्य के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण उपलब्धी है जिन्होंने भक्तिकालीन संस्कारों तथा सामंती व्यवस्था के शोषण एवं पाखंडी व्यवहारों के तथा धार्मिक कट्टरता, यहाँ तक कि ईश्वर के मूर्तरूप के विरुद्ध संघर्ष का बीड़ा उठाया। इस संदर्भ में प्रदीप सक्सेना का निरीक्षण है कि कबीर कवि पहले हैं या बाद में? सवाल यह है कि जनसामान्य के प्रति सामाजिक परिष्करण के लिए एक खास किस्म की प्रतिबद्धता उनमें सुलभ है। कबीर में कहने का साहस था। उनमें वह सब था जो किसी भी सच्चे कवि में होना चाहिए। उनके व्यंग्य की दिशा "सोशल रिफार्मेशन" है जोकि उसका विकल्प वे आध्यात्म क्षेत्र में खोजते हैं। यह दूसरी तथा तात्कालिक स्थितियों की स्वाभाविक बात है। छिन्नमस्ता युग में कबीर ने खूब व्यंग्य उठाये। यह व्यंग्य अपने व्यापक रूप में दो विशिष्ट और विराट जाति हिन्दू-मुसलमानों को लेकर है। ये सभी निर्माणात्मक थे, प्रगतिबोधक थे। इन सबका मानी मतलब सांस्कृतिक एकता, व्यावहारिक एकसूत्री थी और ईश्वर जैसे विवादास्पद बिन्दु पर ये व्यंग्य पूरी सतर्कता से लिखे। कबीर ने ऐसे काल में जन्म लिया जिस समय भारत की सांस्कृतिक अवस्था अत्यंत उतार पर थी। उन्होंने बहुत जमकर हर पहलू पर प्रहार किए।[50] यह सारा इसलिए संभव हो पाया कि वे जीवन की यथार्थताओं के भुक्तभोगी थे। ऐसा भुक्तभोगी ही जीवन पर हँस सकता है। और व्यंग्य भी कर सकता है। भगवद्शरण में जाकर समस्याओं के लिए

कबीर जैसे फक्कड़ों के लिए सर्वथा उपेक्ष्य था ।

व्यंग्य वैचारिक जागृति का मेरुदंड है और व्यंग्यकार इस जागृति का अगुआ है । संसार के सभी सामाजिक, धार्मिक आर्थिक आंदोलनों के मूल में यह वैचारिक जागृति सदा क्रियाशील रही है । व्यंग्य की आवश्यकता सामाजिक संदर्भ में इसलिए है कि वह जनता को शिक्षित करता है, उसे अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का बोध कराता है । सर्वोदय समाज की परिकल्पना के पीछे दो वर्गों के बीच की विषमताओं को मिटाने का मकसद है, दरिद्रों को नारायण कहने के पीछे अमूर्त नारायण को नकारने की भावना है । शोषितों को निरीहता तथा दुख का उद्घाटन करने के पीछे शोषकों के वैभव से युक्त जीवन का पर्दाफाश करने का उद्देश्य है - इन सारे कार्यों को एक मात्र व्यंग्य ही सफल रूप से कर सकता है और इसके लिए व्यंग्य की बड़ी आवश्यकता है । व्यंग्य इस लक्ष्य में सफल इसलिए हो सकता है कि व्यंग्य तर्क का साथी है, मानवप्रेमी है । जब रूढ़िबद्ध सामाजिक नियम देश की प्रगति में बाधक होते हैं, तब हर सामाजिक कार्यकर्ता बाध्य होकर दूसरे देशों के उदाहरण प्रस्तुत करता है, तभी नव्य विचारों एवं समाज के रूढ़िबद्ध संस्कारों के मध्य संघर्ष अथवा द्वंद्व चलने लगता है तब संपूर्ण समाज में एक हलचल की स्थिति स्वयमेव उत्पन्न होती है । इस हलचल से प्रादुर्भूत समस्याओं का शमन सामाजिक कार्यकर्ता एवं राजनीतिक हास्य-व्यंग्यमय अभिव्यक्तियों द्वारा करते हैं । विश्वइतिहास में जितने प्रभावशाली सामाजिक कार्यकर्ता एवं राजनीतिज्ञ हो गए हैं उनके भाषणों एवं वक्तव्यों में हास्य एवं व्यंग्य का पुट मिलता है क्योंकि हास्य-व्यंग्य समाज सुधार के लिए पैने अस्त्र शस्त्र का काम देते हैं जिनसे सामाजिक विकृतियों को काटकर अलग किया जा सकता है ।[51] सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विषमताओं, असहनीय विद्रूपों, एवं पाखंडों की खिल्ली उड़ाने की सार्थक परंपरा जो आधुनिक साहित्य के आरंभिक लेखकों से शुरू हुई, उसकी चरमसीमा प्रेमचंद में दिखाई देती है । प्रेमचंद के बाद इस विधा को समाज से जोड़ने की दिशा में, परसाई, श्रीलालशुक्ल आदि के योगदान का सर्वाधिक महत्व है ।

व्यंग्य समाज के प्रति प्रतिबद्ध है तो व्यंग्यकार को अपने व्यंग्य के प्रति प्रतिबद्ध रहना चाहिए क्योंकि व्यक्ति और समाज की मानसिकता जब कभी बिगड़ जाती है तब उसके प्रति

असंतोष प्रकट करके उसे सुधारने तथा उसे प्रगतिशील बनाने का बीड़ा उठाने का दायित्व चूँकि व्यंग्य पर है, व्यंग्य की दृष्टि अत्यंत साफसुथरी एवं बारीक होनी चाहिए। व्यंग्य "किसकी नियत" यह एक कटाक्ष का अस्त्र होने के कारण, इस अस्त्र का प्रयोग करनेवाले के जीवन दर्शन पर उसका उपयोग निर्भर रहता है। व्यंग्य का उक्त स्वभाव है, व्यंग्य का प्रयोग सामाजिकों पर होता है और उसका प्रयोग करनेवाला भी आखिर एक साधारण मनुष्य ही होता है अतः उसकी समझदारी, ईमानदारी, इन्साफ का बोध मानवीयता के प्रति उसकी आस्था जैसे विषयों के आधार पर व्यंग्यकार की प्रतिबद्धता अथवा जीवन दर्शन स्थापित होता है।

साहित्यकार के जीवनदर्शन विचार करते हुए कन्नड़ के राष्ट्रकवि कुवेंपु के विचार द्रष्टव्य हैं - साहित्यकार के सात्विक सिद्धांत कुछ भी रहें, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, - इत्यादि पर उसके अभिप्राय, आदर्श, चिंतन कुछ भी रहे, वे सब माय के पीत पयोधर सदृश रसमय चित्कोष से जब तक नहीं निकलते तब तक वे अमृतत्व के रूप को प्राप्त कर नहीं पाते।[52] कोई कितना ही बड़ा विद्वान हो, वह प्राचीन साहित्य एवं विदेशी साहित्य का कितना ही गंभीर अध्ययन किया हुआ हो, उसको यह अहं अपने में नहीं रखना चाहिए कि मैंने सब कुछ आत्मसात कर लिया है क्योंकि विचार समय के अनुरूप अनंत में सृष्टि की वस्तुओं के जैसे असंख्य हैं। काव्याध्यायी में भाषा ज्ञान के साथ ही साथ सरस हृदय, समभाव, सहानुभूति - इन तीनों का होना आवश्यक है।[53] साहित्यकार को चाहिए कि वह स्वनिराकरण करें, अहं का त्याग करे और सबके साथ मानवीय व्यवहार करें। कुवेंपु का मानना है कि साहित्यकार जो समाज का नियमन करता है अपने व्यक्तिगत सिद्धांतों-विचारों का प्रतिपादन करने के लिए साहित्य को मंच न बनाये, उसके लिए और मंच है। इस दृष्टि से साहित्यकार को केवल मानव पक्षपाती होना चाहिए न कि दूसरे हितों का समर्थक। कुवेंपु की बातों को जो लेखक आत्मसात करता है वह जाति-धर्म-प्रांत जैसे संकुचित भावों के कटघरे से बाहर आकर समूची मानव जाति का कल्याण चाहता है। वह विश्वमानव बनता है। सच्चे कवि एवं व्यंग्यकार का दायित्व मानव कल्याण के लिए संघर्ष करना है।

व्यंग्य में व्यंग्यकार का जो जीवन दर्शन अभिव्यक्त होता है, उस दर्शन की भावभूमि सत्य की खोज होनी चाहिए। अज्ञान, अंधकार तथा मूढ़विश्वासों से ग्रसित मानव समाज को उबारने की तरफ ले जाने का दायित्व व्यंग्य का है। संसार की कोई भी ताकत उसे डगमगा न सके - ऐसा आत्मबल जबकि व्यंग्यकार में होगा, तभी वह सच्चाई तक पहुँच सकता है, मानवता का पुजारी हो सकता है। व्यंग्यकार की प्रतिबद्धता का मूल यही है। क्या व्यंग्य अथवा व्यंग्यकार का किसी मान्यता, राजनीतिक विचारधारा अथवा जीवन दृष्टि अथवा [illegible] दर्शन के प्रति प्रतिबद्ध अथवा उत्तरदायी होना जरूरी है? क्या व्यंग्य अथवा व्यंग्यकार किसी मान्यता अथवा राजनीतिक विचारधारा से जुड़कर अन्य विचारधाराओं अथवा जीवन दृष्टियों के प्रति नितांत एकांगी दृष्टि का विकास अनायास ही नहीं कर लेता है?

समाज में व्याप्त हर प्रकार की विसंगतियों को सही वाणी देते हुए व्यक्त करना, राजनीति में पिट मनुष्यता की छटपटाहट को वाणी देना अथवा पूँजी के घेरे में पिसी गरीबी अथवा श्रम के अवसाद को सहानुभूति देने के साथ साथ विसंगतियों के पोषकों को व्यंग्य का निशाना बनाना व्यंग्यकार की प्रतिबद्धता के अंतर्गत आता है।[54]

व्यंग्य दंड विधान का एक रूप है। इसका प्रहार लाठी के प्रहार से भी तेज होता है। व्यंग्य बाण की चोट इतनी गंभीर होती है कि उसे खानेवाला तिलमिला जाता है बशर्ते कि व्यंग्य करनेवाले का चरित्र, उसकी प्रतिष्ठा असंदिग्ध हो। व्यंग्य की शक्ति व्यंग्य करनेवाले की कथनी-करनी तथा उसके जीवन दर्शन की प्रामाणिकता के अनुसार प्रखर होती जाती है। तब जाकर उसमें क्षत्रिय का तेज आ सकता है। परसाई कहते हैं कि व्यंग्य की प्रतिष्ठा इस बीच साहित्य में काफी बढ़ी है - वह शूद्र से क्षत्रिय मान लिया गया है। व्यंग्य साहित्य में ब्राह्मण बनना भी नहीं चाहता, क्योंकि वह कीर्तन करता है।[55] इस दृष्टि से क्षात्र गुण को बनाये रखने में ही व्यंग्य की सार्थकता ।

<u>व्यंग्य की अधिकार सीमा</u>

हमारे सामाजिक एवं साहित्य के संदर्भ में व्यंग्य की उपादेयता को लेकर दो अभिप्राय नहीं हैं। किन्तु व्यंग्य की सीमा की बात जबकि आती है तब व्यंग्यकार

के सीमित स्वार्थ, संकुचित भावनायें खुलकर सामने आती हैं। ऐसे संदर्भ में व्यंग्यकार को अपने व्यंग्य का दुरुपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वह अपना उल्लू सीधा करने के लिए व्यंग्य का दुरुपयोग करता है तो व्यंग्य की कीमत घट जाती है। व्यंग्य को ऊँचे धरातल पर प्रयोग करना चाहिए न कि व्यक्तिगत स्तर पर। व्यंग्य में न तो गालीगलौजों के लिए गुंजाइश है न तो गाली-फटकारों के लिए। "व्यक्तिगत विरोध के लिए जब कोई लेखक व्यंग्य का सहारा लेता है अथवा अपनी द्वेष-भावना अथवा रोष के लिए व्यंग्य कसता है तो वह साहित्य के ऊँचे धरातल पर से गिर जाता है। व्यक्ति-धर्म-संप्रदाय आदि को लक्ष्य करके लिखा गया व्यंग्य हीन कोटी का व्यंग्य होता है। वह अल्पजीवी होता है। इसी प्रकार अशिष्ट और असंस्कृत व्यंग्य को भी साहित्य में कोई स्थान नहीं है। जब जब व्यंग्य इस स्तर पर उतरा है, उसका साहित्य में अवमूल्यन हुआ है।[56]

मानव जीवन जबकि दुरूहताओं, समस्याओं, संघर्षों विसंगतियों से ग्रस्त है, अप्रामाणिकता, बेईमानदारी, कथनी-करनी में सामंजस्य का अभाव, जीवन के प्रति कुंठाग्रस्त दृष्टिकोण उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं, व्यक्ति जीवन से राष्ट्रजीवन तक हमारे सामाजिक राजनीतिक जीवन में मानव का चरित्र पतन की गर्त में गिरता जा रहा है, मूल्यों का विघटन हर कहीं देखा जा रहा है। ऐसे संदर्भ में व्यंग्य ही एक ऐसी सबल शक्ति है जो अव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था को व्यवस्थित बनाने का नैतिक दायित्व निभा सकता है। व्यंग्य का लक्ष्य निश्चित रहना चाहिए। बिना लक्ष्य के लिखा गया व्यंग्य सार्थक नहीं होता है। "व्यंग्य को व्यंग्य के लिए जब अपनाया जाता है, तब वह फैशन हो जाता है और चालू रचनाओं की सृष्टि करता है। पर, जब व्यंग्य एक हथियार- पैने हथियार - के रूप में लेखक के हाथ में आता है तब वह सामाजिक स्वास्थ्य की वृद्धि करता है - विकृतियों की शल्य-क्रिया करके।....आजकल मूर्तिभंजन का युग है। दिशाहीन लोग अन्यों की प्रतिमाओं का खंडन करके अपने को रोशनी में लाना चाहते हैं। इस कारण आज व्यंग्य एक फैशन भी बन गया है।"[57] व्यंग्य-लेखन जब फैशन या दिशारहित होगा तो उसका महत्त्व ही कम होगा।

अक्सर साहित्यकारों के संबंध में यह कहा जाता है वे जगत का "विष" पीकर जगत को "अमृत" प्रदान करेंगे और दूसरों को हँसाकर स्वयं रोयेंगे । यहाँ तक कि जगत को हँसाने के लिए कवि अपना मन भूल जायेंगे । मगर व्यंग्यकार इस कोटि में नहीं आता है । व्यंग्यकार न स्वयं रोता है न विष पीता है अपितु सामाजिक अव्यवस्था के लिए कारणीभूत अंगों की छानबीन करके आक्रोश प्रकट करता है, अपनी प्रतिक्रिया दर्ज करता है, परिवर्तन के लिए आग्रह करता है । जो व्यंग्यकार दुर्बल होगा और जिस व्यंग्यकार की वैचारिक शक्ति कमजोर होगी, वहाँ व्यंग्य मात्र उड़नखटोला होगा । व्यंग्य असफल होगा । व्यंग्य की धुरा व्यक्ति एवं समाज तथा राष्ट्रीय जीवन-मूल्यों की सुरक्षा धुरू पर है । उसका प्रहार क्रूरता, मूर्खतापूर्ण आचरणों, जाति-धर्म संबंधी रूढ़ियों एवं ढोंगी व्यवहारों पर होता है । अतएव उसमें वस्तुनिष्ठ दृष्टि की बाकायदा जरूरत होती है । व्यंग्य में वस्तुनिष्ठ दृष्टि का अभाव जब कि दिखाई पड़ता है तो व्यंग्य की रीढ़ एकदम टूट जाती है । व्यंग्य की रीढ़ यदि सीधी खड़ी तभी होती है जब कि व्यंग्यकार में अधिक आत्मबल होता है । हरिनारायण मिश्र के कथन के अनुसार "मनोविज्ञान के पंडितों के अनुसार व्यंग्यकार मौलिक एवं क्रांतिकारी प्रतिभा के कलाकार हुआ करते हैं । जिन्हें जन्म से ही आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । वे कुप्रथाओं पर क्रूर आघात करते हैं । इनमें आत्माभिमान का आधिक्य होता है तथा मानव प्रेम की सदा नीरा धारा भी इनके अंतस्तल में सदैव प्रवाहित होती रहती है ।" परिणामस्वरूप यह व्यंग्यकार अपने व्यंग्य में सामाजिक विषमताओं को एकदम परहेज भावना से देखता है और स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए ठोस चिंतन करता है । इस प्रसंग में यह भी स्मरण में रखना चाहिए कि व्यंग्य को सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाना नहीं चाहिए क्योंकि सुधारक बनना व्यंग्यकार का काम नहीं है । "व्यंग्य का स्वर यदि सुधारवादी हो गया तो व्यंग्य भोथरा हुए बिना नहीं रह सकता । व्यंग्यकार का काम समाज सुधार का डंका बजाना नहीं है । समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैली सड़ांध को सुधी पाठक के सामने पेश कर देना है, ताकि वह अपने मन में विकृतियों के प्रति उभरी हुई विरोध भावना को सही अर्थ में पहचान सके और विकृतियों के सामने खड़े होने का मानसिक साहस पा सके ।"[58] व्यंग्य की असल में मनुष्य का उसकी हकीकतों से साक्षात्कार कराके उसे सही जीवन मूल्यों की तलाश करने के लिए प्रेरित करना

चाहिए । जो व्यंग्य मनुष्य में साहस, आत्मबल और जीवन के प्रति आस्था नहीं जगाता वह व्यंग्य नहीं कहलाता । व्यंग्य आदर्शों की स्थापना नहीं करता है किन्तु आदर्शों की तलाश करता है । वह व्यंग्य सार्थक है जो मानव नियति का निर्माण करता है । इस कार्य में जो व्यंग्य सफल नहीं होता, वह व्यंग्य कहलाने योग्य नहीं हो

व्यंग्य में वस्तुनिष्ठ दृष्टि की नितांत आवश्यकता है जिसके अभाव में व्यंग्य आरोपों-प्रत्यारोपों तक उतर जाता है । यहाँ व्यंग्य का अशुद्ध रूप निखर आता है । चूँकि व्यंग्य सामाजिक विषमताओं से एकदम परहेज भावना को अपनाता है और उन्हें सतह पर लाने की बात को बाकायदा स्वीकार करता है, व्यंग्य व्यक्तिगत परिधि को लांघकर सक्रिय रहना चाहिए । व्यंग्यकार न किसी का दोस्त होता है न किसी का दुश्मन । उसको तो स्वातंत्र्य, समता, सत्य जैसे शाश्वत मूल्यों का आराधक होना चाहिए व्यंग्य की दृष्टि दोषों पर रहनी चाहिए न कि दोषी व्यक्तियों पर । व्यंग्य में संसार की हीन ग्रंथियों के प्रति सात्विक रोष होना चाहिए, प्रतिरोध होना चाहिए न कि प्रतिशोध की भावना । व्यंग्य में प्रतिशोध एवं द्वेष की अग्नि [illegible] उठेगी तो वह व्यंग्य निर्माणात्मक न होकर ध्वंसात्मक होता है । व्यंग्य की अभिव्यक्ति में व्यंग्यकार को ऐसा पेश आना चाहिए मानों वह एकदम कठिन हृदय का हो, किन्तु असल में उसका हृदय मानवीय सहानुभूति, मानवता के प्रति आस्था को बनाये रखना अत्यंत आवश्यक है । मानवीय अनुकंपा से विहीन व्यंग्य का कोई महत्व नहीं है । यह व्यंग्य की महत्वपूर्ण सीमा है ।

व्यंग्यकार को यह मानकर बिलकुल नहीं चलना चाहिए कि मनुष्य जन्म से एवं स्वभा से अत्यंत बुरा प्राणी है । इस धारणा से जो व्यंग्यकार चलेगा तो वह स्वयं मनुष्य को मनुष्य मानने में हिचकिचायेगा और मनुष्य में उसका विश्वास ही नहीं रहेगा । इस "विश्वास" के बगैर उसका व्यंग्य पंगु बन जायेगा । मानव कुल के प्रति उसे बड़ा आशक होना । वास्तव में व्यंग्य की रचनाधर्मिता का मूल आशय अस्वस्थ मन और व्यवस्था में परिवर्तन लाना है, व्यंग्य लेखक जीवन के साथ तादात्म्य रखता है, वह तटस्थ नहीं होत है । हरिशंकर परसाई के अनुसार जो जीवन से तटस्थ होता है, वह व्यंग्य लेखक नहीं

"जोकर" है । कोई भी सच्चा व्यंग्य लेखक सामाजिक संघर्ष के संदर्भों से कटकर नहीं रह सकता । आखिर व्यंग्य किस पर किया जायेगा, उन्हीं पर न जो समाज में झूठ, पाखंड, अन्याय, विसंगति पैदा करते हैं । फिर व्यंग्य लेखक तटस्थ कैसे रहेगा । उसे संयुक्त होना ही पड़ेगा । बिना सामाजिक संघर्ष में शामिल हुए व्यंग्य नहीं लिखा जा सकता - गैर जिम्मेदारी का मसखरापन किया जा सकता है ।[59]

दूसरों पर व्यंग्य बाण चलानेवाले व्यंग्यकार को "अहं" की भावना से अछूता रहना चाहिए । तथा अपने को सर्वज्ञ मानने के साहस से दूर रहना चाहिए । अपनी लेखनी का बड़े संयम से प्रयोग करने की बात सीखना अनिवार्य है । जीवानुभवों से असंपृक्त उचित-अनुचित के बोध से हटा व्यंग्यकार मजाक का हेतु बनेगा । व्यंग्य का मकसद मात्र विसंगतियों की आलोचना करना ही नहीं होना चाहिए, अपितु उच्च जीवन मूल्यों को रेखांकित करना भी है । इस दृष्टि से व्यंग्य संहारात्मक नहीं अपितु सृजनात्मक

संदर्भसूची

1. कन्नड साहित्यदल्लि हास्य रस - डॉ. एम. एस. सुंकापुर पृष्ठ 2
2. इंग्लिश कॉमिक राइटर्स लेक्चर्स हैज़लिट पृष्ठ 1
3. साहित्य मत्तु विमर्शे - द. रा. बेन्द्रे पृ. 116
4. ए. थियरी आफ लाफ्टर - कृष्णमेनन, पृष्ठ 17-18
5. भारतीय मत्तु पाश्चात्य काव्य मीमांसेय तौलनिक अध्ययन - डॉ. एच. तिप्पेरुद्रस्वामी पृ. 364
6. वाङ्मय विमर्शः आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - पृ. 109, 110, 111
7. साहित्य और जीवन - अ. न. कृ. पृ. 95
8. कन्नड साहित्य में हास्य रस - डॉ. एम. एस. सुंकापुर पृ. 76
9. भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेन्द्र पृ. 139
10. भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेन्द्र - पृ. 84
11. वही पृ. 85-86
12. कन्नड साहित्यदल्लि हास्य - डॉ. एम. एस. सुंकापुर पृ. 79

13. रिमझिम एकांकी संग्रह डॉ. रामकुमार वर्मा की भूमिका

14. हिन्दी की प्रगतिशील कविता : डा. रणजीत पृ. 344

15. वही पृ. 345

16. वही पृ. 439

17. ओकिन टेकी - सं. कमलाप्रसाद पृ. 250

18. कामेडी - एल. ओ. पोट्स, पृ. 53

19. नोट्स आन वर्स सटायर - हंबर्ट वोल्फ पृ. 7

20. सटायर मैथ्यू हाजर्ट पृ. 348

21. आइडिया आफ कामेडी - मेरिडिथ पृ. 82

22. बैटिल आफ बुक्स : जानथन स्विफ्ट पृ. 6

23. व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न - शेरजंग गर्ग पृ. 9

24. वही पृ. 32-33

25. वही पृ. 68

26. वही पृ. 64

27. वही पृ. 98

28. व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यों - संपादक - श्यामसुंदर घोष - पृ. 19

29. वही पृ. 26

30. वही पृ. 44

31. वही पृ. 47

32. वही पृ. 58

33. वही पृ. 61

34. वही पृ. 66

35. वही पृ. 77

36. वही पृ. 86

37. वही पृ. 37

38. वही पृ. 112

39. वही पृ. 115

40. व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न - डॉ. शेरजंग गर्ग पृ. 125
41. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ - नरेन्द्र कोहली पृ. 9
42. कन्नड़ साहित्यान्तर्गत हास्य : डा. एम. एस. लुंकापुर पृ. 79
43. वही पृ. 80
44. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - संपादक - डॉ. श्यामसुंदर घोष पृ. 103
45. वही पृ. 28
46. आधुनिकता और राष्ट्रीयता : डॉ. राजमल बोरा - पृ. 34
47. वही पृ. 35-36
48. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों : संपादक - डॉ. श्यामसुंदर घोष 40
49. हिन्दी जाति का इतिहास - डा. रामविलासशर्मा - पृ. 49
50. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों, - संपादक - डा. श्यामसुंदर घोष पृ. 29
51. प्रेमचंद कथा साहित्य में हास्य-व्यंग्य - डॉ. निर्दे पृ. 41
52. खंडित नयन - कुवेंपु पृ. 9
53. कला सुंदरी - कुवेंपु - भूमिका
54. व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न - शेरजंग गर्ग - पृ. 67
55. परसाई ग्रंथावली - छठा भाग - 251
56. व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यों : श्यामसुंदर घोष पृ. 63
57. वही पृ. 65
58. वही पृ. 87
59. उर्मिल देवी : संपादक - कमला प्रसाद पृ. 44

तृतीय अध्याय

हिन्दी व्यंग्य साहित्य और व्यंग्य साहित्यकारों में हरिशंकर परसाई का स्थान

हिन्दी व्यंग्य साहित्य की परंपरा और परसाई का स्थान

हरिशंकर परसाई ने साहित्य में व्यंग्य का महत्व रेखांकित करते हुए कहा है कि " व्यंग्य लेखन एक गंभीर कर्म है । कम से कम मेरे लिए । सवाल यह है कि कोई लेखक अपने युग की विसंगतियों को कितने गहरे से खोजता है । उस विसंगति की व्यापकता क्या है और वह जीवन में कितनी अहमियत रखती है । मात्र व्यक्ति की ऊपरी विसंगति - शरीर रचना की, व्यवहार की, बात के लहजे की - एक चीज है । और व्यक्ति तथा समाज के जीवन की भीतरी तहों में जाकर विसंगति खोजना, उन्हें अर्थ देना तथा उसे सामान्य विरोधाभास से पृथक करके जीवन से साक्षात्कार कराना दूसरी बात है । सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है । वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है । अपने से साक्षात्कार करता है । चेतना में हलचल पैदा करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असामंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है ।[1] साहित्य में व्यंग्य के दायित्व को उपरोक्त पंक्तियाँ अत्यंत स्पष्ट रूप से रेखांकित करती हैं । जो व्यंग्य सामाजिकता के प्रति अपना दायित्व निभाने में असफल होता है वह मात्र शब्द का खिलवाड़ करता है । भारतीय साहित्य में खासकर हिन्दी में परंपरा से प्रवाहित होती हुई आ रही है व्यंग्यधारा में सामाजिक असमानता, मिथ्याडंबरों के प्रति, पाखंडों के प्रति तीव्र विद्रोह दिखाई पड़ता है । मानव समाज का उदय जबसे हुआ तब से व्यंग्य ने अपने इस विद्रोही स्वभाव को जीवंत रखा है । वस्तुतः व्यंग्य का उद्भव मानव स्वभाव के अंतर्विरोधों के परिणाम स्वरूप हुआ । समाज की असंगतियों विद्रूपों और उसकी संरचना में मौजूद मानव विरोधी तत्व जब जब सिर उठाने लगे तब उनकी प्रतिक्रिया में जिन संवेदनशील चिंतकों एवं साहित्यकारों ने अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की, उसे प्रभावकारी बनाने में व्यंग्य का महत्वपूर्ण सहयोग है ।

हमारे प्राचीन साहित्य में व्यंग्य का स्वर काफी मुखरित हुआ है । मध्ययुगीन साहित्य में उसकी चरमसीमा और आधुनिककाल में उसकी परिणति को देख सकते हैं । वैसे आधुनिक युग व्यंग्य के लिए खुलासा मैदान की भाँति है । क्योंकि यह भारतीय जनता के लिए एक सर्वथा नये मन्वंतर का युग रहा है । संक्रमण अवस्था में गुजरते, "जीर्ण

जीर्ण संस्कृति" की परंपरागत मान्यताओं को नकारते, नये मूल्यों को स्थापित करने के लिए अपने को समय के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण दायित्व व्यंग्य के साथ था । अतः इस संपूर्ण समाज में नये जीवन मूल्यों को सांप्रदायिक मूल्यों के स्थान पर प्रतिष्ठापित करने के लिए साहित्यकारों ने व्यंग्य का सर्वाधिक सहारा लिया ।

भारतीय समाज की सामाजिक व्यवस्था का गठन ऐसा था कि हमारे यहाँ सामाजिक समता का बिलकुल अभाव था (आज भी है" । जाति-पाँति की भावना और वर्ण व्यवस्था यहाँ इस प्रकार जम गई थी कि जिसे भेदकर बाहर निकलना ही दुष्कर था । एक ओर उच्च वर्ण ब्राह्मण का था, दूसरी ओर निम्न वर्ण शूद्रों का जिसमें भी हरिजनों का था । जहाँ ब्राह्मण वर्ण अपने को भगवान के श्रीमुख से निकला समझता था और अपने को दूसरों की सेवा स्वीकार करने योग्य समझता था, वहीं पर निम्न जाति का वर्ग अपने को शासित समझता था, समझता था यही भगवान का विधान है और उच्च सवर्णों की सेवा करने के लिए ही उसका जन्म हुआ है । एक ओर ब्राह्मण अपनी वर्णीय वरीयता के कारण समाज में श्रेष्ठता का अनुभव कर रहा था तो शूद्र हरिजन वर्ग समाज में हेयता का अनुभव कर रहा था । परिणामतः सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन दिनों दिन बढ़ रहा था । " इसके कारण भारतीय जीवन की एकता नष्ट भ्रष्ट हुई । इससे लोकतंत्र के विकास में बाधा पड़ी । उच्च वर्णों में इसके कारण दिखावे और अहंकार की भावना पैदा हुई । निम्न वर्णों में इसने हीनता और दासत्व की भावना को जन्म दिया । "[2] जाति-पाँति की तत्कालीन समाज की घोर वास्तविकताओं की चर्चा करते हुए डॉ॰ रामधारी सिंह ने लिखा है - " कोई यह सोचता ही नहीं था कि छुआछूत मनुष्यता के प्रति घोर पाप है, कि विधवा विवाह नहीं होने देना नारी जाति के प्रति अन्याय है, कि शूद्र और नारी को वे ही अधिकार मिलने चाहिए जो उच्च वर्ण के पुरुषों को प्राप्त हैं । समाज में भ्रूण हत्याएँ चलती थीं, बालिकाओं का वध चलता था, जहाँ तहाँ सती की प्रथा भी कायम थी और लोग छिपकर नीच जाति की स्त्रियों से भी संबंध रखते थे, किन्तु इन बातों के खिलाफ समाज में कोई नहीं सोचता था । तीर्थों में व्यभिचार के अड्डे बने थे, किन्तु इन बातों को रोकनेवाला कोई नहीं था ।[3] दिनकर की इन पंक्तियों ने भारतीय समाज-व्यवस्था को स्पष्ट रूप से चित्रित तो किया है मगर दिनकर आगे मानते हैं कि उपरोक्त असमानताएं

के विरोध में भारतीय साहित्यकारों ने 19वीं शती के पूर्व कोई आंदोलन ही नहीं किया - " हिन्दुओं का दुर्भाग्य यह था कि वे जीवन को निःसार मानने लगे थे। अतएव जीवन का अपमान एक ऐसी वस्तु का अपमान था जिसका अस्तित्व नहीं था। अन्याय और न्याय में कोई अंतर नहीं था और न कोई अत्याचार ही ऐसा था जिसका उत्तर देना आवश्यक हो। यह बड़ी ही अर्थपूर्ण बात है कि उन्नीसवीं सदी से पूर्व भारतीय साहित्य में कोई भी लेखक या कवि ऐसा नहीं हुआ जो यह कहने का साहस करता कि यह अन्याय है और हम इस अन्याय का विरोध करने को आए हैं।[4] मगर वस्तुस्थिति यह है जिससे दिनकरजी अनभिज्ञ नहीं हैं कि 12वीं से 16वीं तक के भारतीय साहित्य के भक्तियुग में लगभग समस्त भारतीय भाषाओं में जो क्रान्तिकारक साहित्य आया था - उदाहरण के लिए हिन्दी का संत साहित्य, कन्नड़ का शरण साहित्य, दास साहित्य आदि। इनमें सामाजिक असमानताओं, विसंगतियों के प्रति व्यंग्य और आलोचना भरी तो है ही, साथ ही संपूर्ण मानव जाति के प्रति गहरी आस्था फूट फूट कर भरती है। असल में आधुनिक व्यंग्य की प्रेरणाभूमि मध्ययुग ही है।

वर्ण व्यवस्था भारतीय संदर्भ में मनुष्य मनुष्य के बीच दूरियाँ निर्मित करने में मानव सभ्यता के शुरू के दिनों से ही सक्रिय रही है। इसके समांतर वर्ग व्यवस्था इन दूरियों को यथावत् बनाये रखने में अथवा और बढ़ाने में कभी पीछे नहीं रही। वैसे ये दोनों पुरुषार्थ संस्कृति के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं - वे एक दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों में मानव प्रेम का नितांत अभाव है। अपने को अभिजात वर्ग के रूप में स्थापित करने ता उसी रूप में कायम रखने के चक्कर में वे सर्वहारा वर्ग का हमेशा से नजरंदाज करने को तुले हुए हैं। इस वर्ग-समाज के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लेनिन का कहना है - " वर्ग वह चीज़ है जो समाज के एक भाग के श्रम को हड़प लेने का अधिकार बनाती है। यदि समाज का एक भाग हू सारी भूमि हड़प लेता है तो समाज में दो वर्ग जमींदार और किसान बन जाते हैं। यदि समाज का एक भाग तमाम मिलों, कारखानों, शेयरों और पूँजी पर अधिकार कर लेता है और दूसरा भाग इन कारखानों में मजदूरी करता है, तो समाज में दो वर्ग - पूँजीपति और सर्वहारा वर्ग बन जाते हैं।[5] फलतः इन दो वर्गों के बीच संघर्ष, बाह्य और आंतरिक स्तर पर सदा जागृत रहता है।

वस्तुतः मानव जाति का इतिहास इन दो वर्गों के संघर्षों का इतिहास है। प्रेमचंद ने भी इस वर्गव्यवस्था के अविभाज्य अंग, शोषकों की पूँजीवादी संस्कृति की "महाजनी सभ्यता" नामक निबंध में बड़े ही कठोर शब्दों में आलोचना ही नहीं व्यंग्य भी किया है।

मार्क्स की चिंतनधारा ने सर्वहारा वर्ग याने शोषित वर्ग में आत्मबल एवं आत्मविश्वास को देने में जो आंदोलन खड़ा किया, जो कि जगत के इतिहास में उल्लेखनीय उपलब्धि है। " सर्वहारा एकाधिपत्य एक क्रांतिकारी शक्ति है जिसका आधार पूँजीपतियों के विरुद्ध बल का प्रयोग है। "[6] इस वर्ग को सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में उच्च वर्ग के मुकाबले में स्थापित करने का लक्ष्य मार्क्स का है। शोषित एवं शासित व्यक्तियों के प्रति हार्दिक सहानुभूति उन्हें वर्ण एवं वर्ग से अलग करके मनुष्य के रूप में देखने का उदात्त दृष्टिकोण मार्क्सवादी चिंतन धारा का लक्ष्य है जिसका प्रभाव हमारे साहित्य पर व्यापक रूप से पड़ा है। परिणामतः साहित्य में राजनैतिक बोध का और सामान्य से सामान्य तक की संवेदनाओं का प्रतिबिंब हमारे प्रगतिशील साहित्य में देखा जा सकता है। " कला जीवन के लिए " वाले सिद्धांत पर अटल रहनेवाली इस चिंतनधारा में मानव श्रम एवं मानवीय गरिमा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, यह प्रगतिशील मानव की पक्षधरता का साहित्य है। हरिशंकर परसाई आधुनिक हिन्दी के संदर्भ में अत्यंत सशक्त मार्क्सवादी चिंतनधारा के चर्चित लेखक रहे हैं जिनकी रचनाएँ इन्हीं मानव मूल्यों को रेखांकित करती हैं। " परसाई ने भारतीय समाज की वर्ग विसंगति को पहचाना है, उसे अपने लेखन में खोल खोलकर नंगा किया है। खूब उघारा है तथा उसके मर्मस्थलों पर चोटें की हैं। इस तरह परसाई ने भारत के जीवन-दर्शन की मार्क्सवादी मीमांसा की है। उसकी क्रूरतापूर्ण असलियत को निर्ममता पूर्वक सामने रख दिया है... परसाई मनुष्यता के प्रति किये जानेवाले हर षड्यंत्र के विरुद्ध दिखाई पड़ते हैं। परसाई अपने लेखन में उस तिलस्म रूप या व्यवस्था को बदलना चाहते हैं जिसमें मनुष्य अर्थहीन हो चुका है। इस प्रकार परसाई नियति और अस्मिता के लेखक नहीं हैं वे तो सामाजिक जीवन की विडंबनाओं के विश्लेषक हैं।[7]

भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद और ऐसे कितने ही लेखकों ने अपने पैने

व्यंग्य द्वारा शोषकों और शोषितों के जीवन की वास्तविकताओं को व्यंग्य द्वारा उभारने का प्रयत्न किया है, तथापि परसाई की विशेषता इस बात में है कि परसाई के लेखन में प्रेमचंद की तरह विविधता और विस्तार है। लेकिन अंतर यह है कि प्रेमचंद ने शोषण के दुष्परिणामों से भावात्मक हल निकाले हैं। परसाई की वर्ग-दृष्टि परिपक्व है, अतः उन्होंने शोषण की व्यवस्था और उसके परिणामों का चित्रण आलोचनात्मक ढंग से किया है, जो अधिक यथार्थवादी है। प्रेमचंदने सामंतवादी सामाजिक संबंधों की जटिलता को अपनी रचना का विषय बनाया था जबकि परसाई ने मुख्य रूप से पूँजीवादी सामाजिक संबंधों की जटिलता को अपने व्यंग्यों में उतारा है। इस तरह परसाई का लेखन प्रेमचंद युग के लेखन से आगे की कड़ी है।[8]

भारत में अंग्रेजों का प्रवेश और उसके पश्चात् यहाँ की सत्ता को हथियाने के बाद उनकी कार्यशैली में आया परिवर्तन यहाँ के जनजीवन को आघात पहुँचानेवाला रहा है। शुरू में सीमित उद्देश्य से भारत आए ये अंग्रेज धीरे धीरे इतने आक्रामक होते गए कि भारतवासी गुलामी की जंजीरों में जकड़ते गए। भारतीय जनता अपनी जातीय अस्मिता की पहचान तक खोती गई जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीयता का गर्व, अपनी सभ्यता का मोह उनके दिलोदिमाग से गायब होती गई। बदले में राजभक्ति उनके रगरग में समा गई थी। भारतीयों की इस गुलामी मनोवृत्ति की ओर संकेत करते हुए डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं - " यह भारतीय नौकर शाही कंपनी के प्रति उसी प्रकार राजभक्त और विश्वस्त होती जिस प्रकार मनसबदार अपनी शिक्षा-दीक्षा, उचित वेतन, सद्व्यवहार, गौरव प्राप्ति और समुचित उन्नति मिलने आदि कारणों से मुगल सम्राट के प्रति स्वामिभक्त प्रकट करते थे। शासन-संबंधी विभिन्न विभागों से भारतवासियों को अलग करने की यह प्रक्रिया अत्यंत सूक्ष्म और दुरूह रूप धारण करती जा रही थी। भारतीय जीवन से अनभिज्ञ अंग्रेज राज कर्मचारियों के आने से परिस्थिति उत्तरोत्तर शोचनीय ही होती गई। वास्तव में ईस्ट इंडिया कंपनी को पुराने राज्य-कर्मचारियों पर विश्वास नहीं था, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उसे पुराने भारतीय सैनिकों पर विश्वास न रह गया था। उनके स्थान

पर वह अंग्रेज कर्मचारियों को कुछ नियुक्त करना ही अपने लिए श्रेयस्कर समझती थी । इस प्रकार पुराने राज्य-कर्मचारियों के स्थान पर कंपनी के राजकीय क्षेत्रों में क्लर्क, साधारण वणिक और व्यापारी ही भारतीय चरित्र का प्रतिनिधित्व करनेवाले लोग रह गए थे । एक साधारण अंग्रेज उन्हें ही भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक समझता था।... यहाँ तक देशी वकील भी अंग्रेज कर्मचारियों की झिड़कियाँ सहन किया करते थे ।[9] यह थी स्वातंत्र्यपूर्व भारतीयों की हालत । अंग्रेजों का शासन की जड़ें ज्यों ज्यों यहाँ की मिट्टी की गहराई में जमती गईं, त्यों त्यों भारतवासियों की अस्मिता भी लुप्त होती गई । इस देश की संपत्ति को लूटना, यहाँ की जनता को अपमानित करना जारी था । मगर अंग्रेजों की इस शोषक प्रवृत्ति का विरोध तब होना शुरू हुआ जब भारतीय जीवन राजाराम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, अरविंद जैसे महान चिंतकों एवं दार्शनिकों का भारत के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश हुआ । फलस्वरूप धीरे धीरे जनजागृति पैदा होती गई । तत्कालीन लेखक भी अपनी खोयी हुई अस्मिता को पुनः खोजने का प्रयत्न करने लगे । परिणामतः अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति रखते हुए भी भारतेंदु तथा भारतेंदु युग के अन्यान्य लेखकों ने उत्तरोत्तर दिनों में अपनी व्यंग्यात्मक वाणी से अंग्रेजों की शोषक प्रवृत्ति की आलोचना की और भारतीयों को व्यंग्यात्मक प्रहारों से जातीय अस्मिता की जागृति पैदा की । तत्कालीन सभी लेखकों की रचनाओं में जंग लगी भारतीय मानसिकता को व्यंग्य-बाणों से धुनने का काम व्यापक रूप से हुआ है । स्वातंत्र्यपूर्व राजनीति का मुख्य लक्ष्य आजादी को हासिल करना था, अंग्रेजों के चंगुल से अपने को बाहर लाना था जबकि स्वातंत्र्योत्तर दिनों में प्राप्त आजादी को सुरक्षित रखने के लिए संघर्ष करना था ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के जीवन को अधिक झकझोर करनेवाला क्षेत्र राजनीति का है । यह राजनीति जनजीवन पर यहाँ तक हावी हो चुकी है कि व्यक्ति अपनी मानवीय सहज भावनाओं, संवेदनाओं से हाथ धोकर महज "बुद्धि"जीवि बनकर "स्व" केन्द्रित होता गया है । सेवा क्षेत्र के रूप में राजकीय मंच का उपयोग करने के बजाय अपने जीवन की सुख-सुविधाओं की समृद्धि की कामना करते हुए सिद्ध की

भाँति सारे समाज पर राजनीति छायी हुई है । इस गिद्ध की पकड़ में जो भी आता है वह मसला जाता है, उसका सर्वनाश हो जाता है । वर्तमान भारत की राजनीतिक क्षेत्र की त्रासदी यही है । "हममें से कोई भी राजनीति से बच सकता है और न ही राजनीति बुरी चीज़ है । लेकिन राजनीति का इस्तेमाल व्यापक मानवीय हितों के लिए न करके निजी स्वार्थों जोड़-तोड़, साम्प्रदायिकता का जहर फैलाने और सत्ता के दुरुपयोग के लिए करना बुरी बात है । यह सिद्धांतहीन और अमानवीय राजनीति है ।[10] यह सिद्धांत तो आदर्श है किन्तु असलियत भयंकर है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में चूँकि हम लोगों ने राष्ट्रीय चारित्र्य के निर्माण के लिए किसी भी प्रकार का प्रयत्न ही नहीं किया हर कहीं भ्रष्टता, मूल्य हीनता ही नज़र आ रही है, सार्वजनिक क्षेत्र में मूल्यों का ह्रास हो रहा है । यहाँ तक कि शब्दों के असली अर्थ भी अर्थापकर्ष होते गए । खद्दर काँग्रेस, गाँधी, गाँधी टोपी, गाँधी की सरलता, तीसरे दर्जे की रेलयात्रा खद्दर आदि को लोगों ने मज़ाक के साधन बना डाले । ये शब्द जो कि मंत्र की भाँति राष्ट्रजीवन में प्रचलन में थे, स्वातंत्र्योत्तर दिनों में अपने अर्थ खोते गए । आजादी के बाद लंबे अर्से तक काँग्रेस निरंतर सत्ता में रही, पिछले दशक में सत्ता बदली, किन्तु हमारी मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आया । "काँग्रेसी संस्कृति" नाम से एक विशिष्ट संस्कृति प्रचलन में आई । सत्ता बदली, लोग नये आए किन्तु संस्कृति तो वही रही । राजनीति ने हमारे सामाजिक जीवन को झकझोरा है, साहित्यकारों के दिलदिमागों को उद्वेलित किया है परिणाम स्वरूप स्वातंत्र्योत्तर दिनों में प्रकाशित लगभग सभी महत्वपूर्ण उपन्यासों/कहानियों में राजनीति की भ्रष्टता, मूल्यहीनता का चित्रण बड़े विस्तार से किन्तु व्यंग्य के आलोक में मार्मिक रूप से किया गया है । राजनीति की कूटनीतियों और षड्यंत्रों स्वार्थों के पर्दाफाश करने में इन लेखकों को व्यंग्य ने बहुत सहयोग दिया है ।

इस शती के आरंभ से ही भारतीय जनजीवन को झकझोरने वाली सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र की उन विसंगतियों, विद्रूपों की ओर उपरोक्त पंक्तियों में संकेत किया जा चुका है जिनके कारण साहित्यकारों को व्यंग्योन्मुख होना पड़ा । यह व्यंग्य कविता और गद्य में समांतर रूप में अभिव्यक्त हुआ है । वस्तुतः इस शती के

सामाजिक इतिहास और यहाँ के बेढंगीपन को समझने के लिए कविता तथा गद्य साहित्य में अभिव्यक्त व्यंग्य का सूक्ष्मावलोकन करना चाहिए । प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी के उन सब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकारों की चर्चा की गई है जिन्होंने हिन्दी व्यंग्य को सुनिश्चित एवं सशक्त माध्यम के रूप में उपयोग करने के साथ ही साथ उसे एक जबरदस्त विधा के रूप में भी अलग पहचान देने में अपना विशिष्ट योगदान दिया है । आधुनिक हिन्दी गद्य में व्यंग्य जो अपना अलग स्थान स्थापित कर रहा है उसके मूल में यहाँ चर्चित लेखकों के गद्य साहित्य का विषय ही अपना महत्व है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेंदु तक हिन्दी गद्य शैली का निर्माण ही नहीं हुआ था । गंभीर मुद्रा की छाप उनके लेखन पर लगी रहती थी । परिणामतः साहित्य में सरसता की लाना आवश्यक था । अभी तक भाषा साहित्य के कई विधयों का - जो साहित्य के अंग आवश्यक अंग थे - आरंभ तक न हुआ था । भाषा और साहित्य की इस दीन-हीन अवस्था की ओर उनका ध्यान गया । उन्हें भाषा-साहित्य के सब अंगों का ढांचा- सीधा एक स्वरूप उपस्थित करना था, क्योंकि अभी तक गद्य साहित्य का विकास इस विचार से हुआ ही न था कि उसमें मानव जीवन के सब प्रकार के भावों का प्रकाशन हो । अभी तक लिखनेवाले गंभीर मुद्रा में ही बोलते थे । किन्तु " हिन्दी लेखकों में भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने ही, पहले-पहल गद्य की भाषा में हास्य और व्यंग्य का पुट दिया । इस प्रकार की रचना का श्रीगणेश कर उन्होंने बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया, क्योंकि इससे भाषा साहित्य में रोचकता और आत्मीयता उत्पन्न होती है।"[11]

भारतेंदु को/युग प्रवर्तक के रूप में पहचाना जा सकता है । " किंतु राजनीतिक दृष्टि से भारतेंदु युग प्रवर्तक नहीं कहे जा सकते । सामाजिक दृष्टि से उनके विचार प्रगतिशील अवश्य हैं किन्तु क्रांतिकारी नहीं हैं । धार्मिक दृष्टि से वे धर्मनिष्ठ धर्मसुधारक नहीं कहे जा सकते । "[12] साहित्य की विभिन्न विधाओं में उनकी साधना का जहाँ तक सवाल है, किसी को आपत्ति नहीं हो सकती । मगर उनकी विचारधाराओं के अवलोकन से वे एकदम दकियानूसी लगते हैं, एक ओर ब्रिटिश राजसत्ता के प्रति अतीव श्रद्धा थी,

अपने पूरे जीवन भर वे बड़े राजभक्त बने रहे तो दूसरी ओर राजसत्ता की आलोचना का नाटक भी खेलते रहे, एक ओर जाति प्रथा की बुराईयाँ के निंदक थे, दूसरी ओर जन्मना मानी जानेवाली जाति व्यवस्था को नष्ट करने के पक्षपाती नहीं थे। सन् 1877 में महाराज जंग बहादुर के मरने पर जबकि उनकी पत्नी सती हुई तब भारतेंदु ने एक ओर सती महिमा का गान किया, दूसरी ओर विधवा विवाह का विरोध किया। हिन्दी भाषा के स्वरूप पर वे इतने अड़े हुए थे कि उर्दू मिश्रित हिन्दी के हैं खिलाफ थे, इसी को कारण बनाकर हिन्दू मुसलमानों की एकता के भी विरोधी थे, एक तरफ भारत की एकता के नारे लगाते दूसरी ओर मुसलमानों के प्रति संतोषजनक रवैया उनका नहीं था। यह बात दूसरी है जब भारतेंदु साहित्य जगत में प्रविष्ठ हुए, तब उनकी मानसिकता तत्कालीन रीतिकालीन परिवेश से अभी मुक्त नहीं हो पाई थी अतः अंग्रेजों की हुकूमत को " जय जयकार " करते हुए स्वागत करने की प्रवृत्ति भारतेंदु को भी मिलाकर उस युग के बहुत से लेखकों में थी। खासकर भारतेंदु की आस्था परंपरागत मूल्यों के प्रति थी, इसलिए ही ये असंदिग्ध रूप से अपने जीवन भर राजभक्त थे, उनकी प्रशंसा करने में कहीं भी कोई चूक नहीं करते थे इसलिए उन्होंने इस " ब्रिटिश सुशासित भूमि " साक्षात् " राम और युधिष्ठिर का धर्मराज्य "।[13] कहा और इस राज्य की स्थिरता की कामना करते हुए प्रार्थना की है की " ईश्वर करे जब तक फूलों में सुगंधि और चंद्रमा में प्रकाश है...तब तक इनके राज्य की वृद्धि हो।[14] और यहाँ तक उन्होंने चाहा कि " हे ईश्वर जब तक गंगा-यमुना में पानी तब तक इनका राज स्थिर रहे।[15] कहने का मतलब यह है कि भारतेंदु अंदर से राजभक्त ही रहे मगर बाहर से उसके कटु आलोचक तब हुए जबकि उन्होंने ब्रिटिश शासन में दोषों को देखा। इन दोषों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया कभी भगवान की शरण में जाकर प्रार्थना करने में है - कहाँ करुणानिधि केशव सोए,[16] तो कहीं निराश होकर अपना दुखड़ा रोने में है - " रोवहु सब मिलिके आवहु भारत भाई।[17] और कभी यहाँ तक कि इस स्थिति का सुधार करने स के लिए कल्कि अवतार की भी वे प्रतीक्षा करते हैं।[18] इन पंक्तियों के बावजूद भी भारतेंदु के मन में अंग्रेजों के प्रति परदेश भावना आई हो, ऐसी बात नहीं है। अंग्रेजों के प्रति उनकी राजभक्ति पर कोई आँच नहीं आई। हाँ, अंग्रेजी राज में जब कोई दोष देखा तब भारतेंदु ने उस पर व्यंग्य कटाक्ष किया है।

" नए जमाने की मुकरी " तथा " अंधेर नगरी " उनके राजनीतिक व्यंग्य के उदाहरण हैं। बेकस पर ब्रिटिशों के शासन को व्यक्त करने के लिए उन्होंने " रूल ब्रिटानिया रूल दी वेवस " लिखा है और राजपुत्र के भारत आने पर स्वागतार्थ इकट्ठे हुए " निज देस उजार "[19] करनेवाले देशी राजाओं की भीड़ पर व्यंग्य किया है। भारतेंदु ने धार्मिक अंधविश्वासों पर व्यंग्य किया है। आधुनिक शिक्षा और पुनर्जागरण के आंदोलन के कारण धर्म में सुधार लाना आवश्यक हो गया था। ईसाई मिशनरी भी हिन्दूधर्म की विकृतियों पर आक्रमण कर रही थी। परिणामतः सन् 1873 में सनातन धर्म रक्षिणी सभी की स्थापना की गई। भारतेंदु ने इसी वर्ष तदीय समाज की स्थापना की। इन्हीं दिनों पाखंड विडंबन के माध्यम से धार्मिक अंधविश्वासों और पाखंडों पर प्रहार किया है। " धर्माभास-पाखंडदर्शनाथ" और "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" नामक पुस्तक लिखकर धार्मिक एवं अंधविश्वासों पर प्रहार किया है। भारतेंदु के व्यक्तित्व की वैचारिक सीमाओं के बावजूद भी पाँचवें पैगंबर, लेवी प्राण लेवी, स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन, कंकड़ स्तोत्र आदि व्यंग्यात्मक रचनाओं में उन्होंने सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश किया है।

प्रताप नारायण मिश्र

हिन्दी साहित्य के आकाश में हरिश्चन्द्र के उदय होने के पीछे ही दिन के पश्चात् एक ऐसा चमकता तारा उदय हुआ था, जिसकी चमक दमक को देखकर उसे लोग दूसरा चंद्र कहने लगे थे। उस चन्द्र के अस्त हो जाने के बाद इस तारे की ज्योति बड़ी बड़े हर्ष के साथ कितनों ही के मुँह से यह ध्वनि निकलने लगी कि यही उस चंद्र की जगह लेगा.... इसका नाम प्रताप नारायण मिश्र था।[20]

हिन्दी गद्य और पद्य के लिखने में हरिश्चन्द्र जैसे तेज, तीखे, और बेधड़क थे, प्रतापनारायण भी वैसे ही थे। दूसरे लोग बहुत सोच-सोचकर और बड़ी चेष्टा से जो खूबियाँ अपने गद्य और पद्य में करते थे, वह प्रतापनारायण मिश्र को सामने पड़ी मिल जाती थीं। रहना, सहना, उठना, बैठना, लिखना, पढ़ना, सब एक

साथ होता था ।...वह बातें करते करते कविता करते थे, चलते-चलते गीत बना डालते थे, सीधी-सीधी बातों में दिल्लगी पैदा करते थे ।[21]

प्रताप नारायण मिश्रजी के व्यक्तित्व को उपरोक्त पंक्तियाँ रेखांकित करती हैं । प्रतापजी अपने समय के अत्यंत प्रतिभावान्, एवं फक्कड़ स्वभाव के मनमौजी थे । आधुनिक हिन्दी के प्रथम चरण के लेखकों में से निबंधकार एवं कवि के रूप में इनका उल्लेखनीय योगदान है । प्रताप भारतेंदु के अनन्य व अनुचर थे, उनकी लेखन शैली व विचारधाराओं से प्रभावित थे । फलस्वरूप हम इनके लेखन में भी भारतेंदु की जबर्दस्त व्यंग्य-शैली का प्रतिफलन देख सकते हैं ।

प्रतापजी के लेखन में कहीं भी रहस्य, छुपा-छिपी का अंदाज नहीं है अपितु एक खुला मन और समाज की भलाई के लिए तड़पनेवाले अशांत चित्त को क्रियाशील देखते हैं । उनके प्रेमभाव, स्वाभिमान, सहृदयता, सत्यनिष्ठा, स्पष्टवादिता, समाज सुधार की छटपटाहट, हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के लिए उनका समर्पण व भाव व सभी उनके कृतित्व में उजागर हैं । उनका हरफनमौलापन, उनकी फक्कड़ तबीयत और दिल्लगी-ठिठोली करने की उनकी प्रवृत्ति सब उनकी रचनाओं में लबालब है ।[22] प्रताप ने 1883 में एक "ब्राह्मण" नामक मासिक का प्रकाशन शुरू किया जोकि मुक्त विचार, चिंतन और अभिव्यक्ति का मंच था । "ब्राह्मण" पत्रिका का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उसके आरंभिक अंकों में उन्होंने लिखा कि ... " इससे हमारा आना आप के लिए कुछ हानिकारक न होगा, वरन कभी न कभी कोई न कोई लाभ ही हू पहुँचावेगा क्योंकि हम वह ब्राह्मण नहीं कि केवल दक्षिणा के लिए निरी ठकुर सुहाती करें। अपने काम से काम । कोई बने या बिगड़े, प्रसन्न रहे या अप्रसन्न ।.. हम निरे मत मतांतर की बातें कभी न करेंगे कि एक की प्रशंसा दूसरे की निंदा हो । वरंच वह उपदेश करेंगे जो हर प्रकार के मनुष्यों को मान्य, सब देश, सब काल के साध्य हो, जो किसी के भी विरुद्ध न हो, ...वास्तविक वैर हमारा किसी से नहीं है, पर अपने धरमेष से लाचार हैं । कभी राज्य संबंधी, कभी व्यापार संबंधी विषय भी सुनावेंगे, कभी कभी गद्य पद्यमय नाटक से भी रिझावेंगे । इधर-उधर के समाचार तो सदा देंगे ही ।

इसको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा, जिस तरह सब जहान में सब कुछ है हम भी अपने गुमान में कुछ हैं ।[23] प्रस्तुत अवतरण में मिश्र ने तत्कालीन समाज की मानसिकता का बड़े ध्यान से गौर किया है । इसलिए ही उन्हें "ब्राह्मण" शब्द को गलत न समझने की अपील करनी पड़ी है । उन्होंने स्पष्ट कहा है कि केवल समाज के कुरीतियों को बिना किसी की परवाह किये प्रकट करने का उद्देश्य है ।

प्र.ना. मिश्र विनोदी प्रकृति के थे । उनकी रचनाओं में विनोद तथा हास्य के आवरण में व्यंग्य का जो पुट होता था, वह सुनने पर एकदम चोट करता था । कुछ नमूने हैं -

" उन दिनों पादरियों का भारतीय निर्धनों और अछूतों को ईसाई बनाने का काम बहुत जोरों पर था । मिश्रजी बराबर उनकी टोह में रहा करते थे । एक दिन एक पादरी ने उनकी हँसी उड़ाने के लिए पूछा - " आप लोग गाय को माता कहते हैं न ?

मिश्रजी कुछ उसकी बात समझे, कुछ नहीं समझे । उनके मुँह से निकला - "हाँ साहब" ।

पादरी ने दूसरा प्रश्न किया - तब बैल आपका पिता हुआ न ? "
मिश्रजी अब उसका मतलब समझ गए , परंतु नासमझ की तरह बोले - " हाँ साहब । जो रिश्ता है, वह तो मानना ही पड़ेगा ।

पादरी ने आखिर वार किया - " उस दिन मैंने एक बैल को मैला खाते देखा था ।

मिश्रजी ने तड़ाक से उत्तर दिया - जरूर देखा होगा साहब । परंतु वह बैल भी ईसाई हो गया होगा । ऐसे बहुत से बैल हमारे समाज में हैं ।

पादरी बेचारा अपना सा मुँह लेकर रह गया ।[24]

धर्म परिवर्तन करनेवाले ईसाइयों पर, और हिन्दुओं की धार्मिक श्रद्धा पर कटाक्ष करनेवालों पर मिश्रजी का व्यंग्य बड़ा ही अच्छा है ।

प्र.ना. मिश्रजी के व्यक्तित्व में आत्मव्यंग्य करने की उदारता भी थी ।

ये तो ब्राह्मण थे । और उन्हें अपनी जाति की कूपमंडूकता से उन्हें चिढ़ थी अतः अपने स्वजनों का व्यंग्य करनेके अवसरों से वे कभी चूकते नहीं थे ।

अपनी पत्रिका "ब्राह्मण" में प्र. ना. मिश्र बराबर सामाजिक-धार्मिक राजनीतिक पाखंडों पर व्यंग्य किया करते थे जिनके कुछ और उदाहरण हैं -

" यदि वेद, बाइबल और कुरानादि एक एक प्रति अग्नि तथा जल में डाल दी जाय, तो जलने अथवा गलने से कोई न बचेगी । फिर एक मतवाला किस शेखी पर अपने को अच्छा और दूसरे को बुरा समझता है । "

देशी कारीगरी को देख ही नाके नहीं पूछते । विशेषतः जो छाती ठोक ठोककर, तासी बजवा-बजवाकर, कागज के तख्ते रंग-रंग कर देशहित के गीत गाते फिरते ह हैं, वह और भी देशी वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बईद समझते हैं । प्र. ना. मिश्रजी आधुनिक हिन्दी निबंध को रूप देनेवालों में से हैं । उनकी निबंधशैली की विशेषता इस बात में है कि जिस किसी भी वस्तु को लिखने की सामग्री बनाते हैं उसके अंतरंग में जाकर परतों-दर-परतों को उसकी खूबियों और ब कमियों को उजागर करते हैं हैं । इस विश्लेषण में कहीं भी पाठक उदास नहीं होता है । व्यंग्य सदाबहार की भाँति उनके निबंधों पर छाया रहता है । उनके निबंधों में मौजूद व्यंग्य-शैली के एक दो नमूने हैं -

"खुशामद वह चीज़ है कि पत्थर को मोम बनाती है । बैल को दूहके दूध निकालती है । विशेषतः दुनियादार, स्वार्थपरायण, उदरभर लोगों के लिए इससे बढ़के कोई रसायन नहीं है जिसे यह चतुराक्षरी मंत्र न आया, उसकी चतुरता पर छार है, विद्या पर धिक्कार है और गुणों पर फटकार है । कोई कैसा ही सज्जन, कुलीन, निर्दोष, न्यायशील, नम्रस्वभाव, उदार, सद्गुणागार, साक्षात् सतयुग का औतार क्यों न हो, पर खुशामद न जानता हो तो इस ज़माने में तो उसकी मट्टी ख्वार है, मरने के पीछे चाहे ई भले ही धुवकी मुकुट का मणि बनाया जाय । (खुशामद निबंध से ब्राह्मण खंड, संख्या 5)

बुद्धिमान पाठक स्वयं समझ लें कि धरती माता को वृक्षों से क्या सुख मिलता है । पर खेद है हमारी गवर्नमेंट ने हमारे देश के वन उजाड़ने पर कमरबाँध रखी है और उसकी

देखादेखी हमारे छोटे छोटे जमींदार भी अपनी भूमि में बीघा भर धरती भी छ पड़ी हुई देखते हैं तो किसानों को उठा देते हैं । जब से हमारे देश में वृक्षों का नाश होने लगा तभी से हमारी धरतीमाता जीर्ण हो गई । वर्षा की न्यूनता और दोषों की वृद्धि हो गई । ।धरती माता की पूजा - ब्राह्मण खंड-5 संख्या 10।

पृ.ना. मिश्र ने व्यंग्य को अपने लेखन का अविभाज्य अंग माना है, समाज और व्यक्ति के अंतर्संबंधों को सुदृढ़ बनाना उनका लक्ष्य है । इसलिए ही साधारण से साधारण वस्तु पर लिखते समय वे जितने पूर्ण ढंग से शुरू करते हैं उतने ही गंभीर तेवर में आकर वस्तु की परिधि में सामाजिक विषयों की चर्चा करके दोषों पर व्यंग्याघात करते हैं । " दिन थोड़ा है, दूर जाना है, यहाँ ठहरें तो मेरा निबाह नहीं है, मुक्ति की धूम, बात, देशी कपड़ा, मरे को मारे शाह मदार, खुशामद, ट । ट। ट।, दाँत, आप जैसे शीर्षकों को देखते ही उनकी दृष्टि का परिचय मिलता है । पं.प्रताप नारायण मिश्र का व्यंग्य-विनोद केवल मनोरंजन के लिए नहीं था, वे जागरूक हिन्दी सेवी थे और कभी विनोद की पुचकार से और कभी व्यंग्य की मार से अपने समाज को सचेत करके उन्नत पथ पर ले जाना चाहते थे । व्यंग्य विनोद का वस्तुतः यही स्वस्थ उद्देश्य भी है और इसलिए मिश्रजी के विनोद में छिछलापन नहीं है और न उनके व्यंग्य में चुटीला या पैनापन है जो किसी को आहत कर सके ।[25]

पंडित बालकृष्ण भट्ट

पंडित बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युगीन लेखक थे, नाना भाषाओं के ज्ञाता, बड़े विद्वान, समाज सुधारक और अप्रतिम देशभक्त थे । अपनी जीविका के लिए जीवन भर नाना कठिनाइयों एवं संघर्षों का सामना किए जाने के बावजूद, अपने युग को, समाज को इतना चाहते थे कि उनके लेखन में भारतेंदु युग की सारी हालतें एकदम उजागर हो उठी हैं । गंभीर विचारक होने के नाते इनकी कृतियों में आत्मावलोकन के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है तथापि हास्य विनोद भी पर्याप्त मात्रा में उभर आया है । इनकी रचनाओं में व्यंग्य का पुट इतना तेज है कि वह पाठकों को सोचने के मजबूर किए बिना नहीं रहता है ।

G3802

पं॰भट्टजी ने 1877 में " हिन्दी वर्द्धिनी " के तत्वावधान में कुछ मित्रों के सहयोग से प्रकाशित " हिन्दी प्रदीप " का संपादकत्व स्वीकार किया और वे उसे करीब 30 वर्ष तक सफलतापूर्वक चलाते रहे । इस पत्रिका के माध्यम से इन्होंने साहित्य, समाज, राजनीति पर अपने विचार व्यक्त किए । साथ ही साथ साहित्य की नाना विधाओं के विकास के लिए वह पत्रिका एक मंच के रूप में काम करती रही । हिन्दी प्रदीप के मोटो के रूप में भारतेंदु की कविता प्रकाशित होती थी जोकि इस प्रकार है -

शुभ सरस देश सनेह ॥ पूरित प्रगट ह्वै आनंद भरै
बचि दुसह-दुर्जन वायु सो मणि दीप समथिर नहिं टरै ।
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें-जरै ।
" हिन्दी प्रदीप " प्रकाश मूरखतादि भारत तम हरै ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पं॰बा॰भट्टजी आजीवन क्रियाशील रहे । भट्टजी के [illegible] व्यंग्य के कुछ नमूने हैं -

हम अपने नादेहन ग्राहकों से निवेदन करते हैं कि वे अब भी हमारा मूल्य जो कुछ उनके पास बाकी है, इस मास के भीतर चुका दें नहीं तो अब हम उनके नाम गोत्र का पत्र ही लैंगे । विशेष निवेदन उनसे है जो वर्ष भर बराबर पत्र ले दाम देने की जून पत्र लौटाय चुपचाप बैठ रहे हैं, क्योंकि जब वे हमारी ग्राहक श्रेणी को भी अपने नाम से भूषित नहीं किया चाहते तो हम व्यर्थ में क्यों उनका शील बनाये रहैं" ।हिन्दी प्रदीप - फरवरी 1880। ग्राहकों से चंदा वसूल करने के लिए भट्टजी ने निवेदन द्वारा जो उनकी कंजूसी पर कटाक्ष किया है, वह ॥ लाजवाब है । यहाँ के व्यंग्य में इतना जोरदार प्रभाव है कि इसको पढ़कर पत्रिका मँगाए हुए ग्राहक अवश्य चंदा चुका दिए होंगे ।

" एक पंडितजी वर्ण विवेक पर कुछ वक्तृता कर रहे थे, इतने में एक मसखरा बोल उठा - पंडितजी, कुत्ते की जाति क्या है ? हिन्दू या मुसलमान ? पंडितजी ने उत्तर दिया - " कुत्ता तो हिन्दू मालूम होता है, क्योंकि जो मुसलमान होता तो दूसरे कुत्ते को अपने साथ खिलाने में न भूँकता । ।हिन्दी प्रदीप सितंबर - 1879।

इसका व्यंग्य मुसलमानों के स्वभाव पर तीक्ष्ण रूप से चोट करता है ।

" माजीदीन, मतुरिया दीन, गंगादीन, दुर्गादीन, सीतला दीन, मातादीन भगवानदीन आदि दीनवाले नामों की हीन दशा पर हमें भी नई कल्पना सूझती है उचित अधीरन दीन।... हम लोग कहाँ तक बुद्धि-विस्तार में दरिद्र हो रहे हैं यह हम लोगों के छुन्ना, मुन्ना, कल्लू, मूड़, चिथरू आदि नामों से प्रकट है, वरन् इसी बुद्धि की दरिद्रता ने हम लोगों में एक ख्याल पैदा कर रखा है कि घिनौना नाम रखने से बालक चिरंजीवी होता है... मारवाड़ी और दिल्ली आगरा के खत्रियों के नाम में बहुधा मल लगा रहता है। जिनके नाम में मल है तो उनके काम में कहाँ तक मल न होगा...। नाम की नई कल्पना।

घिनौने नाम रखकर अपने बालकों को चिरंजीव देखने की मनोवृत्ति पर भट्टजी ने व्यंग्य किया है।

वकील, बैरिस्टर तथा जज लोग दीर्घजीवन इसलिए चाहते हैं कि कानूनों के जाल में प्रजा को फँसाने के लिए हिन्दी की चिन्दी निकाल कानून की बारीकियों में सान चढ़ाते रहें। एडिटर दीर्घ जीव इसलिए चाहते थे कि अपनी कलम के जोर से राजा और प्रजा दोनों की भलाई करते हुए अपनी लिखावट से पढ़नेवालों का मन अपनी ओर खींच लें पर सेडिशन के भय ने उन्हें संकुचित कर दिया तो उनका हौसला पस्त हो गया। हमारे सेठजी दीर्घ जीवन की इच्छा इसलिए रखते हैं कि थैलिया पर थैलिया रुपयों से भर तहखानों - तेहखानों में सैंत के रखते जायें। (दीर्घायु)

प्रस्तुत निबंध " दीर्घायु " में वकील, बैरिस्टर, जज, एडिटर जैसे ब बड़े बड़े लोग क्यों दीर्घायु होना चाहते हैं, इसका राज पं. भट्ट ने अत्यंत मार्मिक ढंग से खोला है, व्यंग्य के सहारे। यहाँ के व्यंग्य में उनके असली उद्देश्य का रहस्योद्घाटन किया है।

बालकृष्ण भट्ट अत्यंत उदारवादी थे, जाति-पाँति, छुआछूत को सामाजिक अभिशाप मानते थे। जो कट्टर लोग थे, उन पर इन्होंने जो व्यंग्य किया है, उससे लेखक की प्रगतिशील दृष्टि का परिचय मिलता है। सच्चे व्यंग्यकार के रूप में मानव कल्याण को मद्दे नज़र रखकर चलनेवाले के रूप में भट्ट की रचनाधर्मिता दिखाई पड़ती है। हिन्दी प्रदीप के अगस्त 1881 में प्रकाशित " सर्वनाशे, समुत्पन्ने अर्धत्यजति पंडितः "

शीर्षक निबंध इस बात का उदाहरण है - " हे कुलाभिमानी हमारे आर्यो, झूठी शान की उत्तमता के अभिमान में अंध, हे पैसा छील-छीलकर खानेवालों दंभ के अवतार, हे दक्षिणा-लोलुप मूर्खता को सिरे रखे मोटे तोंदवाले पुरोहित तथा पाधाओ, कमबख्ती की निशानी अक्ल के कोते, तरक्की के दुश्मन, बाबा आदम के वक्त के x खूसट हिन्दुओं के बुड्ढे... खाने पीने का परहेज जिसे तुम हिन्दूपन की नाक समझ बैठे हो, उसका नई रोशनी की करतूत से अब सर्वनाश होनेवाला है, इसलिए उचित है कि उसका कुछ कुछ ढीला कर दो, नहीं तो पछताओगे... बाप बड़े होमी फूंक फूंक पाँव रखते, बेटा अनाचार की गठरी सिर पर लादे, उचित है, जब कोई वस्तु अधिक दाम पायगी अवश्य छिटककर अलग जा गिरेगी ।

एक ब्राह्मण होकर ब्राह्मणों पर, सनातनियों पर उनकी कट्टरता पर चोटों की झड़ी लगाकर उनके विशिष्ट गुणों को गिनना वास्तव में भट्टजी जैसे निर्भीक व्यक्तित्ववाले ही कर सकते थे । उनके निबंधों में व्यंग्य का स्वर अत्यंत गंभीर रहा है x जो कभी हल्का रूप नहीं लेता है ।

उनके स्वराज्य सर्वनाशी सहानुकम्पा, चटपुरिया, हम लोगों के दाम का क्रम, जैसे वैचारिक निबंधों में तत्कालीन सामाजिक धार्मिक विचारों का विश्लेषण किया है तो चलन, बातचीत, मेला ठेला, संसार कभी एक सा नहीं रहा, उपदेशों की x अलग बानगी, जवान, सो लगी रहे, नाम में नई कल्पना, चढ़ती उमर, दीर्घायु, मनुष्य के जीवन की सार्थकता आदि-मध्य-अवसान जैसे निबंध लघु हास्यात्मक निबंध होते हुए भी व्यंग्य के आवरण से अपने को बचा नहीं पाये हैं । भट्ट ने तत्कालीन समाज की मानसिकता का अनावरण करने का बड़ा ही सफल प्रयास किया है ।

बालमुकुंद गुप्त

आधुनिक हिन्दी गद्य के आरंभिक चरण में उसे वैचारिक गरिमा, अभिव्यक्ति की तीक्ष्णता के द्वारा उसे प्रतिष्ठा प्रदान करनेवाले लेखकों में बालमुकुंद गुप्तजी का महत्वपूर्ण स्थान है । भारतेंदुयुग के इस महत्वपूर्ण लेखक को हम भारतेंदु के उत्तराधिकारी के

रूप में भी देख सकते हैं । इनके निबंधों में विदेशी-शासन और शासकों के प्रति जैसा पैना व्यंग्य है वैसा उस काल के किसी भी लेखक में नहीं है । " इनके व्यंग्य इतने तीक्ष्ण होते, ये [illegible] कि सीधे मर्मस्थल पर चोट पहुँचाते थे । " शिवशंभु के चिट्ठे " हास्य और व्यंग्य शैली में लिखे गए निबंध हैं जिनमें निबंधकार की विश्लेषणात्मक शक्ति की निपुणता मोहक है, इनकी भाषा सजीव [illegible] और स्निग्ध है । इनकी शैली में प्रवाह और गति है ।[26]

बा.मु.गुप्त का पत्रिकाओं के साथ बड़ा घनिष्ठ संबंध था । अखबारे चुनार (18 कोहेनूर (1888) हिन्दोस्तान (1889) हिन्दी बंगवासी (1893) भारतमित्र (1889 जैसी पत्रिकाओं में या तो ये संपादक के रूप में या तो संपादक मंडल में काम करते रहने के कारण इनका संबंध आम जनता के साथ बराबर बना रहा । फलस्वरूप इनके लेखों औ निबंधों में इन्हीं के दास्तान गुप्तजी की [illegible] कलम से मूर्तिमय [illegible] पाते रहे ।

" भारतमित्र " के संपादन का दायित्व बा.मु.गुप्त ने 1899 को ग्रहण किया और 1907 तक उस अखबार से जुड़े रहे । इस दौरान उन्होंने "भारतमित्र" को अखिल भारत के स्तर पर स्थापित किया और उसके साथ ही स्वयं भी लब्ध प्रतिष्ठ लेखक के रूप में ख्यात हुए । इस अवधि में ही उनकी लेखन शैली का चरम विकास हुआ । इसी " भारतमित्र " में हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में अद्वितीय " शिवशंभु के चिट्ठे " छपे जिनने अपनी धाक जमा दी और धारदार व्यंग्य वाक्य लिखनेवाले साहसी देशभक्त हिन्दी लेखक के रूप में उन्हें कालजयी ख्याति दिलायी ।[27]

बा.मु.गुप्त की खासियत इस बात में है कि तत्कालीन शासकों की राजनीति से वे इस कदर क्षुब्ध थे कि उनको बराबर लगा कि विदेशी शासन में भारत का उद्धार कभी संभव नहीं होगा । अतः " शिवशंभु के चिट्ठों " के रूप में वे इस शासन पर प्रहार करते गए । "शिवशंभु के चिट्ठों" की विशेषता इस बात में है कि यहाँ शिवशंभु मात्र पत्र नहीं लिखता अपितु अशिक्षित भारतीयों का प्रतिनिधि बनकर वह पत्रों का नायक भी बनता है, अपने देश को सुंदर से सुंदर बनाने का सपना देखता है ।

मगर उन सपनों को साकार न होते देखकर बुलबुलों की भाँति छटपटाता है, शिवशंभु के अनुसार भारतीयों की स्थिति इन बुलबुलों की भाँति है । भारतीयों की इस निरीह स्थिति का वर्णन एवं व्यंग्य बा.मु.गुप्तजी ने अपने अनेकों निबंधों में किया है। उदाहरण के लिए बनाम लार्ड कर्जन शीर्षक निबंध में व्यक्त तीक्ष्णता एवं सूक्ष्म व्यंग्य को देख सकते हैं -

" बुलबुल पकड़ने की नाना प्रकार की कल्पनाएँ मन ही मन में करता हुआ शिवशंभु सो गया । उसने देखा कि संसार बुलबुलमय है । सारे गाँव में बुलबुलें उड़ रही हैं । अपने घर के सामने खेलने का जो मैदान है उसमें सैकड़ों बुलबुलें उड़ती फिरती हैं । फिर वह सब ऊँची नहीं उड़तीं । बहुत नीची नीच उड़ती हैं । उनके बैठने के अड्डे भी नीचे नीचे हैं । वह कभी उड़कर इधर जाती है और कभी उधर, कभी यहाँ बैठती हैं और कभी वहाँ, कभी स्वयं उड़कर बालक शिवशंभु के हाथ की उँगलियों पर आ बैठती हैं । शिवशंभु आनंद में मस्त होकर इधर उधर दौड़ रहा है । उसके दो-तीन साथी भी उसी प्रकार बुलबुलें पकड़ते और छोड़ते कूदते फिरते हैं ।

... आपने माई लार्ड ! जब से भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने के योग्य काम भी किया है ? खाली अपना खयाल ही पूरा किया है या यहाँ की प्रजा के लिए भी कुछ कर्तव्य पालन किया ?... आप बारंबार अपने दो खूब सराह से भरे कामों का वर्णन करते हैं । एक विक्टोरिया मेमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली दरबार । पर जरा विचारिये तो यह दोनों काम "शो" हुए या "ड्यूटी" ? विक्टोरिया मेमोरियल हाल चंद पेट भरे अमीरों के दो एक बार देख आने की चीज होगा । उससे दरिद्रों का कुछ दुःख घट जायेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जायेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे ।... अब खुलासा बात यह है कि एक बार "शो" और "ड्यूटी" का मुकाबिला कीजिए "शो" को "शो" ही समझिए । "शो" ड्यूटी नहीं है । माई लार्ड ! आपके दिल्ली दरबार की याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जायेगी जितनी शिवशंभु शर्मा सिर में बालकपन में उस सुखस्वप्न की है ।[28]

इस प्रकार के प्रहारात्मक गद्य द्वारा ब्रिटिशों को "शी" और "ड्यूटी" का अर्थ जिस तरीके से व्यंग्य की नोक से बा.मु.गुप्त ने समझाया है, वह अपने ढंग का अनन्य विद्रोह है । उन दिनों में जबकि आज़ादी का आंदोलन ज़ोर पकड़ नहीं पाया था, गुप्त ने ब्रिटिशों के "दिल्ली दरबार" को ख़तम करने का सपना देखकर उसको स्पष्ट लिखा है । यहाँ का व्यंग्य विपक्षी पर एक आघात है ।

बा.मु.गुप्त "शिवशंभु के चिट्ठों" में तत्कालीन भारत की दुर्दशा का चित्रण है जिनको चलचित्र की भाँति गुप्त उन शासकों के सामने प्रस्तुत करते जाते हैं। अपने एक पत्र में नगर की दशा का चित्रण यों करते हैं । - "यदि किसी दिन श्रीमान् शिवशंभु शर्मा के साथ माइ लार्ड नगर की दशा देखने चलते तो वह देखते कि इस महानगर की लाखों प्रजा भेड़ों और सुअरों की भाँति सड़े-गंदे झोंपड़ों में लोटती हैं । उनके आस-पास सड़ी बदबू और मैले सड़े पानी के नाले बहते हैं, कीचड़ और कूड़े के ढेर चारों ओर लगे हुए हैं । उनके शरीरों पर मैले-कुचैले-फटे चिथड़े लिपटे हुए हैं... जाड़ों में सर्दी से अकड़कर रह जाते हैं और ग्रीष्म गर्मी में सड़कों पर घूमते तथा जहाँ तहाँ पड़ते फिरते हैं । बरसात में सीलीले घरों में भीगे पड़े रहते हैं । सारांश यह कि हरेक ऋतु की तीव्रता में सबसे आगे मृत्यु के पथ का वही अनुगमन करते हैं ।

ऐसे पत्रों में अभिव्यक्त व्यंग्य किसी व्यक्ति को लेकर नहीं अपितु पूरे समाज, देश और व्यवस्था को लेकर है । और ऐसे व्यंग्य लिखने के लिए साहस चाहिए और यह साहस गुप्तजी में था, अत्यंत निर्भीक पत्रकार के रूप में उन्होंने देश के सामने ज़ोरदार प्रतिमान स्थापित किये हैं, कलम को बंदूक से भी सर्वशक्तिमान स्थापित किया है । विदेशी सत्ता की बिगड़ी हुई हालातों का अत्यंत सशक्त भाषा में प्रस्तुत किया है । इन सबसे बढ़कर अपने व्यंग्य प्रहारों से लोक कल्याण का ध्यान बराबर बनाये रखा है । गुप्त ने व्यंग्य को एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया ही है, साथ ही नाना विषयों पर बड़े गंभीर लेख भी लिखे हैं । हर कहीं उनका दृष्टिकोण उदारवादी रहा, देश की भलाई को मद्दे नज़र रखकर चिंतन करता रहा ।

चंद्रधरशर्मा गुलेरी

चंद्रधर शर्मा गुलेरी हिन्दी के सशक्त गद्यकार और कथाकार हैं। 1883 में जन्मे गुलेरी अपने समय के बड़े विद्वान एवं प्रोफेसर थे। इन्होंने लिखा कम, किन्तु जितना लिखा उसमें युगचेतना और मानवीय अनुकंपा को स्वर दिया है। इनके साहित्य में व्यंग्य के अनेकों स्थल ऐसे हैं जहाँ सामाजिकता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता की दृष्टि स्पष्ट रेखांकित होती है। व्यंग्य विधा को साहित्य में एक परिनिष्ठित रूप देने की दिशा में गुलेरीजी के योगदान को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है।
" इनके हाथों में पड़कर व्यंग्य भारतेंदु युग की अपेक्षा अधिक परिमार्जित और द्विवेदी युग के अन्य लेखकों की अपेक्षा अधिक वीर्यवान और मांसल हुआ। उनके "कछुआ धरम" नामक निबंध में हिन्दुओं की पलायन प्रक्रिया, प्रतिरोध की शक्ति के अभाव और अंधी रूढ़िवादिता पर जो जोरदार व्यंग्य किया गया है, वह उस समय के शिष्ट समाज के किसी अन्य लेखकों के बूते की बात न थी।[30] वैसे उनके पूरे निबंधों में व्यंग्य का तो सबसे बड़ा स्थान है। यहाँ विनोद है, मगर यह विनोद हास्य से बोझिल नहीं अपितु गंभीर है। अत्यंत उदार, तर्कयुक्त, प्रगतिगामी दृष्टि से संपूरित इनका व्यंग्य निर्माणात्मक है, नेत्यात्मक नहीं। सोचने और चिंतन करने को ये व्यंग्य-स्थल पाठकों को प्रेरित करने में सक्षम हैं। गुलेरी के व्यंग्य के कुछ नमूने हैं -

सोमरस की एक घूंट के लिए अपनी पवित्र गाय को बेचनेवाले हिन्दुओं की मानसिकता का व्यंग्य देखते ही बनता है -

" ये कहते कि गौ की एक कला में सोम बेच दो। वह कहता कि वाह! सोमराज का दाम इससे कहीं बढ़कर है। इधर ये गौ के गुण बखानते। कहते कि इस गौ से दूध होता है, मक्खन होता है, दही होता है, यह होता है, वह होता है, पर काबुली काहे को मानता, उसके पास सोम की मनोपली थी और इन्हें बिना लिए सरता नहीं।.... वैसे मुसलमानों के यहाँ सूद लेना हराम है, पर हिन्दू साहूकारों को सूद देना हराम होने पर भी देना ही पड़ता है, वैसे यह तो फतवा दिया गया कि गंधर्वों के हाथ गौ बेचकर सोम लेना पाप नहीं कहला सकता। "

मनुष्य के स्वभाव से गुलेरी अच्छी तरह परिचित थे । इस संबंध में उनकी व्यंग्योक्तियाँ हैं -

मद्रदेश की स्त्री से यदि कांजी माँगो तो वाधि समेटकर कहती है कि मैं अपने बेटे को दे दूँ, पति को दे दूँ, पर कांजी न दूँ ।

0 0 0

युगंधर ।देश। में जल पीकर, अच्युत स्थल में रहकर और भूतलय में नहाकर भला कहीं स्वर्ग को जा सकता है ?

0 0 0

यहाँ ब्राह्मण क्षत्रिय हो जाता है, नाई फिर ब्राह्मण हो जाता है ।

।संस्कृत की टिपरारी - सरस्वती अप्रैल 1918 पृष्ठ 201-204।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने समय के साहित्य एवं भाषा शिल्पी थे । राहुल सांस्कृत्यायन ने कहीं लिखा है कि उनके पहले भाषा में एकरूपता नहीं थी । व्याकरण और अखरोटी के मामले में बड़ी शिथिलता थी । द्विवेदीजी ने इसका कड़ाई से नियंत्रण किया उनका प्रभाव ऐसा था और सरस्वती की धाक इतनी थी कि उनके समर्थित रूपों का प्रचलन हिन्दी में हो जाता था...खड़ीबोली की पुष्टि इसी भाषा की एकरूपता का दूसरा पहलू था । उन्होंने ब्रजभाषा की कविता छापना बंद कर दिया...सुमित्रानंदन पंत की आरंभिक कविताओं को उन्होंने प्रकाशित किया, यद्यपि वे नवीन धारा की समझी जाती थीं ।....इस तरह ब्रजभाषा के स्थान पर कविता में वह बोली प्रतिष्ठित हुई जो हम आज हर जगह पाते हैं याने जनसाधारण की । 1903 में "सरस्वती" का संपादन संभालने के बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जो कार्य किया, उसे डा रामविलास शर्मा ने हिन्दी का दूसरा नवजागरण कहा है । विज्ञान, समाज,शास्त्र, अर्थशास्त्र, संस्कृति, साहित्य, राजनीति-कौन सा ऐसा विषय था, जिस पर उनने अपनी कलम नहीं चलाई ।[31]

महावीर प्रसाद द्विवेदी का आधुनिक हिन्दी साहित्य के युग निर्माण में, हिन्दी

की परिनिष्ठित भाषा, अभिव्यंजना की सूक्ष्मता तथा सुगठित शैली को प्रदान करने में और उस भाषा के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान है जो कि ऐतिहासिक महत्व का है । इस शती के शुरू में हिन्दी साहित्य को समृद्ध करनेवाले कवि एवं साहित्यकार वास्तव में द्विवेदी की उपलब्धियाँ हैं । यही हिन्दी साहित्य को उनका महत्वपूर्ण योगदान है । इस कार्य के लिए उन्होंने सरस्वती पत्रिका का सशक्त मंच के रूप में उपयोग किया ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्यकार, पत्रकार और गद्य-पद्य की शैली के निर्माता तो थे ही, साथ ही वे स्वयं सशक्त लेखक थे । उनका लेखन कार्य सोद्देश्य था और साहित्य में हास्य और व्यंग्य के स्थान को बाकायदा स्वीकार किया था और वे हास्य और व्यंग्य को समाज और साहित्य का परिष्कारक और शासक समझते थे । उनका कहना है - " प्रहसनों और हँसी मज़ाक के लेखों से मनोरंजन ही नहीं होता, लेखक यदि सिद्ध और योग्य है तो वह ऐसे लेखों से समाज और साहित्य के दोषों को दूर करने की चेष्टा करता है और इनके द्वारा उन्हें लाभ पहुँचा सकता है और दंडनीय व्यक्तियों का शासन भी कर सकता है । हिन्दी में साहित्य के इस अंश की कमी है । इस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने अपने लेखन का धर्म भी समाज और साहित्य को परिष्कार करना ही स्वीकार किया । इनकी रचनाओं में व्यंग्य अत्यंत सहज रूप से इनकी गद्य-शैली के अविभाज्य अंग के रूप में प्रस्फुटित हुआ है । कहीं भी असहजता नहीं आयी है । कई स्थानों पर प्रसंगों के अनुरूप व्यंग्य कटु भी हुआ है । महावीर प्रसाद द्विवेदी धार्मिक-आर्थिक-सामाजिक समस्याओं से परेशान तो होते थे मगर इनकी विधायक शक्तियों - राजनीति सामाजिक, धार्मिक आंदोलनों में उनकी कोई विशेष रुचि नहीं थी । एक साहित्यकार और सजग मार्गदर्शक की हैसियत से जो बुराइयाँ देखते, उनकी आलोचना करते, विश्लेषण करते । उनकी गद्य रचनाओं में जो व्यंग्य हैं उनमें अन्याय के प्रति असमाधान, तथा आक्रोश का पुट है जो कि विनोद के वेश से आवृत्त है । द्विवेदीजी व्यंग्य रचनाओं के नमूने हैं -

द्विवेदी को धार्मिक वाद-विवादों से चिढ़ थी । आर्य समाजियों और सनातनधर्मियों का वाद-विवाद इन्हें पसंद नहीं था और तत्संबंधी पुस्तकों को भी

वे पसंद नहीं करते थे । एक ऐसी ऐतिहासिक पुस्तक की आलोचना करते हुए धार्मिक विवाद पर यों व्यंग्य किया - " आर्य समाज की कृपा से सनातनधर्मियों में भी अनेक संरक्षक उत्पन्न हो गए हैं । शास्त्रार्थ करना, लेक्चर देना और ज़रूरत पड़ने पर कीचड़ उछालना भी ये लोग सीख गए हैं । " सनातन धर्मियों के लिए इससे बड़ा पुरस्कार क्या हो सकता है ?

जनहित के लिए प्रतिबद्ध मगर जनहित नहीं करनेवाली म्युनिसिपालिटी का द्विवेदी ने जो व्यंग्य किया है, वह मार्के का है - " इस म्युनिसिपालिटि के चेयरमैन (जिसे अब कुछ लोग कुर्सी मैन भी कहने लगे हैं) श्री बूचाशाह हैं । बाप-दादे की कमाई का लाखों रुपया आपके घर भरा है । पढ़े-लिखे आप राम का नाम ही हैं । चेयरमैन आप इसलिए हुए हैं कि अपनी कारगुजारी गवर्नमेंट को दिखाकर आप रायबहादुर बन जायँ और खुशामदियों से आठ पहर चौंसठ घड़ी घिरे रहें । म्युनिसिपालिटि का काम चाहे चले, चाहे न चले, आपकी बला से । इसके एक मैंबर हैं बाबू बखिशराम । आपके साले साहब ने फी रुपये तीन-चार पसेरी का भूसा म्युनिसिपालिटि को देने का ठेका लिया है । आपका पिछला बिल 10 हज़ार रुपये का था । पर कूड़ा गाड़ी के बैलों और भैंसों के बदन पर सिवा हड्डी के मांस नज़र नहीं आता । सफ़ाई के इन्सपेक्टर हैं लाला सतगुरुदास । आपकी इन्सपेक्टरी के ज़माने में हिसाब से कम तनख्वाह पाने के कारण मेहतर लोग तीन दफ़े हड़ताल कर चुके हैं । फ़लाँ ज़मीन के एक टुकड़े का नीलाम था । सेठ सर्वसुख उसके तीन हज़ार देते थे पर उन्हें वह टुकड़ा न मिला । उसके छे महीने बाद म्युनिसिपालिटि के मैंबर पंडित सत्य सर्वस्व के ससुर के साले के हाथ वही ज़मीन एक हज़ार बेच दी गई ।[32]

उपरोक्त गद्यांश की पंक्ति-पंक्ति में, यहाँ तक कि हर शब्द में व्यंग्य है । हमारे संगठन-संस्थाओं की गतिविधियों का सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण है । आज के संदर्भ में भी इस व्यंग्य की महत्ता है ।

किसी विलायती डाक्टर ने आँसुओं की कीटाणु नाशक शक्ति का उपयोग करके अनेकों रोगों के निदान के संकेत दिए तो प्रेमियों और गरीबों के लिए यह आविष्कार

किस प्रकार वरदान सिद्ध हुआ, इसका व्यंग्य करते हुए श्री/ द्विवेदीजी लिखते हैं - " औषधियों के काम आने के लिए अभी जैसे बहुत से आदमी अपना रक्त देते हैं, वैसे ही स्वच्छन्द कुमारियाँ और कामिनियाँ यहीं आँसू बेचा करेंगी । इससे उन्हें न कोई कष्ट होगा और न कोई हानि होगी । तुरन्त उठीं और रोकर आँसुओं से एक गिलास भर दिया । महीने भर का नहीं तो हफ्ते भर का खर्च जरा देर में निकल आया । सचमुच यह आविष्कार बड़े काम का है । इससे तो हजारों की रोजी चल सकती है । "

इस शती के प्रथम चरण में "निजभाषा की उन्नति" के लिए जोरदार चर्चा तो जारी रही तथापि बड़े लिखे लोग तो अंग्रेज़ी के प्रति ही झुके रहते थे और हिन्दी व देशी भाषाओं के प्रति उनकी मानसिकता में थोड़ा भी परिवर्तन नहीं आया था । इस पर उस काल के सभी साहित्यकारों ने काफी लिखा, व्यंग्य किया । महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यंग्य की बानगी देखिए - "अंग्रेज़ीदाँ मातृभाषा को घृणा की दृष्टि से देखते हैं । कितने ही महात्मा तो ऐसे हैं जिन्हें अपनी भाषा का एक शब्द तक लिखते लज्जा मालूम होती है उनकी अंग्रेज़ी चिट्ठियों का उत्तर बार-बार मातृभाषा में देने पर भी वे शिष्टाचार पर लात मारते और अंग्रेज़ी लिखते ही चले जाते हैं । हाय री, अंग्रेज़ी, तू ने हमारे खाद्य और पेय पदार्थों में परिवर्तन कर दिया, तू ने हमारे वस्त्र परिच्छेदों में उलट-पलट कर डाला, यहाँ तक कि तू ने हमारी मातृभाषा को ही तिरस्कृत कर दिया । अभागे हिन्दुस्तान को छोड़कर धरती की पीठ पर एक भी ऐसा सभ्य देश नहीं, जहाँ इस तरह की अस्वाभाविक बातें होती हों । "

द्विवेदी की यह व्यंग्य-वाणी सभी भारतीय भाषाओं के संदर्भ में सही है क्योंकि अंग्रेज़ी परस्त लोगों पर चाबुक चलाने में निश्चय ही सक्षम है । अपनी देश-भाषा के प्रति दुराग्रह रखनेवालों तथा उच्च ओहदों पर आसीन होने के बाद हिन्दी (अपनी मातृभाषा) के प्रति दुरभिमान बढ़ानेवालों के प्रति द्विवेदी ने अनेकों स्थलों पर कटु प्रहार किया है ।

द्विवेदी ऐसी संक्रमण अवस्था में हिन्दी जगत में अवतीर्ण हुए जबकि भाषा बन रही थी, साहित्य नया रूप सँवार रहा था, तत्कालीन युवा लोग कवि बनने की कोशिश

में थे । द्विवेदी त्रिविक्रम की भाँति उपरोक्त सभी कार्यों को सुचारु और सशक्त रूप से संपन्न किया । इनकी दृष्टि व्यापक थी, गद्य और पद्य की भाषा को अलग-अलग मानने के पक्ष में वे नहीं थे । और स्वयं द्विवेदीजी की रचनाएँ गद्य-पद्य दोनों में होती थीं, आलोचनात्मक और विचारात्मक दोनों विधाओं में लिखते थे । परिणामतः इनका व्यंग्य हरविधा में अत्यंत उचित मात्रा में एवं गंभीर रूप से व्यक्त हुआ है । व्यंग्य को तत्कालीन युगबोध के साथ संयुक्त करने का महत्वपूर्ण जिम्मा द्विवेदी ने अदा किया । इस दृष्टि से वे अपने समय के ज्योतिपुंज थे । विषय के प्रतिपादन में व्यंग्य, आक्रोश और संवेदनशीलता तो रहती थी साथ में भाषा शैली के उतार-चढ़ाव में भी तदनुसार तीव्रता, आवेश और कटुता दिखाई पड़ती थी ।[33]

प्रेमचंद

प्रेमचंद इस शती के अत्यंत महत्वपूर्ण एवं यथार्थवादी कलाकार हैं जिनका अपने समय की व्यथा के साथ गहरा साक्षात्कार रहा है । अपने समाज के साथ प्रेमचंद का गहरा संबंध था, विचारधाराओं से घनिष्ठ परिचय था, साहित्य के लक्ष्य को लेकर उनके मन में सुस्पष्ट धारणाएँ थीं । परिणामस्वरूप उन्होंने अपने समसामयिक जगत की चिंतनधारा के आलोक में भारतीय जनजीवन को परखा, यहाँ की सांप्रदायिकता, यहाँ की द्वंद्वात्मक मानसिकता, यहाँ की विसंगतियों को समझा और पाया कि इन विसंगतियों के मूल में उदार मानवीय संबंधों का अभाव है अतएव व्यवस्था में तनाव की स्थिति आई है, मानवता का ह्रास हो रहा है । अतः प्रेमचंद ने नाना वाद-विवादों का निकट संपर्क रखते हुए भी मानवतावाद का प्रतिपादन किया । इस संदर्भ में उन्होंने भारतीय समाज की संरचना में मौजूद विसंगतियों का अपने संपूर्ण साहित्य में उद्घाटन किया । डा॰ रामदरश के अनुसार " प्रेमचंद ने गाँवों की दुनिया का गहरा अनुभव किया था और वे उनकी प्रत्येक साँठ-गाँठ और स्पंदन से परिचित थे, दूसरी ओर वे शहरों के अभिजात वंशीय बड़े बड़े सेठों, रईसों, नेताओं, समाज सुधारकों, प्रोफेसरों, नव फैशन की ललनाओं और जमींदारों की असंगतियों को भी खूब पहचानते थे । प्रेमचंद ने वर्तमान युग में लक्षित सामाजिक संबंधों की विरूपताओं का उपर्युक्त पात्रों की

अंतर्विरोधी परिस्थितियों की विषमताओं पर प्रभावशाली व्यंग्य किये हैं। उनके सभी उपन्यासों में व्यंग्य का मार्मिक स्वरूप देखने को मिलता है।

प्रेमचंद के कथासाहित्य का स्थायी भाव करुणा है जिसका आलंबन पीड़ित मानवता है। अपनी चारों ओर के जीवन में वर्ण व्यवस्था, वर्गव्यवस्था के शिकंजे में जकड़ी हुई शोषित जनता की दयनीय अवस्था को उन्होंने सबसे पहली बार अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने सामाजिक, आर्थिक धार्मिक, राजनैतिक, नैतिक क्षेत्रों में जो वैषम्य दिखायी पड़े उनका तीव्र व्यंग्य किया। जैसे उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति "गोदान" की मुख्य ध्वनि व्यंग्य ही है। गाय पालने की होरीराम की आशा में और उपन्यास के अंत में गोदान न दे पाने की विवशता में समूची सामाजिक व्यवस्था का व्यंग्य घनीभूत हो उठा है। प्रेमचन्द ने "गोदान" के प्रसंगों की परिकल्पना, दो जीवनधाराओं को आमने सामने रखकर साम्य-वैषम्यों को समांतर रूप से बयान करते जाने की योजना जो बनायी है, उसके मूल में संपूर्ण व्यवस्था के प्रति व्यंग्य करने की मनोदशा है। इस उपन्यास में व्यंग्य का परिपाक इतनी कलात्मकता के साथ निखर उठा है जिसके बगैर "गोदान" गोदान ही न रहता। व्यंग्य को सामाजिक धरातल पर प्रेमचंद ने जिस मार्मिकता से उभारकर पेश किया है, वह परवर्ती लेखकों के लिए एकदम रास्ता पेश करनेवाला था। इस दृष्टि से हिन्दी की अनेकों परवर्ती कृतियाँ प्रेमचंद के प्रति ऋणी हैं।

प्रेमचंद की आस्था व्यवस्था में परिवर्तन लाने की अपेक्षा उसके सुधीकरण में है और इसके लिए व्यक्ति को अपने मन-परिवर्तन करने के हिमायती हैं। मानव मानव के बीच आदर की भावना, समान समझने की भावना ही स्वस्थ समाज के निर्माण में सहयोग दे सकती है। जिस समाज में यह भावना नहीं है वहाँ दूरियाँ निर्मित होती हैं, विषमता बढ़ जाती हैं मानव विरोधी शक्तियाँ सिर उठाने लगती हैं जिन पर नियंत्रण करने में व्यंग्य सदा सहायक ही रहा है। प्रेमचंद ने इन्द्रनाथ मदान के नाम लिखे एक पत्र में इसी बात की ओर संकेत किया है - "हमारा उद्देश्य जनमत तैयार करना है, इसलिए मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ। अच्छे तरीकों के असफल होने पर क्रांति

होती है । मेरा आदर्श है प्रत्येक को समान अवसर का प्राप्त होना । इस सोपान तक बिना विकास के कैसे पहुँचा जा सकता है ? इसका निर्णय लोगों के आचरण पर निर्भर है । जब तक हम व्यक्तिगत रूप से उन्नत नहीं हैं, तब तक कोई भी सामाजिक व्यवस्था आगे नहीं बढ़ सकती । क्रांति का परिणाम हमारे लिए क्या होगा ? यह संदेहास्पद है । हो सकता है कि वह सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता को छीनकर तानाशाही के घृणित रूप में हमारे सामने आ खड़ा हो । मैं सुधीकरण के पक्ष में तो हूँ । उसे नष्ट करने के पक्ष में नहीं ।" इन पंक्तियों से प्रेमचंद की जीवन दृष्टि का परिचय मिलता है ।

प्रेमचंद ने मानव संस्कृति के विकास में अवरोध के रूप में पूँजीवादी संस्कृति को मूल आधार माना है । इसी को उन्होंने "महाजनी सभ्यता" का नाम दिया है और इसी शीर्षक से लिखे अपने निबंध में उन्होंने इस बात का मार्मिक विश्लेषण किया है कि आधुनिक समाज में धनलिप्सा भारत के रगरग में व्याप्त होकर किस प्रकार समाज को अशांत और विषम बनाती जा रही है, किस प्रकार समाज हृदयपक्ष से हीन होकर बुद्धिपक्ष को महत्व दे रहा है । प्रेमचंद लिखते हैं - इस महाजनी सभ्यता ने दुनियाँ में नई रीति नीतियाँ चलाई हैं, उनमें सबसे अधिक और रक्त पिपासु यही व्यवसाय वाल सिद्धांत है । मियाँ-बीवी में बिजनेस, बाप-बेटे में बिजनेस, गुरु शिष्य में बिजनेस x सारे मानवी, आध्यात्मिक और सामाजिक नेह नाते समाप्त । आदमी आदमी के बीच, बस, कोई लगाव है तो बिजनेस का...मनुष्य दो भागों में बँट गया है । बड़ा हिस्सा उन लोगों का है जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किए हुए हैं । इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रियायत नहीं । उसका अस्तित्व इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाये, खून गिराये और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाय ।"प्रेमचंद के औपन्यासिक एवं कथा साहित्य में व्यंग्य की जो धारा प्रवाहित है उसके लिए कारण इन निरीह जनों के प्रति उन के मन में स्थित मानवीय करुणा है उनके व्यंग्य में हल्कापन नहीं, वैयक्तिक राग द्वेष के लिए कोई गुंजाइश नहीं अपितु व्यंग्य को एक उदात्त मानवतावादी मूल्य के रूप में वे स्थापित करते हैं । इसलिए ही उनका व्यंग्य प्रेमचंद न केवल भारत के अपितु संपूर्ण जगत की समस्याओं से सामाजिक विषमताओं, कुरूपों,

असमानताओं, निरीह एवं शापित लोगों के संकटों को मानवता की कसौटी पर कसा है और उन्हें व्यंग्य के शिकार बनाये हैं। इस दृष्टि से प्रेमचंद के व्यंग्य मात्र शब्द शक्ति नहीं अपितु प्रहार हैं नरक-यातना दायी हैं। और जागरूक चिंतक एवं चिकित्सक के मर्म से निकले स्फुलिंग हैं।

प्रेमचंद का कथा संसार जीवन-यातनाओं का भंडार है। समस्याओं का अक्षयागार है। इन सभी को व्यंग्य के परिधान में प्रेमचंद ने अत्यंत कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। व्यक्तिजीवन से राष्ट्र जीवन तक की नाना समस्याओं को वहाँ के बेतुकेपन को, अमानवीयता को, असंगतियों को बारीकी से उभारा है। इनके व्यंग्य के स्वरूप का परिचय लेने के लिए एक-दो प्रसंग देख सकते हैं - हमारी सामाजिक व्यवस्था में विवाह एक ऐसा बंधन है जिसकी पवित्रता, उद्देश्य और उसकी शर्तों को भूलकर हमने उसे एक व्यापारिक रिश्ता बनाकर रखा है। विवाह समस्या तो प्रेमचंद के उपन्यासों में बराबर आती है। इस विवाह समस्या के मूल आधार "अर्थ" "वर्ण" और "धर्म" हैं जिनके कारण कन्याओं को और उनके मातापिताओं को किन कष्टों और मानसिक तनावों से गुजरना पड़ता है, इसका जीता जागता चित्रण प्रेमचंद में मिलता है। "अनमेल विवाह" को लेकर प्रेमचंद बड़े चिंतित थे और समझते थे कि समाज में अशिक्षित परिवारों की मजबूरियों से ऐसे विवाह हुआ करते हैं। अतः अनमेल विवाह की शिकार हुई अभागिनों की यातनाओं के प्रति प्रेमचंद की पूर्ण अनुकंपा थी "प्रतिज्ञा" में अनमेल विवाह की शिकार बनी हुई सुमित्रा के निम्नांकित वार्तालाप से प्रेमचंद विवाह व्यवस्था पर ही व्यंग्य करते हैं -

" पूर्णा ने कुछ आशंकित होकर पूछा - तुम अब तक कैसे जाग रही हो ?

सुमित्रा - सारे दिन सोया जो करती हूँ।

पूर्णा - सो सो क्यों सोती हो सारे दिन ?

सुमित्रा - यही तो रात में को जागने के लिए। सुमित्रा हँसने लगी। बोली - " अपने माता-पिता की धन लोलुपता का प्रायश्चित्त कर रही हूँ। बहन। "

पूर्णा ने विस्मित होकर कहा - " ऐसा क्यों कहती हो बहन ? क्या अभी भैयाजी नहीं आये ?

सुमित्रा द्वार की ओर भयभीत नेत्रों से देखती हुई बोली - " अभी नहीं, बारह ही तो बजे हैं । इतनी जल्दी क्यों आयेंगे न एक, न दो, न तीन । मेरा विवाह तो महल से हुआ है ।" (प्रतिज्ञा से)

"प्रतिज्ञा" में अनमेल विवाह के एक पक्ष पर व्यंग्य किया है तो "निर्मला" में अनमेल विवाह तथा दहेज प्रथा से दूषित हो रही व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। अपने पैसे के अहं से अपने से कितनी ही छोटी उम्र की लड़की से शादी करने को तुला हुआ तोताराम अपने को सजाने का तरीका इस प्रकार है -

" नयनसुख - अच्छा मेरी सलाह मानो । जरा अपनी सूरत बनवा लो । आजकल यहाँ एक बिजली के डाक्टर आये हैं जो बुढ़ापे के सारे निशान मिटा देते हैं । क्या मजाल कि चेहरे पर एक झुर्री या सिर का कोई बाल पका रह जाय । न जाने क्या जादू कर देते हैं ।

नयनसुख - फीस तो सुना है ज्यादा लेते हैं, शायद पाँच सौ ।

तोताराम - अजी वह पाखंडी होगा बेवकूफों को लूट रहा होगा ।

..दत्त - पाँच की बात होती तो कहता जरा दिल्लगी ही सही ।
पाँच सौ बड़ी रकम है ।

नयनसुख - तुम्हारे लिए पाँच सौ रुपये कौन बड़ी बात है । एक महीने की आमदनी है
मेरे पास पाँच सौ होते तो सबसे पहला काम यही करता । जवानी के एक घंटे की कीमत पाँच सौ से कहीं ज्यादा है ।

- यह मनुष्य की बीभत्स अभिरुचि का चित्रण है । यहाँ प्रेमचंद ने मनुष्य की चंचल मनोवृत्ति का, धन के मद में अपनी खोयी हुई जवानी को असहज विधान से हासिल कर लेने के पागलपन का, सबसे बढ़कर तत्कालीन सामाजिक कुरीति का व्यंग्य किया है । प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में इस बात को गौर किया है कि अर्थ-काम-स्वभाव में यदि कहीं भी असमानता अथवा विरोधीभाव झाँकते हैं वहाँ संघर्ष का जन्म होता है । यह संघर्ष परस्पर विरोधी तत्वों को जन्म देता है । इन विरोधी तत्वों से व्यंग्य उभरता है । प्रेमचंद ने अपने विभिन्न प्रिय पात्रों के अनुचित व्यवहारों के माध्यम से व्यंग्य को अत्यंत कुशलता से उभारा है । विधवा समस्या, वेश्या समस्या, दहेज समस्या

अनमेल विवाह, जैसे नारी जीवन से संबंधित अनेकों कुप्रथाओं और विषमताओं पर प्रेमचंद का व्यंग्य खूब तीखा है। एक और उदाहरण - विधवा समस्या के समाधान ढूंढने के लिए प्रेमचंद ने "सेवासदन" में प्रयत्न किया है मगर क्या यह प्रयत्न सफल हो पाया है? क्योंकि सुमन के ये शब्द हमारे समाज को नंगा करते हैं - "मैं प्रातःकाल से संध्या तक हजारों मनुष्यों को इसी रास्ते आते जाते देखती हूं। पढ़े-अपढ़, मूर्ख-विद्वान, धनी-गरीब सभी नजर आते हैं। परंतु सबको अपनी तरफ खुली या छिपी दृष्टि से ताकते पाती हूं उनमें कोई ऐसा नहीं मालूम होता जो मेरी कृपा दृष्टि पर हर्ष से मतवाला न हो जाय। इसे आप क्या कहते हैं? ।सेवासदन से। इस हमारी बेरहम समाज-व्यवस्था की निर्ममता इसका क्रूर व्यंग्य इन शब्दों में प्रेमचंद ने पेश किया है।

प्रेमचंद समानता के पक्षधर थे, सर्वोदयी सिद्धांत के समर्थक भी थे। इसलिए उन्होंने सामाजिक कुप्रथाओं, सांप्रदायिक आचरणों, धार्मिक अनुष्ठानों, पाखंडी व्यवहारों का व्यंग्य किया है। साथ ही भारतीय राजनीति एवं स्वाधीनता संग्राम से उनका निकट परिचय था। फलतः राजनैतिक क्षेत्र की कुप्रथाओं को भी प्रेमचंद ने बख्शा नहीं है। उनका मानना था कि "जब तक यहाँ के साहित्य में तरक्की न होगी, तब तक साहित्य और राजनीति सबके सब ज्यों के त्यों पड़े रहेंगे।" उन्होंने स्वीकार किया था साहित्यकार को राजनैतिक बोध का होना जरूरी है। इस विश्वास के अनुरूप उन्होंने भारतीय राजनैतिक क्षेत्र से अपना संबंध बनाये रखा और वहाँ की विसंगतियों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया।

जैसाकि इशारा किया जा चुका है प्रेमचंद इस सदी के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार होने के नाते युग बोध को अस्वीकार किए बिना युग की समस्त विसंगतियों को रेखांकित करके हिन्दी व्यंग्य को सुनिश्चित रूप प्रदान किया। आज का व्यंग्य जो एक विधा के रूप में स्थापित हुआ है, प्रेमचंद के प्रति ऋणी है क्योंकि उन्होंने ही व्यंग्य को साहित्य के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार करके उसे अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध किया था।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का काव्य वेदना एवं जीवंत दास्तान तो है ही । उनके काव्य की उपलब्धी इस वेदना को सार्वभौमिक एवं सार्वकालीन बनाने में है । उनके रहस्यवादी आलोक में, उनकी द्वैत-अद्वैती परिभाषाओं की गुत्थियों में पाठक कभी स्तंभीभूत भी हो सकता है और उनके प्रकृति गीतों की छटा पर, हरियाली की हरीतिमा पर पाठक आत्मविभोर हो सकता है किन्तु उनके वेदनापरक गीतों में वह अपने को पाता है, ऐसा साधारणीकरण यहाँ स्थापित होता है कि कवयित्री के गीतों की हर पंक्ति में अपने वेदना-समुद्र साम्राज्य की संपदा को जोड़ने लगता है । इस दृष्टि से देखा जाय तो महादेवी के गीतों की वेदना या पीड़ा नेत्यात्मक नहीं अपितु सकारात्मक है, जीवन कु के प्रति आस्था पैदा करनेवाल है जिसकी परिणति मानवीय मूल्यों को एक विशाल कैनवास पर स्थापित करने में है । उनकी वेदना से पूर्ण से जो करुणा प्रवाहित होती है उससे सारा वातावरण जीवंत हो जाता है, व्यवस्था के प्रति क्रोध प्रस्फुटित हो जाता है और मानवीय भावनाओं के प्रति संवेदनशील व्यक्ति के हृदय में एक टीस पैदा करने में महादेवी के रेखाचित्र उनके काव्य के मुकाबले में अत्यंत सफल हुए हैं । वास्तव में ये रेखा करुणरस के निचोड़ हैं और व्यवस्था के प्रति कवयित्रि के तीखे प्रहार हैं । महादेवी के व्यंग्य के इ निचोड़ हैं और व्यवस्था के प्रति कवयित्रि के तीखे प्रहार हैं । महादेवी के व्यंग्य के तीखेपन को इनके सभी रेखाचित्रों में देखा जा सकता है । नमूने के कुछ उदाहरण हैं -

सबिया उर्फ सावित्री - एक दलित स्त्री - लेखिका के घर में नौकरानी थी जिसका दुष्ट पति उसे धोखा देकर भाग जाता है । दुर्भाग्यवशात् उसी दिन लेखिका की एक पड़ोसिन - वकील की पत्नी - के यहाँ चोरी होती है । तब वकील की पत्नी ने आकर महादेवीजी से इसी सलज्ज और कर्तव्यनिष्ठ सबिया को लक्ष्य करके शिकायत की कि " आप चोरों की औरतों को क्यों नौकर रख लेती हैं ? " तब मेरा शीतल क्रोध उस जल के समान हो उठा, जिसकी सरलता के साथ, मिट्टी ही नहीं पत्थर इ तक काट देनेवाली धार भी रहती है । मुँह से अचानक निकल आया - यदि दूसरे के धन को किसी न किसी प्रकार अपना बना लेने का नाम चोरी है, तो मैं जानना चाहती हूँ कि इनमें से कौन संपन्न महिला चोर पत्नी नहीं कही इ जा सकती ? प्रश्न करनेव

के मुख पर कालिमा-सी फैलते देख मुझे कम क्षोभ नहीं हुआ, पर तीर छूट ही नहीं, लक्ष्य पर चुभ भी चुका था । "[34]

प्रस्तुत पंक्तियों में उच्च समाज की इस मनोवृत्ति पर व्यंग्य है जो यह समझते हैं कि गरीब एवं असहाय लोग दुष्ट स्वभाववाले, वंचक और धोखेबाज होते हैं और ये सब प्रकार के इल्जामों के अधिकारी होते हैं । महादेवी ने भद्र समाज की इस मनोवृत्ति पर अपनी सीधी एवं सहज प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए इस मानसिकता पर अपना क्षोभ एवं असमाधान व्यंग्य द्वारा प्रकट किया है । तकिया की शिकायत करने जो औरत आई वह और कोई नहीं थी, " वकील की पत्नी" थी, और वकीलों के प्रति हमारे समाज में क्या राय है, यह हर कोई जानता है, इस दृष्टि से " वकील की पत्नी " कहकर इस वर्ग के प्रति भी बड़ा व्यंग्य किया है ।

महादेवी अपने रेखाचित्रों में आत्म व्यंग्य करने, तद्वारा एक अभिजात वर्ग की मानसिकता को उघाड़ने में संकोच नहीं करती हैं । श्रेष्ठ व्यंग्यकार अपने को व्यंग्य क्षेत्र से अलग रखकर दूसरों का ही व्यंग्य करता जाता नहीं अपितु अपने को भी इसी व्यवस्था का हिस्सा बनाकर चलता है । महादेवी में यह प्रवृत्ति उनकी लेखन प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है । इस व्यंग्य का एक मिसाल है - यह एक वृद्ध सज्जन जो कि अपनी पोती के पास जो आठ वर्ष की अवस्था में मातृविहीन और विधवा होकर इ अब मरणासन्न पर है, लेखिका को ले जाने आया है । उसकी निरीह आँखों में निरीहता और पूरे व्यक्तित्व में एक दयनीय अवस्था मूर्तिमान है । वह अपने सारे शरीर को फावड़ा बनाकर लेखिका के सम्मुख झुका चुका है । तब लेखिका कोई कविता कर रही थी, जिसे छोड़कर जाने का मतलब अपनी सृजन प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करना है । अतः वह स्थिति का आकलन करते हुए सोचती है - "xxxx मेरी कविता की पहिली पंक्ति ही लिखी गई थी, अतः मन खिसियाना-सा आया । मेरे काम से अधिक महत्वपूर्ण कौनसा काम हो सकता है, जिसके लिए असमय में उपस्थित होकर उन्होंने मेरी कविता की प्राणप्रतिष्ठा से पहले ही खंडित मूर्ति के xxxx समान बना दिया । "मैं कवि हूँ" में जब मेरे मन का संपूर्ण अभिमान पुंजीभूत होने लगा, तब यदि विवेक " पर अंकुश नहीं

में छिपा व्यंग्य बहुत गहरा न चुभ जाता तो कदाचित् मैं न उठती । कुछ खीझी, कुछ कठोर-सी, मैं बिना देखे ही एक नई और दूसरी पुरानी चप्पल में पैर डालकर जिस तेज़ी से बाहर आई, उसी तेज़ी से उस अवांछित आगन्तुक के सामने निस्तब्ध और निर्वाक् हो रही ।[35] जीवन की यथार्थताओं तथा भावुक जीवन की विसंगतियों को अत्यंत सूक्ष्म रूप से उभारने एवं जीवन के अनछुए तथ्यों को साफ़-साफ़ खोलकर व्यंग्य के आलोक में प्रस्तुत करने में महादेवी के रेखाचित्रों का कोई जवाब नहीं है ।

नगर की शिराओं के समान फैली और एक दूसरे से उलझी हुई गलियों से, जिनमें दूषित रक्त जैसा नालियों का मैला पानी बहता है और रोग के कीटाणुओं की तरह नंगे-भूखे बालक घूमते हैं, मेरा उस दिन विशेष परिचय हुआ,...दालान में मैली फटी दरी पर, खम्भे का सहारा लेकर बैठी हुई एक स्त्री मूर्ति दिखाई दी, जिसकी गोद में मैले कपड़ों में लिपटा एक पिंडा-सा था ।[36] इस यथार्थता के सामने अपने द्वारा चित्रित सामाजिक विकृतियों के महत्व की तुलना करते हुए " बौद्धिक रचना प्रक्रिया " पर व्यंग्य करते हुए साहित्य में चित्रित विकृतियों से जीवन की विकृतियों को महत्वपूर्ण सिद्ध करने का प्रयत्न करती हैं - " सामाजिक विकृति का बौद्धिक निरूपण तो मैं ने अनेक बार किया है, पर जीवन की इस विभीषिका से मेरा यही पहला साक्षात् था । मेरे सुधार संबंधी दृष्टिकोण को लक्ष्य करके परिवार में प्रायः सभी ने कुछ विराग भाव से सिर हिलाकर यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि सात्त्विक कला इस लू का झोंका न सह सकेगी और साधना की छाया में पले मेरे कोमल सपने इस धूप में जी न सकेंगे ।[37] महादेवी के रेखाचित्रों में ऐसे अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ कोरी बौद्धिकता का तीव्र व्यंग्य किया गया है ।

व्यंग्य शोषण के विरुद्ध चलाया जानेवाला सबसे बड़ा अस्त्र है । स्त्री को समाज जाने कितने वर्षों से शोषण करता आ रहा है मगर स्त्री अपनी मजबूरियों के कारण इस शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाने का साहस जुटा नहीं सकी । स्त्री जीवन की इस विभीषिका पर व्यंग्य करते हुए महादेवी लिखती हैं - " इतने अंगारों से भी जाने पर भी इसके वात्सल्य का अंचल दूसरों को छाया देने में समर्थ है । यह जैसे अपने नादान बच्चों

के उत्पात की चिंता नहीं करती, उसी प्रकार पति की हृदयहीन कृतघ्नता, तपस्वी के अनुचित व्यंग्य और सास के अकारण भर्त्सना पर भी [illegible] ध्यान नहीं देती ।[38]

" यदि स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि " बर्बरों, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी " तो इनकी समस्याएँ तुरंत सुलझ जावें ।...युगों से पुरुष स्त्री को उसकी सहन शक्ति के लिए नहीं, सहनशक्ति के लिए दंड देता आ रहा है ।[39] एक स्त्री की हैसियत से स्त्रीत्व की [illegible] अवहेलना जो पुरुषों से परंपरा से होती आ रही है, महादेवी ने उसका प्रखर व्यंग्य किया है जोकि अन्यत्र दुर्लभ है ।

महादेवी जी के रेखाचित्रों की रचना होकर यद्यपि अनेकों दशक बीत गए तथापि उनके इन चित्रों में उभरे व्यंग्य अभी ताजे हैं । आज़ादी के चालीस साल बाद भी व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आये हैं, ढोंगी संस्कृति, संस्कार ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं । देश के सामाजिक तौर तरीकों पर जोकि इ कैक्टस की भाँति फैले हुए हैं, महादेवी व्यंग्य करती हैं, - " पर अब बिना कार्यकारिणी के निर्वाचन के, बिना पदाधिकारियों के चुनाव के, बिना भवन के, बिना चंदे की अपील के और सारांश यह कि बिना किसी चिर-परिचित समारोह के, मेरे विद्यार्थी पीपल के पेड़ की घनी छाया में चारों ओर एकत्र हो गए, तब मैं बड़ी कठिनाई से गुरु के उपयुक्त गंभीरता का भार वहन कर सकी ।
इन पंक्तियों में आज की सामाजिक व्यवस्था " समारोह-संस्कृति" का जो बोलबाला है, उस पर व्यंग्य किया गया है ।

महादेवी के रेखाचित्रों में जैसा कि रेखांकित किया गया है केवल पुरुष-समाज पर ही व्यंग्य किया हो, ऐसी बात नहीं ह । उन्होंने नारी समाज के गुण-दोषों को भी अपने व्यंग्य का शिकार बनाया है ।

महादेवी ने एक स्थान पर कहा है कि उनका गद्य विचार के क्षणों की निर्मिति है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है । यह सत्य है कि उनकी कविताओं में एक आर्द्र हृदय की संवेदनाएँ हैं तो उनका गद्य साहित्य विचारों के दस्तावेज़ हैं, यहाँ उनके गंभीर चिंतन का

परिपाक है । अन्याय, शोषण के प्रति उनका तरल हृदय अंगारों को उगलता है । " शृंखला की कड़ियाँ " और " अतीत के चलचित्र " के निबंधों में आलोचक मस्तिष्क की गंभीर चिंतनधारा के साथ प्रखर व्यंग्य सामने आया है ।

महादेवी का गद्य भी कविता का दूसरा नाम है । एकदम प्रांजल काव्यमयी भाषा में वह गंभीर व्यंग्य लिखती हैं, विचारों को प्रस्तुत करती है, रेखाचित्र खींचती है, तब भाषा के इस आवरण में कथ्य धुंधला नहीं पड़ता है । यहाँ की मृदुल भाषा शोषितों की आहों को अपनी बाहों में समेट लेने में समर्थ हुई है । हिन्दी व्यंग्य को सूक्ष्म भाषा और पैनापन देने में महादेवी का विशिष्ट योगदान है ।

रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल आधुनिक हिन्दी गद्य को सुनिश्चित रूप, भाषा और अभिव्यंजना शक्ति की सूक्ष्मताओं को प्रदान करनेवाले महान महान प्रतिभाओं में एक हैं । निबंधरचना और समीक्षा के व्यापक क्षेत्र में जो कार्य शुक्लजी ने किया है वह तो नवयुग का उद्घोष करता ही है, साथ ही उन्होंने भाषा की विभिन्न शैलियों के स्वरूप-संघटन में जो योग दिया है वह अभूतपूर्व था - कई अर्थों में । उनके समय तक तो स्थिति यह थी कि कोई बड़े से बड़ा कृतिकार भी ऐसा समर्थ नहीं हुआ था जिसने कि भाषा की इतिवृत्तात्मक या व्यावहारिक, विचारात्मक या व्याख्यात्मक, भावात्मक या काव्यात्मक, अलंकृत या व्यंग्यात्मक - सभी शैलियों का प्रयोग समान योग्यता, प्रौढ़ता और सफाई से किया है ।[5]

शुक्लजी प्रखर आलोचक थे, विचारक थे, इतिहासकार थे गंभीर निबंधकार थे, और काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे । अपनी अभिव्यक्ति के लिए यद्यपि शुक्लजी ने गंभीर विधाओं को ही चुना तथापि वे कभी सरलता से दूर नहीं हुए । सरलता एवं सहृदयता शुक्लजी के व्यक्तित्व के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं । फलस्वरूप उनकी रचना-मात्र में हमें शुष्कता का बोध कहीं नहीं होता है । शुक्लजी मानव स्वभाव के कुशल अध्येता होने के साथ समाज के बदलते मूल्यों के सूक्ष्म अवलोकनकार भी थे । लोकमंगल भावना उनकी रचनाओं की प्रतिपालता थी । यही कारण है, जहाँ-जहाँ त्रुटियाँ दिखाई पड़ती थीं उनके प्रति ी

कोई प्रतिक्रिया प्रकट किए बिना रह नहीं पाते थे। उनके इस स्वभाव के फलस्वरूप उनके आलोचनात्मक ग्रंथों तथा निबंधों में भी व्यंग्य प्रस्फुटित हुआ है। "आचार्य रामचंद्रशुक्ल में व्यंग्यकथन की क्षमता अद्भुत है। चाहे रसविवेचन जैसा क्लिष्ट विषय हो, अथवा किसी मनोवैज्ञानिक तथ्य के विवेचन जैसा गंभीर विषय, शुक्लजी की विनोदशील प्रवृत्ति कहीं भी पाठक के मस्तिष्क पर विचारों को बोझिल नहीं होने देती। यह ठीक है कि शुक्लजी ने केवल उन्हीं स्थलों पर व्यंग्य का आश्रय लिया है जहाँ किसी कवि, लेखक या आलोचक के मत से वे सहमत नहीं हो सके हैं अथवा उसका तर्क संगत न होने के कारण उन्हें स्वीकार्य नहीं हो सकता है, फिर भी उनका व्यंग्य प्रायः सर्वत्र शिष्ट, गंभीर और पांडित्यपूर्ण ही है।[42]

शुक्लजी के आलोचनात्मक साहित्य में व्यंग्य उन स्थलों पर निखर उठा है जहाँ वे किसी कवि के वर्णन विधान से असहमत रहते हैं या अपने प्रिय कवि की गुरुता के समक्ष दूसरा कवि टिक नहीं पाता है अथवा उसके मुकाबले में दूसरे कवि को बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है। उदाहरण के लिए बिहारी के वियोग-वर्णन को शुक्लजी असह्य मानते हैं, इसलिए बिहारी के प्रति उनका व्यंग्य है - "बिहारी की नायिका इतनी क्षीण हो गई है कि जब साँस खींचती है तब उसके झोंके से चार कदम हट जाती है और जब साँस निकालती है तब उसके साथ चार कदम आगे बढ़ जाती है। घड़ी के पेंडुलम सी दशा उसकी रहती है।[43] और बिहारी के वियोग वर्णन के मुकाबले में जायसी का विरह वर्णन कितना श्रेष्ठ है, इस ओर संकेत करते हुए उनका व्यंग्य इस प्रकार निखरता है - जाड़े के दिनों में भी पड़ोसियों तक पहुँच उन्हें बेचैन करनेवाले, शरीर पर रखे हुए कमल के पत्तों को भूनकर पापड़ बना डालनेवाले, बोतल का गुलाबजल सुखा डालनेवाले ताप से कम ताप जायसी का नहीं है पर उन्होंने उसके वेदनात्मक और स्वरूप और हृदय अंग पर जितनी दृष्टि रखी है, उतनी उसकी बाहरी नाप-जोख पर नहीं।[44] यहाँ जायसी पर श्रेष्ठ प्रशंसात्मक टिप्पणी ही है पर व्यंग्य बाण से जायसी भी आहत हुआ है।

हिन्दी में छायावादी काव्यधारा के साथ अनेकों नवयुवक काव्यक्षेत्र में आकर

हिन्दी काव्य को नया मोड़ देने के भ्रम से तुकबंदियाँ करते और उसीको छायावाद की संज्ञा देते । काव्य उनके सस्ता मंच बन गया था । छायावाद की सूक्ष्म संवेदनाओं के प्रति नवयुवकों द्वारा होते मज़ाक को देखकर शुक्लजी ने जो व्यंग्य किया है वह अत्यंत मार्मिक है - " बहुत से नवयुवकों को अपना एक नया ऊँट छोड़ने का हौसला हो गया है । जैसे भावों या तथ्यों की व्यंजना के लिए श्रीयुत रवीन्द्र, प्रकृति के क्रीडास्थल से लेकर नाना मूर्तिस्वरूप खड़ा करते हैं, वैसे भावों को ग्रहण करने तक की क्षमता न रखनेवाले बहुतेरे अस्पष्ट चित्र खड़ा करने और कुछ असंबद्ध प्रलाप करने को ही "छायाव की कविता समझ अपनी भी कुछ करामात दिखाने के फेर में पड़ गए हैं ।[45]

उपरोक्त उद्धरण में कवियों पर व्यंग्य है तो नीचे के उदाहरण में समालोचकों पर व्यंग्य है जो शब्दों के आविष्कार के चक्कर में पड़कर काव्य के असली रसास्वाद को नज़रंदाज करने की चिंता करते हैं - " दिन में सैकड़ों बार हृदय की अनुभूति, हृदय की अनुभूति चिल्लायेंगे, पर "रस" का नाम सुनकर ऐसा मुँह बनायेंगे मानो उसे न जाने कितना पीछे छोड़ आये हैं । अभी मानस इतना भी नहीं जानते कि हृदय की शुद्ध अनुभूति ही साहित्य में "रस" और भाव कहलाती है । यदि जानते तो कोई नया आविष्कार समझकर "हृदयवाद" लेकर सामने न आते ।[46]

शुक्लजी की दृष्टि में विशुद्ध शृंगारी कवि जयदेव और विद्यापति में आध्यात्मिक रंग ही देखनेवालों पर उनका व्यंग्य बाण है - " आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं । उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने " गीत-गोविंद" के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी ।[47]

शुक्लजी के ऐसे साहित्यिक व्यंग्यों में साहित्य के प्रति शुक्लजी के दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय मिलता है । और साहित्य के क्षेत्र को अ-पात्र और अ-योग्य व्यक्तियों को दूर रखने के लिए निश्चय ही ऐसे व्यंग्यों से मदद मिलेगी । आलोचना अथवा इतिहास ग्रंथों में व्यंग्य का इतना सफल प्रयोग हमारे साहित्य में नहीं के बराबर हैं । इन कृतियों में अभिव्यक्त व्यंग्य का महत्व इसलिए भी है कि शुक्लजी ने कवि और आलोचकों के प्रति प्रहार तो किये हैं, साथ ही उन्हें समझने का एक दृष्टिकोण भी दि

है । शुक्लजी के अभिप्रायों से कोई सहमत हो, न हो किंतु व्यंग्य के माध्यम से साहित्यशास्त्र की बारीकियों को समझने की दृष्टि इनके निबंध देते हैं ।

एक ओर रामचंद्र शुक्लजी ने साहित्य के मर्म से अवगत कराने तथा साहित्य के सही रूप को रेखांकित करने के लिए साहित्यिक व्यंग्य किये हैं तो दूसरी ओर वे भाषा एवं सामाजिक विषयों पर भी अपना विश्लेषण किया है । जहाँ जो भी विसंगतियाँ दिखाई पड़ीं उनके प्रति व्यंग्य करना नहीं भूलते । हिन्दी जातीय गौरव की प्रतीक है जिसके प्रति शुक्लजी के मन में अतीव गौरव था, मगर अंग्रेज़-शासन के दौरान (आज भी) हिन्दी को कोई चीज़ मानते ही नहीं थे । इस साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के प्रति इनका व्यंग्य भारतीयों में अभिमान जागृत करने में सहायक है - "उस काल खंड के बीच हिन्दी लेखकों की तारीफ़ में प्रायः यही कहा सुना जाता रहा है कि वे संस्कृत बहुत अच्छी जानते हैं, वे अरबी-फ़ारसी के पूरे विद्वान हैं, ये अंग्रेज़ी के अच्छे पंडित हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी कि वे हिन्दी बहुत अच्छी जानते हैं । यह मालूम ही नहीं होता था कि हिन्दी भी कोई जानने की चीज़ है ।"[48] हिन्दी और हिन्दी विद्वानों की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर उन दिनों की मानसिकता का बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य किया है ।

चिंतामणि के निबंधों में तो शुक्लजी की दृष्टि सामाजिकों पर केन्द्रीकृत है । नाना भावों व मनोविकारों के विश्लेषण के संदर्भ में शुक्लजी ने अनेकों स्थलों पर व्यक्ति एवं समाज की विसंगतियों एवं विकृतियों पर प्रकाश डाला है । " शुक्लजी के व्यंग्य बाण दो प्रकार के दिखाई पड़ते हैं, एक छोटे और दूसरे बड़े । अपनी अभिरुचि और सिद्धांत की बात न होने पर या तो उन्होंने अवज्ञात ध्वनि से नितांत संक्षेप में - केवल एक मार्मिक शब्द के द्वारा उसे नितांत हल्का बना दिया है या तो जमकर अपेक्षाकृत कुछ अधिक कटु और व्यंग्यात्मक पदावली का योग लेकर उसके खोखलेपन का उद्घाटन किया है । पहले प्रकार के व्यंग्यों में केवल एक मार्के का शब्द ऐसा बैठाया है कि व्यंग्य कथन में दीप्ति पैदा हो गई है । साधारणतः ये शब्द ठेठ बोलचाल के ही रहते हैं । दूसरे प्रकार के व्यंग्यों में प्रायः उर्दू के फिकरे अधिक मिलते हैं और वे भी कुछ अधिक

मिलते हैं और वे भी कुछ अधिक विस्तार के साथ। इन दोनों प्रकार के व्यंग्यों में एक प्रकार की तीक्ष्णता और चटुलापन झलकता रहता है जो इस शैली में प्राणवत् वस्तु मालूम पड़ती है। क्रम से दोनों पद्धतियों की कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं -

1. चौबेजी पेट भर भोजन के ऊपर भी पेट पर हाथ फेरते हैं।
2. एक साथ कई प्रौढ़ोक्तियाँ लादकर पिछले ढंग के कवियों ने एक भद्दी इमारत खड़ी की।
3. डिप्टीजी के लेखों को पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि लेखक बहुत मोटी अक्ल के पाठकों के लिए लिख रहा है।
4. आजकल कवि के "संदेश" (मेसेज) का फैशन बहुत हो रहा है।

0 0 0

1. हवा से लड़नेवाली स्त्रियाँ देखी नहीं तो कम से कम सुनी तो बहुतों ने होंगी चाहे उनकी जिंदादिली की कद्र न की हो।
2. उर्दू जबान और शेर सखुन की बेढंगी नकल तो, जो अलग से कभी कभी साफ़ अलग हो जाती है, उनके बहुत से उपन्यासों का साहित्यिक गौरव घटा गया है।
   गलत या बेवक्त नामों में लाए हुए शब्द भाषा को शिष्टता के दर्जे से गिरा देते हैं। खैरियत यह हुई कि अपने सब उपन्यासों को यह मँगनी का लिबास नहीं पहनाया है।

उक्त उदाहरणों से शुक्लजी के व्यंग्यात्मक आक्रमणों का कुछ सामान्य सा परिचय मिल जाता है। इनमें आक्षेप के साथ साथ उपहास की भी व्यंजना होती है।[49]

शुक्लजी मानव स्वभाव के अच्छे पारखी होने के कारण उनके निबंधों में भावनाओं की गहराई में जाकर उनका विश्लेषण और व्यंग्य करने में समर्थ हुए हैं। चिंतामणि-भाग-एक में संकलित निबंधों के अनेकों स्थानों ऐसे व्यंग्य स्थल बिखरे ह पड़े हैं। कुछ उदाहरण हैं -

जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी सुनते कि चातक कहाँ चिल्लाता है, जो आँख भर यह भी नहीं देखते कि आम प्रणय-सौरभपूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं जो यह भी नहीं झाँकते कि किसानों के झोंपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी

का परता बताकर देश प्रेम का दावा करें, तो उनसे पूछना चाहिए कि " भाइयो ! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा ? जिनके सुख दुख के तुम साथी न हुए उन्हें तुम सुखी देखना चाहते हो, यह समझते नहीं बनता । उनसे कोसों दूर बैठे बैठे, पड़े पड़े या खड़े खड़े तुम विलायती बोली में अर्थशास्त्र की दुहाई दिया करो पर प्रेम का नाम उसके साथ न घसीटो । " प्रेम हिसाब-किताब की बात नहीं है । हिसाब-किताब करने वाले भाड़े पर भी मिल सकते हैं पर प्रेम करनेवाले नहीं । हिसाब-किताब से देश की दशा का ज्ञान मात्र हो सकता है । (लोभ और प्रीति)

0 0 0

आजकल तो बहुत सी बातें धातु ठीकरों पर ठहरा दी गई हैं । पैसे से राजसम्मान की प्राप्ति, विद्या की प्राप्ति, और न्याय की प्राप्ति होती है जिनके पास कुछ रुपया है वे बड़े बड़े विद्यालयों में अपने लड़कों को भेज सकते हैं, न्यायालयों में फीस देकर अपने मुकद्दमें दाखिल कर सकते हैं और महँगे वकील बैरिस्टर करके बढ़िया बाता निर्णय करा सकते हैं, अत्यंत भीरु और कायर होकर बहादुर कहला सकते हैं, राजधर्म, आचार्यधर्म, वीरधर्म सब पर सोने का पानी फिर गया, सब टकाधर्म हो गए । धन की पैठ मनुष्य के सब कार्यक्षेत्रों में करा देने से उसके प्रभाव को इतना विस्तृत कर देने से, ब्राह्मण धर्म, क्षात्र धर्म का लोप हो गया, केवल वणिग् धर्म रह गया । (लोभ और प्रीति)

उक्त पंक्तियों में कोरे देश प्रेमियों के नकलीपन का व्यंग्य किया गया है और रुपये की करामात पर बड़ा मार्मिक प्रहार किया गया है और बताया गया है कि इस करामात के कारण जीवन के हर क्षेत्र की पवित्रता दिनोंदिन नष्ट हो रही है ।

शुक्लजी के निबंधों में एक गंभीर आलोचक, चिंतक की संवेदनाशील चेतना बौद्धिक स्तर पर चिंतन करते हुए अपनी चारों ओर की व्यवस्था एवं समाज की मानसिकता को जीवन मूल्यों के निकष पर कसने का प्रयत्न करती है । इनका व्यंग्य कभी भी न व्यक्तिगत स्तर पर उतरता है न हल्का बनता है । शुक्लजी की व्यंग्य शैली एक प्रबुद्ध शैली है जहाँ सस्ती हँसी-मज़ाक, मनोरंजन के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । ऐसी व्यंग्यशैली अध्ययन, चिंतन, मनन, सामाजिक जागृति के जागरूक चेतना को हासिल हो सकती है ।

शुक्लजी ने हिन्दी व्यंग्य को निश्चित रूप से प्रौढ़ दृष्टि दी है, पैनी भाषा दी है ।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

हजारीप्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी के वरिष्ठतम लेखकों में से हैं जिनकी विद्वत्ता अध्येताओं के लिए एक आदर्श है, उनका इतिहास-लेखन सूक्ष्म अध्ययन एवं गंभीर चिंतन का नमूना है, इनकी निबंधशैली प्रौढ़-चिंतन, सरसता और संस्कृति के धरोहर हैं, उनके उपन्यास अतीत के पृष्ठों में भारतीय जातीय गौरव के अन्वेषण हैं जो उस अतीत बोध से वर्तमान एवं भविष्य चेतना के साथ अविना संबंध स्थापित करते हैं । उनके संपूर्ण व्यक्तित्व में हर कहीं उनका मस्तमौलापन, फक्कड़ता और अवधूती स्वभाव अपना रंग जमाता जाता है । इसी स्वभाव के कारण उनके गंभीर चिंतन में हास्य, विनोद एवं व्यंग्य घुलमिल गया है । वास्तव में इन्हीं गुणों को हजारी प्रसाद द्विवेदी रचनाकार की प्राथमिक शर्त मानते हैं - " अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं । कबीर बहुत कुछ इस शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवाह, पर सरस और मादक । कालिदास भी जरूर अनासक्त योगी रहे होंगे । शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और मेघदूत का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त, अनाविल, उन्मुक्त हृदय में उमड़ सकता है...कवि बनना है, मेरे दोस्तों तो फक्कड़ बनो । शिरीष की मस्ती की ओर देखो ।[50]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के महान व्यक्तित्व की विशेषता इस बात में है कि अनेकों विषयों के पंडित होते हुए भी उन्होंने उनकी आँच को अपने मस्तमौले व्यक्तित्व पर पड़ने नहीं दिया है । और उनकी विनम्रता इतनी है कि वे अपने पांडित्य को अपने जीवन की उपलब्धि भी नहीं मानते । इस पंडिताई पर जो बोझ बनने की संभावना रखती है, व्यंग्य करने से भी पंडितजी आगे पीछे नहीं देखते - पंडिताई भी एक प्रकार का बोझ है - जितनी ही भारी होती है, उतनी ही तेजी से डुबाती है । [51] कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व का व्यापक प्रभाव हजारीप्रसाद द्विवेदी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर व्यापक रूप से पड़ा है । खासकर कबीर की व्यंग्योक्तियाँ द्विवेदीजी के मूलस्रोत भी रही हैं । इस

बात को इन्होंने स्वीकार भी किया है - " व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में कबीर अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं जानते । पंडित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी - सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते हैं । अत्यंत सीधी भाषा में वे ऐसी गहरी चोट करते हैं कि चोट खानेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं पाता ।[52] व्यंग्य का साहित्य में क्या प्रभाव होना चाहिए, इस ओर यहाँ संकेत है । व्यंग्य के आचार्यप्रमुख कबीर की वाणी में व्यंग्य का गहरा स्वर जो है वह द्विवेदी के व्यक्तित्व में एकमेक हो गया है । खासकर उनके निबंधों में, तो भी शिरीष और देवदारु की महत्ता के परिप्रेक्ष्य में क्षुद्र मनुष्य की अल्पता और हीनता, नैतिक अधःपतन, समझौतावादी प्रवृत्तियों का उद्घाटन व्यंग्य के माध्यम से करने की शैली केवल उन्हींकी है । हिन्दी साहित्य में द्विवेदीजी ने जिस प्रकार प्रकृति के निकष पर जैसा व्यंग्य करता है, वैसा शायद ही दूसरे ने किया हो । देवदारु वृक्ष के सम्मुख मनुष्य की अल्पता का बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य किया है जो मार्के का है - " जमाना बदलता रहा है, अनेकों वृक्षों और लताओं ने वातावरण से समझौता किया है, कितने ही मैदान में आ डटे हैं और खासी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, लेकिन देवदारु है कि नीचे नहीं उतरा, समझौते के रास्ते नहीं गया और उसने अपनी खानदानी चाल नहीं छोड़ी । झूमता है तो ऐसा मुस्कुराता हुआ मानो कह रहा हो, मैं सब जानता हूँ, सब समझता हूँ । तुम्हारे करिश्मे मुझे मालूम है, मुझसे तुम क्या छिपा सकते हो ।[53]

जैसाकि उस युग के लगभग सभी लेखकों ने अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है, हजारी प्रसाद द्विवेदी भी अपवाद नहीं हैं । इस संबंध में इनका व्यंग्य तीक्ष्ण है, भारत वर्ष में एक भी देशी भाषा ऐसी नहीं है जिसमें कोई समझदार न्यायाधीश फैसला लिख सके । वह फाँसी की सजा दे सकता है, लेकिन दंडित को उसीकी भाषा में समझा नहीं सकता कि क्यों उसे फाँसी दी गई । यदि वह पूछे कि दयानिधान, कुछ मुझे यह तो बता दीजिए कि मुझे फाँसी क्यों दी गई, तो उत्तर यह है कि तुम मूर्ख लोगों की भाषा में इतनी शक्ति नहीं कि हमारे निर्णय को व्यक्त कर सके...तुम्हें सिर्फ फाँसी पर झूल जाने का अधिकार है ।[54] इस सामाजिक अन्याय की विडंबना को इससे भी भारी शब्दों में व्यंग्य नहीं किया जा सकता है । इसी तरह साहित्य जगत के

बीवियों के कार्यविधान पर इनका व्यंग्य है - " पढ़नेवाला आलोचना नहीं करता, आलोचना करनेवाला पढ़ता नहीं ।[55] हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यंग्य एकदम चुभनेवाला, लिखनेवाले पर तीव्र प्रहार है ।

हास्य और विनोद तथा व्यंग्य शैली द्विवेदीजी के कृतित्व का अभिन्न अंग है । विचारात्मक निबंधों में उनकी यह प्रवृत्ति हृदय पर धाक जमानेवाली है । वैचारिक शैली में सरसता एवं व्यंग्य का योग द्विवेदी का हिन्दी साहित्य को योगदान है ।

शिवपूजन सहाय

शिवपूजन सहाय की शैली में भावुकता, अलंकार की भरमार व्याख्यात्मकता और तुकबंदी की अधिकता है । इनकी संस्कृतनिष्ठ भाषा के रमणीय प्रयोग पाठकों को एकदम लुभानेवाला है । इनकी भाषा की छोटी सी [illegible] बानगी है - " यह संसार असार है, ऐसा वेदांतियों का विचार है । उनके लिए ईश्वर भी निराकार है, किन्तु हमारे साहित्य संसार का ईश्वर साकार है । ज्ञानियों का संसार माया का बाजार है, हम साहित्यिकों का संसार अमृत का भंडार है । उनके लिए संसार कारागार है, हम लोगों के लिए कल्पनावतार का लीलागार है । उनके लिए शृंगार दुराचार है, हम लोगों के लिए वह गले का हार है, अलंकार है । उधर ओंकार का आधार है, इधर नंदकुमार का आधार है । बड़ा ही विचित्र व्यापार है । " ऐसी सुंदर सुकोमल भाषा लिखनेवाले लेखक के व्यंग्य में प्रहारात्मक चोट नहीं अपितु हास्य और विनोद का पुट ही ज्यादा है । यही कारण है कि उन्होंने अपनी इस ढंग की रचनाओं को " व्यंग्य विनोदपूर्ण - मनोरंजक रचनाओं का संग्रह " कहा है । इनमें हास्य, विनोद व्यंग्य का समन्वय है । " उनका हास्य वस्तुतः वह फूल है जिसके पीछे तीखे काँटे नहीं होते । उनके व्यंग्य में ऐसे काँटे हैं जो चुभते तो हैं किन्तु उनमें असह्य व्यथा नहीं होती । मतलब उनका व्यंग्य-पुष्प काँटों से रहित है । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि शिवपूजन सहाय मर्यादावादी हास्यकार या व्यंग्य विनोद के लेखक थे । इनका हास्य मर्यादित हास्य, इनका व्यंग्य मर्यादित व्यंग्य, इनका विनोद मर्यादित विनोद है । अंग्रेजी के कतिपय हास्य लेखकों, व्यंग्य-विनोदकारों के समान, सेक्स संबंधी मजाकों (सेक्स जोक्स) में इन्होंने रस नहीं लिया ।[56]

शिवपूजन सहाय की व्यंग्योक्तियों में प्रहारात्मक चोटें नहीं अपितु प्रसादगुण विद्यमान है । इनकी व्यंग्य-शैली के दो-एक नमूने हैं - "प्रोपेगेंडा" - प्रभु का प्रताप परम प्रचंड है - जिसके उस प्रताप के आगे, रवि मलीन शीतल लागे... श्री हनुमानजी राम प्रताप सुमिरकर कल्पनातीत कार्य कर डालते थे । प्रोपेगेंडा - प्रभु का प्रताप भी यदि आपकी सुमिरनी का मनका बन जाय तो आप भी बिना हर्रे-फिटकरी के अपना रंग चोखा बना सकते हैं ।.. आप मजे से तदूदर कौड़ि दाम में स्वार्थ का घड़ा भर सकते हैं । फिर तो मंच पर खड़ा होइये और मंच में "हिप्पसी" की घुस्की लीजिए " ।दो घड़ी, प्रोपेगेंडा - प्रभु का प्रताप पृष्ठ 14-15। " जिधर देखिए, उस नोट की ही मीनार बन रही है । पहले सरस्वती का मूलधन था कागज, अब वह लक्ष्मी का मूलधन है । लोग सोना-चाँदी ॥ के नाम पर आँसू बहा रहे हैं..." ।दो घड़ी - मीठा मीठा गप, कड़वा कड़वा थू । ॥ पृष्ठ 5-6। " जैसे नारद देवताओं के गजट थे, वैसे ही भारतवासियों के लिए रेडियो होगा " - ।शिवपूजन रचनावली पृ.508।

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि शिवपूजन सहाय के व्यंग्यों में सामाजिक स्थिति-गतियोंॾ की विडंबना है , यह विडंबना, यह व्यंग्य काफी प्रभावकारी भी है ।
" शिवपूजनसहाय हास्य और व्यंग्य के, वास्तव में नामचक लेखक थे, साहित्यिक भूलों के चाहें वे भयंकर हों अथवा सूक्ष्म-प्रखर पारखी । अपने व्यक्तित्व से अनुरूप ही सहायजी हास्य-व्यंग्य का सृजन करते रहे । न अधिक आध्यात्मिक उत्साह से अभिभूत हुए न नग्न यथार्थ के पक्षपाती बन सके । [57]

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा श्रेष्ठ कवि, कथाकार हैं । इनकी कविताओं में मस्ती, फक्कड़पन और मुक्त मन की अभिव्यक्ति है तो कथा साहित्य में देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन की महागाथाएँ हैं । इनकी कविताएँ ॾ सरल एवं भावपूर्णता से आपूरित हैं तो इनका औपन्यासिक कथा साहित्य संकीर्ण समस्याओं का दास्तान है । मगर चाहे कविता हो, चाहे कथासाहित्य , हर कहीं व्यंग्य की प्रधानता है । व्यंग्य को अपने कृतित्व की आत्मा के रूप में स्वीकार कर उसके माध्यम से व्यक्ति एवं सामाजिक जीवन की विसंगतियों को ॾ रेखांकित करते जाते हैं । इस दृष्टि से व्यंग्य की महत्ता को वे

मानते हैं - " व्यंग्यवाला हास्य अधिक बौद्धिक है और वर्तमान बौद्धिक युग में यह व्यंग्यात्मक हास्य श्रेष्ठ समझा जाता है । पर व्यंग्य वाले हास्य में कटुता आ जाने का खतरा रहता है और अधिकांश लेखक व्यंग्य को कटुता से दूर रख नहीं पाते । व्यंग्य स्वयं कटु होता है और व्यंग्य से कटुता को इस हद तक गौण बना देता कि साधारण पाठक को ऐसी कटुता का आभास भी न हो, बहुत थोड़े से कलाकार कर सकते हैं ।[58] व्यंग्य कटु तो है ही, इस कटुता का आभास पाठकों को न खटके, ऐसा व्यंग्य लिखना केवल मंजा हुआ कलाकार ही कर सकता है । ऐसे कलाकार हैं भगवतीचरण वर्मा । इनकी कविताओं के तरल-बंध में व्यंग्य का ताना-बाना ऐसा देखा जा सकता है कि समकालीन कवियों में इस बात के लिए निराला ही दूसरे उदाहरण हैं ।

इनके कथासाहित्य में विविधता है । देश की विभाजन-समस्या से लेकर देश की वर्तमान स्थिति के हादसों, पुराने और आधुनिक मूल्यों और मान्यताओं के बीच के संघर्ष बनते बिगड़ते नैतिक मूल्यों, मर्यादाओं की यथार्थताओं का बड़ा ही गंभीर विवेचन, विचार विमर्श वर्मा के साहित्य में दिखाई पड़ता है । यहाँ व्यक्ति नहीं व्यवस्था प्रधान है । इस व्यवस्था की विसंगतियों एवं वहाँ के विद्रूपों का व्यंग्य के निकष पर कसते जाना भगवती चरण वर्मा की विशिष्ट शैली है ।

इनका रचना संसार विशाल है । इनके काव्यलोक की तुलना में कथालोक ज्यादा संकीर्ण है, संश्लिष्ट है । यहाँ मानव-मन की कुंठाएं और आस्थाओं का जीवंत संघर्ष दिखाई पड़ता है । इनके कथा साहित्य में "सबहिं नचावत राम गुसाई" का विशिष्ट महत्व है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की भावभूमि पर लिखे गए उपन्यासों में प्रस्तुत उपन्यास भी एक है । चूंकि हमारा सामाजिक जीवन इतनी निराशाओं, कुंठाओं और तनावों से भरा है कि उस पर व्यंग्य के अतिरिक्त और किसी दूसरी शैली का असर नहीं हो सकता । इस दृष्टि से वर्माजी ने इस उपन्यास को व्यंग्यशैली में लिखा है । डॉ. गोपालराय का कहना है कि " भूमि बिखरे चित्र में 1890 से 1930 ई. के कालखंड को उपन्यास की पृष्ठभूमि के रूप में चुना गया है । सीधी सच्ची बातों में 1939 से 1948 के भारत का चित्र प्रस्तुत किया गया है । यद्यपि उपन्यासकार के रूप में, इस

उपन्यास में भगवती बाबू को सफलता नहीं मिली, यानी वे इसमें कल्पित संसार का विश्वसनीय, सार्थक और जीवंत चित्र नहीं [illegible] बना पाये हैं । 'सबहिं नचावत राम गुसाईं' इसलिए महत्वपूर्ण है कि 'सीधी सच्ची बात' में भगवती बाबू के कृतित्व के प्रति जो निराशा उत्पन्न हुई थी, वह इससे दूर ही नहीं होती, उनकी संभावनाओं के प्रति भी आस्था जगती सी दिखाई पड़ती है । इस उपन्यास में उनकी अपनी पुरानी किस्सा गोई ही अपने पूरे 'फार्म' में लौटती नहीं दीखती, वरन वे एक अच्छे व्यंग्य लेखक के रूप में भी उभरते दीखते हैं ।[59] प्रस्तुत उपन्यास में स्वतंत्र भारत की एक सच्ची मजेदार और व्यंग्यपूर्ण तस्वीर ह पेश की गई है जहाँ सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि पर मानव मन की गहराइयों में जाकर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । चार अवस्थाओं में विभक्त इस उपन्यास का महत्वपूर्ण भाग है 'उथल-पुथल' जिसमें [illegible] उद्योगपतियों और भ्रष्ट मंत्रियों की साठ-गाँठ, मंत्रियों की आपसी फूट और उनकी शहरंजी पार्टी मजदूर संघों के नेताओं के खोखले व्यक्तित्व, साहित्यिक गोष्ठियों में होनेवाली ह कवायद और झूठी नारेबाजी आदि का व्यंग्यात्मक चित्र अंकित किया गया है ।[60] स्वातंत्र्योत्तर भारत के पूँजीवादी राजनीतिक वर्ग के विशाल कैनवास पर रचा गया यह उपन्यास निश्चय ही व्यंग्य को एक सशक्त विधा के रूप से स्थापित करने की सामर्थ्य रखता है । प्रगतिशील दृष्टि, शोषितों के प्रति हार्दिक संवेदना की आधारभूमि पर स्थापित होनेवाला व्यंग्य समाज के शोषक वर्ग पर तीखा प्रहार करता है ।

श्रीलाल शुक्ल

" राग दरबारी " श्री लाल शुक्ल का सशक्त व्यंग्य उपन्यास है जो कि इस शती की महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृतियों में से एक है । व्यंग्य को एक विधा और एक शैली के रूप में स्थापित करने में इस उपन्यास का अपना विशिष्ट योगदान है । व्यंग्य का इस रूप में उपयोग करके श्रीलाल शुक्लजी ने उसकी अभिव्यक्ति की संभावनाओं को और उजागर कर दिया है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की प्रजातांत्रिक व्यवस्था में देश को प्रगति के पथ पर ले जाने की जिम्मेदारी जनता पर पड़ी तो जनता चंद स्वार्थी राजनीतिज्ञों के फंदे में गिर पड़ी,

उनकी कठपुतली बनती गई। इसके फलस्वरूप शासकीय अधिकार प्राप्त करने के बाद यही जनता, गाँव, समाज, देश की समूची व्यवस्था उन स्वार्थियों के हाथों में किस प्रकार शोषित होती गई, इसका श्रीलाल शुक्लजी ने अपनी श्रेष्ठ उपन्यास रचना "राम दरबारी" बड़ी रोचक शैली में चित्रण किया है। व्यंग्य के परिवेश में पूरे देश की मानसिकता की परत-दर-परत उधेड़-उधेड़कर अनावृत्त करते जाना इस उपन्यास की महत्वपूर्ण साधना है। श्रीलालशुक्लजी की यह रचना हिन्दुस्तान के गाँव की हालत, इस दुनिया की पुलिस, थानों, अफसरों, स्कूलों, विद्यार्थियों, प्राचार्यों, ग्राम के राजनीतिज्ञों और उनके चंगुल में पड़ी सहकारी संस्थाओं, सबके पुनीत कारनामों एवं पक्षों को ब बड़ी ईमानदारी के साथ उभारती है।[61] "रागदरबारी" की रचना हास्य कोटि व्यंग्य की धार पर खड़ी है। हिन्दी उपन्यास में पहली बार व्यंग्य को इतना विस्तार मिला। यह कहना गलत न होगा कि संभवतः "रागदरबारी" हिन्दी उपन्यास की पहली रचना है जिसमें बृहद्स्तर पर व्यंग्य को निरंतर बनाये रखा जा सका है।[62]

शिवपालगंज राम दरबारी का केन्द्र है जोकि भारत का कोई भी गाँव हो सकता है। यह न गाँव है न महानगर, किंतु यहाँ कालेज, स्कूल, थाना, को ऑपरेटिव यूनियन मिठाई पंसारियों की दूकानें हैं। वैद्यजी यहाँ का केन्द्रनायक है। इनकी पहुँच बहुत व्यापक है और इनकी चालें गहरी हैं इसी व्यक्ति की छत्र छाया में गाँव का हर काम संपन्न होता है हर कहीं इनकी पैठ है। वास्तव में इनकी कोठी ही सामंतों के दरबार की प्रतीक है। इस व्यक्ति के संकेतों पर गाँव में होनेवाली उथल पुथल, हमले-शोर-शराबों का लेखक ने बड़ा व्यंग्य किया है।

"राम दरबारी" स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति के छिद्रों का व्यंग्य करते थकती नहीं है। जो चरित्र के भ्रष्ट हैं वही यहाँ पूजित होते हैं, गिरे हुए अधिकारों पर आसीन होते हैं। षड्यंत्र, धोखेबाजी, चरित्रहीनता, लफंगापन, रिश्वतखोरी यहाँ मूल्यों के बारे में मान्य बन जाते हैं: उदाहरण के लिए मंगलदास उर्फ सनीचरा को गाँव सभा के मुखिया पद के लिए योग्य समझा जाता है। वैद्यजी की कृपा और महिपालपुर की चुनाव पद्धति के सहारे सनीचरा गाँवसभा का प्रधान बन गया। यह कितना व्यंग्य है कि एकदम

मूर्ख, बिना दुम का बंदर, मसखरा एक निठल्ला आदमी गाँवसभा का प्रधान बन गया सनीचरा की विजय लोकतांत्रिक मूल्यों एवं प्रणाली के खोखले हो जाने का सबूत है ।

"रागदरबारी" का व्यंग्य हमारे राजनीतिज्ञों पर कुठार प्रहार है, ह्रास होती व्यवस्था, विघटित हो रहे जीवन-मूल्यों, कुंठाओं में आत्मतोष पानेवाले युवाओं, शिक्षा क्षेत्र की राजनीति, यहाँ की गुटबंदी...ऐसे ही सैकड़ों विषयों पर प्रहार करते करते आत्मबोध कर लेने के लिए प्रेरणा देने में, जागृति उत्पन्न करने में सफल हुआ है । "राग दरबारी" को पढ़ना ऐसे खुशी की बात नहीं क्योंकि मन दुखता है - शिवपालगंज की दुस्थिति पर, यहाँ की राजनीति पर । पर श्रीलाल शुक्ल की शैली में व्यंग्य को विचारों पर ढालने की उनकी कला में इतनी प्रबल शक्ति है कि "रागदरबारी" को दुख पढ़ने में भी एक प्रकार का आनंद है ।

"राग दरबारी" हिन्दी की सबसे पहली रचना है जिसमें व्यंग्य को इतनी बृहत्तर भित्ति पर प्रस्तुत किया गया है, हिन्दी की परंपरागत शैली के बीच यह एक सर्वथा नया प्रयोग है । इसी लेखक की अन्य रचनाओं में - "आदमी का जहर", "मकान" और "अज्ञातवास" - रागदरबारी-सा व्यंग्य निखर नहीं आया है । तथापि अकेला "रागदरबारी" उपन्यास ही हिन्दी को श्रीलाल शुक्लजी का महत्वपूर्ण योगदान है।

यादवेंद्र शर्मा चंद्र

सबहिं नचावत राम गुसाईं और "रागदरबारी" के अलावा राजनैतिक विसंगतियों को व्यंग्य के सहारे उभारने की दिशा में जो उल्लेखनीय रचनाएँ हैं, उनमें से हैं - यादवेंद्र शर्मा "चंद्र" का उपन्यास "एक और मुख्यमंत्री" । यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारत की विघटनशील नैतिकता और इसका पतनशील नेतृत्व का अनावरण करता है । लेखक के ही शब्दों में देश के राजनैतिक जीवन की बीस वर्षों की यह गाथा है - उपन्यास । स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनैतिक क्षेत्र की क्रूरता, स्वार्थपरता, दल-बदल राजनीति एवं कूटनीति की अनेकों असंगतियों का अत्यंत पैनी भाषा में प्रस्तुत उपन्यास व्यंग्य करता जाता है । इस उपन्यास का नायक अरविंद वह महत्वाकांक्षी नायक है

क्योंकि राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता को हासिल करने के लिए सब कुछ करने को तैयार रहता है । अरविंद हमारे स्वार्थी नेताओं का सच्चा प्रतिबिंब है । यादवेंद्र शर्मा "चंद्र" के अन्य उपन्यास "हजार घोड़ों का सवार" "पुजाराम" में भी राजनीतिक क्षेत्र की ज्यादतियों का ज्वलंत चित्रण प्राप्त होता है । यहाँ की हर घटना को व्यंग्य के आवरण में उजागर करने की कला में लेखक को सफलता मिली है ।

प्रेमकुमार गोस्वामी

राजनीतिक उपन्यासों की शृंखला में प्रेमकुमार गोस्वामी का "जंगलतंत्रम" का अपना विशिष्ट महत्व इसलिए है कि उन्होंने अपने उपन्यास के चरित्रों को जानवरों के प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करके अपने कथ्य के प्रभाव को और प्रखर बनाने और व्यंग्य को पीखा बनाने का प्रयत्न किया है । यहाँ जानवर राजनीतिक क्षेत्र के प्रतीक हैं, यथा क्रमशः सिंह-राजनेता, मोर-प्रशासक, नाग-पूँजीपति, चूहा- आम आदमी, लोमड़ी, भालू छिपकली, भेड़िया आदि जानवर जनता के प्रतीक हैं । इस उपन्यास में पच्चीस रातों की कहानी है याने आजादी के बाद के पच्चीस वर्षों का दास्तान यहाँ चित्रित है । पूँजीपति, नेता और प्रशासकों के हाथों में आम आदमी की जिन्दगी आये दिनों में किस प्रकार असहनीय होती गई, होती जा रही है, इसका बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में उपलब्ध होता है । प्रजातंत्र आजकल किस प्रकार जीवन विधान हो गया है, इसका सफल चित्रांकन "जंगलतंत्रम" में उभर कर आया है । प्रजातंत्र के नाम पर अपना उल्लू सीधा करने के लिए कानून-नियमों को एकदम फूँक मारकर उड़ा देने की कला में सिद्धहस्त चरित्रों का इस उपन्यास में तीखा व्यंग्य किया गया है । कुल मिलाकर प्रस्तुत उपन्यास बाहरी तौर पर बच्चों का उपन्यास है ऐसा लगने पर भी वर्तमान शासन व्यवस्था पर डंके की चोट मारता है । यहाँ के जानवर अपने अपने स्वभाव के अनुरूप राजनीतिक दायित्वों को अत्यंत कुशलता से निबाह करते हैं ।

प्रदीप पंत

"महामहिम" प्रदीप पंत की व्यंग्यात्मक औपन्यासिक कृति है जिसकी आधारभूमि राजनीतिक क्षेत्र है । इस उपन्यास में यद्यपि जनतापार्टी के शासन काल को मुख्य आधार

बनाया गया है तथापि भारतीय राजनैतिक क्षेत्र की नौटंकी को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है जो कि भारतीय राजनीति में सत्तारूढ़ नेताओं की आम प्रवृत्ति है। इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया पर प्रदीप पंत लिखते हैं - "एक कुटैले और घुटैले नेता से मेरा परिचय है। मार्च 77 के बाद उनकी आस-पास में मैंने निराले परिवर्तन होते देखे। उनकी आवाज़ बदल गई, तेवर बदल गए और रहन-सहन बदल गया। उनसे जब भेंट होती, कुछ लिखने का मन होता और आखिरकार यह उपन्यास लिखा गया। यद्यपि इसमें उनका चरित्र कहीं नहीं है, लेकिन उनके जैसा चरित्र है। यद्यपि इस उपन्यास में घटनाएँ पूर्णतः तथ्यों नहीं हैं लेकिन वे सच पर आधारित हैं।[63] इसी भूमिका में आगे लेखक कहते हैं कि यह व्यंग्य उपन्यास एक प्रकार से सिद्धांतहीन और अमानवीय राजनीति के प्रति विरोध प्रदर्शन है। "महामहिम" वर्तमान शासन व्यवस्था के गिरे हुए मूल्यों को व्यंग्य शैली में उजागर करता है। उदाहरण के लिए एक प्रसंग है जबकि मुख्य मंत्री को चुनना होता है। राज्य की राजनीति का कर्णधार केन्द्रीय मंत्री श्री चंद्रिका प्रसाद सिंह हैं जिनके इशारों पर राज्य की राजनीति संचालित होती है। भारतीय राजनैतिक क्षेत्र की विडंबना यही है कि केन्द्रीय सत्ता राज्यसत्ता का नियंत्रण करती है, विधायक राज्य के और शासक केन्द्र के होते हैं। जब मुख्यमंत्री के चुनने का प्रसंग आता है तो चंद्रिका प्रतापसिंह अपने चमचे सुभावनासिंह को बुलाकर पूछते हैं "तुम्हीं" बताओ सुभावन, किसे मुख्यमंत्री बनायें और सुभावन जानना चाहता है कि वे किस तरह का व्यक्ति चाहते हैं। तब मंत्री चं.प्र. सिंह कहते हैं - जितने एम.एल.ए. चुने गए हैं, सबकी इमेज खराब है। इसलिए ऐसा आदमी लाओ जिसकी कोई इमेज ही न हो। न अच्छी न बुरी, यानी ऐसा आदमी जो किसी पद पर न रहा हो।[65] इन पंक्तियों द्वारा जो व्यंग्य उभर आता है, उससे भारतीय नेताओं की मानसिकता की तस्वीर खिंच जाती है। ऐसे अनेकों प्रसंग प्रस्तुत उपन्यास में हैं जो एक से एक बढ़कर हैं और व्यंग्य को रेखांकित करने में, प्रभावसत्ता की खिल्ली उड़ाने में होड़ा होड़ी करते हैं।

बहुआयामी राजनैतिक क्षेत्र के सैकड़ों मार्गों पर स्वातंत्र्योत्तर भारत में भारत की सभी भाषाओं में सैकड़ों कथाकृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। इसी अवधि में जन्मी, और विकसित

"कांग्रेसी संस्कृति" नामक विशिष्ट संस्कृति की आलोचना विस्तार से इन रचनाओं में की गई, व्यंग्य अपनी समस्त गरिमा के साथ इन रचनाओं में चमक उठा है । फिर जबकि शासन का बागडोर कांग्रेस से जनता पार्टी के हाथ में आई तो नेता बदले, आश्रय, अमर संस्कृति वही रही किंतु इन सबका शिकार आम आदमी रहा । नेताओं के स्वार्थों का, आम आदमी की हाय-हाय का चित्रण हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी कथाकृतियों में सर्वाधिक रूप से किया है । एक दृष्टि से राजनैतिक उपन्यास नाम से एक अलग विधा ही इधर के दिनों में विकसित हो रही है । इन रचनाओं का समग्र अध्ययन करते समय लगता है तो है कि यहाँ पुनरावृत्ति ज्यादा है, तथापि यहाँ का व्यंग्य इस पुनरावृत्ति पर हावी ऐसा हो जाता है कि पाठक रस पाता है । यह राजनैतिक उपन्यासों की महत्वपूर्ण उपलब्धी है ।

<u>नरेन्द्र कोहली</u>

नरेन्द्र कोहली ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य विधा को अपनी विशिष्ट प्रयोग-धर्मिता से ऐसा मोड़ दिया है कि व्यंग्य-शक्ति की संभावनाएँ एकदम स्पष्ट हो उठीं । एक महत्वपूर्ण कथाकार, उपन्यासकार होते हुए भी व्यंग्य को आंतरिक पीड़ा के क्षणों की मजबूरी के कारण लिखते आ रहे इनके व्यंग्य के मूल में आक्रोश है, जिसका जन्म सामाजिक परिवेश में विद्यमान विसंगतियों तथा ज्यादतियों के फलस्वरूप हुआ है । इस दृष्टि से नरेन्द्र कोहली का व्यंग्य आधुनिक मानव-समाज की संकटधर्मिता का दस्तावेज है ।

अपने को व्यंग्यकार बनाने के संदर्भ का विवेचन करते हुए नरेन्द्र कोहली लिखते हैं - " तभी मैंने अनुभव किया कि विनोद, परिहास, प्रत्युत्पन्नमतित्व तथा वक्रता इत्यादि कुछ गुण लेखक के व्यक्तित्व का अंग अवश्य होते हैं, किन्तु कुछ अनुचित, अन्यायपूर्ण अथवा गलत होते देखकर जो आक्रोश जागता है - वह यदि काम में परिणत हो सकता तो अपनी असहायता में पंगु होकर जब अपनी तथा दूसरों की पीड़ा पर हँसने लगता है तो वह विकट व्यंग्य होता है, पाठक के मन को गुदगुदाता - सहलाता नहीं है कोंचे लगाता है, अतः सार्थक और सशक्त व्यंग्य कहलाता है ।[66] व्यंग्य लेखक की दृष्टि में झुंझलाहट, पीड़ा

एवं असहनीय दर्द का पर्याय है । उस समाज में, रहनेवाला लेखक जहाँ दिन-रात अन्याय, शोषण, दमन, अमानवीय व्यवहार अपनी पूर्ण नग्नता से नर्तन करते दिखाई देते हैं, चुप्पी साधकर बैठ नहीं पाता है । उसका संवेदनशील चित्त यहाँ तक उद्वेलित हो उठता है कि इन विसंगतियों पर प्रहार किये बिना नहीं रह पाता है । नरेन्द्र कोहली में व्यंग्यकार का जन्म भी इसी वातावरण में हुआ जबकि उन्होंने यह सबकी सारी विभीषिकाएँ झेलीं । वे कहते हैं - " व्यक्तिगत पीड़ा से उपर आने पर भी व्यक्तित्व की प्रकृति नहीं बदलती । पीड़ित आक्रोश की प्रकृता ने जो दृष्टि दी, उसने अपने व्यक्तिगत अनुभवों से बाहर निकल राजनीतिक-सामाजिक असंगतियों को भी देखा और अपने पीड़ित आक्रोश को प्रकट करने के लिए मैं व्यंग्य रचनाएँ लिखता हूँ ।[67] नरेन्द्र कोहली ने यद्यपि स्वीकार किया है कि उनके व्यंग्य का मूलस्रोत आक्रोश है । तथापि इस आक्रोश को व्यक्तिगत स्तर पर लाकर उसे असंयमी एवं असंतुलित होने से बचाया है और व्यंग्य को हल्का न होने दिया है । अपनी भोगी हुई पीड़ा के आलोक में समूचे समाज में मौजूद शापित लोगों के संकट को समझने का प्रयास किया है जोकि इनकी व्यंग्यकला की विशेषता है । नरेन्द्र कोहली की दूसरी विशेषता यह है कि आत्म विश्लेषण और लगातार अपने को व्यंग्य का लक्ष्य बनाकर प्रहार कर लेने की प्रवृत्ति । विश्वविद्यालय में " रीसर्च एक्सपीरियंस " का महत्व बताते हुए लेखक का आत्म व्यंग्य देखने योग्य है -

" उसको एक कालेज में नौकरी मिल गई है । मुझे नहीं मिली । वह उस नौकरी के लिए क्वालिफाइड था । मैं नहीं था । उसके पास दो वर्षों का रिसर्च एक्सपीरियंस था । मेरे पास नहीं था । उसने अपने थीसिस की एक पंक्ति भी नहीं लिखी थी । थीसिस लिखने की तैयारी में एक पंक्ति भी नहीं पढ़ी थी । पर उसके पास दो वर्षों का एक्सपीरियंस हो गया था । उसने दो वर्ष पहले विश्वविद्यालय में पंजीकरण करवा लिया था । मैंने पंजीकरण नहीं करवाया था और थीसिस के लिए सामग्री इकट्ठी करता रहा था । पर रिसर्च एक्सपीरियंस तो पंजीकरण के बाद से होता है, पढ़ने लिखने से नहीं । वैसे ही जैसे स्कूटर के लिए बुकिंग करवानी पड़ती है । फिर अपने आप बारी आ जाती है ! उसने बुकिंग करवा रखी थी, उसे नौकरी मिल गई । और मैं स्कूटर के लिए पैसे इकट्ठे करता रह गया ।[68] हमारे शिक्षाक्षेत्र की महत्वपूर्ण विसंगति का उपरोक्त

पंक्तियों में बड़ा मार्मिक व्यंग्य किया गया है । एक और उदाहरण जोकि अंग्रेज़ी परस्त लोगों की मानसिकता पर चोट करनेवाला है । उच्च वर्ग के लोग, यहाँ तक कि हमारे अध्यापक भी देशी भाषाओं में बोलना, पढ़ना-पढ़ाना नहीं करना चाहते हैं । आखिर कारण क्या है ? यह व्यंग्य देख सकते हैं - " हिन्दी भी कोई भाषा है । क्लास में जो कुछ बोलो, लड़के सब कुछ समझ जाते हैं और फिर धड़ाधड़ प्रश्न पूछने लगते हैं । उन प्रश्नों का उत्तर न दे सको तो क्लास का अनुशासन बिगड़ता है और उनका उत्तर देना चाहो तो रोज़ घर पर, लेक्चर की तैयारी के लिए छः घंटे पढ़ना पड़े । उससे अंग्रेज़ी ही भली । बिना तैयारी के क्लास में चले गए, जो जी में आया बोल आए । न कोई समझेगा न प्रश्न करेगा । किसी ने कुछ पूछा तो अंग्रेज़ी में डाँट दिया न कोई अंग्रेज़ी बोल सकेगा न क्लास का डिसिप्लिन बिगड़ेगा ।[69] नरेन्द्र कोहली की रचनाओं में व्यंग्य लक्ष्यभेदी बाण की भाँति अपने लक्ष्य पर चोट करता है । उनके लिए व्यंग्य ही पीड़ित मानसिकता की मजबूरन अभिव्यक्ति है । उनका व्यंग्य सोद्देश्य है । व्यंग्य लिखने के लिए वे व्यंग्य नहीं लिखते । उनका कहना है - "व्यंग्य मात्र लिखना मेरी मजबूरी नहीं है । अपनी लेखनाकांक्षा को मैं कहानियों, निबंधों और उपन्यासों के माध्यम से भी तृप्त कर लेता हूँ । व्यंग्य तभी लिखता हूँ जब केवल व्यंग्य लिखने के लिए मेरे पास कुछ नया हो ।"[70]

नरेन्द्र कोहली ने हिन्दी व्यंग्य को नाना विधाओं में ढाला है और सृजनशीलता की दृष्टि से व्यंग्य को बुलंदियों तक पहुँचाया है । व्यंग्य के लिए किस विधा को चुनना है, इसका पूर्वनिर्धारण कर न करके सृजन की प्रक्रिया में व्यंग्य जो रूप लेता उसीके पीछे चलना इनके इन प्रयोगों की विशेषता है । इसलिए इनका व्यंग्य निबंध कहानी, एब्सर्ड उपन्यास, पौराणिक उपन्यास तथा नाटक के शिल्प में मुखरित हुआ है । "आश्रितों का विद्रोह और पाँच एब्सर्ड उपन्यास" में औपन्यासिक शिल्प में लिखे गए व्यंग्य उपन्यास है । "आश्रितों का विद्रोह" जैसाकि शीर्षक से ही स्पष्ट है सत्ता के प्रति जनता में उठनेवाले विद्रोही स्वर को सशक्त रूप से रेखांकित किया गया है । "आश्रितों का विद्रोह" इस अर्थ में भी महत्त्वपूर्ण व्यंग्य उपन्यास है कि हिन्दी साहित्य में संभवतः पहली बार शासन के विरुद्ध प्रत्यक्ष विद्रोह की संभावना से चित्रित किया गया है ।

वर्तमान शासन के विरुद्ध व्यंग्यात्मक उक्तियाँ प्रभावोत्पादक हैं। शासन द्वारा जनता के आक्रोश-दमन, उसका शोषण करने के हथकण्डों का वर्णन लेखकीय दृष्टि की सूक्ष्मता को रेखांकित करता है।[71] "पाँच एब्सर्ड उपन्यास" में समाज में अपनी भोगी हुई पीड़ा तथा व्यवस्था में मौजूद बेतुकेपन को मार्मिक ढंग से स्वर दिया है। अव्यवस्थित व्यवस्था के कारण उत्पन्न बेचैनी इन उपन्यासों में छायी हुई है। यहाँ का "अस्पताल" तो अपने ढंग की श्रेष्ठ रचना है। अस्पतालों के "पीड़ा के पिशाचों" के अमानवीय व्यवहारों पर "दि कालेज" में शिक्षा संस्थाओं पर, "दि लाकृ" में दफ्तरों तथा मोहल्लों में व्याप्त साहिबी-नौकरशाही प्रवृत्तियों पर सशक्त व्यंग्य किया है। "पाँच एब्सर्ड उपन्यास" शिल्प और कथ्य की दृष्टि से हिन्दी व्यंग्य साहि में नवीन प्रयोग है। इस प्रकार का प्रयोग करने में नरेन्द्र कोहली अकेले हैं और स्वयं लेखक ने भी इन पाँच एब्सर्ड उपन्यासों की रचना करने के बाद छठी एब्सर्ड रचना करने में स्वयं को वैसे असमर्थ पाया है। "अस्पताल" और "मोहल्ला" हिन्दी व्यंग्य साहित्य की श्रेष्ठ रचनाएँ कही जा सकती है।[72]

"शम्बूक की हत्या" नरेन्द्र कोहली का व्यंग्य नाटक है। वैसे भारतेंदु काल से ही, उनको भी मिलाकर अनेकों लेखकों ने प्रहसनों के माध्यम से सामाजिक विषयों पर व्यंग्य किये तो हैं किन्तु "शम्बूक की हत्या" में व्यंग्य जैसा मुखरित हो चुका है, वैसा शायद ही अन्यत्र हो पाया हो। इस दृष्टि से प्रेम जनमेजय मानते हैं कि ऐसा प्रयास हिन्दी में सबसे पहला प्रयास है। नरेन्द्र उपरोक्त कृतियों के अलावा कोहली के "एक और लाल तिकोन, जगाने का अपराध, आधुनिक लड़की की पीड़ा एवं शतदियाँ" - शीर्षक से अन्य संकलन भी प्रकाशि: प्रकाशित हुए हैं। इनमें संकलित व्यंग्यों में आधुनिक समाज की पीड़ा, असंतुलन, असंगति के विभिन्न परिदृश्य समाविष्ट हुए हैं। आधुनिक हिन्दी व्यंग्य साहित्य की समृद्धि के लिए नई संवेदना, भावबोध, जागृति एवं उचित भाषा शैली प्रदान करनेवाले प्रमुख व्यंग्यकारों में नरेन्द्र कोहली का अपना विशिष्ट महत्व

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी व्यंग्य साहित्य की समृद्ध परंपरा है। अब तक चर्चित प्रमुख साहित्यकारों की रचनाओं में निहित व्यंग्य के अस्तित्व को पहचान

और रेखांकित भी करने का प्रयास किया गया है । अलावा इन लेखकों के अमृतलाल नागर, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शरदजोशी, मुद्राराक्षस, के.पी.सक्सेना, प्रेम जनमेजय, लतीफ घोंघी, ज्ञान चतुर्वेदी, नंद चतुर्वेदी जैसे महत्वपूर्ण हस्ताक्षर भी हैं जिन्होंने हिन्दी व्यंग्य साहित्य परंपरा को नया आयाम और स्वर दिया है । व्यंग्य को एक सशक्त शक्ति के रूप में ही स्वीकार करके हिन्दी के साहित्यकारों ने उसका उपयोग किया है । हिन्दी व्यंग्य सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक एवं व्यक्तिजीवन से राष्ट्रजीवन तक की तमाम विसंगतियों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखता हुआ और इनके भेदात्मक तथा जीवनविरोधी तत्वों का पर्दाफाश करता हुआ आया है ।

२.२.१ हरिशंकर परसाई

आधुनिक हिन्दी के श्रेष्ठतम साहित्यकारों में से हरिशंकर परसाई निर्विवाद रूप से एक हैं जिनकी साहित्यराशि इस सदी का दस्तावेज है । परसाई ने लंबी कहानियां लिखी हैं, लघु कहानियाँ लिखी हैं, उपन्यास लिखे हैं, ललित विचारात्मक निबंध लिखे हैं और शुरू से लेखन करते आ रहे हैं । इन सभी विधाओं के द्वारा परसाई जहाँ व्यक्ति जीवन से राष्ट्रजीवन तक स्थायी मूल्यों के आविष्कार में हैं, वहाँ समसामयिक मसलों पर अपनी टिप्पणियाँ या आलोचना लिखकर वर्तमान को सही दिशा में ले जाने का लेखकीय दायित्व निभाते आ रहे हैं । इस दृष्टि हरिशंकर परसाई आधुनिक युग के युगद्रष्टा लेखक हैं, वैसे ही जैसे कबीर । " कबीर ने अपने समय के समस्त ढोंगों, पाखंडों, मिथ्याचारों, कर्मकांडों की धज्जियाँ उड़ायी हैं तो परसाई ने अपने समय की लगभग समस्त विसंगतियों को बिना किसी संकोच के प्याज के छिलके की भाँति परत-दर-परत छीलकर देश के सम्मुख रखा है । यह जानते हुए भी अपने विचारों एवं सिद्धांतों तथा देश की बड़ी बड़ी हस्तियों के सिद्धांतों के बीच गहरा अंतराल और दृष्टि भेद है, तथापि अपने "विचार" को, "सत्य" को जान को जोखिम में डालकर उन्होंने प्रतिपादित किया है। किसी भी मूल्य न समय के साथ न समाज के साथ समझौते का रवैया न अपनाना परसाई की खासियत है ।

अपने हाथ में "लकुटिया" लेकर कबीर ने खुले बाजार में खड़े होकर अपने "आँखिन

दैवी" सत्य को दुनिया के सामने रखा, ठीक वैसे ही परसाई ने भी अपनी लेखनी लकुटिया का समाज एवं देश के कल्याण हेतु अत्यंत सार्थक ढंग से प्रयोग किया है। हाँ, परसाई के विचारों से, उनके जीवन-दर्शन से सब के सब सहमत हों यह जरूरी नहीं। मतभेद अवश्य हैं। किन्तु अपने प्रतिवाद के प्रति जहाँ तक प्रतिबद्धता का सवाल है, परसाई कभी टस से मस नहीं होते। अपने विश्वासों और मान्यताओं के प्रति वे इतने पक्के हैं कि अपने विरोधियों पर व्यंग्य बाणों को इस कदर चलाकर बरसाते हैं जिसके फलस्वरूप जहाँ उनके निबंधों में रूक्षता आ गई है वहाँ उनका कथा साहित्य मानवीय करुणा, अनुकंपा और शोषित, ताड़ित और शापितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति का फौव्वारा है। दूसरे शब्दों में उनका विचारात्मक साहित्य असीम आक्रोश से आपूरित है तो कथासाहित्य में मानवीय अंतःकरण अपनी समस्त स्निग्धता के साथ निखर उठा है।

परसाई के साहित्य में इस सदी की यथार्थताओं का साक्षात्कार है। तथाकथित स्थापित एवं भंग नये मूल्यों की पड़ताल, पंचायत से राष्ट्र और अंतर-राष्ट्रीय स्तर तक नाना स्तरों पर मानव-चेतना एवं राष्ट्र चेतना की बहुमुखी समस्याओं को जैसा परसाई के साहित्य ने अपने में समेटा है वैसा किसी दूसरे समकालीन लेखक के साहित्य ने समेटा हो, इसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं है। इस दौरान जहाँ-जहाँ उन्होंने जीवन-मूल्यों का विघटन देखा, राष्ट्रीय चारित्र्य का पतन और किया उनका सशक्त से सशक्त भाषा में प्रहार करने में हिचकिचाया नहीं। इस मामले में परसाई-साहित्य का कैनवास बड़ा है। अपने समय के साथ जुड़े रहकर, युगबोध का आवाहन कर अनुभवों के निकष पर मानव मूल्यों की पहचान के लिए निरंतर संघर्ष करना परसाई साहित्य की विशिष्ट उपलब्धी है। यहाँ दुःख चिंता है, और विसंगतियाँ अपना रौद्र नर्तन करती हैं, मानवीय संवेदना अपने पर होनेवाले आसुरी आक्रमणों के कारण बिलखती है तथापि परसाई का कुठार इन सबको झेलते हुए गतिशील रहा है।

हरिशंकर परसाई व्यंग्य के आचार्य हैं, उनके साहित्य पर व्यंग्य का साम्राज्य है। व्यंग्य को साहित्य की प्रमुखधारा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन्हींको है। भले ही स्वयं परसाई व्यंग्य को एक विधा न मानकर मात्र "स्पिरिट" मानते हों तथापि व्यंग्य

को, अभिन्न तत्व के रूप में कृतिविशेष में स्थान देने का श्रेय परसाई को ही है । वैसे साहित्य की हर विधा में रचित किसी भी कृति में व्यंग्य का "स्प्रिट" अवश्य रहता है, किन्तु व्यंग्य को एक समग्र रूप में रचना शिल्प में ढालने के सफल प्रयास आज के दिनों में बराबर होते आ रहे हैं, व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा के रूप में परिकल्पित किया जा रहा है । स्वयं परसाई की कहानियों को, उपन्यास "नागफनी" को व्यंग्य शास्त्र की आधार रचनाओं के रूप में स्वीकार कर सकते हैं । इनमें तथा परसाई के समस्त निबंधों में व्यंग्य का "स्प्रिट" ही नहीं अपितु व्यंग्य ही जीवंत हो उठा है । व्यंग्य उक्ति वैचित्र्यमात्र न रहकर पूरी कृति का स्वर बनकर निखरा है । व्यंग्य को हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित करने के लिए प्रतिमान स्थापित करने का श्रेय भी परसाईजी को ही है ।

हिन्दी साहित्य की समृद्ध परंपरा का पाथेय परसाई को वरदान के रूप में प्राप्त हुआ है । इस परंपरा को आत्मसात करने के साथ जगत के विशिष्ट लेखकों के गंभीर अध्ययन से इनकी विचारधारा में परिपक्वता आई है । खासकर हिन्दी के विशिष्ट कवि, विद्रोही कबीर के व्यक्तित्व से प्रभावित परसाई की रचनाओं की व्यंग्यधारा में अंतःसलिला की भाँति कबीर की काव्य चेतना एवं उसकी मस्ती एवं निर्भीकता मात्र ही नहीं सक्रिय भी रही है । हिन्दी के सर्वप्रथम व्यंग्यकार माने जानेवाले कबीर ने अपनी अनुपम जीवन प्रीति, मानव-मानव के बीच की खाई को पाटने का जो संघर्ष शुरू किया था, उस संघर्ष को परसाई ने भी जारी रखा - व्यंग्य के चाबुक से । कबीर के प्रभाव को स्वीकार करते हुए परसाई ने अपने को उनका भक्त स्वीकार किया है - " कबीर के सीधे, बेलौस, खरिया उधेड़, परदा उतार मस्ती, फक्कड़पन से भी व्यंग्यों का मैं भक्त रहा हूँ । "

मध्ययुग के कबीर से, आधुनिक युग में बदले हुए सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र में उभर आई विसंगतियों, धर्म एवं संघर्षों और नये विचारों के आलोक में भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के सशक्त प्रतिष्ठित युगबोध से पूर्णरूप से संपूरित लेखकों ने व्यंग्य को एक सशक्त शस्त्र के रूप में

प्रयोग किया है, इस व्यंग्य ने भारतीय मानसिकता को आत्मबोध करने को प्रेरित किया है । प्रेमचंद की यथार्थवादी दृष्टि से परिभाषित व्यंग्य ने भारत की मध्यवर्गीय जनता के संकट को रेखांकित किया । ऐसी महान प्रतिभाओं के संस्कार परसाई को विरासत के रूप में प्राप्त हुए । परसाई में जातीय परंपरा प्राणवान हुई है । परिणाम स्वरूप परसाई आधुनिक हिन्दी व्यंग्य साहित्य के चरम उत्कर्ष के सार्थक हस्ताक्षर हैं ।

1. परसाई रचनावली - भाग 6 पृष्ठ 249
2. भारतीय परंपरा - हुमायूं कबीर पृ.41
3. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर पृ.436
4. वही पृ.445
5. लेनिन, समाजवादी विचारधारा और संस्कृति, प्रगति प्रकाशन मास्को पृ.51
6. स्टालिन - लेनिन का मूल सिद्धांत पृ.39
7. आँखिन देखी, सं - कमला प्रसाद - पृ.230
8. वही पृ.230
9. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृ.139
10. महामहिम - प्रदीप पंत, भूमिका पृ.6
11. हिन्दी की गद्यशैली का विकास - जगन्नाथप्रसाद शर्मा - पृ.43
12. भारतेंदु के विचार: एक पुनर्विचार - डॉ.चंद्रभानु सोनवाने पृ.76
13. भारतेन्दु ग्रंथावली प्रथम भाग पृष्ठ 367
14. वही द्वितीय भाग पृ.626
15. से 18 वही प्रथम भाग पृ.संख्या क्रमशः 367,110,133, 133
19. भारतेंदु ग्रंथावली - दूसरा भाग पृ.704
20,21 प्रताप नारायण मिश्र - बालमुकुंद गुप्त निबंधावली भाग - 1
22. साक्षात्कार पृष्ठ 5 अंक 42,43
23. ब्राह्मण खंड - 1, सं - 1
24. निबंध नवनीत - पहला भाग 1919, पं.महावीर प्रसाद द्विवेदी

25. हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य संपादक - प्र.ना.टंडन पृष्ठ 336
26. बालमुकुंद गुप्त : एक मूल्यांकन - सं - विष्णुकांत शास्त्री पृ.49
27. साक्षात्कार : अंक 40-41 पृष्ठ 7
28. साक्षात्कार : अंक 40-41 पृष्ठ 10-11
29. भारतमित्र - एक दुराशा - साक्षात्कार अंक : 40-41 पृष्ठ 16 से उद्धृत
30. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवशंकर भट्ट पृ.86
31. साक्षात्कार: संपादकीय, अंक 36-37
32. म्युनिसिपालिटियों के कारनामे - विचार विमर्श - महावीर प्रसाद द्विवेदी पृ.357
33. हिन्दी की गद्यशैली का विकास, डा.जगन्नाथ प्रसाद शर्मा पृ.105
34. अतीत के चलचित्र - महादेवी वर्मा - पृ.47-48
35 से 40 अतीत के चलचित्र - महादेवी - क्रमशः पृ.संख्या 56,58,59,46,61,65
41. हिन्दी की गद्यशैली का विकास - डॉ.जगन्नाथ प्रसाद शर्मा पृ.141
42. हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - सं.प्रेमनारायण टंडन पृ.424
43-44 जायसी, ग्रंथावली की भूमिका - रामचंद्रशुक्ल पृष्ठसंख्या क्रमशः 42,35
45. भ्रमरगीत सार की भूमिका पृ.20
46. चिंतामणि - भाग 2 रामचंद्र शुक्ल पृ.188
47-48 हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.58 पृष्ठसंख्या क्रमशः 58,466
49. हिन्दी की गद्यशैली का विकास : डा.जगन्नाथ प्रसाद शर्मा पृ.153
50. कल्पलता - हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ.23-24
51. अशोक के फूल - ह.प्र.द्विवेदी पृ.10
52. कबीर " पृ.216
53,54,55 कुटज ह.प्र. द्विवेदी पृ.93 पृष्ठ संख्या क्रमशः 93, 97, 50
56. हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य - संपादक, प्रतापनारायण टंडन पृ.352-353
57. हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - सं.डा.प्रतापनारायण टंडन पृ.361
58. साहित्य की मान्यताएँ :
59,60 समीक्षा, मासिक जुलाई 1970 पृष्ठ संख्या 2,3

61. मधुमति - पत्रिका - डॉ.लक्ष्मी ना

62. औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ - डॉ.आदित्य नारायण त्रिपाठी पृ.128

63. महामहिम - "दो शब्द" से उद्धृत - प्र प्रदीप पंत ।

64. महामहिम प्रदीप पंत की भूमिका पृ.6

65. महामहिम का एक प्रसंग

66. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ - नरेन्द्र कोहली - "अपनी ओर से"

67से70 वही - पृष्ठ संख्या क्रमशः अपनी ओर से, 133, 125

71. नरेन्द्र कोहली: व्यक्तित्व और कृतित्व में प्रकाशित प्रेम जनमेजय का लेख पृ.42

72. वही पृष्ठ 43 और 45

- 0 =

चतुर्थ अध्याय

हरिशंकर परसाई की विचारधारा और दर्शन

परसाई की विचारधारा और दर्शन

मानव-नियति का मसीहा

लेखक अपने समय और समाज को अपनी विचारधाराओं से प्रभावित करता है । कलम को तलवार से अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली कहने के पीछे यही तथ्य है । कलम की शक्ति का अर्थ है साहित्यकार की शक्ति अर्थात् उसकी विचार संपदा जिसके बलबूते पर वह व्यक्तिजीवन से राष्ट्रजीवन की तमाम अव्यवस्थाओं तथा असामाजिक जड़ग्रस्त साम्प्रदायिक ताकतों के प्रति लोक मानस को जागृत करके एक स्वस्थ समाज का निर्माण मानवतावादी बुनियाद पर करता है । लेखक अपने अतीत से जो प्रेरणा अथवा सबक प्राप्त करता है उससे अपने वर्तमान को बनाता है और उसे और भी बेहतरीन बनाने का प्रयत्न करता है तथा सुंदर भविष्य के लिए भूमिका तैयार करता है । एक लेखक की जीवंतता को इस बात में देखा जा सकता है कि वह कहाँ तक अपने युग और परिवेश साथ जुड़ा हुआ है । मलय के शब्दों में - 'रचनाकार एक मनुष्य होता है । दूसरों की तरह उसके परिवेशगत संस्कार-कुसंस्कार भी होते हैं । विचारधारा के आधार पर उसे उन कुसंस्कारों को काट-छाँटकर, छोड़कर और नये जमा-जोड़कर, अनुरूप ढालना होता है । यह कार्य सहज नहीं है, इसलिए उसे पहली लड़ाई अपने से लड़नी होती है । इस सतत और गतिशील संघर्ष में रचनाकार घायल होकर ठीक ठाक होता आगे बढ़ता और उतना ही बड़ा होता चलता है, जबकि जड़ संस्कारों के दबाव में दबा हुआ, और तो और, अपनी अस्मिता को पोथी में बदल देता है - या जड़ता ही पोथी का रूप लेकर उत्पन्न हो रहती है । रचनाकार की अस्मिता की अर्थवत्ता उसके जड़ग्रस्त मूल्यहीन जगत में विलयन होने में नहीं, किन्तु अर्थवान मूल्यों को स्थापित करने में है ।

डॉ. सोठार गुप्ते का कहना है - 'लेखक की कठिनाई, लेखन की प्रकृति में ही प्रतीत होती है । साहित्य, कला के रूप में, खेल है / शिलर के भावानुसार एक ऊँचे-से-ऊँचा खेल, जिसके बिना कुछ को जीवन एकदम भार हो जायेगा..[2] परसाई के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में यह पंक्तियाँ इतनी सार्थक हैं कि इनकी साहित्यिक यात्रा शुरू से निरंतर खेल रही है, इनकी लेखकीय कठिनाई इस बात में देखी जा सकती है कि वे निरंतर समय की विसंगतियों से जूझते, लड़ते, सही

मूल्यों के लिए संघर्ष करते आ रहे हैं । यह 'लड़ाई' इनका प्राणपुंज रही है जिसके बगैर परसाई का अस्तित्व अनस्तित्व में परिवर्तित होगा किन्तु ऐसा होने के लिए परसाई की जीवन प्रीति ने मौका नहीं दिया है ।

मानवीय यातनाओं के संदर्भ में रचना की जरूरत पर निर्मल वर्मा ने कहा है - "शायद/ किसी भी समय में लेखकों और कलाकारों ने इतने व्यापक स्तर पर उत्पीड़न, निर्वासन या रक्तपात की यातना नहीं सही है जितनी हमारे युग में । क्योंकि किसी भी समय में इन काली ताकतों ने मनुष्य की छवि को विकृत कर इतना डरावना कभी नहीं बनाया था । अगर ईश्वर ने मनुष्य को अपनी छवि दी है तो यह हमारे समय की कला में ही हुआ कि उस छवि को अदम्य साहस के साथ बरकरार रखा जा सके । शायद अपने बचाव में कला यही उत्तर दे सकती थी कि उस प्रश्न के जवाब में जो टालस्टाय ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में उठाये थे - क्या कला का कोई अर्थ है ? . . . . . दरअसल वह अर्थ नहीं था जो टालस्टाय ने कला में खोजना चाहा था, क्योंकि कला न तो रोटी की बदल हो सकती है और न बुराइयों के विरुद्ध हथियार की तरह काम दे सकती । और फिर भी हम वे उपन्यास पढ़ते हैं जो स्वयं टालस्टाय ने लिखे हैं और अब हम जानते कि सिर्फ कला हमें क्या दे सकती है - वह है रोशनी का एक ऐसा नाज़ुक हल्का जो धुंधले शीशे के आरपार देखने में हमारी मदद करता है - सिर्फ अंधेरे का परिचय ही नहीं, अपनी भूख की गहराई भी । [3] इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो परसाई की कला में हम युग की यातनाओं का सच्चा रूप देख सकते हैं । कला के अर्थ को उनके जीवन दर्शन में ढूंढ सकते हैं । जिस प्रकार टालस्टाय जैसे विश्व के महान कलाकारों में युग का अंधकार और उसकी भूख के दर्शन होते हैं उसी प्रकार परसाई की रचनाओं में भी युग की संकीर्णताओं काले पक्षों, झूठे दर्शनों का निर्भीक पर्दाफाश देखने को मिलता है ।

अपने समय की ज्वलंत समस्याओं एवं सिद्धांतों के संबंध में परसाई के अपने विचार हैं, सिद्धांत हैं जिनका परिपाक जीवन दर्शन बनकर मुखरित हो उठा है । परसाई महज लेखक न रहकर मानव-नियति के मसीहे के रूप में हमारे बीच हैं ।

साहित्यकार और सरकार

हमारा इतिहास इस बात के लिए साक्षी है कि राजाश्रय में भले ही उत्कृष्ट

लिखे गए हों, मगर इन उद्धरणों में इन्हें लिखनेवाले कवियों की प्रतिबद्धता तत्कालीन समस्याओं के प्रति न होकर अपने राजा के गुणगान में केन्द्रीभूत रही है । आदिकालीन रासो चरित गाथाओं में और रीतिकालीन कवियों की समाज विमुखता में यही आराधना-भाव विद्यमान है जबकि भक्तियुग के भक्तों के स्वतंत्र चिंतन में जीवन-आस्था प्रतिबद्धता, अपने परिवेश के प्रति संबद्धता है, जिसके कारण इनका काव्य क्रांति का माध्यम बन गया । राजसत्ता को ठुकराकर जनसत्ता के पक्षधर होने के लिए इन क्रांतिचेताओं ने बड़े मुख्य पुकार । परसाई राजाश्रय अथवा सरकारी आश्रय को साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व के लिए बड़ा खतरनाक मानते हैं, सरकारी पदों, पुरस्कारों, पदोन्नतियों के लोभ में पड़नेवाला साहित्यकार अपनी कब्र स्वयं खोद लेता है । "सरकार और साहित्यकार" शीर्षक निबंध में साहित्यकार के स्वतंत्र चिंतन को सरकार किस प्रकार अपने काबू में रखती है इस ओर संकेत करते हुए परसाई कहते हैं कि "सरकार स्वतंत्र चिंतक को सरकारी कुर्सी में जमा रही है । प्रतिभा का उपयोग सरकारी"रोटीन" में करती है, साहित्यकार के सत्य, निर्भीक और स्पष्ट स्वर को कुंठित कर रही है । इसे सरकार द्वारा साहित्यकारों की "खरीद" भी कहा जा रहा है । 4 यदि यही क्रम निरंतर जारी रहेगा तो परसाई के अनुसार हमारा सांस्कृतिक अध:पतन होगा और स्वतंत्र चिंतन-प्रवाह ही रुक जायेगा । परसाई साहित्य-साधना को तपस्या मानते हैं और उसके स्वतंत्र अस्तित्व को मानव अधिकारों की हिफाजत के लिए अनिवार्य मानते हैं - "साहित्य-सृजेता को स्वतंत्र होना ही चाहिए, तभी उसका स्वर निर्भीक और स्वतंत्र होगा । शासन का पिछलग्गू साहित्य समाज को पतन की ओर ले जायेगा । लेकिन लेखक को जो सामान्य समाज से ऊपर ऐश-आराम की जिंदगी की सुविधा कर देना चाहते हैं, वे उसकी साहित्यिक मौत कर देना चाहते हैं, वे उसकी साहित्यिक मौत का प्रबंध कर देना चाहते हैं । उसे सामान्य जनजीवन के सुख दुख में भाग लेना चाहिए, उसी स्तर पर जीना चाहिए, तभी उसके साहित्य में सत्य उभरकर आयेगा । "स्वरलण्डीलण्ड" कमरे में वह "यूटोपिया" के ख्वाब देखेगा । जो कैरियर की धुन में है, उसे तो फ़ौरन साहित्य रचना बंद ही कर देना चाहिए । साहित्य रचना तो तपस्या तो है ही । इसमें मिटना तो पड़ता ही है । 5 साहित्य को महज पेशा, हॉबी के रूप में स्वीकार कर तद्‌द्वारा शासन और शासकों की प्रशंसा में रचना करनेवालों का परसाई खंडन करते हैं क्योंकि ऐसे रचनाकार समाज की उन्नति की अपेक्षा अपनी पदोन्नति का ख्याल रखते हैं । परसाई इस बात के लिए एक उदाहरण

पेश करते हुए कहते हैं कि 26 जनवरी को राजधानी में संपन्न सर्वभाषा कवि सम्मेलन में नेहरू की प्रशंसा में दो डाक्टर कवि कविताएँ लिखकर किस प्रकार पदोन्नति पा गए। अर्थात् लेखक जितना निर्भय ही होगा, उसके व्यक्तित्व में उतनी ही क्रांति की ज्वाला फूटेगी।

इसी संदर्भ में परसाई साहित्यकार के प्रति सरकार के कर्तव्य का उल्लेख भी करते हैं कि वह गाँव-गाँव में पुस्तकालय खोले, लोगों में सदभिरुचि का विकास करे, राष्ट्रीय चारित्र्यनिर्माण करने अवसर दे और उसके लिए साहित्यकारों की रचनाओं की बिक्री का प्रबंध करे।

<u>नारी मुक्ति आंदोलन :</u>

परसाई का नारीविषयक दृष्टिकोण अत्यंत उदार है। हमारे समाज में परंपरा से नारी को चार दीवारों के बंधन में जकड़कर उसे महज पुरुष की अनुगामिनी, सेवाकर्ती के रूप में रखा गया है, उसे शोषण का केन्द्र बना दिया गया है। परसाई ने नारी शोषण के बहु आयामी रूपों का उद्घाटन अपनी अनेकों कहानियों में किया है, उदाहरण के लिए - घेरे के भीतर, खाली मकान, सर्प और सुंदरी, रागविराग तट की खोज आदि। इन कहानियों में नारीजीवन की मजबूरियों, विवशताओं तथा रूप और सौंदर्य के शोषण के अनेकों रूप प्रस्तुत किये गए हैं। साथ ही इन्हीं कहानियों में नारी को प्रतिक्रियावादी भी बनाया है जोकि अपने शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने का भरसक प्रयत्न करती है और अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए पुरुष समाज से टकराती हैं या टकराने के लिए समुचित मानसिकता बना लेती है। परसाई ने नारी शोषण का जिसका जैसा भी रूप हो, सतत विरोध किया है, उसके अस्तित्व को चुनौति देनेवाली शक्तियों का विरोध किया है। खासकर नारी को विज्ञापनबाजी का केन्द्र बनाकर उसका जो निरंतर शोषण आये दिनों में किया जा रहा है, जिसका घोर खंडन किया है। नारी सौंदर्य एवं उसके शरीर का शोषण करके कविताएँ लिखनेवाले हमारे कवियों को भी आडे हाथों लेते हैं। परसाई कहते हैं - "विज्ञापनों को देखिए - साइकिल का का विज्ञापन है, तो स्त्री की तस्वीर उसमें जरूर है, बीडी के विज्ञापन में स्त्री, मोटार के विज्ञापन में स्त्री, डालडा में स्त्री। हर चीज़ के विज्ञापन में स्त्री की तस्वीर जरूर होगी। बिना स्त्री की छाप के कोई चीज़ अच्छी या लोकप्रिय नहीं। विज्ञापनबाजों ने जिस तरह नारी का उपयोग किया है, उसी तरह हमारे कुछ कवि

कर रहे हैं । नारी-छाप साबुन और नारी छाप कविता - एक ही टाइप है । कभी स्त्रियों ने विज्ञापनबाजी के खिलाफ़ आंदोलन किया था, क्या वे कवियों के खिलाफ़ नहीं लड़ेंगी । क्यों नहीं उनसे कहती कि यह क्या मचा रखा है ? हमारा यह क्या उपयोग है हम क्या केवल "गुड़ियाँ" हैं ? हम क्या तुम्हारे ड्राइंग रूम के गुलदस्ते हैं ? क्या केवल मुस्कराना आने का नाम नारीत्व है ? क्या नारी का धर्म केवल सिंगार करना और तुम्हें देखकर लजा जाना है ? ये कुछ ऐसे सवाल हैं जिन पर हमारे नारी समाज को गंभीर रूप से विचार करना है । परसाई ने नारी-हकों के लिए उसके व्यक्तित्व और अस्तित्व के लिए रचनात्मक संघर्ष किया है ।

<u>आलोचना :</u>

परसाई ने अलग रूप से "आलोचना" के नाम पर आलोचना नहीं लिखी है, काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का विवेचन नहीं किया है, मगर अपनी कहानियों, निबंधों एवं संपादकीय लेखों में प्रतिबद्ध कवि, कविता, साहित्य की उपयोगिता, साहित्यकार का दायित्व जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर गंभीर रूप से विचार किया है । सामाजिक संदर्भ में साहित्य की उपादेयता पर परसाई का चिंतन अध्ययन-योग्य है । कवि के दायित्व पर परसाई कहते हैं - कवि पर जिम्मेदारी है कि वह जनरुचि का परिष्कार करे । यह कहना गलत है कि जनता समझती नहीं है । हम ही जनता को नहीं समझते । हमने अपने ऊपर नट, गायक और मेमने का "रोल" ले लिया है । ..हमारी आधी कविता का स्रोत तो यह है कि उसका पिता उसे हमसे मिलने नहीं देता - इसलिए हम घुट रहे हैं... इस किस्म का अस्वस्थ प्यार हमें नहीं चाहिए, बीमार आदमी के प्यार के गीत हमें नहीं चाहिए । हमें स्वस्थ आदमी का स्वस्थ प्यार गीतों में ढालकर देना होगा । नारी को गुलदस्ता बनाने से काम नहीं चलेगा । इस पतनशील प्रवृत्ति को रोकना होगा ।
7 परसाई मानते हैं कि साहित्य का धर्म अस्वस्थ मानसिकता को परिष्कार करना है, मानव मन को उदात्त संस्कारों की ओर ले जाना है । मगर आजकल कविता "नट" की भाव भंगिमा साधन और "कंठ" प्रधान होकर, स्त्री के आजू-बाजू में घूम रही है जोकि चिंता का विषय रहा है । काव्य का ध्येय परसाई के शब्दों में इस प्रकार है - "मंच के द्वारा कवि जनता के पास पहुँचता है । लेकिन वह क्या लेकर पहुँचता है ? उसे क्या देता है ? उसे किस कदर धोखा देता है ? जिसे स्वस्थ एवं उदात्त उच्च भाव देना चाहिए उसे कैसी हल्की चीज़ सौंपता है ? 8 परसाई इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी में निष्पक्ष आलोचना का आग्रह करते हैं ।

परसाई कला को व्यक्तिगत लोभ, राजनीति और समझौतावाद से दूर रखना चाहते हैं । कला साहित्यकार की अनुभूतियों का प्रतिबिंब है, अपने विचारों और दर्शन की अभिव्यक्ति है जिन्हें प्रस्तुत करने में उसे बिल्कुल स्वतंत्रता होनी चाहिए । जहाँ साहित्यकार के व्यक्तित्व का हनन होने का प्रयत्न जारी रहता है वहाँ कला महज प्रदर्शन, केवल चक्कर रह जाती है । परसाई कहते हैं - "समझौते से बढ़कर, घिनौनी चीज़ कलाकार के लिए दूसरी नहीं । समाज-सत्य को सामाजिक संदर्भ में लेखक जिस रूप में अनुभूत करता है, उस रूप में उसे निस्संकोच प्रकट करने में झिझक पैदा न हो । जहाँ असत्य है, पाखंड है, मिथ्याचार है, वहाँ कला नहीं । राजनीति और समाजनीति में समझौते की गुंजाइश है, साहित्य और कला के क्षेत्र में समझौता आत्मघात का लक्षण है ।[9] प्रेमचंद समझौते के दुष्प्रभाव को जानते थे, इसलिए ही उन्होंने किसी भी संदर्भ में, अपनी नितांत गरीबी के दिनों में भी अपनी कला में समझौता करने का प्रयत्न नहीं किया । परसाई इस ओर संकेत करते हैं - "प्रेमचंद को फिल्मी वातावरण में जब घुटन मालूम हुई, तो वह हजारों को लात मारकर चले आये, समझौता नहीं किया । जो अपने और समाज के प्रति ईमानदार है, उसके लिए रास्ता सीधा है ।[10] परसाई एक अन्य संदर्भ में लेखक को सरकारी सम्मान, पुरस्कार स्वीकार करने से मना नहीं करते किन्तु यह चेतावनी तो अवश्य देते हैं पुरस्कार लेने का मतलब अपने को बिकना नहीं है । पुरस्कार कभी लेखकीय व्यक्तित्व पर हावी नहीं होने चाहिए ।

परसाई साहित्य को मानव अनुभूति की अभिव्यक्ति मानते हैं । उनका कहना है - "साहित्य कोई ठोस पदार्थ से निर्मित वस्तु तो है नहीं, कि आप उसकी लंबाई-चौड़ाई नापने लगे । वह तो अनुभूति की अभिव्यंजना है जो मानव व्यापारों में उभरकर भाषा के माध्यम से व्यक्त होती है ।[11] अपने साहित्य सृजन की प्रक्रिया के दौरान साहित्यकार को भिन्न-भिन्न दौरों से गुजरना पड़ता है, इस ओर भी परसाई के अपने विचार हैं । साहित्यकार जिस जाति,वर्ग और समूह पर कृति की रचना करता उसका परिवेश संबंधी अध्ययन करना, अपने से चित्रित होनेवाले चरित्रों के स्वभाव का निरीक्षण करना क्या अनिवार्य है ? ऐसे सवालों को परसाई ने उठाया है और इस अभिप्राय पर पहुँचा है कि साहित्य में चरित्रों का निर्माण और उनका विकास तभी ठोस आधार पर किया जा सकता है जबकि साहित्यकार अपने को समाज के बीच पाता है, वहाँ के विभिन्न अनुभवों से साक्षात्कार करके उन्हें "अपना" बनाता है । परसाई के शब्दों में - मानव चरित्र रचने के लिए मानव को देखना पड़ता है, मानव को समझना

पड़ता है, उसके सुख, दुख, आशा, आकांक्षा, द्वंद्व, कुंठा सबको देखना होता है । जनजीवन का बारीक अवलोकन करना होता है और साथ ही संवेदनात्मक दृष्टि रखनी पड़ती है । जिस समाज को, जिस जाति को, जिस वर्ग को चित्रित करना है, उसे सचाई से पहिले समझकर तब उसका चित्रण करना होता है । उसीमें से महती प्रवृत्तिवाले महान पात्रों का जन्म हो सकता है । 12 इस दृष्टि से देखा जाय तो हमारे छायावादी कवियों में विशेषरूप से पंत के जीवन दर्शन की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है । पंतजी की ग्राम्या, युगपथ, युगवाणी में अभिव्यक्त जीवन की तादात्म्यता गांवों की यथार्थता से कहाँ तक जुड़ी हुई है ? यहाँ का दर्शन पुस्तकीय ज्ञान का प्रदर्शन है । मानव-करुणा ग्रामीणों के प्रति व्यक्त की गई है मगर उनके जीवन के साथ आत्मसात करने का प्रयत्न नहीं किया गया है । इस दृष्टि से परसाई के विचार गंभीर रूप से विचार करने योग्य हैं कि साहित्यकार का संबंध समाज के साथ कैसा हो । प्रेमचंद का "गोदान" हिन्दी का एक सफलतम उपन्यास इसलिए है यहाँ का जीवन वायवी नहीं कल्पनापरक नहीं, अपितु यथार्थजीवन के सघन अनुभवों का जीवंत दास्तान है । यहाँ का होरी कल्पना का पात्र नहीं अपितु भारत के किसी भी गाँव में अपने परिवेश से लड़ रहा संघर्षमय किसान है । "गोदान" की अपूर्व सफलता के लिए प्रेमचंद की प्रतिबद्धता और समर्पण कारण हैं । परसाई ने एक दूसरे प्रसंग में प्रेमचंद की सफलता के लिए मानवजीवन के प्रति उनकी श्रद्धा और निरीक्षण शक्ति को कारण बताया है । साहित्य रचना को तपस्या माना है, भगीरथ प्रयास कहा है ।

साहित्य में श्लील-अश्लील

साहित्य में श्लील-अश्लील की समस्या को लेकर हमारे साहित्य में आरंभ से ही बराबर चर्चा चली आ रही है । मगर इस चर्चा की इतिश्री नहीं हो पाई है । "नामदेव ढसाल की कविता और अश्लीलता का प्रश्न" शीर्षक निबंध में परसाई ने इसी "श्लील अश्लीलता" के मुद्दे को लेकर गंभीरता से विचार किया है । नामदेव ढसाल की एक कविता में प्रयुक्त "भू.. तेरी माँ" जैसे शब्दों और मुहावरों के प्रयोग को लेकर उन्हें अश्लील करार देनेवालों पर चोट की है । श्लील-अश्लील को निर्धारित करना वैसे बहुत टेढ़ा सवाल है । लेडी चेटरलीज लवर, टापिक ऑफ कैंसर, कुमार संभव, गीतगोविंद के अनेक प्रसंगों एवं हमारे मंदिरों की शिल्पकला में खिली हुई हजारों मुद्राओं अश्लील कहे जानेवाले अनेकों अंश हैं । तथापि इन्हें सदियों से पढ़ते देखते आये हैं ।

श्लील-अश्लील व्यक्ति जीवन के अविभाज्य अंग हैं जोकि समयानुकूल अपने सहज रूप में प्रकट होते हैं । मनुष्य ने प्रयुक्त की जानेवाली भाषा के आधार पर उसके आवेगों और मनोभावों का अंदाजा लगाया जा सकता है । इस दृष्टि से, नामदेव ढसाल "शूद्र को तेरी माँ" की गाली देते हैं तो वहाँ उनका क्रोध अथवा गाली वाच्यार्थ में शूद्र को नहीं, उसकी "फीलिंग" को नहीं अपितु उस वर्ग के प्रति है जो इस शूद्र के लिए जिम्मेदार हैं । परसाई कहते हैं - "यह गाली "शूद्र" नाम की "फीलिंग" को नहीं, दूसरों को शूद्र रखनेवाले वर्ग के लिए है । यही इंसट है । ढसाल-जैसे तमाम कवि दलित वर्ग के हैं, अछूत हैं, हरिजन हैं । लोकतंत्र और समता के इस जमाने में वे रूढ़ियों के अत्याचारों की स्मृतियाँ और आज भी उन पर हो रहे अत्याचार की वास्तविक चोटों से तिलमिलाकर, क्रोधित होकर, सच्ची और शायद गहरी अनुभूति और अभिव्यक्ति क्षमता लेकर उठ खड़े हुए हैं और इस अन्यायी व्यवस्था में शब्दों की चिनगारी से आग लगा देना चाहते हैं । [13] परसाई इस सर्वहारा वर्ग की तथाकथित अश्लील भाषा का समर्थन करते हैं क्योंकि उनकी भाषा में अश्लीलता जो है वह उनके क्रोध का परिणाम है । सामाजिक अभिशापों, तमाचों, कुंठाओं से तड़पनेवाला यह दलित ऐसी भाषा का ही प्रयोग करेगा और इसके अलावा उसके पास दूसरा कोई ऐच्छिक नहीं है । ढसाल की भाषा का समर्थन करने के लिए परसाई जेम्स हेन्सन के "हंगर" उपन्यास का उदाहरण देते हैं जहाँ भूख के सातों का मार्मिक वर्णन है किन्तु वहाँ क्रोध नहीं है क्योंकि "हेन्सन" में वर्ग-चेतना नहीं है, वर्ग-घृणा भी नहीं है, वह नहीं जानता कि किन्हीं शोषकों द्वारा भूखा मारा जा रहा है । [14] इसी कारण से आक्रोश से भरी आत्मा से निकलनेवाली भाषा से परिष्कृत वर्णन की भाषा अवश्य भिन्न हो सकती है ।

परसाई इस सर्वहारा वर्ग की भाषा की तथाकथित अश्लील भाषा को नैतिक माने में अश्लील नहीं मानते हैं और होली भाषा का समर्थन करते हैं क्योंकि यह अश्लील भाषा उनके क्रोध का परिणाम है । भाषा के मसले पर भी परसाई का दृष्टिकोण अत्यंत उदार है । भाषा के निर्दयी रूढ़, भयानक रूप की आवश्यकता पर परसाई ने प्रस्तुत निबंध में जोर दिया है और यहाँ तक कि भाषा के सौंदर्यशास्त्र की परिभाषा में परिवर्तन लाने का आग्रह किया है । परिवर्तन की बात परसाई अत्यंत धैर्य और साहस से कहते हैं - "नया सौंदर्यशास्त्र आ गया है । अब अभिजात वर्ग के ड्राइंगरूम का सौंदर्य शास्त्र नहीं चलता । सड़क की गंदी बस्तियों का, झुग्गियों की

झोंपड़ियों का, अटपटे, अनगिन मजदूरों का, गंदी नालियों और पकवानों का नया सौंदर्यशास्त्र चल रहा है । इस वर्ग की छटपटाहट, पीड़ा और क्रोध को व्यक्त करने में नफीस अभिजात भाषा सक्षम नहीं है । इसके लिए जीवंत, खड़ी, ठेठ और चुटीली भाषा चाहिए । वह भाषा चाहिए जिसे यह वर्ग रोजमर्रा की जिन्दगी में बोलता है ।

परसाई की सौंदर्यशास्त्र की पारिभाषा परंपरा के प्रति विद्रोह है । दलित वर्ग की भाषा में नया सौंदर्य देखने का यह दृष्टिकोण काव्य शास्त्र के लिए नया अध्याय नया चिंतन है ।

<u>हिन्दी</u>

परसाई हिन्दी के प्रबल पक्षधर हैं, समर्थक हैं । भाषात्मक एकता को बनाये रखने के लिए हिन्दी के योगदान का अत्यंत तीव्रता से समर्थन करते हैं । परसाई हिन्दी विकास में रोड़े बने हुए और हिन्दी की अवनति के लिए कारण बने हुए उन शक्तियों की आलोचना कड़े शब्दों में करते हैं । "दुश्मनों की गिनती" में हिन्दी फैनेटिकों के अति हिन्दी मोह की आलोचना करते हैं क्योंकि इस अतिमोह के कारण ही हिन्दी की प्रगति में बाधा पड़ी है - "लेकिन हमारे हिन्दी में एक वर्ग है जिसे अहिन्दी भाषी हिन्दी "फैनेटिक" कहते हैं । .... एक वर्ग हिन्दी फैनेटिक्स का है जिनमें कुछ का हिन्दी-प्रेम इस कारण बांध तोड़ता है कि उन्हें अंग्रेजी नहीं आती । कुछ का हिन्दी प्रेम इसलिए भी है कि उन्हें "हिन्दी" और "हिन्दू" में सिर्फ मात्रा का फर्क मालूम होता ये "फैनेटिक" अप्रिय फेकटाओं से, असंतुलित वक्तव्यों से और कभी कभी गाली गलौज से अहिन्दी भाषियों को व्यर्थ ही उत्तेजित करते रहते हैं । बात अपने बीच की है । पर्दा डालने से कोई लाभ नहीं इन्हें ही कुल हिन्दीवाले या हिन्दीवाले का टाइप समझकर अहिन्दी भाषी हिन्दी के प्रति विरोधी भावना बनाते हैं । [16] परसाई यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि अहिन्दीवालों का विरोध करके हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना असंभव है । यह तो प्रेम से होने की बात है । अतः संतों के आदर्श का लाभ उठाने के लिए परसाई आग्रह करते हैं -"हिन्दीवालों को एक काम बहुत अच्छा आता है- तुलसी, सूर मीरा की रट लगाना, लेकिन इसी पूंजी पर आगे व्यापार नहीं हो सकता संतों ने प्रेम से हिन्दी को सारे भारत में पहुंचाया था, अगर हम ऐसा नहीं कर सके, तो उनका नाम लेने के कहां हकदार हुए ? [17] यह एक आत्मशोध की प्रक्रिया है । हिन्दी को "राष्ट्रभाषा" के नाम पर अहिन्दी भाषियों पर थोपा नहीं जा सकता क्यों

जनता भी भाषा की आवश्यकता और उसके बोध से अच्छी तरह परिचित हैं। इसलिए भाषा के संबंध में अत्यंत कुशलता से व्यवहार करने का आग्रह करते हैं।

"हिन्दी विरोधी हथियार" नामक अपने एक अन्य लेख में राजाजी के उस तथाकथित भाषण पर जिसमें उन्होंने कहा था कि भारत में राज्यों के आपसी संबंधों की भाषा अंग्रेजी होनी चाहिए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए राजाजी के इस वक्तव्य का विरोध करते हैं। हिन्दी का प्रबल समर्थन करते हुए हिन्दी के पक्ष में जो समर्थन देते हैं, वह उनके अतिप्रेम का सूचक है - "वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध और कूटनीतिवृद्ध राजाजी से विनम्रतापूर्वक यह कहना है कि क्या "केवल" दक्षिण के खयाल से राष्ट्रभाषा निश्चित होगी ? उत्तर, पूर्व, और पश्चिम भारत का इसमें कोई हित नहीं देखा जायेगा। और अगर दक्षिणवालों ने विदेशी शासकों की विदेशी भाषा इतनी कुशलता से सीख ली, तो क्या वे राष्ट्रभाषा हिन्दी को नहीं सीख सकेंगे ? या क्या वे राष्ट्र की भाषा का सीखना तौहीन समझेंगे और विदेशी भाषा पर गर्व करेंगे ? हिन्दी के पक्ष में जो सबसे बड़ी बात है, वह यह है कि यह देश के सबसे बड़े जनसमाज द्वारा बोली, लिखी और समझी जाती है और अब तक इसने वह सामर्थ्य भी प्राप्त कर ली है, जो एक राष्ट्रभाषा में अपेक्षित है। [18] परसाई हिन्दी के इसे राष्ट्रभाषा के लिए सर्वथा योग्य बताते हुए जो समर्थन प्रस्तुत करते हैं उससे भी गंभीर है भाषा की समस्या। हिन्दीवालों के इस प्रकार का समर्थन शुरू से ही रहा है, आज भी है, मगर भाषात्मक एकता, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता, अंग्रेजी को हिन्दी से स्थानापन्न करने की बात पर करते हैं तो वे इस ओर ध्यान नहीं देते दिखाई देते हैं कि हिन्दी के प्रति जो उत्साह और प्रेम दक्षिणवालों में है उसका शतांश भाग भी क्या हिन्दी प्रदेश के लोगों में दक्षिणी भाषाओं के प्रति है ? फिर हिन्दी प्रचार को दक्षिण में एक यज्ञ के रूप में उसका प्रचार प्रसार किया जा रहा है, त्रिभाषा सूत्र को दक्षिणी राज्यों में जिस प्रकार अमल में लाया जा रहा है क्या उसी प्रकार उत्तरी राज्यों में दक्षिणी राज्यों में उसे अमल में लाया गया है ? दक्षिणी भाषाओं के प्रति हिन्दीवालों का रवैया जो है उसी को हिन्दी साम्राज्यवाद के रूप में पहचाना जा रहा है। परसाई हिन्दी को बोलनेवालों की संख्या को मद्देनज़र रखकर उसे राष्ट्रभाषा स्वीकार करने को कहते हैं जबकि दक्षिण में विशेषकर कर्नाटक में हिन्दी की राष्ट्रभाषा संबंधी इस परिकल्पना का ही विरोध करते इस संबंध में डॉ. हा.मा.नायक का कहना है कि "हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति हमारा कोई विरोध नहीं है। किन्तु उसे अत्यंत ताकतवाली से "राष्ट्रभाषा" के नाम से

जबकि ऐसा कोई भाव नहीं है, जिससे दरवाज़े से लाकर प्रादेशिक भाषाओं का गला घोंटने के तंत्र का हम विरोध करते हैं। हिन्दी साम्राज्य बनाने की किसी भी योजना को रोकना चाहिए। कर्नाटक में हिन्दी विश्वविद्यालय की क्या ज़रूरत है? ..त्रिभाषा सूत्र एक धोखा है... यह सूत्र हिन्दीतर भाषियों के लिए है न कि हिन्दी भाषाओं के लिए। ....हिन्दी भाषियों को भले ही अंग्रेज़ी की ज़रूरत न हो मगर हिन्दीतर लोग अंग्रेज़ी को छोड़कर द्वितीय श्रेणी की प्रजा बनना नहीं चाहते। 19 परसाई हिन्दी के पक्ष में जो विचार प्रस्तुत करते हैं उनसे यही सारांश निकलता है कि दक्षिणवा को "राष्ट्रभाषा" सीखना चाहिए। मगर वहाँ का वातावरण सर्वथा हिन्दी साम्राज्यवाद के अनुकूल नहीं है। हिन्दी को भले ही प्रेम से सीखें मगर उसे राष्ट्रभाषा का विशिष्ट गौरव नहीं देना चाहते। क्योंकि हिन्दी विशेष अर्थ में राष्ट्रभाषा नहीं है किंतु उस अर्थ में राष्ट्रभाषा है जिस अर्थ में अन्य भारतीय भाषाएँ भी राष्ट्र-भाषाएँ हैं। इस दृष्टि से परसाई के हिन्दी संबंधी विचारों से सहमत नहीं हो सकते।

परसाई हिन्दी भाषा के विषय में बहुत भावुक से लगते हैं। एक ओर "हिन्दी का मतलब सेठ गोविंददास और पुरुषोत्तमदास टंडन समझते हैं। हिन्दी के लि इन आंदोलन कर्ताओं के सिवा हिन्दी की सर्जनात्मक शक्तियों और कृतियों की उन्हें बहुत कम जानकारी है। "कहकर आलोचना करते हैं तो दूसरी ओर परसाई भी हिन्दी के पक्ष में भावुकता की परिधि से बाहर नहीं आते। हिन्दी को एकदम सारे देश की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। अपने फैनेटिक्सों का मुँह बंद करके उनसे यह कहते हैं कि थोड़े नरम रूप से हिन्दी का प्रचार करें जिससे कि हिन्दी का साम्राज्य यथाशीघ्र स्थापित हो जाय।

<u>मार्क्सवादी जीवन-दर्शन</u>

परसाई की रचनाएँ प्रेमचंदोत्तर रचना जगत में अपना विशिष्ट स्थान रखती स्वातंत्र्यपूर्व भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक क्षेत्र के द्वंद्वात्मक हाल को प्रेमचंद ने अपने कृतित्व में अत्यंत प्रामाणिकता के साथ वैचारिक निकष पर कसा है औ अपने महत्वपूर्ण लेख "महाजनी सभ्यता" में अपने सैद्धांतिक जीवनदर्शन को मार्क्सवादी जीव दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है और तद्द्वारा मानव जगत को नया दर्शन दिया है, तो परसाई ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के समस्त लोकजीवन को, लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली के साथ आयी अधिकार-लोलुप पूँजीवादियों के हाथ में देश की मध्यम एवं निम्नमध्यवर्गी

जनता की मानसिकता को समझने और उनके कारणों की छानबीन करने का सफल प्रयास किया है।

मार्क्सवादी जीवन दर्शन में मनुष्य को सर्वाधिक महत्व दिया गया है और मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए यहाँ प्रमुखता दी गई है। मार्क्सवाद संसार में ऐसा क्रांतिकारी और शक्तिशाली चिंतन है क्योंकि डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में "मार्क्सवादी चिंतन एक राजनीतिक अथवा श्रमिक क्रांति का कार्यक्रम मात्र नहीं है अपितु यह एक सर्वव्यापी जीवन-दृष्टि है।" 20 केवल के शब्दों में मार्क्सवाद केवल श्रमिक वर्ग की क्रुद्ध आवाज ही नहीं है, यह वर्तमान समाज के प्रभावों तथा जटिलताओं को निश्चित रूप से समझने की वृहद् प्रणाली है। क्रांतिकारी परिस्थितियों तथा समाज से संबंधित विविध वर्गों का अध्ययन करना ही इसका उद्देश्य है। 21 मार्क्सवाद का दार्शनिक पक्ष द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहलाता है। यह द्वंद्वात्मक भौतिकवाद जीवन को एक ऐसी प्रगतिशील भौतिक वास्तविकता मानता है कि जिसके मूल में परस्पर विरोधी शक्तियों का संघर्ष चलता रहता है। इन विरोधी शक्तियों में निश्चय ही एक विनाश के पथ पर होगी और दूसरी निर्माण के पथ पर। चेतन मस्तिष्क का कार्य है कि इस तथ्य को समझे और विकासोन्मुख प्रगतिशील शक्तियों को प्रश्रय दे तथा ह्रासोन्मुख शक्तियों को रोके जो अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए छटपटा रही है और विकास या प्रगति में बाधा डालती है। हमारे समाज की व्यवस्था में दो विरोधी शक्तियाँ हैं -एक पूँजीवाद, दूसरा साम्यवाद। मार्क्स के अनुसार यह पूँजीवाद जिसके साथ साम्राज्यवाद का सहयोग है समाज को विनाश की ओर ले जाता है तो इसके विरुद्ध में क्रियाशील रहनेवाला साम्यवाद प्रतिगामी एवं सामंतवादी ताकतों से लड़ते हुए समाज को विकास की ओर ले जाता है। सामाजिक धरातल पर राजसत्ता का नाश और वर्गहीन समाज की स्थापना सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित करना मार्क्सवाद का लक्ष्य रहा है। मार्क्सवादी जीवन दर्शन की विचारधारा को प्रगतिवाद कहा जाय अथवा प्रगतिशील कहा जाय, इस संबंध में भी पर्याप्त मतभेद हैं। डॉ. रामविलासशर्मा, डॉ. रांगेय राघव, डॉ. नामवरसिंह, डॉ. शिवकुमार मिश्र आदि के अनुसार "प्रगतिवाद" और "प्रगतिशील" शब्दों कोई अंतर नहीं है, दोनों समानार्थक हैं। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में प्रगतिशील साहित्य से मतलब उस साहित्य से है जो समाज को आगे बढ़ाता है, मनुष्य के विकास में सहायक होता है। 22 एक और लेख प्रगतिशील साहित्य किसे कहते हैं लेख में रामविलासशर्मा ने प्रगतिशील साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को इस प्रकार बताया है -

प्रगतिशील साहित्य भारतीय जनता की सांस्कृतिक विरासत का ऐतिहासिक विकास है ।

प्रगतिशील साहित्य राष्ट्रीय स्वाधीनता, शांति और जनतंत्र के लिए संघर्ष का साहित्य है ।

प्रगतिशील साहित्य देश से साम्राज्यवाद-सामंतवाद की संस्कृति को निकालने के संघर्ष करता है ।

-प्रगतिशील साहित्य विभिन्न भाषावार इलाकों की जनता में एकता कायम करता है और उनकी आपसी मित्रता और भाईचारे को दृढ़ करता है ।

-प्रगतिशील साहित्य "विज्ञान से प्रेम" और "कला जनता के लिए" - इन दो सिद्धांतों को मिलाकर चलता है ।

प्रगतिशील साहित्य जनता की सेवा करनेवाले तमाम साम्राज्य विरोधी और सामंत-विरोधी लेखकों की एकता दृढ़ करने से विकसित होता है ।

अखिल भारतीय लेखक संघ देश के तमाम साम्राज्यविरोधी लेखकों का संयुक्त मोर्चा है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रगतिशील चिंतनधारा की भावभूमि वायवी नहीं है यह वास्तविकता की कठोर भूमि पर विकसित उदात्त मानवप्रेमी सिद्धांत है जिसका लक्ष्य सर्वहारा के आँसुओं को पोंछना है, पूँजीवादी शक्तियों का दमन करना है, सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में समानता को प्रतिष्ठापित करना है, वैज्ञानिक समाजवाद का निर्माण करना

कार्लमार्क्स कला की उपयोगिता के संस्थापक थे । मार्क्सवादी चिंतन में कला और साहित्य पर भी विशेष रूप से चर्चा की गई है । इसके अनुसार कला अथवा साहित्य की प्रेरणा का स्रोत व्यक्तिपूरक न होकर मूलतः सामाजिक होना चाहिए । कला कला के लिए नहीं अपितु सोद्देश्य और, जीवन के लिए होना चाहिए ।

यह मार्क्सवादी दर्शन परसाई का साहित्य दर्शन है, जीवन-दर्शन है । राजनीति धार्मिक, आर्थिक सामाजिक और साहित्य के संबंध में मार्क्स की चिंतनधारा को अत्यंत वैज्ञानिक स्वीकार कर उसी परिप्रेक्ष्य में आधुनिक समाज की तमाम सासदियों, व्यवस्था के क्रूर आयामों, अमानवीय शोषण को, एक ही शब्द में समस्त झूठों को एक एक करके उघारक

रखते हैं। मार्क्सवादी जीवन दृष्टि ने परसाई के व्यक्तित्व और कृतित्व को किस प्रकार प्रभावित इसका विवेचन आगे प्रस्तुत है। परसाई प्रगतिशील लेखक हैं, वे मार्क्स के दर्शन से प्रभावित हैं। उन्होंने अपने संपूर्ण कृतित्व में मार्क्सवादी जीवन-दर्शन को वाणी दी है। प्रतिगामी शक्तियों, फैसिस्ट ताकतों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए अपने विश्वासों एवं सिद्धांतों से किसी भी हालत में समझौता न करके एक ऐसे समाज की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध हैं जहाँ आम आदमी और सर्वहारा वर्ग के लिए दो-जून की रोटी नसीब हो। प्रगतिशील आंदोलन के संपर्क में आने के पहले भी परसाई राजनैतिक पार्टियों से संबद्ध थे वहाँ लोगों के आचार-विचारों से निकट परिचय रखते थे मगर बहुत जल्दी इनका मोहभंग उन पार्टियों तथा राजनीतिज्ञों से हुआ। यहाँ तक कि गांधीवादियों ने भी अपने आचार-विचारों से अपने अनुयायियों को निराश किया। एक ऐसी दिग्भ्रमित अवस्था में परसाई कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी दर्शन के संपर्क में आये। उन दिनों का स्मरण करते हुए परसाई कहते हैं - "आरंभ में ही राजनैतिक लोगों के साथ रहने के कारण राजनैतिक चेतना मुझमें थी। वे लोकतांत्रिक समाजवादी लोग थे जिनके नेता जय प्रकाश नारायण थे। पहिले आम चुनाव में इनका सफाया हो ग इनमें खीझ आयी और उनमें फ्रस्ट्रेशन आया और वे टूट-फूट गए। संयोग से तभी मेरा संपर्क कम्युनिस्ट पार्टी से हुआ और मार्क्सवादी दर्शन तथा साहित्य से मेरा परिचय हुआ। अध्ययन से और साम्यवादियों के संपर्क से मैंने बहुत कुछ सीखा। अब मेरी दृष्टि साफ है। मैं श्रमिक आंदोलन से भी तभी संबद्ध हो गया। मेरा अनुमान है कि सन् 1953-54 में मार्क्सवाद के प्रभाव में आ गया। तभी मेरा संपर्क मुक्तिबोध जी से हुआ और उन्होंने मेरे मार्क्सवादी विश्वासों को मजबूत किया तथा दृष्टि को बिल्कुल साफ और सही किया।" 23 प्रगतिशील आंदोलन के साथ निकट का संबंध रहने के कार परसाई के विचार इतने सुलझे हुए हैं कि यहाँ कोई "कन्फ्यूजन" नहीं है। अपने सैद्धांति विश्वास को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मैं मार्क्सवादी हूँ। [illegible] मार्क्सवादी नहीं। इसलिए [illegible] बौद्धिक गलती का सवाल मेरे सामने है ही नहीं। मैं मार्क्स की इतिहा की व्याख्या मानता हूँ। वर्ग संघर्ष में विश्वास करता हूँ। पर यह भी मानता हूँ कि मानव नियति और आगे बढ़ेगी। निश्चित रूप से मैं वैज्ञानिक समाजवादी हूँ। 24 कारण है कि परसाई के जीवन-दर्शन में कोई दुविधा नहीं है, द्वंद्व नहीं है, विरोधाभास नहीं है। परसाई अपने संपूर्ण कृतित्व में मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से पोषित अपने जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करते आये हैं।

प्रगतिशील संगठन के वार्षिक अधिवेशनों के अध्यक्षीय भाषणों में परसाई ने प्रगतिशील आंदोलन के उद्देश्य और लक्ष्य को लेकर महत्व के विचार प्रकट किये हैं। प्रगतिशील आंदोलन के स्वागत पश्चात परसाई प्रगतिशील आंदोलन को 'गति' देने के लिए आग्रह करते हुए अपनी वास्तविकताओं का बोध रखकर प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध लड़ाई जारी रखने का आग्रह करते हैं। प्रगतिशील चिंतनधारा महज नारा नहीं अपितु निरंतर प्रक्रिया है। "जो है" उसमें परिवर्तन लाने अर्थात् वर्तमान से बेहतरी न समाज के निर्माण की उत्कंठा इस आंदोलन की प्राणचेतना है। परसाई ने "प्रगतिशीलता" की जो व्याख्या की है वह इतना स्पष्ट है कि हर चिंतनशील व्यक्ति को इस दिशा में सोचने को प्रेरित करती है -"हम चाहते हैं कि ऐसी व्यवस्था हो जिसमें मनुष्य दुखी न हो, समाज में अन्याय, अत्याचार, शोषण न हो। भ्रष्टाचार न हो, मनुष्य मुक्त हो विवेकशील हो, अंधविश्वासों को छोड़कर वैज्ञानिक दृष्टि अपनाये। इसी साथ ही दुनिया के देशों में भाईचारा हो। युद्ध का खतरा समाप्त हो। हथियारों की दौड़ खत्म हो। शांति हो और सारी दुनिया के लोगों का जीवन-स्तर सुधरे। [25] प्रगतिशील साहित्य के जीवन-मूल्य उदात्त मानव समाज की परिकल्पना के पोषक तत्व हैं। समूचे मानवकुल को समता-शांति-सुख तभी लभ्य हो पाते हैं जबकि समाज निर्माण भूमि मार्क्सवादी दर्शन हो।

वास्तव में प्रगतिशीलता का दूसरा या पर्याय नाम ही मानवतावाद है। मगर आजकल मानवतावाद शब्द का बड़े जोरदार और हल्के रूप से हम करते हैं। मानववाद मनुष्य-मनुष्य के बीच के अंतराल का पर्याय है किन्तु वह वायवीय नहीं होना चाहिए। वायवीय तथा शब्दों एवं महज भावनाओं के द्वारा अभिव्यक्त मानवतावाद में मनुष्य का कल्याण संभव नहीं हो पाता है। परसाई का विश्लेषण है - अंतिम में ही समाज व्यवस्था की, मानवी संबंधों की वैज्ञानिक व्याख्या हो सकती है, कारण खोजे जा सकते हैं। हम मानवतावादी हैं मगर वैज्ञानिक मानवतावादी हैं। मनुष्य के जीवन से हमारा सरोकार है, इसलिए हम यथार्थवादी हैं वैज्ञानिक यथार्थवादी हैं क्योंकि हम जीवन के प्रति केवल भावात्मक प्रतिक्रिया न करके उसकी वैज्ञानिक व्याख्या और विश्लेषण करते हैं, शुभकामना से अर्थशास्त्र के नियम नहीं बदलते, विलाप से अन्याय समाप्त नहीं होता, क्योंकि वहाँ हृदय है ही नहीं। [26] मार्क्सवादी दर्शन का मानवतावाद आंसू की उपज नहीं अपितु दुख देनेवाले, आंसू बहानेवाली ताकतों को पहचानकर उनकी मानसिकता में परिवर्तन लाने के लिए उद्यत होना मानवतावाद कहलाता है। परसाई

मानते हैं कि हमारी मानवता अध्यात्म की नींव पर खड़ी हो जाय। क्योंकि यही वह शक्ति है जो संसार को अमानवीय बनाती है। इस शक्ति को पहचानने, उससे संघर्ष करने की जरूरत आज सबसे ज्यादा है और यह हर लेखक का कर्तव्य है। इसलिए ही परसाई आग्रह करते हैं - हमारे देश में इस समय जो हालात हैं उन्हें सभी जानते हैं, दरिद्रता है, शोषण है, भ्रष्टाचार है, साम्प्रदायिकता है, जातिवाद है। इनकी चर्चा सभी करते हैं। वास्तविकता यह है कि आज परिवर्तन की माँग बहुत है। यहाँ वहाँ सुधार से काम नहीं चलेगा। पूरा परिवर्तन चाहिए। ...हमें सामाजिक जीवन का यथार्थ और वैज्ञानिक दृष्टि से चित्रण करके साक्षात्कार कराना है और परिवर्तन की चेतना को जगाना है। हमें सही मूल्यों की स्थापना करनी है।27

परसाई इस परिवर्तन को आसान काम नहीं मानते हैं। क्योंकि समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाना एक दिन, एक रात में संभव नहीं है। इसलिए वैचारिक क्रांति की जरूरत होती है, विचार मनः परिवर्तन के साधन हैं। एक ओर जनता में वैचारिक जागृति पैदा करते जाएँगे तो दूसरी ओर प्रतिगामी शक्तियाँ अपनी समस्त ताकत के साथ प्रतिद्वंद्वी बनकर प्रगतिविरोधी काम करती हैं जिनसे जूझने, संघर्ष करने के लिए प्रगतिशील विचारधारा में विश्वास रखनेवालों को एक संगठन बनाने की सख्त आवश्यकता होती है। साम्प्रदायिक एवं सामंतवादी ताकतों का सामना बिना संगठन के आस्था के संभव नहीं है। इसलिए परसाई कहते हैं - 'दक्षिणपंथियों के पास न सच्चे लेखक होते हैं, न ठोस सच्चा साहित्य। इसलिए उनके प्रचार का तरीका फासिस्ट होता है। ये तरीके हैं-झूठा प्रचार, चरित्र हनन, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, मक्कारी ये मूल्यों की लड़ाई नहीं लड़ते, क्योंकि वे स्वयं मूल्यहीन होते हैं। इनकी कोशिश साहित्य के द्वारा प्रसारित होनेवाली इस जन-चेतना को रोकने और बदनाम करने की होती है जिससे मनुष्य अन्याय और शोषण से संघर्ष के लिए संगठित और कटिबद्ध होता

परसाई का संबंध राजनीतिज्ञों से, राजनीतिक पार्टियों से शुरू से रहा है मगर वे राजनीतिज्ञ नहीं हैं किन्तु राजनीतिक चेतना इनके व्यक्तित्व और कृतित्व में जि मात्रा में उतनी मात्रा में किसी भी समकालीन लेखक में भी नहीं है। लेखक को किसी राजनीतिक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध होना कहाँ तक उचित है? इस प्रश्न के जवाब में परसाई का कहना है राजनीतिक चेतना से कोई भी बचकर नहीं जा सकता है और इ व्यक्ति की राजनीतिक चेतना और उसके वोट देने की प्रक्रिया से शुरू होती है। 'जो

लेखक राजनीति से पल्ला बचाते हैं, वे वोट क्यों देते हैं ? वोट देने से ही राजनीति तय होती है। बुद्धिजीवि चाहे सक्रिय राजनीति में भाग न ले, पर वह अराजनीतिक हो सकता। जो अराजनीतिक होने का दावा करते हैं, उनकी राजनीति बड़ी खतरनाक और भद्दी है। 29

कोई भी लेखक भले ही किसी राजनीतिक पार्टी का सदस्य हो या न हो। एक आइडियालजी से तो अवश्य प्रेरणा ग्रहण कर सकता है। एक आइडियालजी से सरोकार रखे बिना न लेखक का दर्शन स्पष्ट हो पाता है न किसी संगठन का। एक आइडियालजी के संस्कारों के अभाव में हमारी अनेकों प्रतिभाएँ दिशाहीन होकर चुक जाने की संभावनाएँ ज्यादा रखती हैं। परसाई इस आइडियालजी का समर्थन करते हैं -"ऐसे बहुत लेखक हैं- छोटे शहरों, गाँवों, कस्बों में है जिनकी कोई आइडियालाजिकल शिक्षा नहीं है, मगर जो वास्तविक जीवन संघर्ष में सक्रिय हैं। अपने युग की ट्रेजडी को भी भोग रहे हैं। इनके अनुभव और अनुभूति सच्ची है। इनकी रचनाओं में शास्त्रीय दृष्टि से चाहे भूल हो, कहीं व्याकरण की गलती हो, संश्लिष्टता की कमी हो, मगर ये रचनाएँ सच्ची और ताकतवर हैं। हमें इन लेखकों को खोजना चाहिए, उनसे संपर्क करना चाहिए और उन्हें विचारधारा तथा रचना-संस्कार देना चाहिए। 30 जब तक यह काम व्यापक रूप से नहीं होगा तब संगठन को मजबूती नहीं बनाया जा सकता है और संगठन को मजबूती बनाना आज की सख्त आवश्यकता है।

यह है परसाई जी का जीवन दर्शन और मार्क्सवाद के बारे में उनकी विचारधारा। यह जीवनदर्शन तो मार्क्सवाद से परिपुष्ट तो है ही। परसाई दलित, शोषक, सर्वहारा वर्ग के तमाम संकटों के लिए वर्ग चेतना को कारण मानते हैं, इनके शोषण में लगी हुई संस्कृति के अनेकों रूपों को रेखांकित करते हैं और ऐसे समाज की परिकल्पना करते हैं जहाँ जो संस्कृति विकसित होगी उससे समूची मानव जाति की मुक्ति संभव हो जाएगी। क्षुद्र साम्प्रदायिकता, जातीयता, प्रादेशिकता की जंजीरों से बाहर आकर एक ऐसा समाज बनेगा जहाँ मनुष्य का समुचित और सर्वाधिक आदर होगा। परसाई की विचारधारा में उस संस्कृति का स्वरूप इस प्रकार है -"इधर सांस्कृतिक क्षेत्र में देश में ऐसी ताकतें हैं, संगठन हैं, जो भारतीय संस्कृति का नारा बुलंद करते हैं। पर इनकी संस्कृति का अर्थ है पुरातनवाद, जड़ मानव विरोधी संस्कारों, परंपराओं और मान्यताओं की स्थापना। संस्कृति मनुष्य को जकड़ती नहीं, मुक्त करती है। संस्कृति वह जीवन मूल्य है जिसे अपनी विकास यात्रा में मनुष्यसमाज विकसित और अंगीकार करता है।

संस्कृति मनुष्य का उदात्तीकरण करती है । और क्षुद्रता से ऊँचा उठाती है । 3।
परसाई जिस संस्कृति का प्रतिपादन करते हैं उस संस्कृति में शोषण नहीं होगा, सामाजिक असमानताएँ नहीं होंगी, धर्म के नाम पर कोई शोषित नहीं होगा और धन प्रतिष्ठा का और आपसी मानवीय संबंधों में दरारें पैदा करने में समर्थ नहीं होगा । उस संस्कृति में मानवीय-संबंध मधुर होंगे । मानव को संकटों से मुक्ति दिलाना ही परसाई का लेखन-धर्म है ।

<u>वर्तमान के प्रति परसाई का दृष्टिकोण -</u>

परसाई अपने युग के प्रति अत्यंत प्रामाणिक और आस्थावान हैं । अपने वैचारिक सिद्धांतों के आलोक में देश के वर्तमान राजनीतिक क्षेत्र की विसंगतियों एवं विद्रूपों को परसाई ने कलात्मक ढंग से ढालकर व्यंग्य किया है तो दूसरी ओर वैचारिक निबंध पर उन्हें गंभीर रूप से विवेचन किया है । परसाई की राजनीतिक विचारधारा मार्क्सवा के प्रति झुकी है और इसका धरातल "वैज्ञानिक समाजवाद" है और इसके परिप्रेक्ष्य में परसा तत्कालीन राजनीति के विद्रूपों को देखते हैं ।

परसाई सामंतवादी संस्कृति की यथार्थताओं तथा वहाँ के अनास्थावादी, मानव विरोधी जीवन-मूल्यों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और आजाद भारत की लोकतं त्मक शासन प्रणाली में भी उन्हीं मूल्यों को जिंदा और सक्रिय रहते देखकर तिलमिला उठते हैं ।

परसाई के रचनात्मक व्यक्तित्व की विशेषता इस बात में है कि वे अपने राजनीतिक सिद्धांतों के पिछलग्गू बनकर उनका ढिंढोरा पीटते हुए, वर्तमान की हकीकतों से कटकर "सिनिक" नहीं बन जाते, मगर अपने वैचारिक प्रतिबद्धताओं के बावजूद भी समकालीन राजनीति और शासन प्रणाली में तीव्र आस्थावान होकर अपनी रचनात्मक आलोचना और सहज व्यंग्य से लोकतंत्रात्मक शासनव्यवस्था के दोषों को उघाड़ते हैं । आजादी के पहले के सपनों से और आजादी के बाद सत्ता में आयी सरकार की राजनीति की नौटंकी से परसाई अच्छी तरह परिचित हैं । राजनीति में सक्रिय रहकर वहाँ की वास्तविकताओं को निकट से देखकर मोह भंग होने के बाद परसाई इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि लोकतंत्रात्मक व्यवस्था ने भी एक दूसरे ढंग की पूँजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया है सुंदर और आकर्षक नारों की चकाचौंध से आम जनता को ठगा दिया गया है । परसाई

इस आमजनता के कष्टों की वाणी हैं, वोट देकर सत्ता दिलानेवाले इन बेजुबान निरीहों की लाचारियों के संवाहक हैं । अर्थात् परसाई की राजनीतिक चेतना की आधारभूमि मानवीय संवेदना है । जब इस मानवीय संवेदनाओं पर प्रतिगामियों, साम्प्रदायिक शक्तियों, पूंजीवादी ताकतों का आक्रमण हुआ है तब परसाई ने कड़ा विरोध किया है । इस दृष्टि से लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की सीमाओं, षड्यंत्रों, कुचक्रों, स्वार्थ की पर्दाफाशी को परसाई ने अपनी रचनाधर्मिता का अभिन्न अंग माना है धनेन्द्र ठाकुर के शब्दों में "परसाईजी के लेखन की राजनीति मानवीय संवेदना को सामाजिक आधार देने की राजनीति है, मानव-मूल्य को प्रतिष्ठित करनेवाली राजनीति है । अतः उनके बारे में यह कहना सही होगा कि राजनीति उनके लेखन का संस्कार है यह संस्कार जनता के लगाव, जनसंघर्षों से जुड़ाव और मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की प्रतिबद्धता से विकसित हुआ है । ये संस्कार मध्यकालीन चेतना से मुक्ति और आधुनिक वैज्ञानिक एवं समाजवादी चेतना की स्वीकृति से विकसित हुए हैं । अतः यह स्वाभाविक है कि परसाई ने साहित्य में राजनीति के गुर का साफ-सुथरे ढंग से विनियोग किया है । इस ढंग की राजनीति से लेखन कैसे श्रेष्ठ बनता है, यह परसाईजी के लेखन में देखना चाहिए ।32 परसाई की कहानियाँ, निबंधों तथा विशेषकर "सुनो भई साधो", "ये माजरा क्या है", "कबीर खड़ा बाजार में" - जैसे विशिष्ट स्तंभ लेखों में स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति के विभिन्न परिदृश्य एवं राजनेताओं की सिद्धांत हीन, मूल्यहीन शासन प्रणाली के विभिन्न रूपों को देख सकते हैं । चुनाव इस देश के भविष्य को स्थापित करते हैं मगर ये कैसे लड़े जाते हैं ? लड़ने के सिद्धांत क्या होते हैं ? नये खून को राजनीति में प्रवेश कर पाना कहाँ तक संभव है, इन सवालों का जवाब परसाई की इस टिप्पणी में है "साधो, पार्टी की दृष्टि से भी देखो, पुराने आदमी को चुनाव जीतने की सब तरकीबें मालूम हैं । वह जानता है किससे कैसे वोट लिया जा सकता है । उसका जीतना निश्चित है । नया आदमी एक चुनाव तो सीखने में ही हार जायेगा । पार्टी नये खूनों को टिकटें देकर क्या चुनाव हारेगी ?33 लोकतांत्रिक व्यवस्था में हमारे तथाकथित विधायकों के चुनाव के विधानों पर यहाँ प्रकाश है । जोकि फिर पूंजीवादी व्यवस्था को ही जन्म देते हैं जिसे परसाई एक अन्य प्रसंग में "नवीन महाजनी सभ्यता" कहते हैं । इस महाजनी सभ्यता" में मध्यम और निम्नवर्गीय जनता आये दिनों शोषित और छली जा रही है जिसकी लगातार परसाई अपने कठोर शब्दों में आलोचना करते आ रहे हैं । इस आलोचना में वर्तमान भारत की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की कमियाँ एवं दोष उजागर

हुए हैं । जैसाकि परसाई ने एक अन्य संदर्भ में कहा है - "मंत्रिमंडल बदल रहे हैं पर आदमी की हालत गिरती जाती है । लाश तो वही है, सिर्फ कफन बदले हैं । यानी कमलापति त्रिपाठी गये और बहुगुणा आए, तो क्या आदमी को राहत मिलेगी ? नहीं मिलेगी, क्योंकि देश को स्थायी "लाश" मान लिया गया है । और आपके ये बदलते हुए मंत्रिमंडल केवल कफन है । अतः मंत्रिमंडल बदले, सरकार भी बदली, कांग्रेस सरकार गई जनता सरकार आयी किन्तु जनता की गरीबी, नेताओं के नारे नहीं बदले परसाई ने देश की लाश से और सरकारों की कफन से जो तुलना की है, वह अत्यंत सार्थक है । वर्तमान के प्रति परसाई की विचारधारा का सशक्त प्रतिनिधित्व उपरोक्त पंक्तियाँ करती हैं ।

<u>व्यंग्य और परसाई की रचना प्रक्रिया</u>

परसाई ने व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुनकर पूरे युग को ललकारा है । अपनी निर्भीक आलोचना और व्यंग्य से अपने समय की समस्त असामाजिक तत्वों एवं शक्तियों को चुनौती दी है । अप्रिय सत्य को प्रिय शब्दों में बोलने के आग्रह सुभाषितकार और नीतिकार करते हैं जबकि परसाई ने इसके ठीक विरुद्ध यानी प्रवाह के विरुद्ध तैरकर अपनी मान्यताओं एवं विचारों को हर कीमत पर प्रतिपादित करते हुए व्यंग्य प्रहारों से प्रतिगामी शक्तियों और मानव विरोधी मूल्यों की जड़ों को उखाड़ा ।

व्यंग्य की महत्ता से अनभिज्ञ अथवा व्यंग्य की सार्थकता से अपरिचित लोग व्यंग्य को हास्य का पर्याय स्वीकार करके बड़ी भूल करते हैं । मगर परसाई की निश्चित मान्यता है कि व्यंग्य और हास्य बिल्कुल अलग-अलग चीज़ हैं, इन दोनों का उद्देश्य और लक्ष्य में काफी अंतर है । इस ओर संकेत करते हुए उन्होंने अनेकों बार लिखा भी । "व्यंग्य लिखनेवाले की ट्रेजडी कोई एक नहीं । "मसखरा" से लेकर उसे मनुष्यता की मान्यता से हीन तक समझा जाता है । "मज़ा आ गया" से लेकर "गंभीर हो जाओ" तक की प्रतिक्रियाएँ उसे सुननी पड़ती हैं । फिर लोग अपने या अपने मामा, काका के चेहरे देख लेते हैं और दुश्मन भी बढ़ते जाते हैं । एक बहुत बड़े वयोवृद्ध गांधीभक्त साहित्यकार मुझे अनैतिक किस्म का समझते हैं । नैतिकता का अर्थ उनके लिए शायद बहुरूपम है । अतः यह व्यंग्यकार की भूमिका है तो हास्य और व्यंग्य का अंतर आगे बताते हैं -"मगर विसंगति के भी स्तर और प्रकार होते हैं । आदमी कुत्ते की बोली बोले एक यह विसंगति है-

एक यह विसंगति है। और वन महोत्सव का आयोजन करने के लिए पेड़ काटकर साफ़ किए जाएँ, जहाँ मंत्री महोदय गुलाब के 'कुंज' की कलम रोपें - यह भी एक विसंगति है। दोनों में भेद है - जो दोनों से हँसी आती है। मेरा मतलब है। - विसंगति की क्या अहमियत है, वह जीवन में किस हद तक महत्वपूर्ण है, वह कितनी व्यापक है, उसका कितना प्रभाव है - ये सब विचारणीय है। दाँत निकाल देना महत्वपूर्ण नहीं है। [36] हँसी क्षणिक है - सागर की लहर की भाँति किसी भी बेतुकेपन या किसी भी विसंगति या असंगत्य पर हँसी का फव्वारा छलकता है और उस विसंगति या असंगत्य के गायब होने पर या भूल जाने पर उसका कोई महत्व रह नहीं जाता है। हँसी में विचारोत्तेजना की क्षमता नहीं होती। लोग किसी भी बात पर हँसते हैं। हल्की, मामूली विसंगति पर हँस देते हैं। आदमी अगर पों-सरीखा किलकिलाये तो इस पर भी हँस देते हैं। दीवाली पर कुत्ते की दुम में पटाके की लड़ी बाँधकर उसमें कुछ लोग आग लगा देते हैं। बेचारा कुत्ता तो मृत्यु - भय से भागता और चीखता है, पर लोग हँसते हैं। [37]

व्यंग्य को हास्य का ही दूसरा रूप या पर्याय माननेवालों को व्यंग्य के गंभीर स्वरूप को समझाने के लिए परसाई निरंतर अपनी भूमिकाओं में लिखते आ रहे हैं। "सदाचार का तावीज़" और "तिरछी रेखाएँ" में लिखी भूमिकाओं को इस दृष्टि से देखने की ज़रूरत है। यहाँ व्यंग्य को "फन्नी" या "हल्का" माननेवालों को व्यंग्य की सामर्थ्य का, व्यंग्यकार के वारों से एकदम घबरा जानेवाले लोगों के विकृत आक्रोश का, यहाँ तक कि व्यंग्यकार की नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लगानेवाले निपट स्वार्थी एवं अनैतिकों का दयनीय असफल परिचय दिया है और व्यंग्य और व्यंग्यकार के दायित्व को रेखांकित किया है। व्यंग्य को एक गंभीर कर्म बताते हुए परसाई लिखते हैं - व्यंग्य लेखन एक गंभीर कर्म है, कम से कम मेरे लिए। सवाल यह है कि कोई लेखक अपने युग की विसंगतियों को कितने गहरे से खोजता है। उस विसंगति की व्यापकता क्या है और वह जीवन में कितनी अहमियत रखती है... सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है। वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है। अपने से साक्षात्कार करता है। चेतना में हलचल पैदा करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असामंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है। [38] सच्चे लेखक का दायित्व इस सामाजिक जागृति को जगाना होता है। जो लेखक यह काम नहीं करेगा उसके लेखन का कोई महत्व नहीं रहेगा। परसाई मानते हैं - व्यंग्य सत्यान्वेषण के प्रति प्रतिबद्ध है। व्यंग्यकार का व्यंग्य तभी सार्थक और

जिंदा हो सकता है जबकि उसकी दृष्टि सूक्ष्म हो, पूर्वग्रह से मुक्त हो, सही जीवन-मूल्यों को पहचानने में सक्षम हो । वरना उसका व्यंग्य निरर्थक होता है, वांछित प्रभाव को डालने में असफल होता है ।

व्यंग्य को परसाई ने एक कला के रूप में प्रतिष्ठित किया है । प्रभावी व्यंग्य के लिए मात्र विसंगतियों को देखना पर्याप्त नहीं होता किंतु देखी गई विसंगतियों की प्रेषणीयता में सर्जनात्मक प्रतिभा की जरूरत होती है जिसके अभाव में व्यंग्य कला नहीं बनता है, मात्र आक्रोश या आलोचना बन जाता है । परसाई में सूक्ष्म दृष्टि, विश्लेषक बुद्धि और अपूर्व सर्जनात्मक प्रतिभा का संगम है, इसलिए ही उनके व्यंग्य मात्र विसंगतियों, पाखंडों का विश्लेषण ही नहीं करते हैं अपितु कलात्मक कृतियों के रूप धारण करते हैं । इस दृष्टि से ही परसाई लेखन को टेढ़ी खीर मानते हैं । व्यंग्य लेखक को अपनी सृजन प्रक्रिया में किस दौर से गुजरना पड़ता है, इसकी ओर संकेत करते हुए कहते हैं - " तो फिर जो जीवन लेखक देखता है, उसमें कहाँ-कहाँ खोट है, कहाँ-कहाँ एकदम परिवर्तन चाहिए । कौन से मूल्य गलत हैं, और उन्हें नष्ट होना चाहिए । किन परंपराओं को हम कैंसर की तरह पाले हैं, कहाँ विसंगति, अन्याय मिथ्याचार, शोषण, पाखंड, दो मुँहपन आदि हैं मैं कोशिश करता हूँ कि इन्हें देखूँ, गहरे जाकर इनका अन्वेषण करूँ, उन्हें अर्थ दूँ, कारण खोजूँ । और फिर ऐसे अनुभव को, विश्लेषित करके रचनात्मक चेतना का अंग बनाकर कुछ इस तरह से कह दूँ कि एक तथ्य ताकत के साथ उद्घाटित हो जाय.....पाखंड के बारे में कई तरह के लेख लिखे जाते हैं । मैं लेख न लिखकर कुल यह कह दूँगा - " कुछ लोग इतने दयालु और धार्मिक होते हैं कि रोज सुबह मछली को दाना चुगाते हैं और रात को पकौड़ी खाते हैं ।" यह व्यंग्य हो गया ।[39] व्यंग्य में अभिव्यक्ति भंगिमा का अपना [illegible] विशिष्ट महत्व है जिसकी ओर व्यंग्यकार को ध्यान देना है । परसाई इस व्यंग्याभिव्यक्ति के मर्मज्ञ हैं ।

परसाई के अनुसार व्यंग्य की आधारभूमि वास्तविकता है । कल्पना के लिए यहाँ गुंजाइश कम होती है । व्यंग्य वायवी नहीं है । अतः व्यंग्य का स्वभाव कठोर हुए बिना नहीं रह पाता है । व्यंग्य अपने शिकार की मनःस्थिति की परवाह नहीं

करता है । यदि परवाह करेगा तो वह व्यंग्य अपनी प्रखरता खो देगा । व्यंग्य का स्वभाव ही कटु होता है, उसका प्रहार मर्मघाती होता है जिसे परसाई अनिवार्य और व्यंग्य लेखक की कटुता को पवित्र मानते हैं - " कुछ लोग कहते हैं कि व्यंग्य में कटुता होती है । कुछ तो यहाँ तक कहते हैं कि व्यंग्य अमानवीय होता है । सही व्यंग्य लेखक में कटुता आ जाय यह बात अलग है । एक सचेत लेखक यदि गलत और घातक व्यवस्था के प्रति कटु है तो यह कटुता पवित्र है पर व्यंग्य लेखक किसी व्यक्ति से नाराज़ होकर उसे कलम से नहीं पीटता ।उसे वह जूते मार सकता है ।....जहाँ तक मानवीयता का प्रश्न है यदि व्यंग्य लेखक को मानव जीवन से गहरा सरोकार न हो तो वह क्यों रोए कि मेरे भाई तुममें यह बुराई है, तुम अच्छे हो जाओ ।[40] व्यक्तिजीवन, सामाजिक जीवन एवं राष्ट्रजीवन के अभिन्न अंग से हुए द्वंद्व, विरोधाभास, पाखंड, विद्रूप इस प्रकार शिलावत् स्थापित हो चुके हैं जिन्हें हिलाना डुलाना न कोमल शब्दों से संभव है न नीति उपदेशों से । किन्तु व्यंग्य ही ऐसा अस्त्र है जिसके द्वारा व्यक्ति के अंतरंग को आत्मशोध करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, सत्ता भी न सुधरा उसको नंगा किया जा सकता है । इस दृष्टि से परसाई व्यंग्य को असामाजिक तत्वों को नंगा करने के लिए उपयोग में आनेवाला सशक्त नोकदार अस्त्र मानते हैं जीवन के नेत्यात्मक पक्षों पर कटाक्ष करके उसके उदात्तपक्ष को उजागर करना इनके व्यंग्य का साध्य है ।

परसाई ने अपने लेखन का उद्देश्य अनेकों संदर्भों में स्पष्ट किया है । झूठों को उजागर करना, ऐसे समाज की स्थापना करना जहाँ मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई दीवार न हो, लोगों की संकुचित मानसिकता में परिवर्तन लाना जिससे कि वे नये मूल्यों के संबंध में सोच-विचारें - परसाई का जीवन दर्शन है । अपने जीवन-दर्शन इसके यानी लिखने के मकसद को लेकर परसाई ने अपनी कैफ़ियत में लिखा है - "विश्व-व्यापी साम्राज्यवादी युद्धोन्मादी शक्तियों द्वारा लोकतंत्र का नाश, सरकारें पलटना, हत्याकांड और व्यापक तौर पर अमानवीकरण, मज़हब के नाम पर पलनेवाली बर्बर तानाशाही और राजशाही, मनुष्य की अस्मिता भंग हो रही है । मानव गरिमा का नाश हो रहा है । हर आदमी दुनिया में असुरक्षित महसूस करता है । हर

आदमी दुनिया में असुरक्षित महसूस करता है । हर आदमी डरा हुआ है । अरबों आदमी भूखे हैं, मगर उनकी रोटी का पैसा हथियारों में लग रहा है ।...मेरी नज़र अपने घर से लेकर वियतनाम, निकारागुआ, नामिबिया तक है । मैं सिर्फ दिल्ली नहीं वाशिंग्टन, मास्को, बीजिंग के तेवर भी देखता हूँ । हर देश की एक नियति होती है, पर अब विश्व की एक नियति भी, जिससे बचा नहीं जा सकता ।[6] परसाई का व्यंग्य समूचे विश्व को अपनी कैनवास बनाकर चलता है । व्यक्ति जीवन से लेकर राष्ट्रीय जीवन तक की तमाम विसंगतियों का व्यंग्य तीक्ष्ण विश्लेषण, बारीक शल्यक्रिया परसाई करते हैं । विश्वबोध ही इनका युगबोध है । परसाई आगे कहते हैं - मैं इसलिए लिखता हूँ कि एक तो मैं स्वयं मनुष्य को, अपने समाज को और दुनिया को समझना चाहता हूँ । मैं इसलिए लिखता हूँ कि व्यक्ति और समाज आत्मसाक्षात्कार और आत्मालोचन करे और अपनी कमजोरियाँ, बुराइयाँ, विसंगतियाँ, विवेकहीनता न्यायहीनता त्याग कर जैसा वह है, उससे बेहतर बने । अंधविश्वासों, झूठी मान्यताओं अवैज्ञानिक आग्रहों और आत्मघाती रूढ़ियों से मुक्त हो । वह न्यायी, दयालु, संवेदनशील हो ।...वास्तव में मैं जो लिखता हूँ, वह विनोद या हास्य नहीं है । वह व्यंग्य है और लोगों का कहना सही है कि वह कठोर होता है । पर इस व्यंग्य का उत्स कटुता में नहीं करुणा में है । व्यंग्य मानव सहानुभूति का बहुत ऊँचा रूप है । यह परसाई का व्यंग्य-दर्शन है । समूची मानव जाति की ह्रासशील संस्कृति में, उसके संकट में, अमानवीयता की नंगी नाच में परसाई करुणा की अजस्र स्रोतस्विनी के दर्शन करते हैं । मानवीयता के रुदन में अमानवीयता ठहाका मारकर हँसती है जिसे परसाई का संवेदनशील हृदय सह नहीं पाता है तो इनसे व्यंग्य-ज्वालामुखी का स्फोट होता है । जीवन और जगत और मनुष्य के प्रति परसाई का मानवीय अंतःकरण और स्वस्थ व मन दोनों हमेशा जागृत रहे हैं क्योंकि जागरण करनेवाला ही रो सकता है, सोनेवाला देख भी नहीं पाता है । कबीर की यह साखी परसाई का आदर्श है -

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै
दुखिया दास कबीर है जागै और रोवै ।

परसाई कबीर से दीक्षित साहित्यकार हैं जिन्होंने केवल "आँखन देखी" को कहा है, उसीको प्रामाणिक बताया है । "कागद लिखी" से उनका कोई सरोकार नहीं है । इस दृष्टि से परसाई की रचनाएँ समकालीन भारत को एक "दर्शन" देने में समर्थ हुई हैं । परसाई की रचनाओं को ऋषियों की ऋचाओं के समकक्ष या उनसे भी महत्वपूर्ण मानते हुए केदारनाथ अग्रवाल का कहना है कि "परसाई के तर्क और वे तेवर महान मानवीय गुणों को स्थापित करने के लिए बहुत जरूरी है । ऐसे ही व्यक्ति की लेखनी स्याही से नहीं, खून से लेख लिखती है - व्यंग्य करती है और हृदय बेध देती है । इस मत के बलि और पुरुषार्थी प्रवीण व्यंग्यकार की रचनाएँ ऋषियों की ऋचाओं को मात करती हैं, और भारतीय चिंतन-पद्धति में आमूल परिवर्तन करती है ।[1]" परसाई के व्यंग्य की विशेषता के कारण देते हुए भीष्म साहनी ने कहा है - "परसाईजी के व्यंग्य की विशेषता इस बात में है कि जीवन पर उनका विश्वास अडिग और गहरा है, सामान्य जन की क्षमताओं, उनकी ईमानदारी और मानवीय मूल्यों पर उनका विश्वास उनकी चेतना में समाया हुआ है....इसी कारण उनकी रचनाओं पर एक प्रकार की सौ-सी छिटकी रहती है, और एक तरह की सादगी और अपनापन भी ।[2]"

उपरोक्त उद्धरणों में रेखांकित विशिष्ट गुणों एवं प्रवृत्तियों के कारण ही हरिशंकर परसाई एक महान लेखक के रूप में प्रतिष्ठापित हुए हैं । उनकी विचारधारा और दर्शन मानवीयता के प्रति ऐसा प्रतिबद्ध है कि परसाई में उदार मानवीय अंतःकरण के अलावा और कुछ देखने की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं ।

संदर्भ-ग्रंथ

1. परसाई ग्रंथावली - छठा भाग - पृ.5
2. साहित्यः विविध संदर्भ - सोठार नोत्से पृ.24
3. कला का जोखिम - निर्मल वर्मा - पृष्ठ 36
4. से 18 तक - परसाईग्रंथावली - छठा भाग क्रमशः 4-148, 5-150, 6 - 156, 7 - 156, 8-155, 9 - 165, 10 - 166, 11 - 198, 12 - 202, 13 - 211, 14 - 210, 15 - 211, 16 - 147, 18 - 153।

19. प्रजावाणी - डा॰ मा॰ नायक 20 सितंबर 87

20. आधुनिक हिन्दी काव्य में पाश्चात्य चिंतन डॉ रामविलास सैनी पृष्ठ 162

21. राजदर्शन का अध्ययन : सी॰एम॰ सेबर पृष्ठ 207

22. प्रगति और परंपरा - रामविलास शर्मा - पृष्ठ 409

23. आँखिन देखी - संपादक - कमला प्रसाद पृष्ठ 33

24. - वही - पृष्ठ 43

25. से 28 तक परसाई ग्रंथावली - छठा भाग (क्रमशः 25-213, 26 - 214, 27 - 216, 28 - 217

29. आँखिन देखी - संपादक - कमला प्रसाद पृष्ठ 31

30. परसाई ग्रंथावली - छठा भाग पृष्ठ 219

31. - वही - पृष्ठ 215

32. आँखिन देखी - संपादक - कमला प्रसाद पृष्ठ 323

33. परसाई ग्रंथावली - पाँचवाँ भाग - पृष्ठ 20

34 से 38 परसाई ग्रंथावली - छठा भाग (क्रमशः 34-73, 35 - 240, 36 - 241, 37 - 248, 38 - 249।

39 से 40 आँखिन देखी - सं॰ कमला प्रसाद क्रमशः 39 - 30, 40 - 31

41 - 42 परसाई ग्रंथावली - छठा भाग - पृष्ठ 221

पंचम अध्याय

हरिशंकर परसाई का कथा-संसार : एक विवेचन

हरिशंकर परसाई का कथासंसार - एक विश्लेषण

परसाई की कहानियों की मुख्य प्रवृत्तियाँ

हरिशंकर परसाई इस शती के श्रेष्ठ कथाकारों में अन्यतम हैं। अपनी कहानियों के माध्यम से उन्होंने मानव मन की गुत्थियों को समझने और सुलझाने का ही प्रयत्न ही नहीं किया है अपितु हमारे सामाजिक जीवन की असंगतियों एवं विरोधाभासों का विश्लेषण करने का प्रयास भी किया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के कथाशिल्प में परसाई की उपलब्धि इस बात में है कि इनकी कहानियों में व्यंग्य एक अंतर्धारा के रूप में, एक इकाई के रूप में उभर कर नहीं आया है किंतु अपनी समग्रता में जीवंत चेतना के रूप में निखर उठा है। यही कारण है कि परसाई की कहानियों में व्यंग्य और कथा के बीच विभाजक रेखा कभी खींची नहीं जा सकती क्योंकि ये दोनों अभिन्न हैं। व्यंग्य के बिना उस कहानी का कोई महत्व नहीं होता, और उस कहानी के बिना उस व्यंग्य का कोई संदर्भ नहीं होता। इस दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य को एक "स्पिरिट" के स्तर से ऊपर उठाकर एक सशक्त विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय परसाई को है।

परसाई की कहानियाँ एक ओर कहानियाँ हैं जो सामान्य पाठकों को मनोरंजन देती हैं, अपने निश्छल हास्य के कारण मन को मुदित करती हैं, दूसरी ओर अपने सूक्ष्म लक्ष्य को सजग पाठकों पर डालकर, चिंतन करने, आत्मावलोकन करने को प्रेरित करती हैं। दूसरे शब्दों में परसाई की कहानियों को मात्र कहानियों के रूप में पढ़कर एक किनारे पर रखना किसी भी पाठक को इसलिए संभव नहीं कि इनकी कहानियाँ हमारी व्यवस्था के दस्तावेज हैं, मानव-मन की दुर्बलताओं के, उसके पाखंडों के, उसके निकम्मेपन के दास्तान हैं। जबकि पाठक इन्हें पढ़ता जाते हैं इस बात को भूलकर कि वह अपनी ही कहानी है, उन घटनाओं में ऐसी तादात्म्यता का अनुभव करने लगते हैं कि यहाँ के व्यंग्य में उसे पूरे समाज की तस्वीर प्रतिबिंबित दिखाई पड़ती है। इस तस्वीर में वह क्या नहीं देखता। व्यक्ति, समाज, देश और संपूर्ण जगत के व्यापारों में उसे जो विरोधाभास, द्वंद्व, खोखलापन दिखाई पड़ते हैं उन्हींकी वजह से वह संकल्प के

शिकार हैं। परसाई की कहानियों में इन संकटों से साक्षात्कार है। इन्हें पढ़ता हुआ पाठकवर्ग बड़ी आसानी से साधारणीकरण कर लेता है। यहीं पर परसाई की कहानियों की सार्थकता है।

परसाई देश के सबसे बड़े व्यंग्यकार हैं जिनकी जीवन दृष्टि दुखी जीवन के प्रति प्रतिबद्ध है और उन स्थितियों के प्रति आक्रामक है जिनके कारणों से मानव का जीवन यातना-शिविर बन गया है। परसाई कहते हैं - " व्यंग्य लेखन एक गंभीर कार्य है। कम से कम मेरे लिए। सवाल यह है कि कोई लेखक अपने युग की विसंगतियां भेद को कितने गहरे से पकड़ता है। उस विसंगति की व्यापकता क्या है और वह जीवन में कितनी अहमियत रखती है। मात्र व्यक्ति की ऊपरी विसंगति- शरीर रचना की, व्यवहार की, बात के लहजे की, एक चीज़ है। और व्यक्ति और समाज के जीवन की भीतर सतहों में जाकर विसंगति खोजना, उन्हें अर्थ देना तथा उसे सशक्त विरोधाभास से पृथक करके जीवन से साक्षात्कार करना दूसरी बात है। सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है। वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है। अपने से साक्षात्कार [illegible] कराता है। चेतना में हलचल पैदा करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असामंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है।[1] परसाई की कहानियाँ किस्सा गोई दादा-दादी की कहानियाँ नहीं हैं, किंतु हर कहानी किसी न किसी सिद्धांत का, जीवन दर्शन का, नैतिक दायित्व का, उच्च जीवन मूल्य का प्रतिनिधित्व करती है। अतएव इन कहानियों का व्यंग्य समाज विरोधी शक्तियों का पीछा करता है, उनकी कुरूपता का पर्दाफाश करता है। अपने जीवन-सिद्धांतों के लिए बड़े से बड़े जोखिम को भी सहने को तैयार रहता है। परसाई ने अपने जीवन में कहानियाँ लिखने की सजा [भुगता]। भी कहा है - धमकियाँ सुनकर, मार खाकर। "सदाचार का तावीज" की भूमिका में लिखते हैं - बिहार के किसी कस्बे से एक आदमी ने लिखा कि तुमने मेरे मामा का, जो फारेस्ट अफसर हैं, मजाक उड़ाया है। उनकी बदनामी की है। मैं तुम्हारे खानदान का नाश कर दूँगा मुझे शनि सिद्ध है।[2] व्यंग्य समाज विरोधी शक्तियों से क्या नहीं कराता, इसके लिए यह उद्धरण पर्याप्त है। अर्थात् व्यंग्य जो इनकी कहानियों में प्रस्फुटित हुआ है, कहानी का अभिन्न अंग बनकर पाठक या अपराधी को तिलमिलाने को मजबूर करता है

हरिशंकर परसाई ने मानवता को अपनी कहानियों में सर्वोपरि स्थान दिया है । इस दृष्टि से वे मानवनियति के नायक हैं, व्यवस्था के विरोधक हैं, समस्याओं के चिकित्सक हैं । उनकी समस्त कहानियाँ व्यक्ति की दुर्बलताओं और व्यवस्था की विसंगतियों व लोपों को रेखांकित करती हैं । हाँ, व्यंग्य का मूल उत्स ही ये विसंगतियाँ हैं । ये विसंगतियाँ हर समाज में, हर व्यवस्था में, हर सरकार में विद्यमान रहती हैं । "यह सही है कि पूँजीवादी व्यवस्था में सामाजिक, आर्थिक विषमताएँ बहुत होती हैं, अन्याय और ढोंग भी भरपूर होता है, इसलिए पूँजीवादी व्यवस्था में व्यंग्य के मुद्दे होते हैं लेकिन समाजवाद स्थापित होने के बाद [illegible] व्यंग्य की [illegible] जरूरत नहीं रहेगी, ऐसी बात नहीं । वास्तव में दो मनुष्य, उनका चरित्र, उनके का[म] करने के तरीके, कभी एक जैसे नहीं हुए । समाजवादी व्यवस्था में भी व्यक्ति और समाज में विसंगतियाँ रहेंगी । जहाँ समाजवाद है, वहाँ ये हैं और उन पर लिखा जा रहा है ।[3] अतः अपने परिवेश की इन विसंगतियों को देखकर संवेदनशील एवं क्षुब्ध लेखक इतना असहनशील होता है कि उसके मुँह से शब्द नहीं अंगारे निकलते हैं । ये अंगारे व्यंग्य होते हैं । परसाई की कहानियों में आग है, अंगारे हैं, कटुता है, क्रोध है, ताप है, व्यवस्था में परिवर्तन लाने का आग्रह है ।

परसाई की कहानियों की केन्द्रबिंदु व्यवस्था है । इस व्यवस्था को नियंत्रित करनेवाले कुछ अंग हैं - राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्र और यहाँ के अनुसार शाही, नौकरशाही, जाति पाँति, उच्च-नीच की गुत्थियाँ अपनी अपनी परिधि में भारतीय समाज पर प्रभाव करती रहती हैं । इस दौरान यह नितांत संभव है कि यहाँ विसंगतियाँ, असमानता, अंतर तथा दूरियाँ स्थापित हों । परसाई ने इन तमाम अंगों पर ध्यान दिया है और यहाँ की समस्त विषमताओं का बड़े मनोयोग से, आस्था से व्यंग्य किया है । यह व्यंग्य समाज अंतराल से निकला है, परिवेश ने उसको जन्म दिया है । परसाई का मानना है - " सही व्यंग्य व्यापक परिवेश को समझने से आता है । व्यापक सामाजिक, राजनीतिक परिवेश की विसंगति, मिथ्याचार, असामं[जस्य], अन्याय आदि की तह में जाना, उनके कारणों का विश्लेषण करना, उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में देखना - इससे सही व्यंग्य बनता है । जरूरी नहीं कि व्यंग्य में हँसी आये । यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्मसाक्षात्कार

करवाता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था की सड़ांध को इंगित करता है और परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है तो सफल व्यंग्य है । जितना व्यापक परिवेश होगा, जितनी गहरी विसंगति होगी, जितनी तिलमिला देनेवाली अभिव्यक्ति होगी, व्यंग्य उतना ही सार्थक होगा । परसाई की कहानियों में भारतीय समाज की सड़ांध व्यवस्था का, उसके अधःपतन का, गुलामी मानसिकता का व्यंग्य जिंदा है ।

स्वातंत्र्य पूर्व भारत और स्वातंत्र्योत्तर भारत - दो अलग स्थितियाँ हैं । पहले में कल्पना थी, आदर्श था, उस अवधि के नेताओं, मनीषियों की उदार संकल्पनाएँ थीं, उन दिनों स्वातंत्र्य, सुराज्य और सर्वोदय समाज निर्माण के सपने देखे गए थे जोकि स्वातंत्र्योत्तर भारत में साकार नहीं हो पाए । जनता स्वप्न भंग का अनुभव करने लगी क्योंकि यहाँ "स्व" पर केन्द्रित समाज का निर्माण हुआ । फलस्वरूप उच्च वर्ग के लोग नेता और पूँजीपतियों के हाथ इतने लंबे हो गए कि शोषित और दलितों की आवाज़ दबती अथवा थमती गई । बदली हुई राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में इस सर्वहारा वर्ग का शोषण हर क्षेत्र में इतना तेज होता गया कि इनका दुश्वार हो गया । स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में - प्रगतिशील धारा में - इस वर्ग की मजबूरियों एवं ज्यादतियों का जीवंत वर्णन उपलब्ध है । परसाई ने अपनी कहानियों में राजनैतिक दुर्घटनाओं, सामाजिक पीड़ाओं, आर्थिक संकटों पर ही नहीं अपितु उनके मूल कारणों पर अपना कटाक्ष किया है, शोषकों के बहुरंगी रूपों पर व्यंग्य किया है, इस दृष्टि से इनकी कहानियाँ स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की सही-सही तस्वीर पेश करती हैं । धनंजय वर्मा लिखते हैं - " सत्ता के हस्तांतरण के रूप में पायी गई राजनीतिक आज़ादी और उसके बाद तीन-चार दशकों में भी मौजूदा पूँजीवादी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में शोषण और दमन के शिकार भारतीय जनता आज भी अपनी मुक्ति के संघर्ष में लगी हुई है । इस परिवेश में दो पीढ़ियों के संक्रांतिकालीन एहसास और चेतना की सक्रियता है । एक पीढ़ी वह है जिसने आज़ादी के लिए कुर्बानियाँ दीं जिसके अपने कुछ नैतिक आदर्श थे और सामने सुनहरा भविष्य, आशाएँ-आकांक्षाएँ थीं, सपने थे उसके , लेकिन आज़ादी मिलते ही शरणार्थियों के काफिले सांप्रदायिक दंगे, खून-खराबा, विदेशी पूँजीपति की जगह देशी पूँजीपति,

गोरी नौकरशाही की जगह काली नौकर शाही और उसके नतीजन एक व्यापक स्वप्नभंग, मोहभंग, हैरानी और उदासीनता और अवसरवादिता का माहौल...। और फिर एक ऐसी पीढ़ी है जिसे न कोई स्वप्न देखने का मौका मिला और न कोई मोह पालने की फुरसत । आँख खोलते ही भ्रष्टाचार, आपाधापी, [illegible], विभीषिकाएँ, यंत्रणाएँ, विसंगतियाँ और निरर्थकताएँ देखने को मिलीं । गरीबी भुखमरी, अकाल और दमन के बीच पिसती हुई और हड़ताल और आंदोलनों के ज़रिये अपना प्रतिरोध दर्ज कराती हुई भारतीय जनता अवसरवादी झूठे वायदों और नारों और दल बदल-बदलकर सत्ता से चिपकने या उसे हथियाने की बेगैरत कोशिशों के बीच लुटी हुई है । चुनांचे एक ओर पस्तहिम्मती है, बदहवासी है, खीझ और छटपटाहट है और दूसरी ओर गुस्सा है, आवेश और आक्रामकता है, आक्रोश और विद्रोह है । मोहभंग और दिग्भ्रांति के दोनों छोरों के बीच तना हुआ यह परिवेश ही परसाई की कहानियों का संदर्भ है ।[4] परसाई की कहानियाँ स्वप्नकांक्षी और स्वप्नभंग समाज के जबरदस्त दास्तान हैं ।

परसाई की कहानियों को पढ़ने का मतलब इस सदी के भारतीय समाज से साक्षात्कार करने के बराबर है अर्थात् इनकी कहानियों में घटनाओं का विश्लेषीकरण नहीं है, कल्पना की उड़ान नहीं है, व्यर्थ अतिशय अतिरंजिता नहीं है किन्तु वास्तविकता है, यथार्थता है, समाज का नंगापन है, क्रूरता है, अन्याय-अत्याचार है, धोखा-फरेब है, जाति-पाँति जैसे अक्षुण्ण अंग हैं जिन्हें नकारने की हिम्मत किसी में नहीं है । ये ही वे अंग हैं जोकि जीवनविधान बन गए हैं, मूल्यों का झंडा फहरा रहे हैं । परसाई जैसा व्यंग्यकार ही इन पर प्रहार कर सकता है और उन्होंने किया भी है । परसाई की किसी एक कहानी को चुनकर उसका नाम या उद्धरण देने के बजाय, उनकी संपूर्ण रचनाधर्मिता को इस बात के लिए उदाहरण के रूप में दे सकते हैं । परसाई की कहानियों में पूरे भारत की मानसिकता एकदम अपने संपूर्ण आयामों के साथ अभिव्यक्त हुई है । यही कारण है इनकी कहानियाँ इतिहास के अंग मात्र बन गई हैं । आज का कोई भी आम पाठक इन कहानियों में से न तथ्य को अस्वीकार कर सकता है न सत्य को । वास्तव संकटभोगी परसाई की कहानियों को पढ़कर अपना क्रोध शांत

करता है, विद्रोही प्रवृत्ति को बढ़ाता है ।इस अर्थ में परसाई मानवसंकट के लिपिकार हैं, इनकी कहानियों की प्रासंगिकता किसी भी देश और समाज के मध्यवर्गीय समुदाय के लिए हर हमेशा रहती है ।

परसाई की कहानियों में सुधारवादी प्रवृत्ति हनहीं, वे स्वयं मानते हैं कि सुधार बनना उनका लक्ष्य भी नहीं है । परसाई कहते हैं कि " मैं सुधार के लिए नहीं अपितु परिवर्तन के लिए लिखता हूँ, यह कहने का मेरा यह अर्थ नहीं है कि मैं और मेरे जैसे परिवर्तनकामी लेखक केवल लेखन में समाज बदल देंगे । ऐसा दावा करना तो अहंकार और मूर्खता है । क्रांतिकारी परिवर्तन, क्रांतिकारी आंदोलन से ही होते हैं । भारत में एक प्रयोग ऐसा हो रहा है ।[5] व्यवस्था में परिवर्तन लाना परसाई का उद्देश्य और उनकी रचनाधर्मिता का लक्ष्य है । अपनी सैकड़ों कहानियों में उनकी परिवर्तनकामी मनोदशा की उत्कंठा को देख सकते हैं । उनके कथा-शिल्प में समाज व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत किया गया है । ऐसे मनुष्य की परिकल्पना है जहाँ मानव का आदर इसी शर्त पर होना चाहिए कि वह मनुष्य है । वह मनुष्य क्या है, इसकी परवाह परसाई कभी नहीं करते । परसाई की चिंतनधारा है कि जात-पाँत समाज की प्रगति में रोड़े हैं, वर्ग मनुष्य-मनुष्य के बीच दूरियाँ निर्मित करते हैं, उन शैक्षिक योग्यताओं से कोई फायदा नहीं है जिनसे मानव कल्याण में कोई [illegible]। सहयोग नहीं । इसलिए परसाई ने अपनी कहानियों में शिष्ट वर्ग, शिक्षित वर्ग की ग्रंथियों को उजागर किया है, अभिशप्त वर्ग के संकटों का अनावरण भी किया है । दो वर्गों, दो समुदायों को आमने-सामने रखकर उनके जीवन विधानों की विरोधी स्थितियों को उन्होंने रेखांकित किया है ।

व्यंग्यकार को अपने व्यंग्य को तेज, प्रभावी एवं कलात्मक बनाने के लिए उसे योग्य संदर्भ में प्रस्तुत करना होता है । इसमें परसाई को विशिष्ट सफलता मिली है क्योंकि परसाई को भारत की अमूल्य सांस्कृतिक संपदा का, यहाँ की मिथकीय परंपरा का, लोकसंस्कृति की गहराइयों का और पौराणिक प्रसंगों का इतना आत्मीय परिचय है कि वर्तमान की विकृतियों तथा विसंगतियों का तालमेल भूत के प्रसंगों के साथ बड़ी आसानी से तालमेल बिठाते हैं । पौराणिक एवं लोक संस्कृति को वर्तमान में जीवंत

रूप में प्रस्तुत करने में और हमारे पौराणिक पात्रों, घटनाओं, और प्रसंगों के सहारे वर्तमान की विकृतियों का व्यंग्य करने में परसाई सिद्धहस्त हैं । इस भूलोक की त्रासदियों, मजबूरियों एवं दफ्तरशाही को समझाने यहाँ की विसंगतियों से आत्मसात कराने के लिए "जीव" जबकि ज़िंदा रहता है तो कुछ कर नहीं पाता है तो मरकर अपनी भटकन के दौरान यहाँ की विसंगतियों को बीनता जाता है । कहने का तात्पर्य यह है कि हरिशंकर परसाई ने अपनी प्रेषणीयता के लिए भारतीय साहित्य और संस्कृति में जितने भी रूप-विधान हैं मौजूद हैं, उन सबका उपयोग किया है। "पुराण कथा, दंत कथा, बेताल कथा, तिलस्मी और ऐयारी कथाएँ, प्रेमाख्यान और लोक कथा, लोक वार्ता और स्वांग, स्वैर कल्पना और कथामूलक फैंटेसी, लघुकथाएँ और लंबी कहानियाँ, औपन्यासिक और ऐतिहासिक दस्तावेज़, शास्त्रीय विन्यास और कैरीकेचर, पैरोडी और अन्योक्ति, दृष्टांत और प्रतीक कथा, स्केच और सादृश्य गर्ज़ यह कि आदिकाल से लेकर अब तक, कहानी की विकास-यात्रा का कौन-सा ऐसा रूप है जो उसमें नहीं है ।[6] मानव मस्तिष्क और समाज की विसंगतियों को दर्शाने के लिए उपरोक्त सभी रूप-विधानों का जिस अर्थवत्ता और क्षमता से परसाई ने उपयोग किया है, वैसा दूसरे लेखकों ने शायद ही किया हो । आधुनिक भावबोध भी यहाँ अत्यंत सूक्ष्म रूप से अभिव्यक्त हुआ है ।

परसाई की कहानियों का नायक सामान्यतः स्वातंत्र्योत्तर भारत का है जोकि आधुनिक समाज की समस्त कुंठाओं से अभिशप्त है । इसके सामने कोई आदर्श नहीं है, मात्र नारेबाज़ी है । इस पर स्वातंत्र्योत्तर भारत के उन नेताओं का व्यापक प्रभाव है जोकि "करनी" में कम किन्तु "कथनी" मे ज्यादा विश्वास रखते हैं, भाषणों में ज्यादा आस्था दिखाते हैं । चाहे अकाल हो या आध्यात्म, चाहे साहित्य या दर्शन हर किसी पर बोलने का साहस दिखाते हैं, हथेली पर साम्राज्य को दिखाते हैं । कुण्ठा, निरंध स्वार्थपरता, नैतिक अधःपतन से संत्रस्त नायक यहाँ का है । परसाई की कहानियों में नायक सर्वत्र होते हुए भी व्यंग्य का शिकार बना हुआ है क्योंकि यही विसंगति है ।

परसाई की कहानियों में आत्मव्यंग्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है । लेखक स्वयं

अपनी कहानियों का नायक बनकर सामाजिक विद्रूपों का मर्मांतक व्यंग्य करता जाता है । इस व्यंग्य में अपने समाज के उन अभिशप्त वर्गों का संकेत वह स्वयं बनता जाता है ।

परसाईजी की कहानियों में राजनीति की चर्चा अथवा उसकी भूमिका में वर्तमान समाज का लेखाजोखा प्रस्तुत हुआ है । क्योंकि स्वयं परसाई मानते हैं कि राजनीति हमारे प्रदेश भाग्य की निर्णायक शक्ति है । उनके अनुसार भारत अभी उस लायक नहीं हुआ है जहाँ लोकतंत्र व्यवस्था सफलतापूर्वक काम कर सके । क्योंकि यहाँ की जनता में अशिक्षितों की संख्या अभी कम नहीं हुई है, या यों कह सकते हैं अशिक्षितों को कम करना हमारे नेता लोग चाहते नहीं हैं । फलस्वरूप यहाँ राजनीय-बोध जागृत नहीं हुआ है । इन सबका लाभ हमारे नेताओं को सीधा मिल रहा है । कभी जाति, कभी धर्म, कभी भाषा, कभी पार्टी, कभी प्रान्तीयता, कभी रुपया-पैसा इस प्रकार के नाना जाल बिछाकर मुग्ध जनता को किस प्रकार फँसा जा रहा है - इसका सशक्त व्यंग्य परसाई की कहानियों में मिलता है । वैसे परसाई की कहानियाँ राजनीति के शिकार हुए लोगों का दास्तान प्रस्तुत करती हैं ।

परसाई के कथा नायकों - नेता, सर्वोदयी सेवक, समाजसेवक, प्रोफेसर और अन्यान्य अधिकारी - का जीवनोद्देश्य इतना संकरीला है कि वे कभी 'स्व' यानी स्वार्थ की परिधि से बाहर आना पसंद नहीं करते । खासकर अधिकारियों एवं सर्वोदयी लोगों का वर्णन और उनके मुखौटों के भीतरी व्यवहारों का तीखा व्यंग्य किया है । इनकी कहानियों में सेवा का पर्याय या धर्म स्वार्थ है, मुग्ध जनता को धोखे में डालना है ।

परसाई की हर रचना एक में अनेक प्रसंगों को समाहित करती चलती है । क्योंकि एक घटना अपने में पूर्ण नहीं, इकाई नहीं, परंतु उसका दूसरी घटना के साथ अटूट संबंध होते हैं इसलिए परसाई तत्संबंधी प्रसंग को प्रासंगिक रूप से उठा लेते हैं परंतु उसकी चर्चा प्रधान रूप से ही होती है । परिणामतः यहाँ विकसित होनेवाला व्यंग्य पूरी व्यवस्था पर किया जानेवाला व्यंग्य होता है ।

परसाई की कहानियों में मनुष्य की मुग्धता, उसकी भावुकता, उसकी उच्चाई, अपनी सर्वोच्च गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुई हैं । विशेषकर गरीबों, शोषितों एवं मध्यवर्गीय परिवारों की जिंदगी का वर्णन करते समय परसाई अत्यंत सहानुभूति से, संयम से, और मानवीय अनुकंपा से कलम चलाते हैं । मानवता के पक्षधर होने के कारण मनुष्य के इन गुणों में इनकी अटूट आस्था है और समाज विरोधी शक्तियों का हमला जबकि इन लोगों पर होता है परसाई अत्यंत दुखी होते हैं परिणामतः व्यंग्य ह की वर्षा होने लगती है ।

परसाई की कहानियों में "शोषण" वह सशक्त अस्त्र है जिसके उपयोग के नाना पहलू हैं । कभी उच्च जाति का व्यक्ति निचली जाति का, धर्माधिकारी, एवं मठाधीश अपने भक्तों का, नेता अपने मतदाताओं का, मंत्री अपने विधायकों का, विधायक अपने पास आये गूंगे मजबूर व्यक्तियों का, अधिकारी अपने अधीनस्थ नौकरों का, मालिक अपने किरायेदारों का शोषण निरंतर करने में जुटे हुए हैं जिसकी परसाई की कहानियों में व्यापक चर्चा है । चर्चा ही नहीं, किन्तु उनपर व्यंग्य करने के किसी भी मौके को हाथ से न जाने देकर समाज की घातक शक्तियाँ जीवनविधान होगया है, का ऐसा व्यंग्य आधुनिक साहित्य में कम मात्रा में उपलब्ध मिलता है ।

परसाई की कहानियों में "संघर्ष" सदा जारी रहता है - अमानवीय शक्तियों के विरुद्ध, प्रतिगामी दबावों के विरुद्ध, भ्रष्टाचार के विरुद्ध एवं राष्ट्र विरोधी षाड्यंत्र के विरुद्ध । इन शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते-करते चाहे यहाँ के पात्र हार जायें, किन्तु कदापि झुके नहीं । आये दिनों के हर संकट को अत्यंत मनोधैर्य के साथ सामना करने और उससे जूझने का सबल आत्मविश्वास यहाँ देखा जा सकता है । परसाई की कहानियों में हारा हुआ व्यक्ति है किन्तु उसका आत्मविश्वास हारा नहीं है । आमतौर पर यह कहा जाता है कि परसाई का पाठक वर्ग निरंतर बढ़ रहा है । आखिर इसका क्या कारण है ? शायद यह है कि परसाई का संबंध अपने समय की उन यथार्थताओं से है जिन्हें वे स्वयं और उनका पाठकवर्ग भोग रहा है, उस अशांत और क्षुब्ध वातावरण में वे जिंदा हैं जिससे पिंड छुड़ाने के लिए आम आदमी संघर्ष कर रहा है । इस संघर्ष में हार जाने का अनुभव पाठक वर्ग तब तक नहीं करता जब तक

उस संघर्ष को परसाई अपने लेखन में लिपिबद्ध करते रहते हैं । इससे अनुशीलकताओं को एक [illegible] मानसिक समाधान, सांत्वना प्राप्त होती रहती है । परसाई अपने कथाशिल्प में पात्रों का मानसिक गठन ऐसा तैयार करते हैं कि ये पात्र आत्मबल, मनोबल, क्रूर अन्याय और विसंगतियों के प्रति लड़ने की भूमिका निभाते हैं । यही कारण है कि पाठक यदि पत्रिका खरीदता है तो पहले ढूंढता है - परसाई के लिए । यदि उस पत्रिका में परसाई नहीं होते तो सारी पत्रिका को रद्दी की टोकरी में फेंक देता है ।

परसाई स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि " मैं "शाश्वत साहित्य" रचने का संकल्प करके लिखने नहीं बैठता । जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं होता, वह अनंतकाल के प्रति कैसे हो लेता है, मेरी समझ से परे हैं । "अपने समय के साथ ईमानदारी और प्रतिबद्धता परसाई की रचनाधर्मिता में सर्वत्र देखी जा सकती है । परसाई की कहानियों में समसामयिक जगत की समस्त संवेदनाएँ अपनी प्रखरता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं । वे जिस समाज के हिस्सेदार हैं, उस समाज की तमाम विसंगतियों को नंगा करने के लिए "कथा" माध्यम को अत्यंत सफलता के साथ उपयोग किया है ।

<u>परसाई का कथासाहित्य : विश्लेषण</u>

हरिशंकर परसाई के कथासाहित्य में अभिव्यक्त व्यंग्य हमारे सामाजिक जीवन के नाना क्षेत्रों की विसंगतियों को रेखांकित fx करता है जिसका अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है -

राजनैतिक जीवन की विसंगतियाँ, राजनैतिक दलों की समाज एवं सिद्धांतों की प्रतिबद्धता, उनके नारों का खोखलापन, उनके सिद्धांतवाद और कर्मवाद के असामंजस्य, दल-बदल की प्रवृत्ति, विधायकों के अजीबो-गरीब, गैर जिम्मेदार व्यवहार ।

राजनीति व्यक्ति एवं समाज जीवन की निर्णायक शक्ति है । समाज के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक जीवन को नियंत्रित करनेवाला अस्त्र है । राजनीति से

परहेज करनेवाला लेखक अपने सामाजिक दायित्व के प्रति प्रामाणिक नहीं हो सकता है । राजनीति से परसाई कभी पल्ला बचाकर नहीं रहे । शुरू के दिनों से ही उनका राजनीति से संबंध रहा है । वे यहाँ तक मानते हैं कि जो लेखक राजनीति से पल्ला बचाते हैं वे वोट क्यों देते हैं ? वोट देने से ही राजनीति तय होती है । बुद्धिजीवी चाहे सक्रिय राजनीति में भाग न ले, पर वह अराजनैतिक नहीं हो सकता । जो अराजनैतिक होने का दावा करते हैं, उनकी राजनीति बड़ी खतरनाक और गंदी है ।" [7]

राजनीति एक ओर समर्पित व्यक्तियों के लिए सेवा का क्षेत्र है तो दूसरी ओर स्वार्थी लोगों के लिए अपना उल्लू सीधा करने के लिए तथा "स्व" निर्माण के लिए खुला मैदान है । जिस राष्ट्र में शासन की बागडोर संभालनेवाला पक्ष या व्यक्ति, वह जिस किसी के भी पक्ष के हो, यदि वह उदार मानवतावादी दृष्टि से शासन नहीं चलाता है, लोक कल्याण के लिए अपनी नीतियों को स्थापित नहीं करता है । और जिस शासन व्यवस्था में मानवीय अंतःकरण का अभाव होता है, जहाँ नेताओं की "कथनी" और "करनी" में साफ अंतर दिखाई पड़ता है, वहाँ विसंगतियाँ अनिवार्य रूप से जन्म लेती हैं । जब ऐसा होता है तब संवेदनशील कवि या लेखक का यह नैतिक उत्तरदायित्व होता है कि वह ऐसी विसंगतियों को गौर करें और उन विसंगतियों का व्यंग्य करे, उसकी आलोचना करें ।

विशेषकर भारतीय राजनैतिक क्षेत्र व्यंग्य की उर्वरभूमि है । यहाँ व्यंग्य की अनिवार्यता हर हमेशा इसलिए रहती है कि हम प्रजातंत्तात्मक व्यवस्था में जी रहे हैं इस व्यवस्था के आधार "वोट" हैं, ये "वोट" नाना विधानों से प्राप्त [illegible] किए जा सकते हैं, और राजनीति का द्वार चूँकि हर किसी के लिए खुला रहता है, परिणामतः ऐरे-गैरे व्यक्ति इस क्षेत्र में प्रवेश पाकर सेवा के नाम से स्वार्थ-साधना को अपने राजनैतिक जीवन का मकसद बना लेते हैं । तब नितांत सैद्धांतिक पक्ष पर कार्यरत व्यक्तियों के साथ पक्के स्वार्थियों का टक्कर होना सहज है । न्याय और अन्याय के बीच, सिद्धांत और स्वार्थ के बीच, अत्याचार और सदाचार के बीच, मानवीयता और पाशविकता के बीच संघर्ष गतिशील रहता है, तिस पर भारत जैसे देश में जहाँ

जहाँ शिक्षितों की संख्या कम हो, सैकड़ों जातियाँ हो, वर्गों में विभक्त समाज हो, वहाँ शिक्षित, उच्चजाति, उच्चवर्ग का हाथ इतना सबल होता है कि शेष समुदाय को दबाने, शोषण करने के एक भी अवसर को वह खोना नहीं चाहता है। इस हारे हुए, संकट भागी लोगों की त्रासदियों एवं हाय हाय के प्रति करुणाभाव, सहानुभूति व अनुकंपा की दृष्टि से देखकर उनके रुदन का पेशीकरण करके व्यंग्यकार कभी नहीं लिखता है क्योंकि व्यंग्यकार के हृदय में उपरोक्त संदर्भों में शोषितों के प्रति करुणा, [illegible] सहानुभूति के बजाय शोषकों के प्रति आक्रोश जागृत होता है, उनकी अमानवीयता, उनके जीवन की विसंगतियों पर उसका खून खौल उठता है। परिणाम स्वरूप उसकी कलम से व्यंग्य निकलता है। अपने इस व्यंग्य की डंके की चोट से पूरी व्यवस्था पर वार करता है। परसाई की कहानियों में राजनैतिक क्षेत्र की उन तमाम विसंगतियों पर चालबाजों, अन्यायों, भ्रष्टाचारों की आलोचना की गई है, उन सभी को व्यंग्य का आधार बनाया गया है।

परसाई ने अपने समयमें दो राजनैतिक लड़ाइयाँ देखी हैं - एक, वह लड़ाई है जोकि स्वातंत्र्यपूर्व भारत की है जिसे आजादी हासिल करने के लिए की गई थी, उस लड़ाई में सम्मिलित नेताओं के लिए आजादी एक नारा नहीं थी, वह तो जीवन उद्देश्य थी। आदर्शों को स्थापित करना, सुंदर भारत का निर्माण करना उस लड़ाई का मकसद था। दूसरा, यह लड़ाई जो स्वातंत्र्योत्तर भारत में आये दिनों में स जारी है। इस लड़ाई का प्रमुख मुद्दा कुर्सी है, अधिकार है, पद है जिन्हें प्राप्त करने से के लिए राजनैतिक क्षेत्र के ये सारे व्यक्ति क्या क्या नहीं करते। भ्रष्ट से भ्रष्ट तरीकों को अपनाने के लिए भी ये लोग आगे-पीछे नहीं देखते। चुनाव, दलबदल अवसरवादिता, आश्वासनों के भ्रमजाल में मुग्ध जनता को फँसाने की चालबाजी इनकी जीवनशैली है। उस लड़ाई में राष्ट्रीय चारित्र्य को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया था, इस लड़ाई में उसको बिगाड़ने का प्रयत्न निरंतर किया गया है। आज के युवकों के सम्मुख ह्रास होते मूल्य हैं परसाई अपनी व्यंग्य कहानियों में चलचित्र की भाँति हमारे इस राजनैतिक जीवन की भ्रष्टता के नाना पहलुओं को प्रस्तुत करते जाते हैं। इस दृष्टि से परसाई की राजनैतिक व्यंग्य-कहानियों में एक आक्रांत,

विक्षुब्ध मन की तड़पन है, वर्तमान के अनास्थामयी जीवन विधानों के प्रति आक्रोश है। [illegible] जानकर स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनैतिक जीवन के अधःपतन को परसाई की कहानियाँ अत्यंत मार्मिक किन्तु कलात्मक परिधान में अनावृत्त करती जाती है। इस राजनैतिक जीवन का ऐसा कोई क्रियापक्ष नहीं है जोकि इनकी कहानियों में उजागर नहीं हुआ हो।

परसाई की राजनैतिक कहानियों को पढ़ने का मतलब है एक अजीब मनःस्थिति से गुजरना। देश के राजनैतिक वैचित्र्यों को विरोधाभासोंको, विसंगतियों को, बेढ़ंग-बेतुकेपन को जैसे जैसे उजागर करते जाते हैं वैसे वैसे हर संवेदनशील पाठक का कलेजा मसोसने लगता है। कोई भी नागरीक परसाई की कहानियों के प्रसंगों को या तो अतिशयोक्ति कहकर या मात्र कल्पना कहकर कदापि टाल नहीं सकता क्योंकि इन तमाम वारदातियों का वह भुक्तभोगी है और वास्तविकता से हटकर इन कहानियों का निर्माण नहीं हुआ है। हमारे विधायक हमारी शासनसभाओं - [illegible]× लोकसभा - विधानसभाओं में क्या करते हैं? उनकी बहस का मुद्दा क्या होता है, कैसे निरर्थक विषयों पर हजारों घंटे, करोड़ों रुपये खर्च करते हैं, उनका बौद्धिकस्तर क्या है? देश एवं समाज के प्रति वे कहाँ तक प्रतिबद्ध हैं - आदि ऐसे मुद्दे हैं जिनपर परसाई ने गंभीरता से विचार-विश्लेषण भी किया है, और उन्हें व्यंग्य की कसौटी पर कसा है।

परसाई की कहानियों में आमतौर पर एक राजा होता है, उसका एक राज्य होता है, उस राज्य में अनेकों अधिकारी-अफसर होते हैं जिनकी भ्रष्टता के कारण राज्य की शासनव्यवस्था में ढीलापन आ चुका रहता है। ये राजा इस अव्यवस्था को दूर करने, भ्रष्टाचार को खत्म करने के प्रयत्न निश्चित रूप से करते हैं किन्तु उनका अफसर शाही समाज ऐसा है कि राजा को भी चकमा देकर अपना ही उल्लू सीधा करने को तुले रहते हैं। यहाँ के राजा हमारे किसी भी मुख्यमंत्री का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। यहाँ के राजाओं को हमारी शासन व्यवस्था के मुखिया के रूप में चित्रित करके या तो उनको एकदम नादान, व्यवहार-कुशलता से अनभिज्ञ चित्रित किया गया है या तो अपने पद की सुरक्षा के लिए इन विसंगतियों के प्रति नजरंदाज करनेवाले नेताओं के रूप में चित्रित किया ह गया है।

"उखड़े खंभे" में आनेवाले राजा को मालूम है कि उसके राज्य में मुनाफ़ाखोरी बढ़ी है, वह इस मुनाफ़ाखोरी को नष्ट-भ्रष्ट करना भी चाहता है और मुनाफ़ाखोरों को बिजली के खंभों पर लटकाने का आदेश भी देता है। मगर विडंबना यह है कि जिन खंभों से मुनाफ़ाखोरों को लटकाना चाहता था, वे खंभे ही रातों रात अत्यंत व्यवस्थित ढंग से उखाड़ दिये गए। इनका तर्क था कि खंभे हों तो लटकाए जायेंगे यदि खंभे ही नहीं हों तो किस पर लटकाए जायेंगे। राजा भी इतना ही मंद बुद्धि है कि वह उसका विकल्प सोचता ही नहीं किन्तु अफसरों के बताए कारण को आँख मूँदकर मान लेता है, अपनी जान को खतरे से बाहर पाकर तृप्ति की साँस लेता है। इस कहानी के अंतिम वाक्य - " लोग बड़ी देर तक सकते में खड़े रहे। वे मुनाफाखोरी को बिलकुल भूल गए। वे सब इस संकट से अभिभूत थे, जिसकी कल्पना उन्हें दी गई थी। जान बच जाने की अनुभूति से वे दबे हुए थे। चुपचाप लौट गए।[8] " हमारे नेताओं की मानसिकता को रेखांकित करते हैं। संकट से बच जाने की खुशी में पैसे का बँटवारा पीछे से हुआ जिसकी तालिका लेखक ने दी है। इससे मुनाफाखोरी का थो बहुत अंदाजा लगाया जा सकता है। भ्रष्टता किस हद तक जा सकती है, इसका मार्मिक व्यंग्य प्रस्तुत कहानी में परसाई ने किया है।

" उखड़े खंभे " में भ्रष्टाचार का एक पहलू है तो परसाई की प्रसिद्ध कहानी "सदाचार की ताबीज" में हमारी शासन व्यवस्था की परतों में व्याप्त भ्रष्टाचार का अनावरण निर्ममता से किया गया है। यहाँ का राजा इस बात से अवगत है कि उसके राज्य में भ्रष्टाचार है और यह भ्रष्टाचार यहाँ तक फैला हुआ है कि उसके बिना राज्य में एक तिनके का टुकड़ा भी नहीं हिलता है। यहाँ तक कि इसकी पहुँच राजा के सिंहासन तक है। वह ईश्वर बन गया है। उसकी सर्वव्यापकता के दर्शन निम्नांकित संवाद से होते हैं - " राजा सोच में पड़ गए। बोले - "विशेषज्ञों, तुम कहते हो कि वह सूक्ष्म है, अगोचर है और सर्वव्यापी है। ये तो ईश्वर के गुण हैं। तो क्या भ्रष्टाचार ईश्वर है?" विशेषज्ञों ने कहा - " हाँ, महाराज, अब भ्रष्टाचार ईश्वर हो गया है। एक दरबारी ने पूछा - "पर वह है कहाँ?" विशेषज्ञ ने जवाब दिया - वह सर्वत्र है। वह इस भवन में है। वह महाराज के सिंहासन में है।"

"सिंहासन में है"...कहकर राजा साहब उछलकर दूर खड़े हो गए ।

विशेषज्ञों ने कहा - "हाँ, सरकार, सिंहासन में है । पिछले माह इस सिंहासन पर रंग करने के लिए जिस बिल का भुगतान किया गया है, वह बिल झूठा है । वह वास्तव में दुगुने दाम का है । आधा पैसा बीचवाले खा गए । आपके पूरे शासन में भ्रष्टाचार है और वह मुख्यतः घूस के रूप में है ।"[9] भ्रष्टाचार के सर्वव्यापकता पर चिंतित राजा उसका निर्मूलन करने का सहज निश्चय करता है और इसके लिए उपाय सुझाने के लिए विशेषज्ञों का मंडल बनाया गया है । यह मंडल भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए जो योजना सामने रखता है, उससे राजा का स्वास्थ्य बिगड़ता जाता है क्योंकि उसके अनुसार घूस लेने और देने के मौके ही मिटा देने चाहिए अर्थात् शासन को खत्म कर देना चाहिए । उनका सुझाव है - "हाँ महाराज, हमने उसकी भी योजना तैयार की है । भ्रष्टाचार मिटाने के लिए महाराज को व्यवस्था में बहुत परिवर्तन करने होंगे । एक तो भ्रष्टाचार के मौके मिटाने होंगे । जैसे ठेका है तो ठेकेदार हैं । और ठेकेदार हैं तो अधिकारियों को घूस है । ठेका मिट जाय तो उसकी घूस मिट जाय । इसी तरह और बहुत सी चीज़ें हैं । किन कारणों से आदमी घूस लेता है, यह विचारणीय है ।"

इसी संदर्भ में राजा के सामने एक साधु को पेश किया जाता है जोकि दरबारियों के अनुसार महान साधक है जो मनुष्य में सद्विचारों को लाने के लिए तावीज तैयार करने का धंधा करता है । अपने इन तावीजों के बारे में साधु ने कहा - "महाराज, भ्रष्टाचार और सदाचार मनुष्य की आत्मा में होता है, बाहर से नहीं होता । विधाता जब मनुष्य को बनाता है तब किसी की आत्मा में ईमान की कल फिट करता है और किसी की आत्मा में बेईमानी की । इस कल में से ईमान या बेईमानी के स्वर जिन्हें " आत्मा की पुकार " कहते हैं । आत्मा की पुकार के अनुसार ही आदमी काम करता है । प्रश्न यह है कि जिनकी आत्मा से बेईमानी के स्वर निकलते हैं उन्हें दबाकर ईमान के स्वर कैसे निकाले जाय । मैं कई वर्षों से इसी के चिंतन में लगा हूँ । अभी मैं ने यह सदाचार की तावीज बनायी है । जिस आदमी की भुजा पर यह बंधी होगी वह सदाचारी हो जायेगा । मैंने कुत्ते पर भी प्रयोग किया है ।[10]

सदाचार की तावीज का महिमागान सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और उसे तावीज बनाने का ठेका भी मिल गया । कारखाना भी खोला गया । उस साधु को पेशगी के रूप में पाँच करोड़ रुपये दिए गए । तावीज भी तैयार हुए, सभी को कर्मचारियों में बाँटा गया । राजा ने भेष बदलकर पहली तारीख को एक कार्यालय में जाकर एक बाबू को पाँच रुपये की घूस दी, उसने साफ-साफ निराकरण किया, फिर, इकतीस तारीख तक उस तावीज की महिमा एकदम घट गई थी । प्रस्तुत कहानी में परसाई ने (क) भ्रष्टाचार को सूक्ष्म, सर्वान्तर्यामी ईश्वर का दर्जा दिया है । (ख) भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए राजा जादू-टोने के आश्रय में जाकर अपनी विचारहीनता का प्रदर्शन करता है । (ग) तावीज से भ्रष्टाचार मिटाने के लिए ठेका देकर और भ्रष्टाचार को प्रश्रय दिया गया । (घ) भ्रष्टाचार महीने के शुरू में नहीं अंत में अपना विश्वदर्शन दिखाता है । (ङ) भ्रष्टाचार को शासन में एक मूल्य का स्थान दिया गया है ।

परसाई की कहानियों में इस भ्रष्टाचार का नग्न दर्शन है । भ्रष्टाचार पर जो सार्वत्रिक सत्य हैं, उनका परसाई ने खूब व्यंग्य किया है ।

परसाई के व्यंग्य के सौष्ठव को देखने के लिए इनकी कहानी "साहब महत्वाकांक्षी" को देखना चाहिए । प्रस्तुत कहानी में परसाई उन व्यक्तियों का व्यंग्य करते हैं जिन्हें न देश की चिंता है व न व्यवस्था में परिवर्तन लाने की आकांक्षा ये देशभक्तों का मुखौटा पहने हुए हैं । इस मुखौटे से देश की "दुर्दशा" पर बैठकों में चर्चा करते हैं । ये समझते हैं कि अंग्रेजी द्वारा यहाँ की जनता के अधःपतन को रेखांकित किया जा सकता है । देश की वर्तमान हालात का परिचय इन्हें नहीं है, भविष्य की परिकल्पना नहीं है । इनकी दृष्टि इतनी संकरीली है, ये इनका परिवार और इनका स्वयं ही इनकी दुनिया है । इन पर आये व्यक्तिगत अभाव या संकट देश का अभाव और संकट होता है । ये लोग जहाँ रोना है, वहाँ ताली बजाते हैं, जहाँ ताली बजाना है वहाँ चुप रहते हैं । देश का सही अर्थ न जाननेवाले लोग ही देशहित की बात करते हैं, देशभक्ति का ढोंग रचते हैं । प्रस्तुत कहानी में अभिव्यक्त व्यंग्य के रूप इस प्रकार हैं -

।. उस दिन देश की दुर्दशा पर भाषण था, लेखक भी एक भाषणकार थे । इनके भाषण इतने जोरदार थे कि "हम लोगों ने जमकर देश की दुर्दशा का वर्णन किया । जब जब दुर्दशा ज्यादा मार्मिक हो जाती, वे लोग ताली बजाते, उनका कार्यक्रम सफल हो रहा था, देश की दुर्दशा अगर जरा कम होती, तो कार्यक्रम इतना सफल न होता । मैंने सोचा - मेरे देश, तू कितना विचित्र और महान है । कुछ लोगों के कार्यक्रमों की सफलता के लिए तू अपनी कितनी दुर्दशा करता रहा है ।"[11] कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर थी कि दुर्भिक्ष, सूखा, भूख पर लोग जोरदार भाषण दें, महंगे कपड़े पहनकर आएं । बाहर एकदम भिन्न व्यक्तित्ववाला [illegible] आदमी इस समाज के भाषण के लिए [illegible] आया था और लोगों से अत्यंत मिलनसार था । इसका कारण पूछने पर उसने बताया "रामलीला का रावण क्या बाहर भी सीताहरण करता है ?" यह है सभ्यसमाज के संभ्रांत लोगों का दुविधापन, उनकी जीवन दृष्टि । परसाई इस दुविधापूर्ण व्यक्तित्व का व्यंग्य बारीकी से करते हैं ।

।ख। सामने की थाली में भरपूर भोजन परोसकर खानेवाले इन सभ्य लोगों के मुँह से निकलनेवाले शब्द हैं - "मेज पर बैठे, तो बातें देश की ही होती रहीं । वे लोग अत्यंत भावुक हो उठे थे । कहते - रियली, दी कन्ट्री इज गोइंग टु डाग्स । दूसरा कहता - आई से, वी आर मोस्ट कालस पीपुल । तीसरा कहता - रीयली, दी ह कन्ट्री इज स्टार्विंग ।"[12] ये अपने शब्दों से कोई ताल्लुक नहीं रखते हैं । इनके लिए मानों देश की दुर्भिक्ष पर बोलना एक फैशन है । सभी मस्ती और सलाद के साथ देश की दुर्दशा उन्हें अत्यंत स्वादिष्ट लग रही थी ।

।ग। परसाई बनावटी सभ्य व्यक्तियों की भाषा पर, उसके प्रयोग पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि इन लोगों को भाषा के युक्तायुक्त प्रयोग का ज्ञान किंचित मात्र भी नहीं है । क्योंकि अपने सीखे हुए तीन-चार शब्दों का समय-असमय पर ऐसा इस्तेमाल करते हैं कि संदर्भ का ख्याल भी नहीं रखते । परसाई लिखते हैं - "आगे हम कभी यहाँ किसी शोक समारोह में भी जायेंगे, मार्मिक शोक व भाषण देंगे, तब भी ये लोग कहेंगे - मोस्ट इंटेरेस्टिंग । शार्ट अण्ड स्वीट ।"[13] परसाई इस झूठी सभ्यता का सीधे शब्दों में व्यंग्य किया है ।

(घ) आधुनिक मानव की पीड़ा यह है कि वह हर विषय पर अपने को अधिकारी या विज्ञ समझता है । अपने से अछूते विषयों पर चुप्पी साधने का सवाल ही नहीं उठता । हर विषय पर, चाहे उसकी जानकारी रहे या न रहे बोलने की बेचैनी उसे सता रही है । लेखक ने रेडियो पर कहानी सुनायी थी जिस पर बधाई देते हुए उस साहब ने कहा कि आपकी कविता अच्छी थी । लेखक ने कहा - वह कविता नहीं थी । कहानी थी तो उस आदमी ने उसे और भी अच्छा कहा । वह बड़े उत्साह से मिला । कहने लगा, परसों रेडियो पर आपकी कविता सुनी । बहुत अच्छी थी ।

मैं ने कहा - वह कहानी थी ।

उसने कहा - कहानी थी ? तब तो और भी बढ़िया थी ।

शार्ट एण्ड स्वीट"।[14]

(ङ.) देश की हालात को हमेशा नाजुक साबित करते हुए, लोगों को चकमा देना खोटे देशभक्तों का जीवन-क्रम बन गया है । इसलिए परसाई उन पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं "जो देश की हालत से बात शुरू करे, वह भयानक "पिशू" होता है । दुनिया की हालतवाला तो और खतरनाक होता है । और इनसे सचेत रहने को कहते हैं ।

(च) "साहब महत्वकांक्षी" कहानी में साहब की महत्वाकांक्षाओं के पीछे जो काला इतिहास है, उसका उद्घाटन करते हुए परसाई हमारी प्रशासन व्यवस्था का व्यंग्य करते हैं । यह साहब महत्वाकांक्षी होने के पहले, उस पद से निष्कासित होने के पहले एक अफसर था जिसे कम्पलसरी रिटायरमेंट दिया गया ।आखिर यह कम्पलसरी रिटायरमेंट क्या है, डिसमिस क्या है, इन दोनों के बीच क्या अंतर है, इसकी व्याख्या करते हुए परसाई लिखते हैं - "बड़े भ्रष्टाचारी को बाइज्जत अलग कर देने की विधि को "कम्पलसरी रिटायरमेंट" कहते हैं । चपरासी या बाबू का भ्रष्टाचार पकड़ा जाय तो वह "डिसमिस" होता है । जेल भी भेजा xxxxxx जा सकता है, क्योंकि वह सिर्फ 5-10 रुपये खाता है, मगर बड़ा अफसर जब 5-10 लाख खा लेता है और सरकार जब उस पर ध्यान देने के लिए मजबूर होती है, तब उससे हाथ जोड़कर कहती है - हुजूर, आशा है, आप अब तक काफी खा चुके हैं । अब अगर आप उचित समझें तो बाकी जिंदगी चैन से गुजारें । [15] भ्रष्टाचार से के हु चंगुल में आए व्यक्तियों को दंडित करे

करने के बजाय उसे कंपलसरी रिटायरमेंट देकर दूसरी ज़िंदगी जीने के लिए उक्त नौकरी से छुट्टी दी जाने की कार्यवाही का परसाई ने उपरोक्त वाक्यों में व्यंग्य किया है । 5-10 रुपये खानेवाले बाबू के प्रति, जो दंडित होता है, शासकीय स्तर को आमने-सामने रखकर हमारे सरकारी-तंत्र का व्यंग्य किया है ।

(ख) परसाई उस आदमी की नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं जो आचार-व्यवहार से गिरे हुए होते हैं और देश के वर्तमान और भविष्य की चिंता करते हैं । "दुर्दशा" की चिंता में अपनी दुर्दशा को दूर करने या उस पर परदा डालने का प्रयत्न करते हैं । वह साहब महत्वाकांक्षी, कंपलसरी रिटायर हो गया, अब नये तेवर में नेता की पोशाक याने कुरता, पायजामा, जाकेट में, नई भाषा में जनता के सम्मुख खड़े होकर, यह घोषणा करता है कि "मैं अब बदल गया हूँ बिलकुल राष्ट्रीय हो गया हूँ ।" और यह नेतानुमा अफ़सर देश के प्रति इतना आस्थावान हो गया है कि देश की चिंता सताने लगी है, वह देश में परिवर्तन लाना चाहता है ।इस परिवर्तन की अड़ बात पर परसाई का व्यंग्य है - "इस वह बोला, "देश को परिवर्तन चाहिए ! मैंने कहा - "कैसा परिवर्तन ? जैसे कपड़े बदलना ?" वह गंभीर था।कहने लगा - मज़ाक छोड़िये । देश की हालत इस वक्त बड़ी नाज़ुक है ।
मैंने कहा - "सो तो देख रहा हूँ, और नाज़ुक हो जायेगी, तब क्या एकदम नंगे हो जायेंगे ?"[16]

कुछ अधिकारी सफल राजनेता बनने का आकांक्षा रखता है क्योंकि राजनीति वह खुला मैदान है जो भी यहाँ आ सकता है, कुछ भी चर सकता है । और इस प्रकार आनेवाला अधिकारीनुमा राजनीतिज्ञ देश को एकदम परिवर्तित करने को चाहता है । इसके लिए वह सीधा संसद जाना चाहता है, पब्लिक लाइफ़ में प्रवेश करना चाहता है । इन लोगों के लिए देशसेवा, लोकसभा, विधान तथा एकदम फ़ैशन की चीज़ें हैं ।परसाई ऐसे ओछी देशभक्तों की मानसिकता पर जो कि सड़ी हुई हैं तीखा व्यंग्य करते हैं । ऐसे देश भक्तों के राजनैतिक संस्कार इतने ओछे हैं जो कि लोकसभा को भी एक शो-
मानते हैं । उनके इस रूप का व्यंग्य है -

पत्नी बोली होगी - कोई ऐसी चीज़ जिससे इज़्ज़त बढ़े, पैसा तो बहुत है । इसे सोचकर कहा होगा - "अच्छा, इस बार 'लोकसभा' घर में ले आऊँगा ।

पत्नी ने उत्साह से कहा होगा - हाँ जरूर ले आओ, हम उसे फ्रिज में रख देंगे । मितेजु गोपड़ा का फंड भी टूट जायेगा ।"[17]

परसाई की राय है कि यह देश अभी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के योग्य नहीं बना है । इनकी कहानियों के नायकों, नेताओं को भी इस बात का पता है । वर्ना यह नेता ऐसा नहीं कहता कि वोट लेने के तरीके उसे मालूम है ।

(ग) प्रस्तुत कहानी में हमारे देश की मतदान पद्धति का व्यंग्य खूब कसा गया है । वोट डालनेवालों के बहुमत पर व्यक्ति का चुनाव होता है । हमारे नेता अपने वोटों की गिनती भी करते ऐसे हैं कि - "यह सब मैंने समझ लिया है, अपने देश का चुनाव तो एक नाटक है । हमारा गँवारों का देश है । सच पूछा जाय तो हम प्रजातंत्र के लायक नहीं है ।"[18]

(घ) नतीजा यह है कि इस चुनाव में साहब महत्वाकांक्षी हार गया, इस हार का विश्लेषण उसने यों किया - वी आर बैकवर्ड पीपुल, दी कंट्री इज गोइंग टु डाग्ज । बड़े गिरे हुए लोग हैं ।[19] यहाँ गिरा हुआ कौन है, इसका उत्तर कहानी के हर शब्द-शब्द से मिलता है । यही कहानी का व्यंग्य है ।

वैसे कहानी का अंत यहीं पर होता है । मगर इसका उत्तर दूसरी कहानियों में आया है । परसाई की राजनीतिक व्यंग्य-कहानियों में "साहब महत्वाकांक्षी" का महत्व इस दृष्टि से भी है कि इसका संपूर्ण गठन, शिल्प व्यंग्य का प्रवाह बनकर आया है । प्रस्तुत कहानी में परसाई ने सामाजिक जीवन के उन हस्तियों का व्यंग्य किया है जो एक गली में बदनाम होते हैं दूसरी गली में बिलकुल नये रूप में प्रस्तुत होते हैं । "साहब महत्वाकांक्षी" कहानी राजनीतिक क्षेत्र की स्वार्थपरता, भ्रष्टता का गंभीर व्यंग्य प्रस्तुत करती है ।

जैसे "साहब महत्वाकांक्षी" - देश की दुर्दशा से पीड़ित था, वैसे "देश के लिए दीवाने आए" कहानी में भी एक भयंकर पियक्कड़ नशे में चूर-चूर होकर देश की दुर्दशा पर सिर धुना रहा है । हमारे देश के नेताओं के प्रतिनिधियों के रूप में परसाई ऐसे चरित्रों का निर्माण करते हैं । वैसे नेताओं को ही अपनी कहानियों का

नायक बना । ऐसे नेताओं का व्यंग्य किया गया है जो कि शराबखानों में शराब से मदमस्त होकर न केवल देश का अपितु विश्वकल्याण तक की बात करते हैं । उनके बात करने का ढंग ऐसा है - "वे बोले - यही देश की दुर्दशा के बारे में । मैंने कहा - "चौबीस घंटे ऐसे देश की दुर्दशा की बात होती है । सत्तावन करोड़ आदमी करते हैं । पर बात से कहीं देश सुधरता है ? आप पाँच मिनट बात कर लेंगे तो देश का क्या फायदा होगा ?"

वे हद से बाहर थे । कहने लगे - तो फिर दुनिया के भले के बारे में बात करेंगा । विश्वकल्याण ! देश जाये भाड़ में ।"

देश के संबंध में हमारे नेताओं के इस रवैये पर परसाई का व्यंग्य इस देश के नेताओं की नियति और ऐसे लोगों के हाथ में पड़े इस देश की नियति को उजागर करता है ।

परसाई ने भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के उन नेताओं की मानसिकता का व्यंग्य करा किया है जिनकी दृष्टि मंत्री पद पर, पैसे पर लगी रहती है । अनपढ़ होते हुए भी महत्वाकांक्षा के शिकार हुए इन लोगों का पर्दाफाश और भी अनेकों कहानियों में किया है । "लंका विजय के बाद" का नायक मंत्री है । उनका कहना है कि उनके शरीर पर जितने घाव हैं, वे इस बात के सबूत हैं कि उन्होंने आज़ादी की लड़ाई में भाग लिया है । इसलिए इसका फायदा वे उठाना चाहते हैं । वे लोग जिन्हें कोई राजकीय पद मिला नहीं वे किसी न किसी बात पर चंदा इकट्ठा करके उसे हड़पने में तल्लीन हैं । इन पर परसाई व्यंग्य करते हैं - "जब रामचंद्र ने जनकनन्दिनी सीता का परित्याग किया, तब कुछ वानरों ने सीता-सहायता कोष खोल दिया और अयोध्या के उदार, श्रद्धालु नागरिकों से चंदा लेकर खा गए ।[20] ये नेता लोग सरकारी धन का अपव्यय बिना संकोच के निश्चिन्तता से करते हैं । "बेताल की सत्ताईसवीं कथा" में नेताजी की अबाध प्रगति की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि आज़ादी हमारे देश के नेताओं को कहाँ से कहाँ ले गई है । उनकी इस मनोवृत्ति का व्यंग्य करते हुए परसाई का व्यंग्य है - "मियाँ साहब बड़े प्रतिष्ठित नेता थे और वे मंत्री बनने की कोशिश कर रहे थे । देश के आज़ाद होने से उन्हें बड़ा फायदा हुआ था । उनकी तीन इमारतें बन गई थीं । और व्यापार भी अच्छा चलने लगा था ।[21]

हमारे राजनीतिक क्षेत्र की खासकर स्वातंत्र्योत्तर भारत में एक प्रवृत्ति रही है दलबदल । दलबदल की प्रवृत्ति ने राजनेताओं को भ्रष्ट होने के लिए मजबूर किया, स्थिर सरकारों को अस्थिर होने को विवश किया और तद्द्वारा देश की [illegible] आर्थिक व्यवस्था को कमजोर किया । परसाई ने अपनी कहानियों में दलबदल की इस घटिया प्रवृत्ति को अपने व्यंग्य का आधार बनाया है । 'दल बदल' परसाई की एक विशिष्ट कहानी है जिसमें भारतीय राजनीति के विधायकों के भ्रष्ट-चरित्र का चित्रण करते हुए उसका व्यंग्य करती है । इन दलबदलों का कोई व्यक्तित्व नहीं होता, चरित्र नाम की चीज से उन्हें परहेज है । इसलिए ही दलबदल ने वालों ने जब कभी दल-बदल किया तब गांधीजी, आत्मा, सिद्धांत, प्रजातंत्र जैसे शब्दों का भरपूर निस्संकोच प्रयोग करके उनकी हत्याएं की हैं । विरोधाभास इस बात में है कि वे कांग्रेस पर ही उल्टा यह आरोप लगाते हैं -

मैंने पूछा - तुम कांग्रेस क्यों छोड़ रहे हो ?"

उसने कहा - मेरी आत्मा से ऐसी ही पुकार उठ रही है । कांग्रेस पूज्य बापू के सिद्धांतों की हत्याएं कर रही है । कांग्रेस प्रजातंत्र की रक्षा नहीं कर सकती । मैं सिद्धांतवादी आदमी हूं, तुम तो जानते हो।[22] सिद्धांतविहीन यह "दलबदल व्यक्ति" को अपनी पीठ दिखाई पड़ नहीं रही है ।

दलबदल नायक हरचरण याने नायक दूसरी बार कांग्रेस टिकट पर जीतकर आया है, मुख्यमंत्री के कहने पर वह यह मानकर चलता है कि सिद्धांतों व गांधीजी की हत्या हो गई । इन सिद्धांतों बड़े का आधार "विचार" नहीं है अपितु "अधिकार" यानी "पद" है । पद को हासिल करने के अपने सिद्धांत पर मुख्यमंत्री अड़ा हुआ है इसलिए वह विधायकों को खरीदना चाहता है और विधायक का जीवनोद्देश्य पद को प्राप्त करना है अतः वह भी अनिवार्यतः सिद्धांतवादी हो गया है । हमारे विधायक सिद्धांतवादी कब और कैसे बनते हैं, इसका ब्यौरा देते हुए परसाई यों व्यंग्य करते हैं - "आओ, हम तुम मिलकर सिद्धांतों की रक्षा कर लें । मैं तुम्हें संसदीय सचिव बना देता हूं । क्या इससे आपके सिद्धांतों की रक्षा हो जायेगी ? मैंने कहा - नहीं साहब, इतने बड़े सिद्धांतों की रक्षा इतने छोटे पद से कैसे हो सकता है ? कम से कम डिप्टी मिनिस्टर

बनाइए, तब रक्षा होगी । मुख्य मंत्री ने कहा - अभी वह "स्टेज" नहीं आई है जब सिद्धांतों की रक्षा के लिए तुम्हें मंत्रिमंडल में लेना पड़े । चल दिया, ज्योंही मैं उनके बंगले से बाहर निकला, मेरी आत्मा बोलने लगी ।[23] मात्र कुर्सीलोलुपता के लिए सिद्धांतों की बात लूटनेवालों का व्यंग्य परसाई ने कड़े शब्दों में किया है ।

स्वतंत्रता के बाद देश में अनेकों राज्यों में कांग्रेसी सरकारें बनीं तो अनेकों कुर्सियाँ भी बनीं । हर विधायक का सपना था कुर्सी । कुर्सी के सामने सिद्धांतों का कोई महत्व नहीं था । यदि एक दल में कुर्सी न मिलने पर "आत्मघाती" या सिद्धांत के नाम पर दल-त्याग या दल परिवर्तन की घटनाएँ देश के राजनैतिक इतिहास की अविभाज्य अंग बन गईं । कांग्रेसवालों की इस मनोवृत्ति का व्यंग्य परसाई कांग्रेसी विधायकों के मन की परतों को खोलकर रखने के द्वारा उद्घाटित करते हैं - "कांग्रेस में आज सारे सिद्धांतों की हत्या हो रही है । जो लोग मुझे डिप्टी नहीं बना सकते, वे प्रजातंत्र की रक्षा कैसे कर सकते हैं ? छोड़ इस कांग्रेस को । पिछले दो दिनों से ऐसी आवाज़ मेरी आत्मा से उठ रही है और मैं बहुत बेचैन हूँ ।[24] यह उनकी आत्मा का स्वर है । राजनीति में आत्मा का जागृत होना तब होता है जबकि अवसर निकल आते हैं । आत्मा की आवाज़ का व्यंग्य परसाई ने अपनी कहानियों में बराबर किया है ।

परसाई के अंकन और उनकी कहानी कला की विशेषता है कि उन्होंने हमारे विधायकों के मानसिक स्तर का, उनकी चिंतनशीलता का उनकी नादानी का और उनकी मुग्धता का भी ख्याल बराबर रखा है क्योंकि परसाई बराबर दिखाते हैं कि ये ही विधायक हैं जो लूटे जाते हैं और प्रजातंत्र की नींव को शिथिल बनाते हैं । इस कहानी की मुख्यबिन्दु "सिद्धांत" से शुरू होती है और चरमसीमा में इस सिद्धांत का राज़ खुलता है । इस कहानी का नायक हरचरण का वास्ता वास्तव में किसी भी पार्टी से नहीं है, किसी भी सिद्धांत से नहीं है, उसका वास्ता मात्र कुर्सी से और अधिकार से है । इसलिए जब लेखक हरिचरन से पूछता है कि इन तमाम पार्टियों से तुम्हें कौन सी पार्टी अच्छी लगती है, तो उसका उत्तर अत्यंत कल्पनात्मक है - "उसने ऐसे भोलेपन से कहा सभी पार्टियाँ अच्छी लगती हैं भैया । सभी देश की सेवा करती हैं । अपने से सभी पार्टीवाले प्रेम से बोलते हैं । जनसंघ के तिवारीजी प्रेम से बोलते हैं । संसोपा के

आबाद साहब और प्रतिभा की "आँधी" बहनजी भी बड़े प्रेम से खिलाती हैं। और बात करती हैं। अपने लिए तो सभी अच्छे हैं। पार्टीबाजी और कार्यक्रम वगैरह तो भैया, फालतू चोंचले हैं। अपना तो भेदभाव नहीं मानते। हाँ, कम्युनिस्टों से ज़रा हम भड़कते हैं। सुना है, इन लोगों की भगवान से नहीं पटती।[25] उपरोक्त वक्तव्य से स्पष्ट है कि हमारे विधायक, नेता किस ढंग से अपने सिद्धांतों या पार्टियों म के प्रति प्रतिबद्ध हैं। इनमें इतनी सी भी सोच नहीं है कि पार्टी की प्रतिबद्धता का मतलब क्या होता है, किसी भी पार्टी से इनकी चिढ़ नहीं है, किसी भी पार्टी से इनका द्वेष नहीं है, बस, कम्युनिस्टों से थोड़ा कतराते हैं क्योंकि भगवान के प्रति उनका रवैया दूसरा है।

परसाई प्रजातंत्र के कार्यविधान से भलीभाँति परिचित हैं, कुचक्रों से वाकिफ़ हैं। इसलिए ही राजनीतिक क्षेत्र की गंदगी को परत दर परत पर्दाफाश करने में सफल हुए हैं। भ्रष्ट राजनीतिज्ञ के लिए "दलबदल" निरंतर प्रक्रिया है, उसका कोई अंत नहीं होता, लक्ष्य नहीं होता। यही हरचरन किसी लोभ से दलबदल कर चुका था, मगर वहाँ कोई पद प्राप्ति हथिया नहीं हो पाई अथवा किसी चोरी के मामले में वह पकड़ा गया, जिस मुँह से कांग्रेस को गाली दे रहा था, उसी मुँह से कांग्रेस की प्रशंसा करने लगा - "इस बार मेरी आत्मा बहुत कातर होकर कह रही है कि जिस कांग्रेस ने देश को आजादी दिलायी, जो कांग्रेस गाँधी और नेहरू के पुण्य से सींची गई उस कांग्रेस को मत छोड़। कांग्रेस ही देश का भला कर सकती है। वही प्रजातंत्र की रक्षा कर सकती है।[26] परसाई ने इस संदर्भ में राजनीतिज्ञों की अवसरवादिता का व्यंग्य किया है।

परसाई अपनी कहानियों में चित्रित नाना प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक क्षेत्र में आये लोगों को धोखेबाज और कपटी करार कर दिया है। ये तो कीचड़ उछालने में अपने प्रतिद्वंद्वी नहीं रखते। हरचरन के साथ ऐसा ही हुआ जिस मुख्यमंत्री ने सचिव पद देने का वादा किया था, उसी मुख्यमंत्री के कुतंत्र का शिकार बेचारा हरचरन हुआ। उसीके शब्दों में इस कुतंत्र का व्यंग्य बड़ा सहज मर्मांतक रूप से हुआ है - "बात ह यह हुई कि परसों मेरे कमरे में किसी ने खिड़की से आधा किलो गाँजा फेंक दिया। मैं दरवाज़ा खोलकर भीतर गया कि पुलिस आ गई। तब मुख्यमंत्री ने मुझसे कहा - "अब यह तुम्हारा गाँजे का मामला फँस गया है। जेल में जाओगे या कांग्रेस में? लौटते हो तो

केस उठवा लेता हूँ ।[27] "दलबदल" का शिकार हरचरन जैसे सैकड़ों नेता बेशरम, निर्लज्ज होते हैं, यहाँ तक कि अपनी थूक को स्वयं चाटने के लिए भी ये आगे-पीछे नहीं देखते । इस भ्रष्ट मानसिकता का परसाई ने प्रस्तुत कहानी में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से व्यंग्य किया है । राजनीतिक क्षेत्र के गिरगिटी व्यक्तित्ववालों की चंचल प्रवृत्ति एवं पद लोलुपता है के कारण हर घड़ी अपने व्यक्तित्व को विसंगतियों का माहौल बनाकर चलनेवाले व्यक्तियों के दास्तान को यह कहानी निरूपित करती है । ये "दलबदल" विधायकों का अक्षर ज्ञान शून्य होता है, वे न पढ़ना जानते हैं न लिखना, न वक्तव्य लिखना आता है, न वक्तव्य वापस लेना । अपने व्यक्तित्व से संपूर्ण कटे हुए ये लोग हमारी शासन-व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं । परसाई के व्यंग्य का उद्देश इस पर्दे का उद्घाटन करना ही है ।

"दलबदल" के नायक से मेल खानेवाला चरित्र है "प्रजावादी समाजवादी" के नायक आनन्दजी । ये भी सिद्धांतवादी हैं ।यह दल बदलता है तो सिद्धांतों के बलबूते पर ही । ये सिद्धांत क्या हैं ? वही है जो "दलबदल" कहानी के नायक के हैं । इसका नायक आम कहता है - "मैं सिद्धांत का पक्का आदमी हूँ । सिद्धांत को त्याग मैं किसी भी दल में नहीं रह सकता ।"

मैंने कहा - सैद्धांतिक मतभेद को जरा और स्पष्ट करके समझाइये । उन्होंने बताया - "सन् 1952 की बात है । पहला आम चुनाव होनेवाला था । उस समय कांग्रेस का टिकट मुझे न देकर मेरे प्रतिस्पर्धी मोहनलाल को दिया गया । बस, मेरा सैद्धांतिक मतभेद हो गया और मैंने कांग्रेस छोड़ दी ।[28]

परसाई की कहानियों "सिद्धांतबाजी" का बड़ा ही व्यंग्य किया गया है । राजनीतिक कहानियों का कोई नायक ऐसा नहीं है जोकि सिद्धांत की बात न करता हो । "निठल्ले की डायरी" की "रामभरोसे का इलाज" कहानी में भी इन्हीं सिद्धांतों की चर्चा है जहाँ पर दूसरे को उखाड़ना ही प्रधानगुण है । ये सिद्धांत स्वयं सरकार ही बनाती है क्योंकि सरकार तभी कायम रह सकती है जबकि ये गुट जिंदा रहेंगे । इसका व्यंग्य करते हुए परसाई व्यंग्य करते हैं -

"तो अपना पॉलिटिकल लिख दीजिए। अस्पताल में "एम" और "डी" के दल हैं। आप किस दल के हैं?"

"इन दलों के राजनैतिक सिद्धांत क्या हैं?"

"एक दूसरे को उखाड़ना"

"ये दल किस महापुरुष ने बनाये थे?"

"सरकार ने ही बनवाये हैं। मंत्रिमंडल ने अपनी एक विशेष बैठक में तय किया था कि जैसे हमारे बीच दो गुट हैं, वैसे ही शासन के सब विभागों में हो जाना चाहिए। हर सरकारी कर्मचारी से फार्म भरवाया है कि वह किस गुट का है?"[29]
परसाई इस प्रसंग के परिप्रेक्ष्य में व्यंग्य करते हैं कि जैसी सरकार, वैसा शासन। इन बेमतलब गुटबंदी, सिद्धांतों, और राजनीति में आम आदमी की मौत हर घड़ी हो रही है।

"विकलांग राजनीति" नामक परसाई की कहानी भारतीय राजनैतिक क्षेत्र के उन मानसिक विकलांगों की अवसरवादी राजनीति का व्यंग्य करती है, हर पार्टी अपना उल्लू सीधा करने के लिए कोई भी तरीका, वह कितना भी क्रूर और अमानवीय हो, अपनाने के लिए कटिबद्ध रहती है। साथ ही अपनी जीत के लिए कोई भी मार्ग अपनाने के लिए वह वंचित नहीं रहती है। लेखक की एक टाँग का किसी कारणवश फ्रैक्चर हुआ है। इसका यथोचित उपयोग करके अपने-अपने विपक्षियों को हराने के लिए हर पार्टी होड़ा-होड़ी करने लगती है। इस संदर्भ में परसाई दोनों पार्टियों को आमने-सामने रखकर इनके कार्यविधान का व्यंग्य करते हैं -

जनता पार्टीवाले आकर कहने लगे - "इस पवित्र कार्य में (कांग्रेस को हराने में) आपका सहयोग चाहिए।"

मैंने पूछा - "मैं कैसे सहयोग कर सकता हूँ।"

वे बोले - "हमारा मतलब है, आप की टाँग का सहयोग चाहिए। मैंने आश्चर्य से कहा - मेरी टाँग? अरे भाई, मैं हूँ तो मेरी टाँग है।"

उन्होंने कहा - नहीं, टाँग टूटने से उसका अलग व्यक्तित्व हो गया है। बल्कि टूटी टाँग ने राष्ट्रीय जीवन में आपको महत्वपूर्ण बना दिया है। हमें अनुमति दीजिए

कि हम प्रचार कर दें कि इन कांग्रेसियों ने आपकी टाँग तोड़ दी है । इससे सारे देश में कांग्रेस के विरुद्ध वातावरण बनेगा ।[30]

यह जनता पार्टियों का कथन है क्योंकि मूल्याधारित राजनीति करने का दावा उन दिनों में किया और न कर पाकर बदनाम हुए । उनकी अंदरूनी मानसिक स्थिति का यह जायजा है ।

अब कांग्रेसवालों का उदात्त-स्वभाव देखिए - 'आपको क्या समझाना । आप स्वयं प्रबुद्ध हैं । इस समय देश का भविष्य संकट में है । यदि जनता पार्टी जीत गई तो देश खण्ड खण्ड हो जायेगा । विकास कार्य रुक जायेंगे । जनता पार्टी में शामिल दल घोर दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी हैं । वे सार्वजनिक क्षेत्र को खत्म कर देंगे । वे इस देश को अमेरिका के पास गिरवी रख देंगे । [31]

परसाई इन दोनों वक्तव्यों को इसलिए आमने-सामने रखते हैं कि लोगों को पता चल जाय कि अवसरवादिता और चुनाव जीतने की दाँव में कोई किसीसे कम नहीं है । चुनाव राजनीति का अंत यहीं पर समाप्त नहीं होती है, मगर आगे भी विकास होता है । लेखक इन दोनों प्रस्तावों को ठुकराता है तो उन्हें 1000-500 रुपये में खरीदने को भी तैयार हो जाते हैं तब भी लेखक टस से मस नहीं होता है दोनों पार्टीवाले, जो अभी अभी उसके लेखकीय व्यक्तित्व की भरपूर प्रशंसा की थी, अब "दो कौड़ी के फ्री लेखक", "कूड़ा लेखक" जैसे उपाधि से विभूषित करते हैं, गालियाँ देने लगते हैं और लेखक को यह भी धमकी दी जाती है कि लेखक के इलाज के लिए जो पैसे दिए गए थे, उसकी जाँच करवा दी जायेगी और वे सारे रुपये वसूल कर दिए जायेंगे कहानी का अंत इतना मार्मिक है कि दोनों का आमना-सामना होता है, हाथ मिलाने लगते हैं, गालियों का विनिमय होता है, आखिर मार-झपट होकर घायल भी होते हैं घायल व्यक्ति को प्रचार-साधन के लिए ले जाने के आए हुए व्यक्ति सचमुच के घायल होकर चल दिए । लेखक कहता है - आप दोनों का काम बिना पैसे खर्च किए हो गया अब मेरी टाँग की जरूरत आपको नहीं है । आपके अपने सिर फूटे हैं और नाक में से खून बह रहा है । अब प्रचार कीजिए जनतंत्र के लिए, मैं गवाह बनने को तैयार हूँ ।[32]
राजनीतिक क्षेत्र की कुटिलता, धमकी, धोखा, कुर्सी लोभ आदि से पीड़ित हमारे नेताओं

की गिरी हुई मानसिकता का जीता-जागता व्यंग्य व यहाँ किया गया है ।

हमारे सामाजिक जीवन में नैतिक अधःपतन, बेईमानी की कोई सीमा नहीं है । यहाँ तक कि ईमानदारों के सम्मेलन में भी ईमानदारी यदि गुम हो जाय तो ईमानदार के सम्मेलनों की सार्थकता ही क्या रहेगी ? इन तथाकथित ईमानदारों की बेईमानियों पर परसाई ने अपनी "ईमानदारों के सम्मेलन में" कहानी में इतने [illegible] ज़ोरदार ढंग से किया है कि हर बेईमान के प्रति करुणा एवं अनुकंपा जागृत होती है, साथ ही आक्रोश भी उभरकर आता है । "ईमानदार सम्मेलन" के आयोजकों ने लेखक को पत्र भेजा कि आप देश के प्रसिद्ध ईमानदारों होने के नाते इस सम्मेलन में भाग लेकर अध्यक्षासन ग्रहण करें और गोष्ठियों में भी सक्रिय भाग लें । लेखक सम्मेलन में जाने को तैयार होता है और अपनी कमाई पर हिसाब लगाने लगता है - "दूसरे दर्जे में जाऊँगा और पहले का किराया लूँगा । इस तरह एक सौ पचास रुपये बचेंगे । फिर चाय, नाश्ता, भोजन तीन दिन मुफ्त में होगा, यानी ये लगभग तीस रुपये हुए । इस तरह एक सौ रुपये नकद कमाई होगी । यह बेईमानी कहलायेगी । पर उन लोगों ने मुझे राष्ट्रीय स्तर का ईमानदार माना ही क्यों ? माना हुआ ईमानदार बेईमानी न करे, तो वह दो कौड़ी का ईमानदार हुआ ।"[33] यहाँ लेखक ने आत्मव्यंग्य द्वारा, अपने को एक ओर बेईमान साबित करते हुए ऐसे सम्मेलनों में जानेवालों की नियत पर प्रश्न चिह्न लगाया है । लेखक का व्यंग्य है कि क्या कोई ऐसा भागकर्ता है तो जितना खर्च हो उतना ही ले । वैसे ये सारे सम्मेलन बेईमानी के अड्डे होते हैं । यहाँ की विडंबना यही है - ईमानदारों के सम्मेलन में भाग लेनेवाला अध्यक्ष ही बेईमानी का श्रीगणेश करता है । आगे ईमानदारों के सम्मेलन में जो बेईमानियाँ, चोरियाँ हुईं, उनका ब्यौरा ऐसे सम्मेलन की सार्थकता पर व्यंग्य करता है, चौकन्ना कर देता है -

(क) मुख्य अतिथि की चप्पलें गायब हुईं । (इन चप्पलों को दूसरा डेलिगेट चोरी करके पहना हुआ था और वही लेखक को चोरी से बचने का आदेश दे रहा था।
(ख) बिस्तर की चादर की चोरी हुई । (ग) लेखक के धूप के चश्मे की चोरी हुई (इसे एक और ईमानदार चोरी करके पहनकर आया था, और लेखक को चोरों से

बचकर भागने का संकेत दे रहा था । ।घ। एक दूसरे सज्जन का ब्रीफकेस चोरी में गया । ।ङ। लेखक ने रात को सोते समय देखा कि उसका कंबल गायब था, यानी उसकी भी चोरी हुई । ।च। यहाँ तक कि कमरे के ताले की भी चोरी हुई । ।छ। लेखक को भी चोरी से उठाकर ले जाने की संभावना थी । - ये सारी चोरियाँ वहाँ हुईं जहाँ ईमानदार ही ईमानदार जमा हुए थे और ईमानदारी की चर्चा करने आए हुए थे । यही इस कहानी का व्यंग्य है, चरित्रों का विरोधाभास है ।

आखिर चोरियों का इल्ज़ाम डेलिगेटों पर लादने का प्रयत्न किया गया तो एक डेलिगेट आग बबूला होकर कहने लगा - "हमें क्या आप बेईमान समझते हैं ? हम क्या यहाँ चोरी करने आए हैं? आप लोगों ने क्यों अखबारों में विज्ञप्ति छपवायी कि हम आ सकते हैं और दस रुपये देकर डेलिगेट बन सकते हैं ? हम हरगिज न आते । मेरी अपनी पानी की कुप्पी चुरा ली गई । मेरे साथी की जेब से पचास रुपये चुरा लिये गए मुझे तो ऐसा लगता है कि आप लोगों ने सम्मेलन इसलिए बुलवाया कि डेलिगेटों की चोरी करा लें, तलाशी अपनी न कराओ ।"[34]

ईमानदारों के सम्मेलन में बेईमानदारी का पता लगाने की कोशिश करना पानी में लकीर खींचने के बराबर है । परसाई ने इस तथ्य का व्यंग्य प्रस्तुत कहानी में करते हुए बेईमानदारी की चरम सीमा को दर्शाया है । हर व्यक्ति अपने को ईमानदार घोषि करते करते और ईमानदारी के नाना पहलुओं पर चर्चा करते करते बेईमानी को किस हद तक पहुँचा सकते हैं - इसका परीक्षण प्रस्तुत कहानी में किया गया है । परसाई मानते हैं - ईमानदारी इस देश में मात्र एक नारा है, अप्रयुक्त एक घोषणा है । प्रस्तुत कहानी हास्य की गुदगुदी देते हुए एक मूल्य के अधःपतन को रेखांकित करती है ।

हमारी विधानसभाओं तथा संसदों के कार्यकलाप कैसे होते हैं, हमारे अधिकांश विधायक और सांसद उनमें कैसे भाग लेते हैं, क्या-क्या बहस करते हैं - इसका परिचय भारतीयों को है ही । हर दिन पत्र-पत्रिकाओं में इसके बारे में मज़ेदार टिप्पणियाँ छपती रहती हैं जिन्हें पढ़कर हम नागरिक मज़ा तो लेते हैं साथ ही देश का प्रशासन चलाने के लिए गए हुए इन महाशयों के व्यवहारों पर चिंतित भी होते हैं । परसाई ने अपनी अनेकों कहानियों का आधार हमारे संसदों तथा विधानसभाओं के कार्यकलापों

को बनाया है और उन पर गंभीर व्यंग्य किया है । ऐसी कहानियों में से एक है - वाक आउट..ईट आउट और स्लीप आउट । इस कहानी में व्यंग्य नाना आयामों में व्यक्त हुआ है -

(क) विधानसभाओं में विश्राम कक्ष तो होते हैं जो हमारे विधायकों के लिए शब्दशः "विश्राम कक्ष" है । वहाँ का चपरासी वहाँ विधायकेतर व्यक्तियों को घुसने नहीं देता है क्योंकि विधायकों को जगह की कमी पड़ती है । तो भी वे विधायक तभी सो सकते हैं जबकि विधानसभा चालू रहती है, शेष समय में नहीं । अर्थात् हमारे विधायक विधानसभा में इसलिए नहीं जाते कि वहाँ की चर्चा में भाग ले सके, देश की समस्याओं पर विचार कर सके । मगर यहाँ का व्यंग्य है कि वे वहाँ सोने के लिए जाते हैं ।

(ख) हमारी विधान सभाओं में स्पर्धा इस बात की नहीं है कि कौन कितना वहाँ के कार्यकलापों में भाग लेता है और मगर स्पर्धा इस बात की है कौन कितना सोता है । यह कितनी अजीब बात है कि सोने की अवधि को ध्यान में रखकर सरकार बनती है या गिरती है । इसलिए सरकार चला रहा पक्ष अपनी चर्चा के मुद्दों की अपेक्षा विरोधी पक्ष के सदस्यों से ज्यादा समय, अपने पक्ष के सदस्य सोते हैं कि नहीं, इसका ध्यान रखता है । लेखक यहाँ इस बात का व्यंग्य करता है कि सरकार चला रहा पक्ष इस बात में कभी हारता ही नहीं । क्योंकि बात यह है कि सरकारी दल बहुत चतुर है । वह कुछ ऐसे सदस्य ले आया है जिन्हें यहाँ पैर रखते ही नींद आने लगती है । वे दस्तखत करके जो सोते हैं, तो शाम को ही उठते हैं । इन्हीं लोगों के दम पर सरकार टिकी है ।[35] यह हमारी विधानसभाओं की सही तस्वीर है । जहाँ चर्चा से ज्यादा नींद की जाती है । गौर करने की बात यह है कि पक्षों में ऐसे व्यक्तियों को ले आते हैं जो कि नींद के उस्ताद हैं ।

(ग) इस कहानी में परसाई ने "वाक आउट" शब्द की विशिष्ट व्याख्या की है सा ही "ईट आउट" और "स्लीप आउट" जैसे शब्दों को भी उन्होंने सदस्यों की विशि प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर इसे बनाया है । इन शब्दों के सहारे हमारे विधायकों का मार्मिक व्यंग्य किया है । आये दिनों में हमारी विधानसभाओं में "वाक् आउट्स"

इतने सामान्य हो चुके हैं मानों विरोधी सदस्यों का चुनाव या उनका अस्तित्व वाक आउट करने के लिए ही हो । इन वाक् आउटों के कारण सदस्यों को दो प्रकार के लाभ हैं - एक - ये सदस्य तैयारी के साथ विधानसभा जाने से छूट रहती है, दूसरा यह है कि मौज करने को पर्याप्त फुरसत मिलती है । जिस पर हमारे विधायक इस बात का आक्षेप करते हैं क्योंकि यह वाकआउट मौज हराम करती है । परसाई विरोधी दल की मुसीबत का व्यंग्य यों करते हैं -

"उसने कहा - विरोधियों की यही मुसीबत है । हमें हर दस पंद्रह-बीस मिनट में "वाक आउट" करना पड़ता है । अभी मनी नहीं कि कोई सदस्य आता है और "वाक आउट" करना पड़ता है । हम भीतर जाते हैं और नेता के पीछे फिर बाहर आ जाते हैं ।"[36]

।ग। "ईट आउट" की व्याख्या करते हुए परसाई विधायकों की मनोवृत्ति पर व्यंग्य करते हैं कि यह थोड़ासा कष्टदायक है क्योंकि इसमें जेब को खतरा है और हर समय इन्हें खिलानेवाला नहीं मिलता है । यदि हर समय खाना खिलानेवाला मिल जाय तो यह भी आसान हो सकता है ।

।ड.। "स्लीप आउट" सबसे आसान है क्योंकि विधानसभा में आकर हस्ताक्षर करके निश्चिंत सो जाते हैं । स्लीप आउट और ईट आउट में कुछ लोग से लगे रहते हैं, इन्होंने कैंटीन को एकदम घर बना लिया है, बस खाओ, सोओ ।"

यह है कि हमारे विधायकों का कार्यक्रम । देशवासियों ने जाने कितने आत्म-विश्वास से इनको भेजा है, आशाएं रखी है कि ये हमारे प्रतिनिधि हैं ।मगर हकीकत परसाई की कहानियों में है । देशवासियों के प्रति एकदम अत्याचार कर रहे सुविधाभोगी राजनीतिकों, विधायकों के व्यवहार पर परसाई का व्यंग्य मात्र शब्द बाण नहीं अपितु चाबुक की चोट है । हर विधायक को कर्तव्यबोध कराकर जागृत करने में यह व्यंग्य सक्षम है ।

।च। प्रस्तुत कहानी में विधानसभा के प्रांगण में जो दृश्य उन्होंने देखे उनका व्यंग्य करने के पश्चात् विधानसभा के अंदर के कार्यकलापों का सूक्ष्म निरीक्षण करके पैना व्यंग्य

किया है । क्योंकि विधानसभा के अंदर के [illegible] का बहुत [illegible] [illegible] में चर्चा हेतु जो मुद्दा चुनते हैं वे नितांत बेकार होते हैं । जैसा कि एक विधानसभा में एक कुत्ते की मौत पर गरमा-गरमी चल रही है, यहाँ तक कि यातायात मंत्री श्री का इस्तीफा तक माँगा जा रहा है । करोड़ों व्यक्ति देश भर में मरने जा रहे हैं जिनकी कोई परवाह हमारे विधायक नहीं करते जबकि एक कुत्ते की मौत पर जोरदार चर्चा है । विधायकों के आग्रह पर कुत्ते का पोस्टमार्टम कराया गया और जिस सरकारी बस से यह एक्सिडेंट हुआ था, उस सरकारी बस के टायर को लगे खून का रासायनिक [illegible] परीक्षण कराने पर पता लगा कि कुत्ता एक्सिडेंट से नहीं मरा है, मगर टायर पर लगा खून कुत्ते का नहीं, किसी मनुष्य का है । इस पर विरोधी चुप हो जाते हैं । मंत्री व सदस्यों के आरोपों को गलत सिद्ध कर जाने के कारण विजयी होने का अनुभव करता है । मंत्री ने विजयगर्व से कहा - 'तथ्य यही है । यह खून आदमी का था, कुत्ते का नहीं - जैसा कि सदस्यों का आरोप है । इसलिए मेरे इस्तीफा देने का कोई प्रश्न नहीं उठता ।'[37] व्यंग्य यह है कि कुत्ते की मौत पर चर्चा करनेवाले, इस्तीफे की माँग करनेवाले हमारे विधायक यह मालूम होने पर भी टायर को लगा खून मनुष्य का है, उसकी परवाह नहीं करते, चर्चा के लिए आग्रह नहीं करते । मंत्री भी इस बात पर गर्व करता है कि कुत्ता एक्सिडेंट से नहीं मरा है, मगर टायर को लगे मनुष्य के खून का रहस्य जानने के प्रति वह उत्साह नहीं दिखाता । अर्थात् सरकार अथवा शासकों के दिल में मनुष्य के प्रति उतनी चिंता नहीं है जितनी कुत्तों के प्रति है ।

(8) हमारे मंत्रियों को समस्या की गहराई में जाने और उसकी पड़ताल करने में कोई रुचि नहीं है । किसानों की समस्या को सुलझाने के बजाय यह कहना उनके लिए यह कहना कितना आसान है कि उन्हें कम्युनिस्टों ने भड़का दिया है । परसाई इस बात को रेखांकित करते हैं कि हमारे मंत्री महोदयों में चिंतनशक्ति नहीं, समस्या को समझने का संयम नहीं, बस, दूसरों पर आरोप करना उनका सहज स्वभाव सा बन गया है । उनका यह वक्तव्य कितनी बेजिम्मेदारी का है कि कम्युनिस्टों के भड़काने से ही हर आंदोलन भड़क उठते हैं और यहाँ तक कि उसका बच्चा रोता है तो भी भूख भूख से नहीं कम्युनिस्ट के भड़काव से रोता है ।

- इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत कहानी का हर शब्द हमारी प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था की पैरोडी है जिसमें विधायकों, विधानसभा की कार्यवाहियों पर तीखा व्यंग्य किया गया है ।

'सुदामा के चावल' कहानी में श्री कृष्ण से विशेष मिलने के लिए उसका मित्र सुदामा आया है जो कृष्ण की खोज कर रहा है । किंतु कृष्ण के महल के बाहर बड़े जो कार्यालय हैं वहाँ काम कुछ नहीं हो रहा है । सुदामा ने सोचा कि वहाँ जितने ही कर्मचारी बैठे थे जिनमें से अधिकांश गपशप कर रहे थे । वे अपने स्थान से उठते और पास के जलपान गृह में जाकर बैठते । मैं समझा कि इन सबको यही करने के लिए ही राज्य से वेतन मिलता है ।[38]

परसाई देश की विधानसभाओं और हमारे दफ्तरों में कोई अंतर नहीं देखते । व हर कहीं वही गपशप है, निरर्थक समय एवं अर्थ हानि है । - 'वाक आउट, ईट आउट स्लीप आउट' से मिलती जुलती कहानी है 'मुंडन' जिसमें परसाई ने विधान सभा की निरर्थक कार्यवाइयों का व्यंग्य किया है । देश में लाखों समस्याएँ हैं जिनपर सख्त विचार करने की जरूरत है । मगर वहाँ मंत्री के बालों के मुंडन को लेकर बहस चलती है इस कहानी के शुरू में ही परसाई हमारे सांसदों की विसंगतियों की ओर पाठकों का पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं - 'किसी देश की संसद में एक दिन बड़ी हलचल मची । हलचल का कारण कोई राजनैतिक समस्या नहीं थी, बल्कि यह था कि एक मंत्री का अचानक मुंडन हो गया था । कल तक उनके सिर पर लंबे घुंघराले बाल थे, मगर रात में उनका अचानक मुंडन हो गया था ।[39] व्यंग्य यह है कि हमारे सांसदों को देश की समस्याएँ नहीं सताती हैं मगर मंत्री के बालों के मुंडन जैसी नाचीज उन्हें अशांत करती है । इसी को लेकर वे अटकलें लगा रहे हैं । उधर मंत्री भी यह नहीं कह रहा है कि उसका मुंडन हुआ है नहीं, उसका कहना है कि उसे इसका अधिकार नहीं है कि अपने सिर का स्पर्श स्वयं करें । इस बात की जाँच के लिए एक जाँच आयोग का गठन किया गया । इस आयोग ने सालों बाद यह रिपोर्ट दी कि मंत्री का मुंडन नहीं हुआ था । परसाई ने इस कहानी में इस बात का मार्मिक व्यंग्य किया है कि हमारे संसद और विधानसभाओं के कार्यकलाप इस प्रकार बेकार और निरर्थक होते हैं कि यहाँ अनावश्यक और निरर्थक विषयों की चर्चा होती है और तद्वारा राष्ट्र का बहुमूल्य

समय और धन का अपव्यय हो रहा है ।

उपरोक्त कहानियों में संसद और विधानसभाओं की कार्यवाहियों तथा मंत्रियों के फिजूलखर्ची का व्यंग्य किया गया है तो "निठल्ले की डायरी" के पाँचवें किस्से "राष्ट्र का नया बोध" कहानी में एक अधिकारी की अफसरशाही कार्यवाहियों पर व्यंग्य किया गया है । "मुंडन" कहानी में अपने सिर पर प्रत्यक्ष रूप से हाथ रखकर मंत्री यह कहने के लिए इनकार करता है कि उसका मुंडन हुआ है या नहीं, उसी प्रकार प्रस्तुत कहानी में समाज में काला बाजार करनेवालों को पकड़कर सरकार के सामने लाने की घोषणा किये जाने पर एक मास्टर दो व्यापारियों के पास अनाज दबा हुआ देख आये हैं, वे इसकी रिपोर्ट कलक्टर के पास करके उन्हें स्वयं से जाना चाहते हैं । मगर कलेक्टर चूँकि सरकारी अधिकारी है इसमें रुचि नहीं ले रहा है । प्रत्यक्ष घटना को जाँच करने की दफ्तरी लीपापोती में उसे बंद करना चाहते हैं । इसका व्यंग्य करते हुए परसाई लिखते हैं - "हमने कहा - सरकार ने जनता का सहयोग माँगा है । हम सहयोग देते आये हैं । ये मास्टर साहब दो व्यापारियों के पास अनाज दबा हुआ देख आए हैं । उन्हें फौरन पकड़िये और अनाज जब्त कर लीजिए । कलेक्टर ने हमारा बड़ा आभार माना, कहने लगे - "आप लोग जागरूक नागरिक हैं । आगे इतिहास में आपका नाम सोने के अक्षरों में लिखा जायेगा । मैंने कहा - अपने इतिहास का भी ध्यान रखिए और सख्त कार्यवा करिए ।" साहब ने कहा - जरूर, जरूर, मैं अभी जाँच का आदेश देता हूँ । मैंने कहा - इसमें जाँच की क्या जरूरत है ? ये अभी देखकर आ रहे हैं । साहब ने कहा - फिर भी जाँच तो करनी ही पड़ेगी । मैंने कहा - सामने गोदाम भरा पड़ा हो, तब भी जाँच की जायेगी ।[40] हमारी सरकार, मंत्री, अफसर एक ही व्यवस्था के नागरिक हैं जिन्हें सामान्य जन की कोई परवाह नहीं । "जाँच" के नियमों को थोड़ा भी ढीला ये लोग करना नहीं चाहते । क्योंकि "जाँच" की छत्रछाया में ये लोग अपनी सुरक्षा कर पाते हैं ।

"भेड़ें और भेड़िये" कहानी हमारी राजनीतिक नौटंकी का व्यंग्य करती है । दुर्बलों, मासूमों, नादानों की इस व्यवस्था में धक्का देना आसान ही नहीं, अपितु

उन्हींको अपने जीवन ग्रास के रूप में स्वीकार करना आज की प्रजातंत्र की विशेषता है । ये भेड़ें जो स्वभावतः कोमल, निष्कपटी थीं । संख्या में ज्यादा थीं जबकि भेड़िये संख्या में कम थे जोकि किसी भी संदर्भ में न चुनाव जीत सकते थे न सरकार बना सकते थे । मगर अपने षड्यंत्रों से इन भेड़ियों ने सियार जैसे दलालों की सहायता से ऐसी कूटनीति चलायी, संतों जैसी स्वांग रची, जिसके फलस्वरूप बेचारे भेड़ों ने भेड़ियों को अपनी पंचायत का सुविधि मुखिया के रूप में चुना । चुनाव जीतने के बाद जिन भेड़ियों ने भेड़ों की रक्षा की बात की थी, उन्हीं भेड़ियों ने यह प्रस्ताव पारित करके कानून बनाया कि "हर भेड़िये को सबेरे नाश्ते के लिए भेड़ का एक मुलायम बच्चा दिया जाय, दोपहर के भोजन में एक पूरी भेड़ तथा शाम को स्वास्थ्य के ख्याल से कम खाना चाहिए, इसलिए आधी भेड़ दी जाय ।"[5]

प्रस्तुत कहानी के चरित्र भेड़ें और भेड़िये क्रमशः असहायक प्रजाओं तथा हमारे सत्ताधारी नेताओं के पर्याय हैं, वोट लेने तक जिस प्रकार जनता का महत्व होता है उसी प्रकार भेड़ों का महत्व है । वोट हासिल करने के बाद चुनाव जीत कर सत्ता हासिल करनेवालों के हाथ इतने बलवान, और क्रूर होते हैं कि वे अपने स्वच्छंद व्यवहार से भेड़िये बन जाते हैं, हाथ लगे व्यक्ति पर अत्याचार करने लगते हैं । प्रजा भेड़ें हैं और भेड़िये निरंकुश अमानवीय सत्ताधारी हैं । प्रस्तुत कहानी में हमारी व्यवस्था की कूटनीति, षड्यंत्र, पाशविकता, अन्याय, धोखेबाजी का जीता जागता व्यंग्य है ।

वैसे परसाई की कहानियों का धीरोदात्त नायक इस देश का मंत्री है । इस मंत्री का गुणगान करते परसाई थकते नहीं । विभिन्न आयामों में कैमरे की भाँति उसके व्यक्तित्व की दुर्बलताओं को चुन चुनकर परसाई ने व्यंग्य किया है । "ग्रांट अभी तक नहीं आई" - कहानी में मंत्री की महिमा और उसके पिछलग्गुओं - ये विधायक भी हो सकते हैं - की चापलूसी पर व्यंग्य किया गया है । भारतीय मानसिकता अभी इस स्तर तक आ नहीं पाई है कि मंत्री के असत्य को, उसके तथ्यहीन विचारों को खुले रूप से विरोध कर सके, और हर बात की हाँ में हाँ मिलाने की प्रवृत्ति से हाथ धो सके । परसाई इस बात के लिए खेद प्रकट करते हैं और प्राध्यापक -विद्वानों की इस गुलामी का व्यंग्य करते हैं । प्रस्तुत कहानी में मंत्री जिस किसी

चीज़ की तारीफ़ करते हैं उसीको हाँ में हाँ मिलाने की चापलूसी का व्यंग्य देख सकते हैं । मंत्री का भाषण समाप्त होने पर उसकी प्रशंसा की बानगी -

" दर्शन शास्त्र का चेहरा मंत्री से कहता है - आपका भाषण बहुत अच्छा रहा ।
इसलिए वह मेरी तरफ़ देखता है । मैं कुछ नहीं बोलता ।
इतिहास का चेहरा कहता है - "बड़ा प्रेरणाप्रद भाषण था ।"
वह मेरी तरफ़ देखता है - मैं कुछ नहीं बोलता ।
रसायन शास्त्र का चेहरा कहता है - 'इट वाज़ रीयली पॉवरफुल'

एक चित्रशाला में मंत्री का प्रवेश हुआ तो ये देखिए -

मंत्री - "रंग संयोजन अच्छा है ।"
कोरस - "रंग संयोजन अच्छा है ।"
मंत्री - वेरी बोल्ड लाइन्स
कोरस - वेरी बोल्ड लाइन्स ।"[42]

अपने व्यक्तित्व को संपूर्ण रूप से खोये हुए बुद्धिजीवि लोग मंत्रियों के पीछे पड़कर कैसे भ्रष्ट हो रहे हैं - इसका व्यंग्य प्रस्तुत कहानी में है ।

परसाई की कहानियों में तत्कालीन मंत्रियों को एकदम अवसरवादी, चरित्रहीन, भाषणबाजी, भ्रष्ट और सभी विकृतियों से सर्वांग चित्रित करते हुए उनके व्यक्तित्व में समाहित समस्त द्वंद्वों, विरोधाभासों, विसंगतियों को खुल्लमखुल्ला अनावरण करने का, उनपर व्यंग्य कसने का प्रयत्न है । परसाई की मान्यता है ये मंत्री ढब्बू हैं, पेटू हैं, विचार हैं और सबसे बढ़कर अमानवीय हैं ।

'एक दीक्षांत भाषण' कहानी एक ऐसे तथाकथित मंत्री का भाषण है जिसमें उसके अज्ञान छोर, का, विचारशून्यता का, बेमतलब - असंतुलित विचार हैं ।मंत्री के इस भाषण के संदर्भ में परसाई का व्यंग्य है कि ऐसे मंत्रियों से दीक्षांत भाषण हमारे विश्वविद्यालय दिलवा रहे हैं । और जो मंत्री जिस विश्वविद्यालय में अनेकों बार अनुत्तीर्ण हो चुका है, उसीको वह विश्वविद्यालय डी० लिट की उपाधि से सम्मानित कर रहा है । निरर्थक एवं बुद्धू विद्यार्थी सार्थक मंत्री के रूप में यदि कहीं प्रतिष्ठा पा सकता है तो वह भारत में पा सकता है । यह इस देश की महान विडंबना है ।

"राजनीति और बँटवारा" कहानी का भैयाजी कहते हैं - "तू मूर्ख है, इस वक्त यहाँ से उठ और कमरे में जाकर उस कचरे को पढ़ जिसे तू "पालिटिकल साइन्स" कहता है । हमने भी जीवन भर राजनीति की है । चालीस साल हो गए, पर राजनीति को हमने कभी "विज्ञान" नहीं "कला" कहा । फिर भी आजादी के बाद राजनीति को "कलाबाजी" कहने लगे । अब तू इसी उम्र में राजनीति को विज्ञान कहने लगा, जा भाग यहाँ से ।[43] ये भैयाजी और इनके जैसे अनेकों व्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति के चमकते हुए तारे हैं जो राजनीति को कला मानकर उसका अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उपयोग करते हुए देश को विनाश की ओर ले जा रहे हैं । अपने स्वार्थ पर कभी न झुकनेवाले ये यहाँ तक दावा करते हैं कि गाँधीजी के कारण इनको "राष्ट्रपिता" कहलाने से वंचित रहना पड़ा, अतः ये गाँधीजी को गालियाँ देते हैं । यहाँ का व्यंग्य इस अंश में है कि ये लोग गाँधीजी की सेवाओं को अपनी सेवाओं से बिलकुल नगण्य मानते हैं, और अपने को महान जाहिर करते हैं ।

ये अनेकों ऐजेन्सियाँ रखकर उनसे कमीशन पाने के द्वारा देश की सेवा करने का कार्य जो कर रहे हैं, उसका व्यंग्य परसाई इन शब्दों में करते हैं - "अब कई एजेन्सियाँ परिवार ने ले लीं रखी हैं । कई चीजों के स्टाकिस्ट हैं । इस कारण देशभक्ति और बढ़ गई है । आखिर देश के धन की रक्षा भी तो करनी है । राष्ट्र-प्रेम में कमी नहीं है । पर बिजनेस की भी एक नैतिकता होती है । यह नैतिकता है - चुंगी चोरी, स्टाक दबाना, मुनाफाखोरी करना, ब्लैक से देश का माल बेचना । अभी चंदा करके वयोवृद्ध देशभक्त भैयाजी ने शहीदों की स्मृति में कई लाख का "बलिदान मंदिर" बनवाया है, जिसमें से काफी चंदा आ गया ।[44] परसाई तथाकथित देशभक्त कहलानेवाले इन लोगों के असली रूप का पर्दाफाश करते हैं, इनकी नैतिकता पर चाबुक लगाते हैं, इन्हें बेशर्म होकर कहते हैं ।

भैया जैसे स्वार्थियों का षड्यंत्र यह है कि अपनी स्वार्थसाधना को निरंतर बनाये रखने के लिए "निगम" जैसे संगठनों को हमेशा हथियाना चाहते हैं और अपनी इच्छा एवं स्वार्थ के विरुद्ध जो भी पार्टी अधिकार में आएगी उसका जीना हराम करने को ये तुले जाते हैं । सिद्धांत की बात कहते-कहते सिद्धांतरहित ज़िंदगी जीनेवाले ये छोटे

देशभक्त इतने अक्लमंद होते हैं कि किसी भी संदर्भ में अपने स्वार्थ को छोड़ नहीं पाते । आखिर हार जाने के संदर्भ में भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए अपने घर के सभी सदस्यों को सभी पार्टियों के सदस्य बनाकर वहाँ स्वार्थ पूरा करने का प्रयत्न करते हैं । अवसरवादिता का यह बड़ा ही उत्तम उदाहरण है कि भैया ने यह उपाय सोचा । और अपनी इस सोच पर उसे गर्व होने लगा । यह उपाय था - "भैयाजी ने कहा - मेरी पवित्र आत्मा से समस्या का समाधान निकल आया, तुममें से हर एक एक-एक पार्टी के सदस्य हो जाओ ।"

"मैं कांग्रेस में हूँ और संगठन कांग्रेस में भी।"

"तुम छोटे, जनसंघ के सदस्य हो जाओ ।"

फिर बड़े भतीजे से कहा - तुम समाजवादी पार्टी के सदस्य हो जाओ ।

सबसे छोटे भाई ने कहा - तुम मार्क्सवादी पार्टी में शामिल हो जाओ । और यह बिगड़ा लौंडा जो है, वह नक्सलवादी हो ही गया है ।"

परिवार ने संतोष की साँस ली ।

मैं भैयाजी खुश थे । कहने लगे :-देखा तुमने ? राजनीतिक ज्ञान इसे कहते हैं । अब अपने घर में सब पार्टियाँ हो गईं । किसी का मगर निगम हो, कुंजी चोरी पक्की हमने सारी पार्टियों को तिजोड़ी में बंद कर लिया है ।[45]

प्रस्तुत कहानी में परसाई ने इस बात का कठोर व्यंग्य किया है कि हमारी राजनीति में भैया जैसे गंगादास-जमुनादास ही ज्यादा हुए हैं जिनका अपना कोई व्यक्तित्व-अस्तित्व नहीं होता, जीवन दृष्टि नहीं होती । ये हर पार्टी का है । कोई भी पार्टी इनको दूर नहीं कर सकती । यह राजनीति की चालाकी है । कांग्रेसी भैया जनसंघियों का विरोधी नहीं, क्योंकि कहता है - "जनसंघ से मेरी पट जाती है । वे भी गो-भक्त, मैं भी गो भक्त, पिछली बार जब मैंने गो रक्षा के लिए अनशन किया था तो उन्होंने मेरे खिलाफ उम्मीदवार खड़ा नहीं किया था । वे भी हिन्दी प्रेमी, मैं भी । वे भी राष्ट्रीय, मैं भी राष्ट्रीय । उनका निगम हो गया, तो गाँधीजी के सत्य के अनुसार मैं दिन में ही फूक बुलवा दूँगा ।"[46]

भैया हमारी राजनीति का एक अजीब व्यक्ति है, उनका विशिष्ट व्यक्तित्व है, परसाई का कहना है, वैसे हमारे सैकड़ों राजनीतिज्ञों, नेताओं का वह समर्थ प्रतिनि

"आमरण अनशन" कहानी में भी नगर पालिका का चुनाव, चुंगीचोरी के लिए दो गुट के बीच लड़ाई, नाम कमाने के लिए राजनैतिक नेताओं द्वारा की जानेवाली नौटंकी का जबरदस्त व्यंग्य किया गया है । अपने अपने तत्व और सिद्धांत के लिए लड़नेवाले, आमरण अनशन करनेवाले यहाँ के नायकों की तत्व के प्रति निष्ठा तब तक है जब तक स्वार्थ पर आँच न लगती है । यहाँ के नेता किशोरीलाल और गोवर्धन का आमरण-अनशन तब एकदम समाप्त हुआ जबकि मुख्यमंत्री ने आकर बुद्धिवाद दिया । यह बुद्धिवाद क्या था - "पाँचवें दिन मुख्यमंत्री आ गए । वे सीधे सेठ किशोरीलाल के पास गए और कान में कहा - "अगर एक घंटे के अंदर तुम्हारा हृदय नहीं बदला, तो शरणार्थियों की वर्दी के कपड़े की सप्लाई का जो आर्डर तुम्हें मिल रहा है, वह नहीं मिलेगा ।" फिर वे गोवर्धन बाबू के पास गए और कहा - "अगर एक घंटे में तुम्हारा हृदय परिवर्तन नहीं हुआ, तो नगरपालिका भंग करवा दूँगा।"

थोड़ी देर बाद जनता ने सुना कि गोवर्धन बाबू और सेठ किशोरीलाल का हृदय परिवर्तन हो गया..."[43]

मुख्यमंत्री की धमकी पर आमरण अनशन करनेवाले नेताओं की तत्वनिष्ठा एवं सत्यनिष्ठा पर परसाई ने यहाँ कटुव्यंग्य किया है ।

परसाई की कुछ कहानियों की वस्तु हमारे यहाँ बहुप्रचलित वादों पर है । "लोहियावादी-समाजवादी" कहानी में वर्तमान सांसदों की पार्टीबाजियों की राजनीति का व्यंग्य है तो "सज्जन, दुर्जन और कांग्रेसजन" कहानी में हमारे तथाकथित कांग्रेसवादियों पर व्यंग्य करते हैं जो अपने को कांग्रेस के बनाते हैं किंतु कांग्रेस के सिद्धांतों से बिलकुल अनभिज्ञ है । इनका मुँह खुलता है तो केवल सिद्धांत ही सिद्धांत निकलते हैं किन्तु अंदर से बिलकुल खोखले हैं, राष्ट्र के महत्वपूर्ण विषयों पर इनका ज्ञान बिलकुल शून्य होता है । उदाहरण के लिए इस कहानी का नायक भी भैया साहब है जो कि हमारे राजनीतिज्ञों का प्रतिनिधि है । इनके जीवन की विसंगति यह है कि दादी एवं चरखे को "दादीजी" एवं "चरखाजी" बनाकर पूजा करते हैं, नेहरू

के जैसे पोषाक पहनकर उनका अनुकरण करते हैं । मगर नेहरू के बारे में पूछने पर हक्का-बक्का हो जाते हैं । लेखक ऐसे नेताओं का व्यंग्य करने के लिए पूछा कि नेहरू सिद्धांत क्या है, तो उत्तर मिला - "उन्होंने जवाब दिया - "मैं दलबंदी में नहीं पड़ता, मैं तो पंडित नेहरू का अनुयायी हूँ ।" मैंने बात बढ़ायी - "पंडितजी के कौन-से सिद्धांत हैं, जिन्हें आप मानते हैं ?" वे उठे । खूँटी पर टंगी शेरवानी निकालकर पहनी और उसके चौड़े बटन-होल में गुलाब के फूलों का एक गुलदस्ता खोंस लिया । मुस्कुराते हुए बोले - "इससे बड़ा सबूत आपको क्या चाहिए कि पंडित नेहरू के सिद्धांतों पर चलता हूँ । पंडितजी को गुलाब पसंद है । वे एक कली शेरवानी में लगाते हैं, तो मैं एक गुलदस्ता खोंसता हूँ । भई, हम तो पंडितजी की नीतियों में विश्वास रखते हैं ।[48] इतना ही नहीं, हर महत्वपूर्ण प्रश्न के जवाब में महात्मा गाँधी की जय, चाचा नेहरू जिंदाबाद - के नारों को चिल्लानेवाले हमारे नेताओं के सामान्यज्ञान का व्यंग्य इस कहानी में है ।

एक और कहानी "पूंजीवादी समाजवादी" कहानी का नायक आनंदजी भी इसी किस्म से मेल खाता है जो सब जानने की, सिद्धांत पर चलने का नाटक करते हैं किन्तु असल में जानते कुछ नहीं हैं । उनकी विचार शून्यता का व्यंग्य निम्नांकित पंक्तियों में किया है । लेखक ने पूछा - "लोहिया-समाजवादी पार्टी और आपकी पार्टी में किस बात पर मतभेद है ? दोनों पार्टियाँ एक क्यों नहीं हो रही हैं ?" आनंदजी ने कहा - "भैया, सो तो लोहिया और अशोक भाई जानें । हमने तो यही सुना है कि डाक्टर साहब को दाढ़ी पसंद नहीं है । और अशोक भाई को नाटापन पसंद नहीं है, सो एक ने कहा - दाढ़ी मुड़ाओ, तो दूसरे ने कहा - कद बढ़ाओ । न ये दाढ़ी मुड़ाने को तैयार न वे ऊँचे होने को । बस, मत भेद हो गया । हमारा कहना है यह है कि कद बढ़ाना तो मुश्किल है, मगर दाढ़ी तो मुँड़ाई जा सकती है । अशोक भाई को तो बात मान लेनी थी ।[49] यह है राजनैतिक क्षेत्र की हस्तियों का सामान्य ज्ञान । भोले-भाले, अनपढ़ व्यक्तियों से आज का राजनैतिक क्षेत्र एकदम कलुषित हुआ है, इसका व्यंग्य परसाई, अपनी अनेकों कहानियों में किया है ।

"गाँधीजी की शाल" - कहानी में उन नेताओं का व्यंग्य किया गया है जो

उपरोक्त नेताओं के जैसे सिद्धांतों की अपेक्षा "नाम" के बल पर जिंदा रहते हैं । ये नेता जो भी शाल ओढ़ते हैं वह गांधीजी का शाल है, इसी शाल को ओढ़कर भाषण देते हैं अपने को गांधीजी का अनुयायी घोषित करते हैं । ऐसे अनुयायियों में से एक हैं सेवक । इनका शाल, जिसके संबंध में, वे बताते थे कि गांधीजी का दिया हुआ है, एक बार खो गया । मगर ये सेवक उस शाल के बिना कैसे रह सकते हैं ? जीवन अधूरा सा लगा । गांधीजी के नाम पर जिंदा रहनेवाले इस सेवक ने दूसरा शाल खरीदकर ऐसा घोषित किया कि वह गांधीजी का ही दिया हुआ शाल है । इस शाल की असलियत का व्यंग्य करते हुए परसाईजी लिखते हैं - शाल खरीदकर सेवकजी घर आए । अब समस्या खड़ी हुई - इसका नयापन कैसे मिटे ? सेवकजी ने उसे पानी में डुबाकर सुखाया, उससे फर्श साफ किया, दो-तीन दिन उसे ओढ़कर सोते रहे । तरह-तरह के अत्याचार से उसकी चमक कुछ कम हो गई । सेवकजी ने उसकी तहें करके उसे पुराने शाल के स्थान पर रख दिया ।[50] गांधीजी के नाम तथा उनके सिद्धांतों को आज के नेता कैसे मिट्टी में मिला रहे हैं - इसका जीता-जागता वर्णन एवं व्यंग्य प्रस्तुत कहानी में है । आज के इन नेताओं के दांभिक व्यवहारों से जनता भी परिचित है । इसलिए ही जब सेवक जी ने भाषण देकर यह कहा कि यह "गांधीजी का शाल है," पहली पंक्ति में बैठा एक आदमी उठकर खड़ा हो गया और बोला - "क्यों झूठ बोलते हैं सेवकजी, यह शाल तो बिलकुल नया है और मिल का है । भला गांधीजी मिल का शाल देते ?"[51] आज के नेताओं पर आम जनता की यह प्रतिक्रिया वास्तव में एक जबरदस्त प्रहार है ।

परसाई की अधिकांश कहानियों की मुख्य वस्तु राजनीति है । यह राजनीति समकालीन भारत की है । जैसे स्वातंत्र्यपूर्व दिनों की राजनीति ने देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त किया, आजाद किया । और उन दिनों के राजनीतिज्ञों एवं नेताओं के जीवन मूल्य थे, अपनी दृष्टि थी जबकि स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति ने देशवासियों को दिशाहीन कर दिया । हमारे नेताओं ने राष्ट्र के सामने उच्च जीवन-आदर्शों को स्थापित करने के बजाय ऐसा भ्रष्ट, अवसरवादी, लोभी जीवन जीया कि दिन ब दिन उनके प्रति आदर की भावना न बढ़ने के स्थान पर परहेज भावना जन्म लेती गई । इन तमाम स्थितियों को देखकर जो देश को अस्तव्यस्त कर रही थीं

हमारे अनेकों संवेदनशील लेखक विक्षुब्ध हुए जिन्होंने देश की पहली पंक्ति के अगुआओं के व्यक्तित्व को, कथनी-करनी विसंगतियों को रेखांकित करने के साथ ही साथ उनका निर्मम व्यंग्य किया है ।

परसाई का जीवन आम लोगों के बीच गुजरता आ रहा है, फलस्वरूप, इनकी रचनाओं में कोरी भावुकता, आदर्शों की स्थापना करने का आग्रह नहीं अपितु वास्तविकता अथवा यथार्थता के प्रति आग्रह है । हरिशंकर परसाई जैसे लेखक जनता के बीच से आते हैं , जनता के बीच रहते हैं, जनता की समस्याएं उनकी समस्याएं हैं, जनता के प्रश्न उनके प्रश्न हैं, इसलिए आम जनता की तरह वे भी मानव जीवन को बेहतर बनाने की कोशिश में सामाजिक प्रक्रिया से गुजरते हुए राजनीति से जुड़ते हैं । अतः परसाई के लेखन की राजनीति मानवीय संवेदना को सामाजिक आधार देने की राजनीति है, मानव मूल्य को प्रतिष्ठित करनेवाली राजनीति है । अतः उनके बारे में यह कहना सही होगा कि राजनीति उनके लेखन का संस्कार है । यह संस्कार जनता के लगाव, जनसंघर्षों से जुड़ाव, और मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की प्रतिबद्धता से विकसित हुआ है ।[52] परसाई की कहानियों से साक्षात्कार करने का मतलब स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति तथा राजनैतिक व्यक्तित्वों एवं म उनकी मानसिकता से साक्षात्कार करने के बराबर है । इनकी इन कहानियों में मनुष्य की दुर्बलताओं पर अधिक जोर दिया गया है और उन्हीं को उजागर किया गया है ।

2. शिक्षा जगत की विसंगतियां - आचार्यों के पाखंड व्यवहार, रिसर्च के प्रति अत्याचार, मास्टरों की शादियों-उपकुलपति एवं मास्टर की नियुक्तियां, बुद्धिवादियों का दंदात्मक व्यक्तित्व -

शिक्षा समाज की नियति को निर्धारित करनेवाली शक्ति है । किसी भी देश की प्रगति उस देश के शिक्षित लोगों पर निर्भर रहती है । क्योंकि अशिक्षितों की संख्या जब तक कम नहीं होगी तब तक उस देश की राजनीति में चेतना नहीं आयेगी, सामाजिक प्रगति कुंठित होगी, रूढ़िवादों से, परंपरागत विचारों से वह समाज अभिशप्त होगा, अर्थात् शिक्षित समाज देश का वरदान होता है । मगर आज का शिक्षा क्षेत्र कैसा है,

हम कैसी शिक्षा दे रहे हैं ? कैसी प्रजाओं का निर्माण कर रहे हैं ? क्या इनसे देश का भविष्य उज्ज्वल होगा ? - ऐसे प्रश्नों के जवाब संवेदनशील एवं जागरूक नागरिकों, लेखकों एवं चिंतकों को तिलमिला देते हैं, चिंतित होने को मजबूर करते हैं। एक ओर अशिक्षितों का सवाल है, तो दूसरी ओर शिक्षित महाजनों का एक अलग वर्ग ही निर्मित हो रहा है। यह वर्ग शिक्षित कहलाता है किंतु इसके संस्कार इतने दूषित एवं कलुषित हैं कि यह अपने समाज एवं परिवेश को अपने ज्ञानदान से, संस्कारों से संवारने के बदले, समाज के शोषण में सदा तल्लीन रहता है।

कथाकार हरिशंकर परसाई ने उपरोक्त शिक्षित समाज और शिक्षा जगत की अनेकों समस्याओं व पर कटाक्ष किया है। प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय की शिक्षा तक के शिक्षा संस्थाओं तथा शिक्षकों की बुनियादी समस्याओं की चर्चा करते हुए यहाँ के पाखंड, जातिवाद, पक्षधरता का व्यंग्य किया है। विशेषकर विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों की गुटबंदी, पक्षपात दृष्टि, प्रतिगामी विचार, सदाचार रहित जीवन-विधान भेदभाव, ज्ञान के प्रति तीव्र अनास्था, स्वार्थ के लिए किसी भी स्तर तक उतरने की निर्लज्जता , रिश्वतखोरी, कथनी-करनी के अंतर, रिसर्च के नाम पर ज्ञान के प्रति अत्याचार जैसी अनेकों बातों पर परसाई चिंतित हैं। चिंतित इसलिए हैं कि देश का निर्माण इनके हाथों में है। परिणामतः देश और समाज की नियति को निर्धारित करनेवाले शिक्षा क्षेत्र की अनेकों विसंगतियों पर अपनी अनेकों रचनाओं में व्यंग्य बाण चलाए हैं।इन व्यंग्यों में एक ओर परसाई का क्रोध अपने पूरे आवेग के साथ प्रकट हुआ है तो दूसरी ओर इन विसंगतियों के शिकार बने हुए मासूम छात्रों के प्रति हार्दिक अनुकंपा अंतर्धारा के रूप में प्रवाहित हुई है। इन कहानियों में परसाई की आस्था मानव मूल्यों पर है, व्यवस्था को सही दिशा देने की ओर है।

"एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया" - कहानी परसाई की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इसमें हमारे विश्वविद्यालयों के आचार्यों की राजनीति, ज्ञान के प्रति उनकी अनास्था, अपने स्वार्थ की साधना के लिए किसी भी मार्ग को अपनाने से न हिचकिचानेवाला साहस, अप्रामाणिकता, छात्रों को घर के नौकरों के जैसे अपने घर

के कार्मों के लिए लगाने की अनैतिकता और अपना उल्लू सीधा करने के लिए छात्रों की नियति से खिलवाड़ करने की स्वेच्छा प्रवृत्ति जैसे अमानवीय - अनुदार प्रवृत्तियों का प्रस्तुत कहानी में एक एक करके परसाई ने उद्घाटित करके व्यंग्य किया है। यह कहानी आदि से अंत तक उच्च शिक्षा क्षेत्र के कीचड़ को, विसंगतियों को सशक्त ढंग से उभारकर रखती है। परसाई ने इस कहानी को आधुनिक पुराण माना है क्योंकि इसका कोई अंत नहीं है और उनका कहना है कि इस पुराण से आधुनिक युग के सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक जीवन पर विशद प्रकाश पड़ता है।

एकलव्य और द्रोणाचार्य का प्रसंग महाभारत का अत्यंत करुणात्मक, हृदयविदारक रूपितोड़ है जिसमें जातीय दंभ, और ईर्ष्या, को मनुष्य की अत्यंत सबल और अदमनीय वृत्तियों के रूप में स्थापित करके इन्हें मनुष्य की अमानवीयता, पशुता, क्रौर्य का अट्टहास दिखाया गया है। दो-वर्णों और दो वर्गों के बीच की खाई और संघर्ष का ऐसा क्रूर उदाहरण इतिहास में बहुत ही कम मिलते हैं। तो भी ज्ञानदान को जिस भूमि पर श्रेष्ठदान माना गया है, वहीं पर ज्ञान का निराकरण करके दुत्कारना और अपने व्यक्ति की भलाई के लिए पराये व्यक्ति को बलीवेदी पर चढ़ाना महाभारत का क्रूर व्यंग्य है। एकलव्य और द्रोणाचार्य तथा परशुराम और कर्ण के प्रसंग द्रष्टव्य हैं। महाभारत के कुछ ये प्रसंग आज भी अपनी प्रासंगिकता को बनाये रखे हुए हैं। इतिहास का पुनरावर्तन होता आ रहा है। समय सरकता गया है, मगर मनुष्य की मानसिकता तो ज्यों की त्यों रह गई है जिसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है। परसाई उन द्रोणाचार्य, अर्जुन तथा एकलव्य के पौराणिक संदर्भ को आज के संदर्भ में चरितार्थ समझाते हैं, उनके चरित्रों को आज के आचार्यों व शिष्यों में ताल-मेल बिठाते हैं। इस दृष्टि से एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया " एक श्रेष्ठ व्यंग्य है जिसमें हमारे शैक्षिक जगत की वास्तविकताओं को सच्चाइयों को नंगा किया गया है। प्रस्तुत कहानी में जिन अंगों पर व्यंग्य किया गया है, वे इस प्रकार हैं -

(क) विश्वविद्यालयों में अध्यापकों को नाना वर्गों में बाँटा गया है, इनमें से एक है रीडर वर्ग। यह रीडर वर्ग एक बदनाम है। जो रीडर होता है, उसको अध्यापकत्व में निष्णात होना चाहिए, वर्ग में अच्छा पढ़ाना चाहिए। मगर वह बढ़कर पढ़ाता

नहीं । वास्तव में शब्दशः वह रीडर है याने पढ़नेवाला, कुंजियाँ पढ़नेवाला । ऐसे रीडरों पर व्यंग्य करते हुए परसाई लिखते हैं - "रीडर ।पढ़नेवाला। उस अध्यापक को कहते थे जिसे कक्षा में पढ़ाना नहीं आता था और वह पाठ्य पुस्तक से या कुंजी कक्षा में पढ़कर काम चला लेता था ।[53]

।ख। हमारे आचार्यों के संबंध शिष्यों से गहरे नहीं होते बल्कि उनके माँ-बाप से ज्यादा होते हैं क्योंकि अपना काम बनवाने के लिए इन शिष्यों के माँ-बाप की सिफारिश, धन दौलत, का उपयोग काम आ सकता है । और ये उन शिष्यों की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखते जिनके माँ-बाप अफसर नहीं हैं, धनी नहीं हैं । इस असमानता का व्यंग्य करते हुए आचार्य द्रोणाचार्य का उदाहरण देते हैं अर्जुनदास के पिता के पीछे पड़े हुए थे । "अर्जुनदास एक धनी बाप का बेटा था, जिसका समाज में प्रभाव था और राजदरबार में भी उनका मान होता था । आचार्य रोज़ अर्जुनदास के घर जाते थे और अर्जुनदास भी उनके घर आता था ।[54] गुरु-शिष्यों के संबंध नितांत स्वार्थवश इस प्रकार बंधे हुए थे कि दोनों अभिन्न से थे । आचार्य शिष्य के धनी परिवार से आकृष्ट थे तो गुरु के आचार्यपद से शिष्य आकृष्ट था । आपस में दोनों अपना अपना लाभ उठाना चाहता था । मगर एकलव्य गरीब था, गुरु से साक्षात्कार भी कम होते थे ।

।ग। परसाई आज के छात्रों की मानसिकता का व्यंग्य करते तो हैं साथ ही इस मानसिकता को प्रश्रय देने, पोषित करने, उनके मन को भ्रष्ट करने के प्रति जिम्मेदारों के रूप में इन तथाकथित आचार्यों को कभी क्षमा नहीं करते । क्योंकि शैक्षिक जगत को भ्रष्ट ही नहीं अपितु उसकी पवित्रता पर कलंक लगाने में इन आचार्यों का ही योगदान ज्यादा होता है । गिरे हुए ये आचार्य अपने पद की गरिमा को बनाये रखना तो दूर, अपने सहयोगी आचार्यों की निंदा सुनने में जितनी दिलचस्पी दिखाते हैं, उतनी दिलचस्पी अध्ययन में लगाते तो देश का भाग्य ही बदल जाता । कहानी का निम्नांकित संवाद शिक्षा जगत की भ्रष्टता, खुदगर्जी, कलुषित वातावरण, गुरु-शिष्य के हीन संबंधों को स्पष्ट रेखांकित करता है -

"आचार्यवर, मैं आपके घर में किराना, कपड़ा, सब्जी, आदि पहुँचाता हूँ कि नहीं

"हाँ वत्स पहुँचाते हो।"

"आचार्यों को सिनेमा-नाटक कौन दिखाता है? बच्चों को मिठाई, खिलौने और कपड़े कौन खरीद देता है?"

"तू ही बेटा, तू ही सब करता है।"

"क्या कोई दूसरा शिष्य है जो आपके मुँह पर आपकी प्रशंसा मुझसे अधिक करके आपके मन को प्रसन्न करता हो?"

"नहीं, कोई नहीं।"

"क्या कोई ऐसा अध्यापक बच गया है, जिसकी निंदा न करके मैंने आपके हृदय को दुखाया हो।"

"इनमें कोई नहीं बचा, वत्स।"

"क्या यह सत्य नहीं कि आपके रीडर बनने में मेरे पिताजी का बड़ा हाथ था?"

"यह सर्वथा सत्य है।"[55]

- उपरोक्त संवाद से आचार्यों के उन आचरणों का व्यंग्य किया गया है जिनकी करना एक आचार्य से अपेक्षा की नहीं जाती है। आचार्यों के गिरे हुए व्यक्तित्व पर यह व्यंग्य-चोट है।

(घ) एकलव्य परिश्रमी, कुशाग्र बुद्धिवाला है जो कि फर्स्ट इन फर्स्ट आने की योग्यता रखता है मगर अर्जुनदास की राजनीति, आचार्यवर की स्वार्थांधता इस एकलव्य को धक्का देने की सोचती है। अर्जुनदास आग्रह करता है कि उसे फर्स्ट इन फर्स्ट क्लास मिल जाय क्योंकि वह विदेश जाना चाहता है। यदि उसे यह अनुग्रह नहीं मिलेगा तो उससे जिस परंपरा का भंग होगा, वह परंपरा है - "यह मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो इतना जानता हूँ कि यदि मैं प्रथम नहीं आया तो गुरु की महिमा भंग हो जायगी, आगे कोई शिष्य गुरु की सेवा नहीं करेगा और इस अधम परंपरा को आरंभ करने का कलंक आपको लगेगा।"[56] शिष्य की कुत्सित अभीप्सा को पूरा करना मानों एक परंपरा है जिसका व्यंग्य यहाँ किया गया है।

(ङ) गुरु के गुरुदक्षिणा पूछे जाने पर एकलव्य का यह उत्तर, "मैं क्या दे सकता हूँ

मुख्तार । न मेरी किराना की दुकान है, न हौजरी की । मेरे पिता ने भी ईमान बेचते नहीं बना, इसलिए निर्धन हूँ.[57] उन बड़े छात्रों की असहायकता, मजबूरियों को रेखांकित करता है, साथ ही आज के आचार्यों के कुत्सित और घिनौने व्यवहारों का भी पर्दाफाश करता है । खास छात्र को अनुचित सहायता करने के लिए एक छात्र दाहिने हाथ की अंगूठी तक कटवा लेने के लिए अपने हाथ से सरौता देना एक आचार्य का अमानवीय व्यवहार है । इस आचार्य का हर व्यवहार उसके व्यक्तित्व एवं पद की गरिमा पर व्यंग्य करता है ।

[ग] परसाई ने अपनी कहानियों में ऐसे भ्रष्ट आचार्यों के अनाचारों का सामना उनके बुद्धिमान शिष्यों से करवाया है । ये शिष्य या तो ऐसे आचार्यों को ही चकमा देते हैं या तो एकदम और बुद्धिमानी से उनका विरोध करते हैं । इस कहानी का एकलव्य आधुनिक गुरु समाज के षड्यंत्रों से चूँकि भलीभाँति परिचित है, वह अपने बायें हाथ से भी लिखना अभ्यस्त कर चुका है । वह अपने आचार्य के सामने इस तथ्य का उद्घाटन करने के द्वारा आज के आचार्यों की नैतिकता एवं आदर्शों का व्यंग्य करता है । और जब वह अपने गुरु की मनोकामना से अवगत हुआ तो तुरंत उसने उपकुलपति से इस बात की शिकायत की । फलतः द्रोणाचार्य तथा अर्जुनजी परीक्षा बोर्ड से निष्कासित किए गए ।

[घ] पाप और पुण्य के प्रति आस्था से बोलनेवाले आचार्य की दृष्टि में वह युग, जहाँ ऐसे एकलव्य है, पाप युग है और वह युग, जहाँ एकलव्य ने बिना आगे-पीछे सोचे अपनी अंगूठी एकदम काटकर दे दी, पुण्य युग है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में परसाई ने शिक्षा जगत की भ्रष्टता को उजागर करने के साथ ही साथ उनपर निर्मम व्यंग्य किया है ।

"आचार्यजी, एक्सटेंशन और ब्रगीचा" कहानी में भी परसाई ने एक ऐसे आचार्य का चरित्रांकन किया है जो अपने आचरणों के कारण व्यंग्य का स्रोत बना हुआ है । उनके व्यक्तित्व की विसंगतियाँ, मुखौटावाला, चेहरा, ढोंगी जीवनविधान आदि के कारण वह आचार्य अपने पद की गरिमा को भी लाँघकर तुच्छ व्यवहार करने लगते हैं कि एकदम

कलात्मक व्यक्तित्व के रूप में सामने आते हैं । परसाई ने इस कहानी में उन गुणों को उभारकर सामने रखा है जो व्यंग्य को जन्म देते हैं -

(क) स्नेह वास्तव में मनुष्यों को निकट लाता है, प्रेमपूर्ण व्यवहारों से दो व्यक्तियों के बीच मधुर संबंध स्थापित होते हैं, मगर अजीब बात यह है कि लेखक जो कि इस कथा का नायक है तब डरता है, भयभीत होता है जब जब आचार्यजी स्नेह प्रदर्शन करते हैं । आचार्यजी के शब्द कोश में "स्नेह" चापलूसी, स्वार्थसाधना का पर्याय शब्द बन गया है । उनके "स्नेह" का मतलब है हानी । लेखक इस स्नेह की प्रगाढ़ता के कारण जो अनुभव करता, उसकी तालिका देते हैं - "उनके स्नेह के अनुपात से मैं उनके स्वार्थ का अनुपात समझने लगा । तीन सेकेंड गले लगाकर वे मेरी 4-6 किताबें ले गए । एक मिनट आलिंगन करके उन्होंने अपने प्रतिद्वंद्वी के खिलाफ मुझसे अखबार में लेख लिखवा लिया । दो मिनट मुझे हृदय से लगाया और मुझसे 3-4 सौ कापियाँ जँचवा लीं । लगातार एक सप्ताह तक मुझे तीन मिनट की दिन के हिसाब से गले लगाकर उन्होंने अपने आवारा बेटे की शादी मेरी मारफत मेरे परिवार की लड़की से करा ली - और लड़की के माँ-बाप मुझे अभी तक गाली देते हैं । हृदय से लगाने पर भी उन्हें लगता कि जोर कम पड़ेगा, तो वे मेरे बड़े भाई की याद करके आँखों में आँसू ले आते और मैं समझ जाता कि आज कोई बड़ा काम मुझसे करवायेंगे ।[58] यह उनकी परिष्कृत विशेषताएँ हैं । आचार्यों के घिनौने स्वभाव का व्यंग्य यहाँ है । वे स्वार्थ के पक्षपाती हैं, अपनी कापियाँ स्वयं नहीं जाँचते हैं । दूसरों पर कीचड़ लगाने के लिए औरों का उपयोग कर लेते हैं, यहाँ तक कि शादी करने-कराने के लिए भी । अपने स्वार्थ की साधना के लिए औरों के तलुए चाटने के लिए तैयार रहनेवाले इन आचार्यों का व्यंग्य प्रस्तुत कहानी में किया गया है ।

(ख) परसाई मानते हैं कि ये लोग कभी सुधरनेवाले नहीं होते हैं । एक आचरण से उनके समूचे व्यक्तित्व का अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है । लेखक का पत्र लेकर आचार्यजी उनके मित्र के पास गए तो वहाँ शराफत से काम नहीं आते, बदले में वहाँ निंदा से उनकी कृपा हासिल करने का प्रयत्न करते हैं । इस स्वभाव का व्यंग्य करते हुए

परसाई लिखते हैं - "मैंने पूछा - पर उन्होंने मेरी निंदा की होगी न ? सच बताओ । उसने झिझककर कहा - 'हाँ, की थी । पर तुमने कैसा जाना ?' मैंने कहा - मैं जानता हूँ, वे बहुत सुलझे हुए विचारों के आदमी हैं, जिससे फायदा उठा रहे हैं, उसकी प्रशंसा और बाकी सब की निंदा- ऐसा क्लियर थिंकिंग है उनका ।"[59]

(ग) आचार्यों के घिनौने, स्वार्थी स्वभाव का व्यंग्य करते परसाई थकते नहीं । क्योंकि अपने इन स्वभावों के कारण वे अपने परिवेश को अत्यंत आतंक बनाते हैं, हितैषी लगते-लगते हानि पहुँचाने की यह प्रवृत्ति हीन होती है । इसलिए उनके स्वभाव का व्यंग्य परसाई ने बारीकी से किया है - "जिसे वे नष्ट करने की कोशिश में लगे हैं, वह अगर मर जाय तो रोज पढ़ेंगे । कविताएँ सुनकर भाव विह्वल हो जाएँगे ...पर आँसू पोंछकर जूनियर को सस्पेंड कराने की कार्यवाई करने लगेंगे।....प्रेमिका को गले लगायेंगे तो हिसाब भी करते जायेंगे कि इसका नेकलेस चुराकर कैसे बेचा जा सकता है । बच्चे को चूमेंगे तो वात्सल्य के साथ यह हिसाब भी करते जायेंगे कि बड़ा होकर यह कितना कमायेगा और मुझे उसमें से कितना देगा ।[60] अपने स्वभाव को विरोधाभासों का अंबार बनाकर हर व्यवहार में लाभ की लालसा, स्वार्थ का लोभ देखकर जीनेवाले ये आचार्य अपनी बुद्धि के प्रति अत्याचार करते हैं । इनके स्वभाव के वैचित्र्यों का लंबा ब्यौरा देकर परसाई मनुष्य स्वभाव की गहराइयों में जाकर उनको उधेड़कर व्यंग्य करते हैं

(ड.) परसाई ने आचार्य जी की शराफत का व्यंग्य किया है क्योंकि इनका हर शब्द शब्द में उछला हुआ होता है मगर उसका परिणाम इतना कष्टदायक होता है कि उनके बुरे गुणों से नहीं अपितु उनकी शराफत से सचेत रहना पड़ता है । शब्दों के सदुपयोग की कला में निष्णात आचार्य शब्दों के सहारे धोखा देने में अव्वल दर्जे के होते हैं । उन्होंने केवल तुम्हारा, तुम्हारा अपना, केवल मेरे जैसे शब्दों के जाल में लेखक को ठगाया किन्तु इन्होंने नोटिस जारी की तो वे 'दाताऽनुदात' भी हो गए । अर्थात् इनके जीवन में इतनी विसंगतियाँ मौजूद रहती हैं जिनके कारण व्यक्तित्व की पहचान तक नहीं की जा सकती है ।

।घ। ये आचार्य तटस्थवृत्ति मनुष्यों से ही नहीं अपितु प्रकृति से भी वैसा ही व्यवहार करते हैं जोकि अमानवीय है । एक बार एक्सटेंशन मिला तो खुशी से फूले न समाकर बागबानी की, इस बगीचे में खिले फूल-पत्तों से ऐसा व्यवहार, प्रेम करने लगे कि मानों कि प्रकृति उनके जीवन का अविभाज्य अंग हो । मगर विसंगति इस बात में है कि उनको जबकि यह खबर मिली कि इन्हें एक्सटेंशन नहीं मिला है, और डा दीनानाथ आ रहे हैं, ऐसा लगने लगे कि अपने क्रोध को प्रकृति पर बरसाने लगे । उन्होंने पेड़-पौधों को पानी देना भी बंद कर दिया । और जीते जीते पौधों के सूखे डंठलों को इकट्ठा करके उन्हें जलाकर अपने द्वेष को मूर्तरूप दिया । बुद्धिजीवियों के द्वेष की चरमसीमा को दर्शाकर परसाई ने उनके बहुरूपों का व्यंग्य किया है ।

परसाई भारतीय विश्वविद्यालयों में आये दिन जो रिसर्च हो रहा है, उसको मात्र चर्वित चर्वण मानते हैं, और मानते हैं कि इस रिसर्च में न तथ्य का उद्घाटन होता है न तथ्यों का विश्लेषण । रिसर्च यानि शोधकार्य की इस बुरी दशा के लिए वह आचार्यों को ही दोषी ठहराते हैं क्योंकि इन आचार्यों की हुकूमत शाही और शोषक प्रवृत्ति ही ने छात्रों की जिज्ञासु प्रवृत्ति को इस प्रकार कुचल डाला है कि आज के शोध छात्रों के मन में ऐसी भावना घर कर गई है कि पी.एच.डी. की उपाधि के लिए अध्ययन की अपेक्षा चापलूसी, आचार्यों एवं उनके बीबी-बच्चों की सेवा करना अपेक्षित है, जो शिष्य को एक मंतव्य तक पहुँचा सकते हैं । "रिसर्च का चक्कर" परसाई की जबरदस्त व्यंग्य कहानी है जिसमें उन्होंने शोधजगत की भयंकर विसंगतियों पर कटाक्ष किया है जिनके कारण शिक्षा जगत की पवित्रता नष्ट हो रही है, और समाज भ्रष्ट होता जा रहा है । "रिसर्च" किस प्रकार दिन ब दिन अपकर्ष होता जा रहा है, इसका गंभीर चिंतन प्रस्तुत कहानी और अन्यान्य कहानियों में प्राप्त होता है ।

शोध जगत की विसंगतियाँ हैं -

।क। परसाई के अनुसार आज रिसर्च शोधछात्रों की आस्था के फलस्वरूप नहीं हो रहा है । यह खाली समय में बिताने का एक अच्छा साधन है । यदि कहीं नौकरी नहीं मिल तो बस, रिसर्च में शामिल हो जाने की परिपाटी का व्यंग्य परसाई ने यों किया है -

"विश्वविद्यालय में "रिसर्च" करने लगो । यह नौकरी नहीं है, फिर भी इज्जत देती है । बहुत से लोग पुलिस के डर से रिसर्च करते हैं । एम.ए. करने से नौकरी मिलने तक जो काम किया जाता है, उसे रिसर्च कहते हैं । यह दफ्तर जाने के पहले किया गया हरिस्मरण है । इसलिए अधिकांश शोधनिबंध विष्णु सहस्रनाम हैं ।[61]

(ख) विश्वविद्यालयों के आचार्यों की राजनीति, गुटबंदी, अपने ही सहयोगी शिक्षकों के प्रति विद्वेष की भावना के शिकार होते हैं छात्र । उनका जीवन अभिशप्त होता है । शिक्षा क्षेत्र व्यक्तिगत द्वेष एवं पीड़ा से किस अधःपतन की ओर आए दिनों में जाता रहा है, इसका व्यंग्य परसाई ने प्रस्तुत कहानी के शोध छात्र की स्थिति का वर्णन करते हुए किया है - "मेरे विभागाध्यक्ष तब मुझसे नाराज थे, क्योंकि मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध पहला दर्जा ले आया था । बात यह थी कि मेरा एक सहपाठी गुरुदेव को घर तक छू पहुँचाता था, और उनका बिस्तर बिछाकर उन्हें लोरी गाकर सुलाता था । मैं उन्हें चौराहे तक पहुँचाता था - क्योंकि मुझे लोरी नहीं आती थी ।[62] यह हमारी शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग्य है जहाँ के गुरु मूल्य इतने भ्रष्ट और कलुषित हो चुके हैं कि सुधार लाना भी मानो असाध्य सा हो जाता है ।

(ग) इस देश में आचार्यों को "देवता" कहा गया है । जबकि परसाई ने इन्हें कलुषित मानसिकता का शिकार माना है यहाँ जिन आचार्यों का व्यंग्य किया है, उनकी चरित्रहीनता की कोई सीमा नहीं है । इसी कारण से छात्रों में आत्मबल नैतिक जागृति, स्वतंत्र व्यक्तित्व को पनपने ही ही नहीं देते, बदले में गुलामी का पाठ पढ़ाते हैं, तलुए चाटने की कला में विद्यार्थियों को पारंगत करते हैं । इस प्रवृत्ति पर परसाई का व्यंग्य है - " मैंने आचार्य को नमस्कार किया और अपना परिचय देने ही वाला था कि वे छात्र उठे और मुझे पकड़कर बरबस आचार्य के चरणों में पटक दिया । एक ने उनके चरणों की धूल मेरे मस्तक पर लगा दी ।....इस कमरे में जो भी आता है, उसे आचार्यजी को साष्टांग दंडवत् प्रणाम करना पड़ता है और उनके चरणों की रज माथे पर लगानी पड़ती है । तुम देखते नहीं हो, भक्तों के लिए चरणरज हमेशा तैयार रहती है ।[63] गुलामी के संस्कार बोकर उत्तम समाज की कल्पना करना कितना असाध्य है, इसका अनुमान प्रस्तुत व्यंग्य में ज है ।

(घ) विश्वविद्यालय जैसे उच्च शिक्षा संस्थानों में ज्ञान का कम किन्तु जाति-बिरादरी का ज्यादा आदर किया जाता है क्योंकि प्रवेश पाने के लिए आए विद्यार्थी की जाति पूछी जाती है । ज्ञान पिपासा से आना इन आचार्यों की दृष्टि में अलौकिक है और अजीब बात यह है कि यह ज्ञानपिपासा आचार्यों के पल्ले नहीं पड़ती है । इसलिए ही ज्ञानार्जन करने के इरादे से आनेवालों को ये "प्रौढ़ मानस" वाले नहीं मानते । जाति-उपजाति, गुट जैसे अलौकिक मुद्दों के आधार पर शोधछात्रों को प्रवेश दिया जाता है । इस संबंध में स्वयं आचार्य का कहना है - " तुम्हारी उम्र कम नहीं है, पर तुममें अभी भी स्कूली बच्चों की तरह ज्ञान के प्रति उत्साह है । यह प्रौढ़ मानस का लक्षण नहीं है । अच्छा पहले यह बताओ, तुम कौन जातक हो ?"...मेरी उलझन देख देखकर आचार्य ने पूछा - "ब्राह्मण कि कायस्थ ?"
मैंने कहा -"दोनों नहीं।"
उन्होंने पूछा - "मगर तुम्हें कौन अच्छा लगता है - ब्राह्मण कि कायस्थ ? यहाँ "ब्राह्मणों" ने अपना 'ब' गुट बना रखा है कि जिसके नेता हैं डॉ.शर्मा । हमने भी अपना गुट बना रखा है - कायस्थ गुट । इसे उसके नेतृत्व का भार मुझ अकिंचन पर है । तुम अगर ब्राह्मण गुट के प्रति निष्ठावान हो, तो डॉ.शर्मा के पास जाओ । वे तुम्हारा प्रबंध करेंगे । अगर...

मैंने पूछा - "गुरुदेव, क्या कोई ब्राह्मण गुट में शामिल नहीं हो सकता ?"

उन्होंने कहा - 'हो सकता है । स्वार्थ जाति और धर्म से ऊपर की निष्ठा है।'[6] यह संवाद आचार्य की संकीर्ण मानसिकता का द्योतक है जिसका व्यंग्य परसाई ने किया है । जाति-बिरादरी, अपना गुट पराये गुट की राजनीति ने शिक्षा जगत को किस प्रकार भ्रष्ट किया है, इसकी ओर यहाँ इशारा है ।

(ङ.) अकादमिक याने अध्ययन के क्षेत्र में भी इन आचार्यों का रवैया बड़ा लज्जाजनक है । इतना लज्जाजनक कि इनके हाथों शिक्षा का अवमूल्यन हो रहा है । रिसर्च जैसे गंभीर विषयों पर इनकी हल्की परिभाषाएँ चौंका देनेवाली हैं - "तुम रिसर्च शुरू करो । इस पर पहले "रिसर्च" का अर्थ समझ लो । इसका अर्थ है - फिर से खोजना यानी जो

पहले ही खोजा जा चुका है, उसे फिर से खोजना रिसर्च कहलाता है । जो हमारे ग्रंथों में है, उसे तुम्हें फिर से खोजना है । भारत के विश्वविद्यालयों में जो प्रोफेसर हमारे विरोधी हैं उनके ग्रंथों और निष्कर्षों को तुम्हें नहीं देखना है, क्योंकि तब तुम्हारा काम रिसर्च न होकर "सर्च" हो जायेगा।"[65] इस परिप्रेक्ष्य में इन आचार्यों द्वारा कराये जानेवाले रिसर्च का अत्यंत मार्मिक व्यंग्य करते हैं । इनका शोध, विषय को लेकर नहीं, ज्ञान के दिगंतों को विस्तार करने को नहीं अपितु अपने आचार्य के विरोधी गुट के आचार्यों के व्यक्तिगत मामलों को लेकर रंगीन बातें इकट्ठा करके सुनाने के लिए कटिबद्ध था । कौन आचार्य कहाँ, किसके साथ जाता है, इसका शोध ही असल में आचार्य की दृष्टि में शोध है । जबकि इस कहानी के नायक ने विरोधी गुट का आचार्य किस स्त्री के साथ कार में सफर कर रहा था, उसके बारे में अनुमान पुष्ट करके कहा तो इस शोध निर्देशक ने तारीफ की - "वाह ! इसे कहते हैं शोध-प्रतिभा । मैं इतने सालों से रिसर्च करवा रहा हूँ, पर यह बात मेरी दृष्टि से भी ओझल हो गई । यंगमैन, तुम असाधारण हो । तुम्हें शोध कराकर मुझे गौरव मिलेगा ।[66] आचार्य ने इस बात का शोध करने के लिए छात्रों को निर्देश दिया कि अभी उस राज्य में मुख्यमंत्री जो बदला है, उसके साथ इस विश्वविद्यालय के उपकुलपति का संबंध कैसा है ?

(घ) अधिकार, पदोन्नति के लिए आचार्यों की होड़ा-होड़ी जो आए दिन चालू रहती है, और उन्हें हासिल करने के लिए ये नोबी प्रोफेसर बिना किसी लज्जा के क्या-क्या नहीं करते, कराते, इसकी चरमसीमा का जीता जागता व्यंग्य इस बात में हैं कि शर्मा के डीन होने से रोकने के लिए डॉ. सक्सेना अपने शोध छात्र के हाथ में गांजा देकर कहते हैं कि इसे ले जाकर डॉ. शर्मा के घर में डाल दे । अपने आचार्य से यह बात सुनकर कथानायक शोध छात्र डरे, जो भागा फिर वहाँ नहीं आया । शोध कार्य से वह तंग आ चुका था । - भारतीय विश्वविद्यालयों में रिसर्च के स्वरूप और उसकी गति, प्रगति का भयंकर स्वरूप यह है । ईर्ष्या, स्वार्थ, आपसी होड़ा-होड़ी, अनैतिक बातों ने हमारी शिक्षा-संस्थानों की पावित्र्यता को एकदम भ्रष्ट कर दिया है । शिक्षित समाज के कलंक के रूप में रहनेवाले इन तथाकथित आचार्यों के निचले स्तर के व्यवहारों का पर्दाफाश यहाँ किया गया है ।

"आचार्यजी, एक्सटेंशन और बगीचा" - कहानी में भी परसाई ने "रिसर्च" को लेकर जो व्यंग्य किया है, यहाँ के आचार्य भी उन दोनों से किसी भी बात में कम नहीं हैं। क्योंकि ये रिसर्च का विज्ञापन निकालते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि उन्हें कैसा छात्र चाहिए। अपनी जरूरत के अनुसार शोधार्थी विद्यार्थी को लेते। इसका परसाई व्यंग्य करते हुए लिखते हैं - "विभाग में काम करने का उनका अपना तरीका था। वे शोध करवाते थे। शोध-छात्र के लेने में वे एक सिद्धांत का पालन करते थे। एक गल्ला व्यापारी का लड़का लेते, एक कपड़ा व्यापारी का लड़का लेते, एक कपड़ा व्यापारी का, एक हौजरी के दुकानदार का। फिर कोई जगह खाली बचती तो सब्जी के व्यापारी के लड़के को ले लेते। कभी भी और किराना व्यापारी के लड़के को भी चान्स मिल जाता। हर साल विश्वविद्यालय में लड़के इ शोर मचाते - आवश्यकता है एक किराना व्यापारी के लड़के की जिसे डाक्टरेट चाहिए। शोध का निर्देश किराने की मात्रा और क्वालिटी पर निर्भर करेगा। किराने के "सैंपल" सहित दरख्वास्त दो।[67] शोध का स्तर कहाँ तक आ गया है, इसका व्यंग्य उपरोक्त विज्ञापन में ही छिपा हुआ है। "इति रिसर्चायित" कहानी में हमारे शोधनिर्देशकों के अनुग्रह से एक साधारण घसियानुमा नेता भी महान व्यक्ति ही नहीं महान कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। सन् 2950 तक हमारे यहाँ के शोध का स्तर कितने नीचे गिर सकेगा, इसका अनुमान परसाई के इस व्यंग्य से लगा सकते हैं। एक नेता की रद्दी पंक्तियाँ को प्राचीन साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में 2950 में व्याख्या की जाएगी। उसे महान राष्ट्रकवि के रूप में प्रतिष्ठापित किए जाने के उपक्रम को परसाई शोध की विडंबना मानते हैं। साधारण नेता की शिला पर खुदी हुई चार पंक्तियों को कैसे हमारे शोधकर्ता महान कविता सिद्ध करते हैं? इसका उत्तर यह है - "राबर्ट ने शंका की - "लेकिन सर, वैसे देखा जाये, तो ये पंक्तियाँ बहुत रद्दी हैं..." डाक्टर साहब ने डाँटा - राबर्ट, तुम्हें शोध का सबसे पहला नियम नहीं आता। अरे जो प्राचीन है वह सबसे उत्तम है। बुरा केवल वर्तमान है। और शोध का प्रयोजन ही यह है कि जिसमें जो चीज न हो, उसे खोजा जाये। इन पंक्तियों में काव्य गुण नहीं हैं जो तुम्हें अपनी ओर से आरोपित करना होगा। वह महाकवि था। कोई हँसी-खेल नहीं है।[68] शोध की इस नवीन विधा का व्यंग्य यहाँ मुखरित हुआ है।

परसाई के द्वारा चित्रित ये सभी आचार्य एक दूसरे से इतने मिलते जुलते हैं कि बस, नाम अलग-अलग हैं। सभी चोर हैं। अध्यापकार्य के प्रति एकदम लापरवाह हैं। और यहाँ के छात्र आधुनिक पीढ़ी के होने के कारण इनमें बुद्धिमत्ता है जोकि भ्रष्ट वातावरण में कलुषित हुई है। अपने चारों ओर माहौल के कारण अपने आचार्यों से भी बुद्धिमान हो चुके हैं। उदाहरण के लिए एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया, दूसरे छात्र ने गाँजा अन्य आचार्यजी के घर में बैठकर आने को इन्कार किया। इन कहानियों में परसाई ने छात्रों से इन आचार्यों का व्यंग्य करवाया है। अर्थात् ये आचार्य अपने छात्रों की नजर में भी ये गिरे हुए हैं।

"आइनकिंग" में परसाई ने हमारे विश्वविद्यालयों में उपकुलपति जैसे उच्च पद के लिए होनेवाली नियुक्तियों पर व्यंग्य किया है जो कि साधारणतः पोलिटिकल होती हैं। और इस प्रकार नियुक्त उपकुलपति भी अपने व्यक्तित्व को खोकर, शैक्षिक-मर्यादाओं को विस्मृत करके, छात्रों को, अपने गुरु समाज को, समाज एवं देश को भाड़ में जाने देकर अपने आराध्य नेताओं के चेले, चमचे बनकर उनकी मर्जी पर विश्वविद्यालयों का प्रशासन चलाते हैं। फलतः आजकल विश्वविद्यालयों में शिक्षा की पवित्रता, उसका स्तर घट गया है। हर विश्वविद्यालय राजनीति के अखाड़े बन गए हैं। परसाई इसका व्यंग्य एक ही नेता के इस वक्तव्य के द्वारा करते हैं - "हाल ही में एक नये वाइस चान्सलर चुने गए थे, जिनकी विजय के लिए राज्य सरकार ने चतुरंगिणी सेना विश्वविद्यालय पर चढ़ाई की थी - मंत्रिमंडल, अफसर, सेठ साहूकार और राजनेतागण - चतुरंगिणी। आइनकिंग बोले - वे तो पिछली बार ही जीत जाते, लेकिन मैंने ही ग्यारह वोट उनके खिलाफ दिला दिए थे। बात यह थी कि मैं था उस वक्त जनसंघ में और वे थे प्रजा समाजवादी दल में। मैंने कह दिया कि तुम कुछ भी करो, तुम्हें जीतने नहीं दूँगा...वे आगे बढ़े - "आखिर वे इस बार जीत ही गए मैंने तो साफ कह दिया कि भाई जो कुछ करो, जरा पूछ लिया करो। अब तो दस-पाँच दिन में आकर मिल जाते हैं।[69] यह है व्यंग्य इन विश्वविद्यालयों पर, जहाँ बुद्धिजीवि, वाइसचान्सलर प्रशासन नहीं चलाते, अपितु नेता चलाते हैं, नेताओं के चेले चलाते हैं। परसाई शिक्षा जगत की इन तमाम विसंगतियों को खुले रूप में निर्भीकता से करते जाते हैं जोकि देश को अधोगति की ओर ले जा रही हैं।

उच्च शिक्षा संस्थानों के अधिकारी, सुविधाभोगी साथ ही और भी अधिक से अधिक सुविधाओं के लिए तरसनेवाले भ्रष्ट आचार्यों तथा उपकुलपतियों की तुलना, परसाई जी की एक और विशिष्ट कहानी "त्रिशंकु" के स्कूल मास्टर से कर सकते हैं। वह साधारण स्कूल मास्टर स्कूल में अच्छा पढ़ाता है, लोभी नहीं। परिश्रमी है किन्तु समाज ऐसे मास्टरों की परवाह नहीं करता है। ठहरने के लिए एक मकान तक उन्हें मयस्सर नहीं होता है। त्रिशंकु मास्टर एक मकान की तलाश करते-करते अपने रहनेवाले मकान से भी हाथ धो गए। उनकी लाचारियों, त्रासदियों के प्रति हार्दिक मानवीय अनुकंपा दर्शाते हुए परसाई समाज और उन प्रतिष्ठित लोगों के प्रति व्यंग्य किया है जो अपनी प्रतिष्ठा के शिकार के रूप में इन लोगों का उपयोग करते हैं। यहाँ का इन्द्रदेव त्रिशंकु को इसलिए मकान देने से इनकार करता है कि त्रिशंकु गरीब है। "त्रिशंकु ने मकान की आशा छोड़ दी। इससे उसमें ताकत आ गई। वह कड़क कर बोला - "मैं क्यों नहीं रह सकता ? मैं क्या आदमी नहीं हूँ।" इन्द्र ने उसे फिर ध्यान से देखा और बोले "जो सिर्फ आदमी है, वह यहाँ नहीं रह सकता।" "मतलब?" त्रिशंकु ने पूछा। ...इन्द्र ने नाराजगी से उसे देखा और कहा - "सिर्फ आदमी यहाँ नहीं रह सकते। तुम्हारे पास मोटर है ? ट्रान्सिस्टर - सेट है ? रेफ्रीजरेटर है ? सोफा-सेट है ?" ...बच्चे पब्लिक स्कूल में पढ़ते हैं कि गंवारों के स्कूल में ? केबरेट के प्रकार जानते हो ? किस क्लब में जाते हो ?"[70] आधुनिक फैशनबाजी, प्रतिष्ठा झूठे प्रतिष्ठा ने निम्न मध्यवर्गीय समाज का जीना दूभर कर रखा है। परसाई ने अपनी इस विशिष्ट कहानी में इस वर्ग की त्रासदियों को जीया है और साधारण मास्टर की जिंदगी की मजबूरियों को दर्शाया है। साथ हमारी सामाजिक व्यवस्था का व्यंग्य किया है।

उपकुलपतियों की नियुक्ति में राजनीति पक्षपात रहता है तो हाईस्कूल के मास्टरों की नियुक्ति में भाई-भतीजावाद सक्रिय रहता है जिसका व्यंग्य परसाई ने अपनी छोटी सी कहानी "दयोनाथ मास्टर हो गए" कहानी में मार्मिक रूप से किया है दयोनाथ को हाइस्कूल में अध्यापक के रूप में नियुक्त करना ही है क्योंकि । उसे

प्रो० घोंघाप्रसाद से नंबर बढ़वाकर पास कर दिया गया है। 2. वह मूर्ख है 3. वह समिति के सदस्य का साला है। ये ही महत्वपूर्ण अंग हैं। योग्यताएँ जिन्हें नजरंदाज किया नहीं जा सकता है।यहाँ का व्यंग्य यह है कि इस देश का कोई भी व्यक्ति यहाँ तक कि शिक्षासंस्थानों को चला रहे व्यक्ति शिक्षा स्तर के बारे में बिल्कुल अपरिचित हैं। अपने लोगों को अध्यापकों के रूप में नियुक्त करने की भरसक कोशिश करते हैं, इतना ही नहीं इसका आग्रह भी करते हैं - "इस्माइल को नौकरी दिलाना ही है। वह अंधे दर्जे का मूर्ख है। अगर उसे यहाँ जगह नहीं दी गयी तो दुनिया में कहीं जगह नहीं मिलेगी। अगर मेंबरों के लड़के, साले वगैरह यहाँ नौकरी नहीं पा सकते तो उनके मेम्बरों के बेटे और साले होने से क्या लाभ?[71] परसाई की कहानियों के नायक, नेता मुग्ध एवं मूर्ख हैं, ऐसी बात नहीं। मगर वे जान बूझकर राजनीति, भ्रष्टाचार करते हैं, धोखेबाज़ी में भागीदार होते हैं। प्रस्तुत कहानी में अत्यंत स्पष्ट रूप से यह बात निखर आयी है। आगे, नियुक्ति समिति जो साक्षात्कार करती है वह कितने खोखले और दिखावे के होते हैं, इसका कोई जवाब नहीं है। परसाई ऐसे साक्षात्कारों का व्यंग्य करते हुए एक नमूना पेश करते हैं। जिसको नौकरी नहीं देनी है उसे सामान्यतः कष्टदायक प्रश्न पूछे जाते हैं जबकि जिनको नौकरी देनी है, उन्हें ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं कि

पोंगूराम - आओ, बेटा इस्माइल, अच्छे तो हो।
इ०अली - अच्छा हूँ। पो०राम - "अम्मा तो मज़े में हैं?"
इ०अली - वे तो मर गई न? पो०राम - कब? झूठ बोलता है, बदमाश।"
इ०अली - आप ही ने तो कहा था।...
पो०राम - बहुत अच्छी बात है। अच्छा आज सबेरे तुमने क्या खाया था?
इ०अली - दाल-भात, रोटी-साग।
पो०राम - शाबाश।

फिर पोंगूराम ने कहा - कैसा तेज लड़का है, "इस बार इस्माइल मास्टर हो गए।"[72] यह हमारे साक्षात्कारों की बानगी है। इधर परसाई ने बेमतलब साक्षात्कारों का बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य यहाँ किया है।

परसाई ने आधुनिक समाज के नवीन बुद्धिजीवियों को विशेष रूप से व्यंग्य का

शिकार बनाया है । ये बुद्धिजीवि बुद्धिवादियों का मुखौटा पहनकर, अपने हर आचरण और व्यवहार, भावभंगिमा में कृत्रिम एवं असहज दिखाई देते हैं । ये वास्तव व में पाखंडी, दकियानूसी, मानवविरोधी चिंतन से पीड़ित रहते हैं । परसाई के ने बुद्धिवादी कहानी में ऐसे बुद्धिजीवि बुद्धिवादियों के जीवनविधान का व्यंग्य नाना आयामों में किया है ।

(क) ये बुद्धिवादी शब्दशः "बुद्धि" के धनी हैं, "इन्टलेक्चुअल्स" होते हैं । ये अपनी पुस्तकीय तरक्की में इतना विश्वास रखते हैं अपनी सर्वांगीण प्रगति में देश की सर्वांगीण प्रगति को देखते हैं । इनके अंगांगों की भावभंगिमाएं अजीब ढंग से की होती हैं - "बुद्धिवादी" में लय है, सिर घुमाने में लय है, हथेली बजाने में लय है, उठने में लय है, कदम उठाने में लय है, अलमारी खोलने में लय है, किताब निकालने में लय है, किताब के पन्ने पलटने में लय है ।[73] जो इसका अभ्यास करता है वह बुद्धिवादी है ।

(ख) बुद्धिवादी पढ़ता नहीं, पढ़ने का बहाना करता है, अभिनय करता है । इसलिए यदि कोई उससे मिलने के लिए आना चाहता है तो आधे घंटे के बाद में आने को कहता है, क्योंकि अपनी पुस्तकों को ऐसा बिखेरकर रखना चाहता है जिससे कि आनेवाले को मालूम हो जाय कि वे क्या पढ़ रहे हैं । इसके द्वारा अपना प्रभाव आनेवालों पर डालना चाहता है । इसके साथ बुद्धिजीवी बार-बार किताबों की तरफ हमारा ध्यान खींचने की कोशिश करता है । वह चाहता है, हम चकित हों और कहें - कितनी तरह की पुस्तकें पढ़ते हैं आप । इनके तो हमने नाम भी नहीं सुने । हम चकित होने में देर कर रहे हैं । बुद्धिवादी थोड़ा बेचैन होता है ।[74] बुद्धिवादियों के इस प्रदर्शनी और ढोंगी जीवन का व्यंग्य प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है ।

(ग) बुद्धिवादी सुपिरियारिटि कॉम्प्लेक्स से पीड़ित रहता है जिस पर थोड़ी भी आंच लगे, इसका सहन वह नहीं कर सकता है । अपने को अत्यंत समझदार तथा समस्त जनता को एकदम बेवकूफ मानकर चलना उसके चरित्र की खासियत है । परिणामस्वरूप अपनी अक्ल को सर्वोत्तम मानकर अपनी हर बात में "टु माइ माइंड" कहते हुए अपने देश और देशवासियों को एकदम निकम्मा घोषित करता है और कहता है कि हममें कैरेक्टर नहीं है । देश की दुर्दशा, अकाल, बीमारी, भुखमरी जैसे विषयों पर बुद्धिवादियों का दृष्टिकोण नितांत

भिन्न होता है , मानवीय चिंतन से हटकर है । पीढ़ियों के लिए चंदा देने का सवाल जब उठता है तो वह बेरहम होकर आँकड़े देने लगता है । बुद्धिवादियों के इस स्वभाव का व्यंग्य इशारे करते हुए परसाई लिखते हैं - "अगर कोई आदमी डूब रहा हो, तो वे उसे बचायेंगे नहीं, बल्कि सापेक्षिक घनत्व के बारे में सोचेंगे । कोई भूखा मर रहा हो, तो बुद्धिवादी उसे रोटी देगा । वह विभिन्न देशों के अन्न उत्पादन के आँकड़े बताने लगेगा । बीमार आदमी को देखकर वह दवा का इन्तजाम नहीं करेगा । वह विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट उसे पढ़कर सुनायेगा । कोई उसे अभी आकर खबर दे कि तुम्हारे पिताजी की मृत्यु हो गई, तो बुद्धिवादी दुखी नहीं होगा । वह शरीर विज्ञान के बारे में बताने लगेगा ।[75] बुद्धिवादी इतना अमानवीय होता है , इतना भावना विहीन होता है कि हृदय पक्ष अपना सिर उठाने के लिए वह मौका ही नहीं देता है ।

।घ। बुद्धिवादियों की जीवनशैली की विशेषता है कि वे अंटसंट विचारों के प्रतिपादक होते हैं । वहाँ कोई तर्क नहीं होता, विचारों की शृंखला नहीं होती । बस, अपनी धुन में , लय में बकते जाना, समय-असमय बिना किसी संदर्भ के महान पुरुष नायकों एवं चिंतकों को उद्धृत करते जाना उनका स्वभाव होता है । बाहर एकदम विचारवादी सा दिखाई पड़नेवाले इस बुद्धिवादी की लड़की ने अपनी पसंद की लड़के से शादी कर ली क्योंकि यह खबर इस बुद्धिवादी के कानों पर पड़ी तो वे आग बबूला हो गए और उस लड़के को जान मिटवाने को भी तैयार हो गए । कारण सिर्फ इतना ही है कि लड़का कायस्थ है । कहानी का अंतिम वाक्य , "वह लड़का कायस्थ है न ? बुद्धिवादि के व्यक्तित्व को एकदम खोलकर रख देता है ।परसाई इन तथाकथित बुद्धिवादियों को विरोधाभासों, द्वंद्वों , अस्वस्थ वृत्तियों से पीड़ित मानते हैं । "बुद्धिवादी" कहानी हमारे तथाकथित बुद्धिजीवियों के जीवन की असलियत को अत्यंत सुंदर रूप में उघाड़कर रखती है ।

परसाई हमारी युवापीढ़ी के भविष्य के प्रति अत्यंत आस्थावान हैं मगर वर्तमान का वातावरण इस युवापीढ़ी को किस दिशा में ले जा रहा है ? क्या सीख दे रहा है ? भविष्य की पीढ़ियों का निर्माण करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी हमारे विश्वविद्यालयों,

उपदेशों एवं मानवीय गरिमा के संदेशों के बावजूद भी, जीवन के अविभाज्य अंग के रूप में शोषण एवं भ्रष्टाचार को स्वीकार किया है। यहाँ तक कि साधु, संत, धर्मात्मा, महात्मा जैसे मूल्यवान शब्द भी आये दिनों में अपकर्षित होकर अमानवीयता, धोखा-फरेब, भ्रष्टाचार, अनाचार के पर्यायों के रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं। जनता इन साधु संतों को और श्रद्धा-भक्ति की जगह संशय, संदेह और अनुमान की दृष्टि से देख रही है जिसके फलस्वरूप संत-मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लग गए हैं। हरिशंकर परसाई ने अपनी रचनाओं में साधु-संतों को श्रद्धालु भक्त के रूप में नहीं अपितु आम आदमी की आँखों से देखा है और उनके जीवन की विसंगतियों को रेखांकित किया है, भ्रष्टता की आलोचना की है, मानव विरोधी तत्वों का परिहास किया है, ढोंगी साधना, पाखंड आदर्शों का व्यंग्य किया है। इनकी अनेकों कहानियों के चरित्र जोकि आध्यात्मिक तत्वों के पीछे पड़े हुए हैं, वे भ्रष्ट और हारे हुए लोग हैं जिनमें से किसी को साधु की चोगाओं में शरण मिली है तो किसी को आध्यात्म की ओट में संरक्षण मिला है। ये सभी हारे हुए लोग हैं जो हरिनाम का स्मरण कर रहे हैं।

"एक साधनारत गुरु का फौजदारी अंत" - कहानी का नायक एक ऐसे साधक का शिकार हुआ है जोकि स्वयं ढोंगी है, जिसके पास आलीशान आश्रम है, बंगला है, कार और रुपये हैं, शरीर की मालिश करने के लिए स्त्रियाँ हैं मगर इसने अपने भक्त को सत्य की खोज न करने में लगा दिया है। सत्य की खोज यह है कि इसका पता लगाना कि मैं कौन हूँ। इस अनबूझी पहेली को सुलझाते-सुलझाते इस कहानी का नायक पागल हो जाता है, अपनी नौकरी से भी हाथ धो लेता है। आखिर उसे सत्य का पता तो नहीं लगा, मगर गुरु की असलियत के दर्शन तो अवश्य हुए, परिणामस्वरूप गुरु और शिष्य के बीच लड़ाई हुई, मारा-मारी हुई, और मुकद्दमा लड़ने की नौबत भी आ गई। इस कहानी में सत्य की खोज करने की घोषणा करनेवालों का परसाई व्यंग्य का शिकार बनाते हैं - "तुम्हारे गुरु ने जीवन के सत्य को पा लिया है। इधर एयरकन्डीशन्ड मकान और कार वगैरह भी पा लिये हैं। उनके पास पैसा भी है। उन्होंने पैसा भी पा लिया है। यानी गुरु की दृष्टि में सत्य वह है जो अपने को बंगला, कार और पैसे के रूप में प्रकट करता है। अच्छा, यह तो बताओ कि तुम्हारे गुरु को इतना पैसा कहाँ से मिलता है?

उसने कहा - "गुरु देव के बारे में यह प्रश्न उठता ही नहीं है, वे अलौकिक पुरुष हैं। वे तो भगवान की कोटि में आनेवाले हैं।

मैंने उससे पूछा - तुम पुलिस में हो ?

उसने कहा - नहीं, गुरुदेव का आदेश है कि भौतिक लाभ के इन संघर्षों में साधक को नहीं पड़ना चाहिए।"[69] गुरु वर्ग किस प्रकार अपने चेलों को भ्रम में डालकर भटका देते हैं इसका व्यंग्य परसाई ने इस कहानी में किया है। अपने गुरुओं के असली रूप को समझने में विफल हुए शिष्यों की स्थिति का व्यंग्य इस कहानी में है। "सदाचार का तावीज़" का साधु भी इसी साधु से मेल खाता है जो कि तावीजों को कर्मचारियों में बाँटकर उनमें सदाचार लाने की घोषणा करता है। अपनी साधु-वेश और वाक् चातुरी से जनता को यहाँ तक कि राजा को भी ठगने की कला में हारता नहीं है। संतों के विशिष्ट मानवीय गुणों का दुरुपयोग यहाँ वहाँ के मुखौटेवाले साधु करते आए हैं मगर इनका प्रभाव वन्यप्राणियों पर भी इतना पड़ा है कि वे भी साधुवेश में मुग्धों को ठगने के अपने संकल्प में सफल होते हैं। परसाई की "भेड़ें और भेड़िये" कहानी के भेड़ और ये दोनों प्राणी सज्जनता और दुर्जनता के प्रतीक हैं। इस कहानी में धर्मगुरुओं की प्रवंचना का व्यंग्य भेड़िये के दंभात्मक व्यक्तित्व से व्यक्त किया गया है - "हे भेड़ियेजी, हे महान्! आप तो सर्वत्र व्याप्त हैं, सर्वशक्तिमान हैं। प्रातःकाल संध्या आपके मस्तक पर तिलक सा करती है, सांझ को उषा आपका मुख चूमती है, पवन आपकी अग्नि पर पंखा करती है, और रात्रि को आपकी ही ज्योति लघु लघु खंड होकर आकाश में तारे बनकर झिलमिल चमकती है। विराट! आपके चरणों में इस क्षुद्र का प्रणाम है।.....इसलिए सब मिलकर भेड़िया को वोट दो। वे दानी हैं, परोपकारी हैं, संत हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूँ।[70] साधु-संतों के प्रति एकदम नफरत की दृष्टि से देखने के लिए ये चरित्र मजबूर करते हैं।

"धोबिन को नहिं दीन्हीं चदरिया" - परसाई की अच्छी कहानियों में से एक है जिसमें ढोंगी भक्ति का व्यंग्य बारीकी से किया गया है। परसाई उन भक्तों का व्यंग्य करते हैं जो "हारे को हरिनाम" उक्ति की सार्थकता में विश्वास रखते हैं, क्रूरता को छिपाने के लिए भक्ति की शरण में जाते हैं। ऐसे भक्तों का

परिहास करते हुए परसाई व्यंग्य करते हैं - मैं एक दिन गया, यह देखने कि इस पतित समाज में ऐसे भक्त कौन हो गये हैं। पर मुझे जो कुछ 'साईं भक्त' मिले वे महान् थे। किसी पर गबन का मुकदमा चल रहा है। कोई सस्पेंड अफसर है। किसी की विभागीय जाँच हो रही है। मुनाफाखोर, मिलावटी। आदमी का खून उसके ही कल्याण के लिए चूसनेवाले। अफसरों को घूस खिलाने का धंधा करनेवाले। बीसे पत्रकार, राजनीति में वनवास भोगनेवाले आधुनिक 'राम' जो दशरथ की आज्ञा से नहीं जनता के धक्के देने से वनवास भुगत रहे हैं। फिर वे लोग जिनका धंधा ही चंदा उगाहना किसी बहाने से और उसे पेट में डाल लेना।[71] आधुनिक भक्त ये हैं जिनकी घिनौनी करतूतों की तालिका देने में ही उनका व्यंग्य छिपा है और इनकी भक्ति की तो कोई सीमा ही नहीं। इन उपरोक्त कोटी के भक्तों के लिए भक्ति अनुभूति का, अंतःशुद्धि का, समर्पण का साधन नहीं अपितु अपने किये पापों को छिपाने का छिलका है।

इस कहानी के व्यंग्य का दूसरा आयाम है कि 'माया' के फंदे में फँसे हुए भक्तों का व्यवहार। ये माया त्याग का उपदेश देते हैं, संसार को निस्सार दुनियादारी को असार और पैसे को हरदम फंदा, शरीर को नश्वर बताते हुए स्वयं इन सभी को जी रहे हैं। इन भक्तों के जीवनक्रम के विरोधाभासों का उन्हीं के मुँह से उद्घाटन परसाई करते हैं, यथा - "मैं ने उन्हें भोजन कराया, बड़ी रुचि से उन्होंने इस असार देह में काफी भोजन डाला। फिर तो बस। शाम को बात शुरू हुई। भजन और हरिस्मरण स्थगित हो गया। बीच-बीच में वे हरिनाम कह लेते थे। कहने लगे - ड्यूटी पर घायल होने का मुआवजा मुझे सिर्फ छह हजार रुपये दिया गया है। मैं चौंका - माया संत के भीतर से कैसे निकल पड़ी है? कहाँ छिपी थी? दिन भर ये माया को कोसते रहे और अब छह हजार के मुआवजे की बात कर रहे हैं।[72] भक्तों का असली रूप उन्हीं के मुँह से नंगा होता है। ये भक्त भक्त होने का ढोंग रचकर भगवान को भी धक्का देने के लिए आगे पीछे नहीं देखते। अपने को मिलनेवाले पैसे को लेने के लिए ये राष्ट्रपति को इस आग्रह के साथ पत्र लिखते हैं कि वे ब्रह्म, विष्णु, महेश्वर को बुलाकर उनके सामने इस मामले की जाँच करें। मगर लेखक इस भक्त की चालाकी पर आपत्ति करते हैं, वे अपनी असलियत के साथ सामने आते हैं जिसका रूप इस प्रकार है -

मैंने कहा - मगर आपके परम हितैषी ब्रह्मा, विष्णु, महेश कुछ कर नहीं पायेंगे भी इस इज़ार दिलवाने में ?

वे बोले - उसे छोड़िये। आप ही मेरे ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। आप ही यह काम करवाइये।" चंदन पुँछ गया था। जो हर क्षण ईश्वर का नाम लेते थे, वे अब एक बार भी ईश्वर की याद नहीं किया करते थे।[73] ऐसे भक्तों के लिए भक्ति की पवित्रता और लौकिक चीज़ में कोई अंतर ही नहीं है। आधुनिक समाज में ऐसे भक्तों की संख्या पर्याप्त मात्रा में है जिसका व्यंग्य लेखक ने मार्मिक ढंग से किया है।

उपरोक्त कहानियों में भक्ति का उपयोग लौकिक प्रयोजन के लिए करनेवालों पर व्यंग्य है तो "वैष्णव की फिसलन" कहानी में ऐसे पाखंडी भक्त के आचरण पर व्यंग्य किया गया है जो अपने धंधे को धर्म से जोड़ता है। बाहर अपने को वैष्णव, विष्णु भक्त घोषित करते हुए अंतरंग में नितांत स्वार्थ और लोभ को पोषित करनेवाले ढोंगियों का प्रतिनिधि है यह वैष्णव। एक ओर विष्णु का भय, आत्मा की आवाज़, दूसरी ओर होटल की तरक्की का सवाल। एक ओर माया से पिंड छुड़ाने का निरर्थक प्रयत्न, दूसरी ओर "माया" से बराबर चिपके रहने का आकर्षण। इन दो विरोधाभासों के बीच एक वैष्णव के नैतिक अधःपतन का व्यंग्य यहाँ किया गया है। फिसलते हुए भक्त का व्यंग्य इस प्रकार किया गया है - "दूसरे दिन वैष्णव फिर प्रभु की सेवा में गया - प्रार्थना की, "कृपा निधान, ग्राहक लोग नारी माँगते हैं, पाप की खान। मैं तो इस पाप की खान से जहाँ तक बनता है, दूर रहता हूँ। अब मैं क्या करूँ ?" वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज़ आयी - "मूर्ख, यह तो प्रकृति और पुरुष का संयोग है। इसमें क्या पाप और पुण्य। चलने दे।

वैष्णव ने बेयरों से कहा - "चुपचाप इंतज़ाम कर दिया करो। ज़रा पुलिस से बचकर।...अब वैष्णव का होटल खूब चलने लगा। शराब, गोश्त, कमरे और औरत। वैष्णव धर्म बराबर निभ रहा है। इधर यह भी चल रहा है। वैष्णव ने धर्म को धंधे से खूब जोड़ा है।[74] व्यंग्य यह है कि आधुनिक समाज का आदमी धर्म की व्याख्या अपनी सुविधा और अपनी माँग सीधे करता जाता है और धर्म को धंधे में ढालने की कोशिश करता है जिसका व्यंग्य इस कहानी में किया गया है।

"धोबिन को नहिं दीन्हीं चदरिया" - कहानी में माया का विसर्जन करने का भाषण देते देते माया के अधीन ही रहनेवाले साधकों की कथा है तो इससे मिलते जुलते तत्व-साधकों का व्यंग्य "तत्व साधक मंडल" कहानी में है। यहाँ के तत्व साधकों का व्यंग्य करते हुए परसाई कहते हैं कि तत्व साधना में जो लोग लगे रहते हैं वे या तो बेकार होते हैं या तो वे जिन्हें छः-छः महीने तक वेतन नहीं मिलता है या तो वे जो पिटे हैं पत्नी घर में चार-चार लड़कियों की शादी कर न पाकर एकदम निराश हों, या तो बड़े-बड़े ठेकेदार। यहाँ परसाई का व्यंग्य खास दो बातों पर है, एक यह जो कि बेईमान, जीवन के प्रति अनास्थावादी, सत्य के प्रति बेपरवाह रहनेवाला तत्वसाधक के बारे में लंबे-लंबे भाषण देता है। दूसरा यह जो कि - अहं का त्याग, मैं का मोह त्यागने के लिए, तत्व को पहचानने के लिए जो भाषण देता है, किन्तु वह अपनी कथनी के बिलकुल उलटा चलता है। इनके जीवन में विसंगतियाँ इतनी होती हैं कि कथनी-करनी में कोई ताल-मेल नहीं रहता है। ऐसे विरोधाभासपूर्ण व्यक्तित्व के पात्रों का व्यंग्य किया गया है। चोपड़ा साहब मिठाई बाँटते थे और प्रवचन करते थे। इनके मिठाई बाँटने में ही एक प्रकार का अहं था यह इगो था कि मैं बाँट रहा हूँ। जब दूसरा व्यक्ति भी मिठाई बाँटने के लिए तैयार हुआ तो चोपड़ा साहब उसे बर्दाश्त नहीं कर सके। मानव स्वभाव के इस दुर्बल पक्ष का व्यंग्य परसाई ने किया है - "सवाल है जी कि तत्व क्या है, ईश्वर क्या है? ह्वाट इज ट्रुथ? ह्वाट इज गॉड? बड़े बड़े साधु - महात्मा, ऋषि, मुनि सोचते रहे मगर जवाब किसीको नहीं मिला।"[75] यह तत्वान्वेषी तब तिलमिला जाता है जो दूसरा मिठाई बाँटता है और इस पर उसकी प्रतिक्रिया को इस प्रकार रेखांकित करते हैं - "हम बातें करते रहे कि चोपड़ा साहब आये तो प्रसन्न थे। यहीं अचानक उनकी तबीयत खराब हो गयी। अगले शनिवार को नहीं आये। वे अपने अहं को, मैं को, सेल्फ को, ईगो इमो को मनाने में लग गए होंगे।[76] यहाँ तत्व दर्शन करने का आग्रह करनेवाले स्वयं क्या करते हैं और क्या होते हैं, इसका व्यंग्य है।

"हिपाइज्म ल्यूनेटिक मिशन" - व्यंग्य कहानी में आध्यात्मिक पाखंडों को अमरीका भेजने की सलाह देते हैं और इन पाखंडों का काम अमेरिका जाकर आंतरिक

शांति और मुक्ति की बात करना होगा । परसाई ने वे स्पूनेटिक बाद वहाँ आकर क्या प्रचार करेंगे , उसका नमूना प्रस्तुत करके उसका व्यंग्य किया है - "हमारा धंधा चमकेगा । मैं मिशन का अध्यक्ष होने के नाते भाषण दूँगा - 'बी.आर. रीअल इंडियन डिवाइन स्पूनेटिक्स । अवर ऋषिज एण्ड मुनीज़ थाउज़ेंड ईअर्स एगो सेड दैट दि वे टु रिअल इन्टरनल पीस एण्ड सालवेशन लाइज थ्रू अवर स्पूनेटीज़'[77] ऐसे भाषणों का प्रभाव ऐसा होगा कि अमेरिकावाले भले ही आध्यात्मिक स्पूनेटिक हो या न हो मगर डालर तो अवश्य बरसायेंगे । और वास्तव में इन डालरों का ही अधिक लोभ इन स्पूनेटिकों को रहता है । आध्यात्मिक साधकों के आर्थिक मोह, माया-मोह में फंसे हुए उनके व्यक्तित्व का व्यंग्य यहाँ किया गया है ।

परसाई ने ढोंगी साधुओं को भी अपने व्यंग्य का आधार बनाया है । "नंबर दो की आत्मा" कहानी में एक ऐसे सेठ का व्यंग्य किया गया है जो आत्म शांति की खोज में है "आत्मशांति आश्रम में दाखिल होकर आत्मशांति पाने के लिए हज़ारों रुपये खर्च करता है । फिर एक टैक्सीवाले से दिया गया भंग मिला हुआ दारू पीकर उससे भी ज्यादा आनंद पाता है जिसे अब तक उसे आश्रम में भी नहीं मिला था । दारू के नशे में कहे जानेवाले ये वाक्य - "नहीं, तुम मेरे गुरु हो । वह साला योगी गुरु हज़ारों रुपयेह लेकर भी हमारी आत्मा का हमसे साक्षात्कार नहीं करा सकता । पर तुमने सिर्फ पचास रुपये में हमें ईश्वर बना दिया" उन झूठे योगियों का व्यंग्य करते हैं जोकि पैसे ऐंठने के लिए नाना प्रकार के आश्रम खोलते हैं । और ये सेठ किस प्रकार की मनःशांति की खोज में हैं, इस बात का पता लगना मानों उनकी मनोप्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य है । यहाँ आकर कहानी का व्यंग्य और तीखा होता है जबकि टैक्सी ड्राइवर भी सन्यासी बनकर आत्मशांति का एजेंट बन जाता है । साधु-सन्यासियों के ढकोसलेपन को इस कहानी में नंगा किया गया है ।

हमारे भक्तों की भक्ति के प्रति आस्था का व्यंग्य "पाठकजी की केस" कहानी में स्पष्ट उभर कर आया है । परसाई इस बात को स्वीकार करते हैं कि मध्यवर्गीय परिवारों का केवल ईश्वर है, अपनी पदोन्नति-अवनति के लिए उस ईश्वर को जिम्मेदार ठहराकर, मनौति, पूजा पाठ आदि में आस्था दिखाकर उस तारनहार के प्रति एकदम श्रद्धावान रहना भारतीय मानसिकता की प्रवृत्ति है । ऐसे भक्तों की भक्ति का लाभ

हमारे देवी-देवता भी किसी संकोच के बिना उठाते हैं, इसका व्यंग्य करते हुए परसाई कहते हैं - "भगवान को भारत से हर वर्ष एक निश्चित मात्रा में पूजा मिलती है। तीन-चौथाई पूजा-स्तुति उन सरकारी नौकरों की तरफ से मिलती है जो सस्पेंड हो जाते हैं, जिनकी तरक्की रोकी ली जाती है या जिनपर घूस आदि के मामले चलते हैं। इस तरह भगवान की सत्ता सरकारी नौकरों के कन्डक्ट रूल्स और इंडियन पेनल कोड पर टिकी हुई है।...यदि भारत सरकार अपने कर्मचारियों के खिलाफ कार्रवाई न करे तो मध्यमवर्ग से भगवान का नाम उठ ही जाये।[78] भक्ति का राज और और उसका उद्गम स्थान लोगों की मजबूरियाँ हैं, विवशताएँ हैं। इस मजबूरी के कारण ही पाठक भक्ति करने में तल्लीन हैं, तो भी ऐसा कि उसने अपनी पत्नी से स्पष्ट कह दिया है कि इस भक्ति में, याने पूजा में कभी भंग न हो। वह अक्षरशः अपने पति की आज्ञा का पालन करती रही। विरोधाभास इस बात में है कि वस्तुतः पाठकजी का ध्यान पूजा में नहीं अपितु घर आने जानेवालों पर है। इसके लिए उनका व्यवहार ही साक्षी है। ज्योंही उसको सुनाई पड़ा कि आफिस का चपरासी आकर कह रहा है कि साहब उसे याद कर रहे हैं, त्यों ही वे पूजा से उठकर बाहर आ गए और पत्नी पर आग बबूला हो गए। इनकी सोद्देश्य भक्ति, पूजा-पाठ का व्यंग्य इस संवाद में है - "चपरासी ने कहा - साब ने एकदम बुलाया है। पाठकिन ने कहा - "भैया, वे पूजा के बीच में नहीं उठते, चाहे दुनिया इधर की उधर हो जाये। कहना, थोड़ी देर में आते हैं।"...पाठकजी के मन में भनक पड़ गई। वे एकदम बाहर आ गए। पाठकिन ने आँखें फाड़ लीं, "अरे तुम तो पूजा में से उठ आये।" "कौन आया था अभी?" "दफ्तर का चपरासी था।" "क्या कहता था?" "कहता था, भोपाल से सेक्रेटरी साहब आये हैं सो बड़े साहब ने मिलने को बुलाया है। मैंने कह दिया...." "क्या कह दिया...।" कह दिया कि अभी पूजा कर रहे हैं, बादमें आयेंगे।" पाठकजी क्रोध से लाल हो गए चिल्लाये - "ऐसा क्यों कह दिया? मुझसे पूछा क्यों नहीं?....पाठकजी ने दाँत पीसकर कहा - "क्या भगवान-भगवान लगा रखा है। "केस" भगवान के पास है कि सेक्रेटरी के पास?"[79] भक्ति निष्काम होनी चाहिए, ऐसा आदर्श है किन्तु हकीकतें कितना दूर होती हैं, इसका व्यंग्य इस कहानी में है - पाठकजी का व्यक्तित्व अत्यंत दयनीय है क्योंकि उनका विश्वास भगवान पर उतना नहीं जितना सेक्रेटरी पर है, क्योंकि वे जीवंत भगवान होते हैं, इनकी चमचागिरी से कोई कुछ भी बन सकता है।

ढोंगी, गिरे हुए सन्यासियों का व्यंग्य "राम विराम" कहानी में है। गीता के श्लोकों को पढ़नेवाला, गेरुआ कपड़े पहननेवाला, लोक के सामने एक स्त्री को अपने पास बैठने के लिए भी मना करनेवाला सन्यासी का शरीर कामनाओं से खौलता रहता है। बस से यात्रा करते समय, जबकि सभी यात्री ऊँघने लगे तो स्त्री को यह सन्यासी सताने लगता है तब उसकी बदमाशी की कोई पराकाष्ठा नहीं होती। बदमाश सन्यासी का वास्तविक रूप उस स्त्री के इन शब्दों में है - "स्त्री ने सन्यासी को एक चाँटा मारा और बोली - "लुच्चा बदमाश कहीं का।" फिर कंडक्टर से बोली - "मुझे और कहीं बिठा दो भैया।"[80] हमारे समाज में फैले हुए अनेकों साधु सन्यासियों का व्यंग्य यहाँ है जो गेरुआ वस्त्र के आवरण में गंदी [illegible] कामनाओं को लबालब भरे हुए रखते हैं

"राम विराम" का सन्यासी मुँह से गीता के श्लोक पढ़ते पढ़ते अपनी वास्तविक करामातें दिखाता है तो सत्य की खोज, आत्मा का सत्य, ढोंगी आचरण, मोह-माया का त्याग करने का उपदेश देते देते मोह में फँसते जानेवाले एक और स्वामी का व्यंग्य परसाई ने "वयरकण्डीशण्ड आत्मा" में किया है। इन दोनों कहानियों से मिलती जुलती कहानी है "आत्मज्ञान क्लब"। इसका नायक चंद्रासाहब जोकि रिटायर्ड इंजीनियर है, आत्मज्ञान क्लब का सदस्य है। वह आत्मज्ञान क्लब जाता है अपनी आत्मा की खोज एवं सत्य से साक्षात्कार के लिए। लेखक की जिज्ञासा पर चंद्रासाहब कहते हैं - "मनुष्य अपने को नहीं जानता। हम नहीं जानते हैं कि हम कौन हैं? अपने सच्चे स्वरूप को पहचानना बहुत कठिन है। हम साधना से यही जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ। मेरा सच्चा स्वरूप क्या है?"[81] इस प्रकार सत्य और आत्मा की चर्चा माया के त्याग की बात करनेवाला आदमी दूसरे ही क्षण में किराया देने में एक-दो दिन की देरी हो जाने पर आपत्ति करते हुए कहते हैं - "आज तीन तारीख हो गई, तुमने किराया नहीं दिया।" मैंने कहा - एक-दो दिन में दे दूँगा। इस माह तनख्वाह देर से मिल रही है।" चंद्रासाहब ने मुँह को भरसक बिगाड़कर कहा - "तनख्वाह तुम्हारी कभी भी मिले, किराया मुझे पहली तारीख को मिल जाना चाहिए। समझे?" वह छड़ी टेकते हुए परमार्थ साधना के लिए चले और मैं किराया जुटाने की माया में फँसा घर लौटा[82]

घंटासाहब के विरोधाभास का एक नमूना है यह । इस कहानी में ऐसे ढोंगियों को एक मंच पर लाकर परसाई व्यंग्य करते हैं । रिटायर्ड, भ्रष्ट अधिकारी, इंजीनियर, प्रोफेसरों की काली आत्माओं से शुद्ध अंतःकरण की बातें निकलने लगती हैं, जनकल्याण की चर्चा होने लगती है । आत्मज्ञान के नाम पर आपसी द्वेष, ईर्ष्या, प्रतिशोध, स्वार्थ ही यहाँ उभर कर आते हैं । इस आत्मज्ञान क्लब के सदस्यों की सही हालत का व्यंग्य करते हुए परसाई इन तथाकथित भक्तों का बड़ा व्यंग्य करते हैं -

घंटासाहब की आत्मा से आवाज़ आयी । - "मैं बेईमान हूँ । मैं घूसखोर हूँ।" संपूरनदास की आत्मा से आवाज़ आयी । मैं चोर हूँ, मैं बेईमान हूँ । नेताजी की आत्मा से आवाज़ आयी - "मैं पाखंडी हूँ । मैं नीच हूँ । दोनों सेठों की आत्माओं से आवाज़ आयी - मैं इन्कमटैक्स चोर हूँ, मैं दो हिसाब रखनेवाला हूँ ।[83] परसाई की कहानियों में इस प्रकार सत्य, ईमानदारी, आत्मज्ञान से पीड़ित अस्वस्थ मनोविकारी मानसिक रोगियों का व्यंग्य व्यापक रूप से किया गया है । एक ओर उपरोक्त विद्रूप का चित्रण है तो दूसरी ओर उन मुखौटेवाले साधु एवं भक्त जनों का व्यंग्य चित्रण है जो अपने वैभव एवं विलास के लिए "सन्यास" को धंधा बनाये हुए हैं, भक्ति को पूँजी बनाये हुए हैं । "टार्च बेचनेवाले" कहानी में दो दोस्तों के जीवन में पाँच वर्षों के अंतराल में आए परिवर्तन, तरक्की का संदर्भ देकर व्यंग्य करते हैं । "पैसा कैसे पैदा करने" की कला हासिल करने के लिए जो आध्यात्म का टार्च बेचने गया उसके वैभव विलास की तुलना सच मुच के टार्च बेचनेवाले से करके इस देश के पाखंडी साधुओं एवं मुग्धजनता की मुग्धता का व्यंग्य किया है । इनके जीवन के भिन्न बिंदुओं का कारण यही है कि एक आध्यात्मिक पोशाक में है दूसरा साधारण पोशाक में । फलतः वह कष्ट भोग रहा है । कहानी की विडंबना यही है कि वह आदमी भी सन्यासी की पोशाक पहनकर जीने में ही आरामतलब ज़िंदगी को ढूँढ लेता है ।

"भक्त की गत" परसाई की एक सशक्त व्यंग्य रचना है । परसाई की एक विशेषता है कि वे भूलोक की गंभीर त्रासदियों, विसंगतियों, पापों का राज़ खोलने के लिए साधारणतः भगवान के सामने या यमधर्मराज के दरबार में उनकी सुनवायी करवाते हैं इस कहानी का भक्त एक ढोंगी भक्त है । इसमें न भक्त की शालीनता है न भक्त की

शिक्षा संस्थानों, और स्कूलों पर है, मगर यहाँ की राजनीति, जातिपाँति की भावना, स्वार्थ, भाई-भतीजावाद, से शिक्षा के मूल्यों का विघटन जो आज दिनों में हो रहा है, उससे भविष्य सुंदर नहीं दिखायी पड़ता हु, है । हमारे बुद्धिजीवि एक ऐसी संस्कृति का पोषण कर रहे हैं जहाँ मानवता के बीज अंकुरित तक नहीं होते । परसाई ने अपनी कहानियों में इन सभी हालातों का गहरा जो व्यंग्य किया है, वह अपने में बेजोड़ है ।

3. धर्म और आध्यात्म जीवन की विसंगतियाँ, शोषण , भ्रष्टाचार, नैतिक अधःपतन

धर्म के नाम पर इस देश में सदियों से होते आ रहे भ्रष्टाचारों के लिए इतिहास साक्षी है । धर्म, जाति-पाँति, उच्च-नीच के भाव यहाँ की जनता को लूटते आ रहे हैं और मानव-मानव के बीच दूरियाँ पैदा करके उन्हें बनाए रखने में सफल हुए हैं । ये शोषक वर्ग के सफल अस्त्रों के रूप में काम आते रहे हैं । मध्ययुगीन भारतीय साहित्य में सबसे पहली बार सशक्त रूप में इस धर्मवाद, जातिवाद और मानवविरोधी ताकतों का विरोध हमारे संतों एवं सुधारकों ने जबरदस्त ढंग से किया है । कबीर, बसवेश्वर नानक, नामदेव, वेमन आदि संत इस विरोधी ताकत के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं जिन्होंने मानवतावाद की कसौटी पर मनुष्य को देखने का प्रयास किया है । मानवीयता की नीतियों का निर्धारण कैसा किया जाना चाहिए, इस संबंध में डॉ• हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कथन महत्वपूर्ण है - "श्रेष्ठता की निशानी किसी व्यक्ति को मानना मात्र या देवविशेष की पूजा करना नहीं, बल्कि आचार शुद्धि और चारित्र्य है । यदि एक आदमी अपने पूर्वजों के बताए धर्म पर दृढ़ है, चारित्र्य से शुद्ध है, दूसरी जाति या व्यक्ति के आचरण की नकल नहीं करता बल्कि स्वधर्म में मर जाने को श्रेयस्कर समझता है, ईमानदार है, सत्यवादी है, तो वह निश्चय ही श्रेष्ठ है, फिर वह चाहे उच्च आभी वंश का हो या पुक्कस श्रेणी का । कुलीनता पूर्वजन्म के कर्म का फल है, चारित्र्य इस जन्म के कर्म का प्रतीक है । देवता किसी एक जाति की संपत्ति नहीं हैं, वे सबके हैं और सबकी पूजा के अधिकारी हैं ।[68] मगर देश का दुर्भाग्य यह है कि हमारे यहाँ धर्म के इस वास्तविक अर्थ को भुला दिया गया है । इस देश के साधु-संतों जैसे महत्वपूर्ण

विनय भावना है । दूसरों को सताकर और स्वयं भ्रष्ट जीवन गुजारकर स्वर्ग की कामना करना इनके जीवन का व्यंग्य है । भजन के नाम पर चौबीसों घंटे लाउड स्पीकर लगाकर अखंड कीर्तन पाठ करने से लोगों पर क्या गुजरेगा, इसका अंदाज़ा भी इन खोटे भक्तों को नहीं रहता है । दिखावे की भक्ति, चापलूसी, क्रोध को जो भक्त अपने जीवन के अभिन्न अंग स्वीकार करके चलता है उसकी गति सद्गति नहीं है, दुर्गति है । इसका व्यंग्य इस कहानी में मार्मिक ढंग से किया गया है । इन भक्तों का असली रूप यह है कि स्वयं भक्त के शब्दों में, "भगतजी को क्रोध आ गया, बोले - "मुझे भी टिकिट लगेगा यहाँ ? मैंने कभी टिकिट नहीं लिया । सिनेमा में बिना टिकिट देखता था और रेल में भी [illegible] में बिना टिकिट बैठता था । कोई मुझसे टिकिट नहीं माँगता । अब यहाँ स्वर्ग में टिकिट माँगते हो ? मुझे जानते हो ? मैं "भगतजी" हूँ ।[84] यह प्रसंग हमारे भक्तों के नैतिक अधःपतन की चरमावस्था का चित्रण है ।

स्पष्ट है कि परसाई की कहानियों में धर्म को धंधा [illegible] माननेवाले, आध्यात्म की गंध से बिलकुल अनभिज्ञ साधु संतों की पोशाक में लोगों को धोखा देनेवाले उन तथाकथित सज्जनों, यथा वकीलों, आचार्यों, ब्रह्मचारियों, ठेकेदारों का सार्थक व्यंग्य किया गया है । आज के ये साधु-संन्यासियों के कारण भारतीय संस्कृति के मनीषी ऋषि मुनियों प्रतिपादित उन उदात्त मूल्यों पर कीचड़ उछल रहा है । परसाई हमारे मानव मूल्यों के प्रति चिंतित हैं, आधुनिक युग की धनपिपासा से ग्रस्त समाज के प्रति चिंतित हैं, इसलिए मुखौटों के एवं परदे के पीछे के असली चेहरों को बारीकी से समझने, उघाड़ने का प्रयत्न ही नहीं अपितु उन्हें व्यंग्य का शिकार बनाया है ।

५. भारतीय सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ - वर्ग चेतना - उच्च वर्ग, मध्यवर्ग एवं निम्नमध्यवर्ग के परिवारों में प्रेम, उच्च और हीन ग्रंथियाँ - नारीवर्ग की मानसिकता, दफ्तरों में भ्रष्टाचार, बनते-बिगड़ते रिश्ते -

हरिशंकर परसाई की कहानियों में भारतीय समाज का जीता जागता चित्रण प्राप्त होता है यहाँ की गुत्थियों को जिनसे यह समाज आज संत्रस्त हो रहा है, अत्यंत सहानुभूति से, मानवीय अनुकंपा से देखने का प्रयास परसाई ने किया है । सामाजिक विषमताओं के लिए आधारभूत अंगों - यथा वर्गों में विभाजित समाज, गरीबी, रूढ़िवाद, भ्रष्टाचार,

असंतुलित परिवार, अनमेल विवाह, दहेज, झूठी प्रतिष्ठा आदि सैकड़ों मुद्दों को जो कि भारतीय समाज को संकट बना रहे हैं, परसाई ने अत्यंत जिम्मेदारी एवं प्रामाणिकता से समझने का प्रयास किया है। फलस्वरूप इस कोटी की कहानियों में समाज की उन समस्याओं को उजागर किया गया है जो कि सचमुच ही समस्याएँ हैं। यहीं पर परसाई का युगबोध अपनी चरमसीमा पर पहुँच चुका है और परसाई युग की पीड़ा के गायक के रूप में मध्यवर्गीय पाठकों के आदरणीय लेखक के रूप में समादृत होते हैं।

वैसे, सामाजिक समस्याओं का [illegible] चित्रण प्रेमचंद से लेकर अद्यावधि तक अनेकों लेखकों ने अपने अपने ढंग से किया है मगर परसाई की विशेषता इस बात में है कि इन्होंने उन समस्याओं, विसंगतियों, विद्रूपों को पेश करने के लिए व्यंग्य-दृष्टि को अपनाया है। इस व्यंग्य-दृष्टि से व्यक्ति और समाज के "झूठों" को उभारकर दिखाया गया है। परसाई ने एक स्थान पर कहा भी है कि मैं तो हमेशा झूठ की तलाश में रहता हूँ। कोने-कोने में झूठ को ढूँढता फिरता हूँ। झूठ मिल जाता है, तो बहुत खुश होता हूँ। (आपका का फौजदारी अंत) झूठ की तलाश परसाई सौ आँखों से करते हैं। आगे की पंक्तियों में में उनकी सामाजिक कहानियों के संदर्भ में उभरे हुए व्यंग्य की चर्चा की गई है -

"मध्ययुगीन कुत्ता" एक प्रतीकात्मक कहानी है। इसमें उच्च वर्गीय लोगों की जीवनशैली की तुलना निम्नवर्ग याने सर्वहारा लोगों की जीवन शैली से की गई है और इस उच्च वर्ग के दंभ और पाखंडपूर्ण जीवन विधान का व्यंग्य किया गया है। लेखक के अनुसार उच्च वर्ग के परिवारों में रहनेवाले कुत्ते अपने मालिकों के आभिजात जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं तो सर्वहारा कुत्ते श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परसाई ने उच्च वर्ग के लोगों की शोषक प्रवृत्ति का व्यंग्य कुशलता से किया है। - "सर्वहारा वर्ग के कुत्ते की यह घृणा वास्तव में अमीरों, महाजनों एवं शोषकों के प्रति है और इनका प्रतिनिधित्व उच्चवर्गीय कुत्ता करता है - "मैंने कुत्ते की तरफ देखा, दीन भाव से पड़ा था। मैंने अंदाजा लगाया। हुआ यों होगा। -

यह अकड़ से फाटक के बाहर निकला होगा। उन कुत्तों पर भौंका होगा उन कुत्तों ने कहा होगा। - "अबे, अपना वर्ग नहीं पहचानता। ढोंग रचता है।

ये पट्टा और जंजीर लगाये हैं। पुचकारा जाता है। गोद पर टहलाता है। हमें डराकर दिखाता है। पर रात को किसी प्रकार आसन्न संकट पर हम भौंकते हैं, तो तू भी हमारे साथ हो जाता है। संकट में हमारे साथ है, मगर यों हम पर भौंकेगा। हममें से है तो निकल बाहर। छोड़ यह पट्टा और जंजीर छोड़ यह आराम। घूर पर पड़ा अन्न खा या चुराकर रोटी खा, धूल में लोट।' वह फिर भौंका होगा। इस पर वे कुत्ते झपटे होंगे।[85] - वर्ग बोध हमारे समाज में इस प्रकार अपनी जड़ें जमा चुका है कि जिसके कारण ये सारी विषमताएँ विद्यमान हैं। इसी कारण ये दोनों ऐसी समांतर रेखाएँ हैं कि कभी इनका मिलन नहीं हो पाता है।

परसाई ने इस कहानी में दमन, शोषण का क्रूर रूप दिखाया है और साथ ही लेखक इस बात को गौर करना भी नहीं भूले कि यह सर्वहारा वर्ग अपने अधिकारों के प्रति जागृत हो रहा है और उन्हें हासिल करने के लिए संघर्ष के दौर में है। इसका संकेत परसाई ने 'कुत्ते' के इन शब्दों में दिया है - 'वह फिर भौंका होगा। इस पर वे कुत्ते झपटे होंगे। यह कहकर - 'अच्छा ढोंगी, दगाबाज, अभी तेरे झूठे वर्ग का अहंकार नष्ट किए देते हैं।[86] - ये शब्द वर्गचेतना पर कठोर-प्रहार हैं। यह कहानी जहाँ वर्गव्यवस्था की वस्तु स्थितियों से परिचय कराती है वहाँ सचेत पीढ़ी के आत्मविश्वास की ओर भी इशारा करती है। सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह यहाँ की केन्द्रबिन्दु है।

इस कहानी से बिल्कुल उल्टा है 'वह क्या था' - कहानी का नायक जो कि हर स्थिति को मानो भगवान का वरदान समझकर स्वीकारता जाता है। किसी भी प्रकार का प्रतिरोध नहीं करता है। वह हमारी सामाजिक व्यवस्था के प्रति इतना तटस्थ रहता है कि [illegible] चाहे बिजली जाय, चाहे बंगलेवाले का कुत्ता काटे, चाहे रास्ते के गड्ढों में कीचड़ लबालब भरा रहे, इन सबको आत्मीयता से स्वीकार कर इन्हें जीवनविधान समझकर भोगता जाता है। यहाँ का नायक मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें अपार संयम होता है। इस संयम का व्यंग्य करते हुए इसके ठंडे खून की दुहाई देते हैं लेखक - 'मुझे गुस्सा आया। मैंने कहा - 'उस कुत्ते की बहुत

शिकायतें हैं । आप पुलिस में रिपोर्ट कीजिए ।" उन्होंने कहा - "क्या रिपोर्ट करें, जी । सभी कुत्ते काटते हैं ।" मैंने कहा - आपकी पैंट फट गई है । आप कुत्ते के मालिक से पैंट के पैसे लीजिए । उन्होंने शांति से कहा - "अजी, सभी को कुत्ते काटते हैं । ...थोड़ी देर बाद लड़की आ गई । मैं सोच रहा था वे उसे डाँटेंगे । उन्होंने कहा - "बेबी, तू बहुत तंग करती है"। और हट से बोला - "सभी बेबियाँ तंग करती हैं।"..मैंने कहा - "क्यों आप हड़ताल नहीं करेंगे ?" उनका जवाब था - "सभी तो हड़ताल कर रहे हैं, जी मेरे नहीं करने से क्या बिगड़ता है ?... मैंने कहा - "पर आपको कौन सी पार्टी पसंद है ?" उन्होंने कहा - "अपने लिए दोनों अच्छी है ।" "मैंने पूछा - "फिर भी आप किसे वोट देंगे ?" - उन्होंने कहा - मैं तो वोट देने ही नहीं जाऊँगा ।[86ए] यहाँ के नायक तथा इनके जैसे लोग इस व्यवस्था में कोई परिवर्तन लाना नहीं चाहते, इस परिवर्तन से उनका कोई मतलब नहीं है । ये इतने भले और शरीफ होते हैं कि अपनी चिंता, अपनी सुख सुविधा के अलावा दुनिया दृष्टि में नाचीज़ है ।

परसाई अपनी कुछ कहानियों में कुछ ऐसी मध्यवर्गीय स्त्रियों की मानसिकता का व्यंग्य करते हैं जोकि अपने मर्द से ज्यादा उसके पैसे पर लट्टू हैं, जोकि प्यार के आकर्षण से बढ़कर दुनियादारी, के आकर्षण पर हावी हैं । जोकि शराफत का कोई आदर नहीं करती हैं । "जिसकी छोड़ भागी" की नायिका अपने पति को छोड़कर भाग निकली है क्योंकि उसके पति के पास पैसे नहीं है ।" इस कहानी में एक और नारी है जोकि अपने पैसेवाले पति का साथ परलोक में भी रखना चाहती है । पैसे का लोभ इन दोनों स्त्रियों में समान रूप से है । परसाई ने स्त्रियों की इस मानसिकता का व्यंग्य करते हुए इनके तथाकथित जीवनमूल्यों का व्यंग्य किया है - "इसकी तनख्वाह कम है । इतने में पत्नी के पद पर बने रहना उसे औरत को शोभा नहीं दिया । उसे ज्यादा रुपयों की बीबी बनना था । यह आदमी आमदनी नहीं बढ़ा सका ।xx .. मेरे एक पुराने पड़ोसी बिक्री कर विभाग में थे और भरपेट खूब खाते थे । उनकी बीबी उन्हें इतना प्यार करती थी कि वे मर जाते तो वह उनकी चिता पर सती हो जाती । उसे यह कतई बरदाश्त न होता कि पति तो स्वर्ग में खूब खाये और वह यहाँ उसके लाभ से वंचित रह जाय । कितने सुखी लोग थे ।[87] पति-पत्नी के

विघटित होते जा रहे मानवीय संबंधों के प्रति लेखक गंभीर रूप से चिंतित हैं और इन पर व्यंग्य प्रहार चलाते हैं। लेखक इस अंश बोध को रेखांकित करते हैं कि आज के मानवीय संबंध, यहाँ तक कि पति-पत्नी के रिश्ते भी एकदम यांत्रिक और अपवित्र बन गए हैं। मूल्यहीन बन गए हैं, यहाँ पुरुष का प्रेम एक ओर नारी-देह की कामना तक सीमित हो चुका है तो दूसरी ओर स्त्री का प्रेम भी फ्लर्टीनेस बड़े तक सीमित रह गया है। इस कहानी के नारी-पात्र इस बात के शिकार हैं। "जिसकी छोड़ भागी" फिर उसीके पास आई है। इस कहानी का अंतिम संवाद आज के स्त्री समाज की मानसिकता और नैतिक अधःपतन का व्यंग्य करता है - "वह व कहता है - यह मेरी बीवी है, मैं पूछता हूँ - तुमने दूसरी शादी कर ली, यह अच्छा किया। उसने कहा - वह नहीं, वही है। अरे, औरत को राजनीति की बीमारी लग गई। दो महीने में दो बार दलबदल कर डाला।[88]

परसाई की प्रसिद्ध कहानियों में से एक "एक लड़की: पाँच दीवाने" हमारे निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की कहानी है जहाँ गरीबी और संतानें दोनों अधिक मात्रा में होती है। इन निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की लड़कियाँ यद्यपि सुंदर, छरहरी होने पर भी चूँकि गरीबी और निम्नता बोध से अभिशप्त रहती हैं। परिणामस्वरूप बाहरी दुनिया से वे बिलकुल कटी सी रहती है मगर बाहरी दुनिया का बोध तब होता है जबकि उसके शरीर पर दृष्टियाँ रेंगने लगती हैं। त्रासदी यह है कि सामाजिक अंकुश, गरीबी और आर्थिक संकट के कारण वे प्रेम का सपना भी देख नहीं सकती हैं।

यह पाँच दीवानों की असफल प्रेम कहानी है किन्तु कहानीकार इस बात में सफल हुए हैं कि उन्होंने बड़ी बारीकी से हमारे निम्न मध्यवर्गीय युवा वर्ग की मनोदशा, ओछेपन तथा बचकानेपन का व्यंग्य किया है। प्रेम-क्षेत्र की विसंगति यह है कि यहाँ के पाँचों दीवानों का प्रेम एकतरफा है, ये अपनी-अपनी धुन में सवार हैं, सपने देखने में किसी से कोई कम नहीं है हवा में महल बनानेवाले इन पाँचों के प्रेम को बिलकुल भावुक, क्षणिक, स्वप्निल बताया गया है। इनमें किसी ने भी अपनी प्रेमिका के मन को जानने का प्रयत्न नहीं किया। यही निम्नमध्य वर्गीय प्रेमी वर्गों का बचकानेपन है, जिसका व्यंग्य यहाँ किया गया है।

कहानी का अंत अत्यंत करुणाजनक है । क्योंकि यहाँ भौतिक रूप से किसी की भी मृत्यु नहीं हुई है तथापि मातम का वातावरण छाया हुआ है - इस वातावरण की सृष्टि के द्वारा लेखक ने पूरे परिवेश का व्यंग्य किया है - "लड़की छज्जे पर आयी, इतना लंबा-चौड़ा और गहरा सिन्दूर माँग में भरा था कि मील-भर से दिखता था ।

घर के सामने भीड़ सी लग गई ।

राहगीर पूछते - क्या बात है ? कोई मौत हो गई क्या ?"

दूसरे राहगीर ने कहा - हाँ, लगता है, कोई मौत हो गई है । तभी मोहल्ले के एक मसखरे ने कहा - एक नहीं, चार-पाँच मौतें हो गई हैं ।[89]

इस कहानी के पाँचवें नंबर के प्रेमी का प्रेम प्रसंग और इसके पीछे भागने का भ्रम और फिर पचास रुपये के लिए अपनी बेटी को दूसरे के साथ सोने के लिए मजबूर करनेवाली स्थितियों का मार्मिक चित्रण द्वारा निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट की गई है - "उसने कहा - "हाँ, रात को और सवेरे मेरे पास बैठी रही । पैसे की तकलीफ़ बताती रही । कह रही थी - परसों मुन्ना की पचास रुपये परीक्षा फीस भरनी है । बड़ी परेशानी है । कुछ समझ में नहीं आता।". वह बोले ... "पचास तो बहुत होते हैं मेरा काम तो आधा भी नहीं हुआ था ।" मैंने कहा - "पचास दे दोगे तो पिटने से तो बचोगे ही, रात को वह तुम्हारा पूरा काम करवा देगी ।[90] यहाँ के प्रेमी प्रेम के दीवाने हैं, लड़की की माँ सख्त गरीबी की शिकार है और यहाँ के सब निम्नमध्यवर्गीय आर्थिक स्तर से ऊपर नहीं उठ पाये हैं । उदाहरण के लिए प्रेमी नंबर पाँच के पास लड़की की माँ ने आटा लाने के लिए भेजा तो उसने आटा तो दिया और उसका अकाउंट लिखा, लड़की की माँ एक प्रेमी से साठ रुपये महीना लेकर दाल सब्जी में पानी मिला लेने की बात सोचती है । ये प्रेम और पेट में से किसी को भी छोड़ना नहीं चाहते हैं । प्रेम और पैसे के संकट से ग्रस्त निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की दुस्थिति का कटु व्यंग्य इस कहानी में किया गया है ।

"एक घंटे का साथ" - कहानी का व्यंग्य इतना करुणाजनक है कि आदि से अंत

तक परसाई सामाजिक न्याय से वंचित एक ऐसे युवक के मानसिक कुंठा, संघर्ष, निराशा, तिक्त स्वभाव एवं कुंठित के कर्मों का वर्णन करते हुए हमारी सामाजिक व्यवस्था का व्यंग्य करते हैं । इस कहानी का युवक और ऐसे ही अन्य युवक अपने अभावों के कारण इतने विक्षुब्ध और स्वभाव से इतने रूष्ट हुए हैं कि ये "नमस्कारों" तक का बुरा अर्थ लगाते हैं । मानव सहज व्यवहारों से इनके मन में नफरत की भावना है और हर सदाशय का गलत अर्थ समझने को मजबूर हुए हैं । परसाई इन बेकार एवं भटके हुए संत्रस्त युवक वर्ग के प्रति अत्यंत सहानुभूति की दृष्टि अपनाये हुए हैं । इन युवाओं की मनःस्थितियों की बानगियाँ हैं - "मैंने पूछा - क्यों इतने सबेरे कैसे आये ? क्या कहीं जा रहे हो ? किसी को पहुँचाने आये हो ?" . . कहने लगा, "हूँ इतने सबेरे कैसे आये, क्या कहीं जा रहे हो ? क्या किसी को पहुँचाने आये हो ? इतने सारे प्रश्न प्रश्न पूछने का अधिकार-पत्र मैंने आपको कभी नहीं दिया "..." एक परिचित सज्जन मिल गए हैं । सहज ही मेरे साथी से पूछ बैठे - कहिए आपके क्या हाल हैं ? वह गुस्से में बोला - आपको क्या मतलब ? इतना दर्द क्यों पालते हैं आप ? मेरा हाल पूछते समय क्या आपके मन में यह अहंकार नहीं रहता कि हम तो बहुत अच्छे हैं, पर तुम्हारे क्या हाल हैं । आपके हाल अच्छे हैं तो आप जाइये ।"[91]
उक्त अंशों से स्पष्ट है कि यह युवावर्ग हताश है, इस हताशा के लिए यह समाज जिम्मेदार है । इसकी यह मनःस्थिति आत्महत्या को भी प्रेरित करती है । इस कहानी का करुणापूर्ण व्यंग्य यह है यह तीन दिन से भूखा मर रहा है, जो भी उससे मिलता है, बस, हाल पूछता है, मगर पेट को नहीं पूछता है । जबकि भरपेट खाने को मिला तो मरना वह पसंद नहीं करता है क्योंकि अन्न ने जीवन दान किया है । इस जीवन दान के प्रति वह अन्याय नहीं करना चाहता है । कम से कम वह 24 घंटे तो अवश्य जिंदा रहना चाहता है - "मैंने पूछा - 'अब मरने कब जाओगे', वह बोला - 'अब तो मरने की बात को फिर से सोचना [illegible] पड़ेगा । कम से कम 24 घंटे नहीं मरूँगा । मेरे पेट में इतना अन्न है, जिससे आदमी 24 घंटे मजे में जी सके । अन्न जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं । मैं एक आदमी का भोजन पेट में रखकर नहीं मरूँगा ।[92] "एक घंटे के साथ" हमारे संपूर्ण सामाजिक ढाँचे का व्यंग्य करता है, इसकी अमानवीयता का पर्दाफाश करती है ।

"एक घंटे के साथ" कहानी में एक ऐसे युवा की कहानी है जो घूट भरने की फ़िक्र में है जबकि "कोई सुननेवाला नहीं" कहानी में ऐसे ही एक मध्यवर्गीय व्यक्ति की व्यथा की गाथा है जोकि अपने प्रोमोशन की चिंता में है। इस चिंता ग्रस्त आदमी का सुख-वैभव-तृप्ति हर मध्यवर्गीय व्यक्ति के जैसे अपने सुख में है, औरों की परवाह इसको नहीं है। इसके जीवन में तब तक अंधेरा रहता है, जब तक इसके घर में प्रकाश नहीं आता है। समाज को, दुनिया को यह बुरी नज़र से कभी नहीं देखता समझता है, दुनियां में सुननेवाला कोई नहीं है। इसकी जीवनशैली का व्यंग्य परसाई ने खूब किया है - "वह कहने लगा, आप तो अखबारों में लिखते हैं। कुछ हमारे महकमे की धांधली के बारे में भी लिखिए न। बड़ा अंधेर है, साहब! बोला - साथ के लोगों का , बल्कि जूनियरों का प्रमोशन हो गया, पर हम जहाँ के तहाँ हैं। दरख्वास्त दी, अफसरों से मिले, मगर कोई नतीजा नहीं, कोई सुननेवाला नहीं।"[92] मध्यवर्गीय नौकरवर्ग की आशा-आकांक्षाओं का व्यंग्य परसाई यहाँ करते हैं जोकि "स्व" की परिधि से कभी बाहर आना नहीं पसंद करते।

"भोलाराम का जीव" परसाई की विशिष्ट एवं प्रसिद्ध कहानियों में से है जिसका व्यंग्य इतना प्रभावकारी है कि परसाई ने इ यहाँ के व्यंग्य के दायरे में हमारी संपूर्ण सामाजिक, शासकीय व्यवस्था एवं मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की मजबूरियों व उपेक्षाओं के लिए उत्तरदायी शक्तियों का व्यंग्य सशक्त रूप में किया है। जैसाकि कहा जा चुका है कि इस समाज की भयंकर यंत्रणाओं की चर्चा व सुनवाई के लिए परसाई यमराज से दरबार की आयोजना कराते हैं क्योंकि यहाँ के अधिकारियों के निर्णय से जनता के प्रति न्याय नहीं हो पाता है तो दूसरी ओर यमधर्म की नज़र में कोई बच नहीं पाता है। इस दृष्टि से इस कहानी में चर्चित एवं विश्लेषित समस्याओं का व्यंग्य महत्व का है

भोलाराम जो मरा अभी यमधर्मराज के दरबार में आया नहीं है और उसे लाने के लिए जो दूत गए थे वे भी आश्चर्यजनक ढंग से लापता हैं। इस बीच उनमें से एक दूत ने तो आकर भोलेराम के जीव के चकमा देने की बात बतायी तो इस संदर्भ में यम और चित्रगुप्त के बीच आपसी चर्चा से इस समाज में जितने भी बड़े बड़े मगरमच्छ हैं, उनके अत्याचारों का उद्घाटन अपने आप [illegible] होता जाता है। हमारे सामाजिक जीवन औ

राष्ट्रीय जीवन में हो रहे नैतिक अधःपतन का, मुफ्तखोरी का, चोरी का, राजनीति के षड़यंत्रों का, चालाकी का व्यंग्य प्रस्तुत कहानी में असरदार ढंग से किया गया है - "चित्रगुप्त ने कहा - महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को कुछ चीजें भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवेवाले उड़ा लेते हैं। होजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डब्बे के डब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बंद कर देते हैं।...धर्मराज ने कहा - नरक में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आ गए हैं। कई इमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनाईं। बड़े - बड़े इंजिनियर भी आ गए हैं जिन्होंने ठेके दारों से मिलकर पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा [illegible]वाया। ओवरसियर हैं जिन्होंने उन मजदूरों की हाजिरी भरकर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गए नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नरक में कई इमारतें तान दी हैं।"[94] यह है हमारी चारित्रिक भ्रष्टता की चरम सीमा जिसकी ओर परसाई ने संकेत किया है।

गुम हुए भोलाराम के जीव की तलाश करने के लिए नारद भूलोक आता है। इस भूलोक में भोलाराम के घर का नक्शा बताते हुए चित्रगुप्त द्वारा दिये जानेवाले विवरण से यहाँ मध्यवर्गीय परिवारों की तस्वीर अपने आप उभर आती है, जिस पर सरकारी नौकरी से रिटायर्ड होने के बाद पेंशन के न मिलने से संत्रस्त परिवार की त्रासदियाँ करुणाजनक ढंग से चित्रित की गई हैं। चित्रगुप्त का यह विवरण "जबलपुर शहर में धमापुर मुहल्ले में नाले के किनारे एक-डेढ़ कमरे के टूटे-फूटे मकान में वह परिवार समेत रहता था। उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के, एक लड़की।...पाँच साल पहले रिटायर्ड हो गया था। [illegible] मकान का किराया उसने एक साल से नहीं दिया, इसलिए मकान मालिक उसे निकालना चाहता था। इतने में भोलाराम ने संसार ही छोड़ दिया..। बहुत संभव है कि मकान मालिक वास्तविक मकान मालिक है, तो उसने भोलाराम के मरते ही, उसके परिवार को निकाल दिया होगा,[95] एक ओर, हमारे मकान मालिकों के बर्बर व्यवहार का भी व्यंग्य करता है तो दूसरी ओर पेंशन पर निर्भर रहनेवाले गरीब परिवारों की हालात का भी व्यंग्य प्रकट करता है।

"भोलाराम का जीव" कहानी मुख्यतः सरकारी व्यवस्था का व्यंग्य करती है और जहाँ भ्रष्टता, रिश्वतखोरी मूल्यों के रूप में स्थापित हुई हैं और यहाँ मानवीय अंतःकरण के लिए कोई स्थान नहीं है । मानवीय भावनाओं की बंजर भूमि हैं ये दफ्तर । इस अंश को स्थापित करने के लिए परसाई नारद को सरकारी दफ्तर में प्रवेश कराते हैं और नारद भोलाराम के दरख्वास्तों को ढूँढने निकले तो वहाँ के "पेपर वेट" की बात को बिलकुल समझ नहीं सके । यह कितनी विडंबना है कि अंत में स्वयं साहब "पेपरवेट" का राज बताकर नारद की वीणा को ही "पेपरवेट" के रूप में यानी रिश्वत के रूप में मांगते हैं ।

कहानी दुखांत है क्योंकि रिश्वत देने पर यहाँ का काम आसानी से चला, भोलाराम का दरख्वास्त मांगा गया और उस पर कार्यवाही की गई । "भोलाराम का जीव" एक श्रेष्ठ व्यंग्य है ।

"एक वैष्णव कथा" भ्रष्टाचार के एक और पक्ष को उजागर करती है जहाँ वैष्णव को गबन करने का अधिकार प्राप्त होता है । गबन किये हुए वैष्णव और उसकी पत्नी की करामत से एक दफ्तर में से तीनचार कागजात जल गए । इस कहानी की शिक्षा को तकिये में रखकर वैष्णव के जीवनमूल्यों का व्यंग्य किया गया है कि 1. वैष्णव बेखटके गबन कर सकता है, चोरी कर सकता है - काला पैसा जमा कर सकता है ।
2. किसी दफ्तर में आग लग जाय तो शासन को उसकी जाँच की कोशिश नहीं करनी चाहिए । विश्वास कर लेना चाहिए कि आग दैवी इच्छा से लगी है । दैवी इच्छा में मनुष्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।[96]

इस कथा में भगवान और वैष्णव की प्रार्थना का विधान जो है वह प्रार्थना की विडंबना है । प्रार्थना धोखा-फरेब, चापलूसी, स्वार्थ आदि को पूरा करने के लिए मात्र किया जानेवाला विधान रह गया है । परसाई ने इस कहानी के द्वारा वैष्णवों की मानसिक अस्वस्थता को रेखांकित किया है । और भगवान का भी मज़ाक उड़ाया गया है ।

"किताब का एक पन्ना" एक दर्दभरी कहानी है जिसका व्यंग्या समाज के

इन तथाकथित सभ्यजनों की असभ्यता का ही उद्घाटन करता है। रेल यात्रा के दौरान वो भिखारिन डब्बे में पड़ी उसकी असहायता, मजबूरी और कंगाल दशा को मानवीय दृष्टि से देखने के बजाय सहयात्री कुत्सित, कामुक, तिरस्कृत दृष्टि से देखते हैं। उनके अमानवीय व्यवहार का एक नमूना है कि 'वह दरवाजे से भीतर घुसी तो इन बारात की चाँदी-लदी स्त्रियों में से एक के पाँव से उसका पाँव छू गया। वे सब बमक उठी - 'अंधी है क्या? देखकर भी नहीं चलती? क्यों छू गई हरामजादी! न जाने कौन जात की है?'[97] इन स्त्रियों की इस दृष्टि को उघाड़ने के साथ ही साथ इस देश की स्त्रियों की हालत की उसके गरिमामय व्यक्तित्व के साथ तुलना की है - 'बोले - देखा आपने! देश की माताएँ भीख माँगती फिर रही हैं। माँ अन्नपूर्णा दाने-दाने के लिए हाथ पसार रही है। कैसी हालत हो गई हमारी? तुम्हारे देश में गंगा-यमुना की पावन धारा बहती है और तुमको उस पर गर्व है, पर माँ के आँसू की एक बूँद तुम्हारी इस भूमि को उसके वैभव को, सभ्यता को बहा देगी, देख लेना।[98] यह नारी जगत की हीनदशा की तस्वीर है। परसाई ने सहयात्रियों में से एक की इस प्रतिक्रिया को दर्ज करने के साथ-ही उस बराती में सम्मिलित पतिदेवों की कुत्सित भावनाओं को उघारकर इस सभ्यता के मुखौटों को उघाड़ा है - 'उस कोने में बैठी वे सती साध्वियाँ देख रही थीं कि जिसके पल्ले की हवा वे नहीं लगने देना चाहती थीं, उसकी ह [illegible] के स्पर्श के लिए उनके वे पति कितने लालायित थे।[99] यहाँ पतियों की सज्जनता का परिचय निराले ढंग से कराकर व्यंग्य को जन्म दिया गया है। इन सज्जनों को उसकी हाड़-माँस-पेशियों से रुचि है मगर मानवीय अनुकंपा के प्रति नफरत है।

आधुनिक समाज की विशेषता इस अंश में है कि यहाँ हर कोई अपने को 'उच्च' समझता है और पराये को एकदम नालायक और बेवकूफ। मध्यवर्गीय परिवारों में उच्च और हीनता की, कुंठा के शिकार लोग ज्यादा होते हैं। 'सब-टेनेंट की कथा' कहानी में परसाई ने हमारे देश की सब-टेनेंट्स की दुर्गति, सब टेनेंट होने के कारण उनके व्यक्तित्व में आनेवाले बौनेपन पर तरस खायी है। तथा व्यंग्य किया है। उनके अनुसार सब टेनेंट होना मानों अभिशाप है, यहाँ तक कि उस सब-टेनेंट का ओहदा कुछ

भी रहे मगर नव-टैनेंट होते ही किस प्रकार टैनेंट की दृष्टि में वह गिर जायेगा इसका जीता जागता चित्रण एवं व्यंग्य यहाँ है - "मैंने देखा है, नव टैनेंट होते ही आदमी बदल जाता है। छः फुट। अपने को बौना समझने लगता है। एक खूबसूरत आदमी नव-टैनेंट हो गया तो उसने मुहल्ले की स्त्रियों की तरफ देखना बंद कर दिया। वह अपने को बदसूरत समझने लगा था। एक जालिम पुलिस अफसर कुछ महीनों के लिए नव टैनेंट हो गए थे, तो वे मुलजिम की तरह बर्ताव करने लगे। विश्वविद्यालय के कुलपति अगर नव टैनेंट हो जायें तो वे अपने को ऐसा छात्र समझने लगेंगे, जो परीक्षा में दफा-अट्ठावन नकल कर पकड़ा गया है।[100] मध्यवर्गीय समाज के लोगों में यह वर्ग भावना अनजाने में ही पनपने का विधान निश्चय ही चिंतनीय है। टैनेन्टों की अस्वस्थ मानसिकता का पर्दाफाश यहाँ किया गया है।

परसाई न केवल मध्यवर्गीय परिवारों की ज्यादतियों का ही व्यंग्य किया है अपितु उच्चवर्गीय समाज के पाखंड-व्यवहारों तथा झूठी प्रतिष्ठा से पीड़ित उनकी मानसिकता का भी व्यंग्य किया है। उच्च वर्ग के लोगों के पास जाना मानों तनाव से गुजरना है। उनके यहाँ जाना मानों संकट के क्षणों से साक्षात्कार करने के बराबर है। इस इन सबकी स्थितियों का व्यंग्य "मेरी अक्ल का काम" कहानी में किया गया है। इस वर्ग की झूठी प्रतिष्ठा के विधानों का व्यंग्य करते हुए परसाई ने उनके मुखौटों, दिखावेपन के खोखलेपन का कड़ा व्यंग्य किया है। इसी प्रकार "दो नाकवाले लोग" कहानी में भी उच्चवर्गीय समाज के लोग अपनी नाक कट जाने के भय से कैसा यांत्रिक और असहज जीवन जीने को विवश रहते हैं, इस ओर संकेत करते हुए इन व्यक्तियों की अंदरूनी जिंदगी का मार्मिक व्यंग्य किया है - "कुछ बड़े आदमी, जिनकी हैसियत है, इस्पात की नाक लगवा लेते हैं और चमड़े का रंग चढ़वा लेते हैं। काला बाजार में जेल हो आये हैं, औरत खुले आम दूसरे के साथ सिनेमा देखती है, लड़की का गर्भपात हो चुका है... स्मगलिंग में पकड़े गए हैं हथकड़ी पड़ी है, बाजार में से ले जाये जा रहे हैं।"[101] यह है नाक पर अर्थात् सामाजिक प्रतिष्ठा, गौरव के लिए तरसनेवालों की असलियत। परसाई ने ऐसे मुखौटों को बिना किसी संकोच के लोगों के सामने प्रस्तुत किया है।

"घेरे के भीतर" कहानी में मध्यवर्गीय परिवार के दंपतियों के बीच की उन दूरियों,

बाइयों को उजागर करके उभार व्यंग्य करने का प्रयत्न है जहाँ पर पति अपने पुरुषत्व के दंभ से अपनी अनपढ़ स्त्री को धोखा देकर मार-पीट करके उसकी ध्वनि को कुचलना चाहता है और पत्नी बहुत कुछ सहने के बाद उसका प्रतिरोध अपने ही ढंग से करना चाहती है । फलस्वरूप परिवार में तनाव, परेशानी हमेशा के लिए कायम रहती है । मध्यवर्गीय परिवार में भी स्त्रियों की यह करुण कहानी है जहाँ शोषण, मारना-पीटना दुत्कारना एकदम जीवन विधान के रूप में स्थापित हो चुके हैं । इस कहानी की नायिका विमला का यह उद्‌गार समूचे समाज की ऐसी स्त्रियों समवेत उद्‌गार हैं - "उस रात वह सो न सकी । रात भर सोचती रही - वे दूसरी स्त्री को प्रेम पत्र लिखते हैं, तब भी मैं ही पिटती हूँ, मैं पत्र लिखती हूँ जिसमें ठीक वही लिखती हूँ - जो सगे भाई को लिखती हूँ, तब भी मैं ही पिटती हूँ । वे गलती करते हैं, तब भी मैं पिटूँ । मैं गलती बताऊँ, तब भी मैं पिटूँ । मैं गलती/न करूँ, तब भी मैं पिटू । हर हालत में पिटनेवाली मैं ही ।[102] यह आज की मध्यवर्गीय स्त्रियों की नियति है । पतिपत्नी के बीच के बिगड़ते-रिश्तों का व्यंग्य इस कहानी में है ।

नारी-पुरुष के संबंधों पर परसाई का एक और व्यंग्य सशक्त-रूप में अभिव्यक्त हुआ है "काली मकड़न" कहानी में । यहाँ एक महिला-समाज के कुओं का व्यंग्य है जो अपने को और अपने पतिदेवों को बिल्कुल शालीन, सभ्य समझते हैं और अन्य लोगों को कुदृष्टि से देखती हैं । इस महिला मंडली में चर्चा सिर्फ इस बात की चलती थी कि कौन, क्या है । परसाई ने यहाँ इसी महिला मंडल की नायिका पर कटाक्ष किया है । सावित्री, यहाँ की नायिका, स्व गर्विता है, अपने पति को अत्यंत शिष्ट व समझती है, रामकृष्ण आश्रम का परम भक्त समझती है । मगर इसी उसके भ्रम का, पति के आचरण का व्यंग्य भुवन मोहिनी के इन शब्दों द्वारा कराकर लेखक ने एक ओर सावित्री का मोहभंग किया है तो दूसरी ओर पुरुष के नैतिक अधःपतन का व्यंग्य किया है - "वे मुझ अभागिन पर बड़े कृपालु हैं । वे न होते तो मैं यह मुकद्दमा कैसे जीतती ? वे आजकल कचहरी से लौटते वक्त मेरे यहाँ आ जाते हैं, चाय वहीं पीते हैं एकाध घंटा बैठते हैं, देवता पुरुष हैं । अनुभव दरिद्र कमला ने चौंककर कहा - लेकिन वे [103]
तो कहते हैं कि रामकृष्ण आश्रम - । सावित्री ने आँखें तरेरकर कमला को चुप किया।

परसाई की सामाजिक कहानियों में वर्तमान समाज की समस्त विसंगतियाँ, विद्रूप, तनाव, परेशानियाँ, भ्रष्टाचार, रूढ़िवाद, आचार-विचार, टूटते रिश्ते, आपसी संबंध, उच्च-मध्य-निम्न वर्गीय समाज की मानसिकता हैं - इन सबका जीवंत चित्रण परसाई ने प्रस्तुत किया है । इन कहानियों को पढ़कर कोई भी पाठक भारतीय समाज की मानसिकता का अंदाजा लगा सकता है ।

5. <u>साहित्यकारों और प्रकाशन व्यवसाय पर परसाई का व्यंग्य : प्रतिष्ठा और सम्मान की लालसा, कविता को छूटी समझनेवाले सामाजिक, साहित्यकारों का शोषण, झूठी क्रांतिकारिता</u>

परसाई ने अपनी अनेकों कहानियों में साहित्यकारों को लक्ष्य करके अनेक स्थलों पर व्यंग्य किया है । यह व्यंग्य उनके जीवन विधान पर है, उनके शोषणपर है, उनके पाठकों पर है साथ ही इन साहित्यकारों के साथ इनका व्यवहार करनेवाले सामाजिकों का भी यहाँ व्यंग्य किया गया है । इन लेखकों की अस्मिता पर पग-पग पर कुठाराघात करनेवाले प्रकाशकों, अधिकारियों पर भी परसाई का व्यंग्य कटाक्ष प्रखर है । एक लेखक के नाते भी इन व्यंग्यों में परसाई का व्यक्तित्व और उनका दुख साकार हो उठा है । यहाँ साहित्यकार के व्यक्तित्व को लेकर किये ह गए व्यंग्यस्थलों का विवेचन किया जा रहा है ।

"साहब का सम्मान" कहानी में अधिकारी साहित्यकार भी हो जाय तो उसका सम्मान करने के लिए इस भ्रष्टव्यवस्था में लोग किस प्रकार आगे बढ़ते हैं, इसका व्यंग्य किया गया है । यहाँ का कवि "सरसिज" इनकम टैक्स अफसर ह है और सरकार से सख्त आदेश आया है कि नगर के व्यापारियों की "सख्त" जाँच हो । इस अफसर कवि की दुर्बलता कविता है और इस बात से वह दुःखी है कि शहर में कवि के नाते उसका सम्मान कोई नहीं कर रहा है । इसलिए चरम व्यापारी संघ के सदस्यों ने कवि की सम्मान-दुर्बलता का लाभ उठाया । इन सदस्यों का सोचना है - "मुरेन्द्र रसिकता को बताया - साहब की कमजोरी कविता है । उन्हें कवि के रूप में सम्मान दो, वे

व्यापारियों से खुश हो जायेंगे और रियासत से काम लेंगे । गत सप्ताह वस्त्र व्यापारी संघ की एक बैठक में सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि आपका-अपार हृ देवेंद्र कुमार "सरसिज" को कवि-सम्मान देने में कोई हर्ज नहीं है । उन्हें यह बता देना अत्यंत आवश्यक है कि हम वस्त्र व्यापारी आपको "बहुत बड़ा कवि" मानते हैं । [104] यहाँ का व्यंग्य यह है कि सम्मान करनेवालों को कविता से कोई मतलब नहीं है मात्र अपना उल्लू सीधा करने के लिए सम्मान करते हैं, प्रशंसात्मक कविताओं की फुलझड़ियाँ लगाते हैं और कवि भी इतना अबोध है कि प्रशंसा-धारा में इस प्रकार बह जाता है कि इस ऋण का बदला चुकाने का मौका ढूँढने लगता है । यहाँ कविता की राजनीति है । कविता के चक्कर में पड़े अधिकारी-साहित्यकारों की हालत का यहाँ व्यंग्य है । कवि के रूप में प्रतिष्ठा पाने के पीछे पागल होने वाले हमारे अनेकों कवियों का यहाँ व्यंग्य है ।

"ग्रांट अभी अभी नहीं आई" कहानी में एक ऐसे शिक्षित व्यक्ति की साहित्यिक रुचि का व्यंग्य किया है जो कि कवि-गोष्ठी में थे । इस कवि का कविता-पाठ भी सुना था । मगर जबकि कवि ने इसका स्मरण दिलाया तो उन्होंने बिना पहचाने ही कहा - "अच्छा, आप भी उस गोष्ठि में थे।" वे आगे बढ़ गये । उस गोष्ठी में मैं ही मैं था पर ये भूल गये । उस [illegible] वक्त काव्य की ड्यूटी पर होंगे । काव्य की ड्यूटी खतम होने पर वहाँ की बात वहीं भूल गए । फिर वे मंत्री के स्वागत में व्यस्त थे ।[105] हमारे अधिकारियों, शिक्षितों को कवि का कोई मूल्य नहीं है । कवि गोष्ठियों में हाजिरी देना भी उनको एक प्रकार से ड्यूटी करना है । हमारे शिक्षितों के स्वभाव के विरोधाभासों का सशक्त व्यंग्य किया है । इस कहानी में मंत्री के पीछे पड़कर, मंत्री जबकि इस कवि की प्रशंसा करता है, उसकी हाँ में हाँ मिलाना, फौरन मानना भी एक विडंबना है ।

इस समाज में साहित्यकारों के प्रति कैसा व्यवहार किया जाता है, इसका उत्तम मिसाल "आना और न आना रामकुमार" कहानी का प्रसंग है । यहाँ के लेखक को एक समारोह में भाषण हेतु ले जाकर वापस भेजने में किसी भी प्रकार का उत्साह ही न दिखाकर लेखक के मन में उद्विग्नता का संचार करानेवाले संयोजकों का यहाँ व्यंग्य किया है

परसाई ने समारोहों में भाग लेने के लिए जानेवाले साहित्यकारों की वापसी के समय की उद्विग्नता का उद्घाटन परत-दर-परत किया है और ऐसे संयोजकों की मानसिकता का व्यंग्य किया है जो एक साहित्यकार/भाषणकार को सम्मान के साथ भेज नहीं पाते हैं। लेखक के लिए यह प्रसंग या तो पहला है या अपवाद। हर कहीं ऐसा ही होता है - "मुझे याद आया लखनऊ का वह वाकया। तीन प्रोफेसर लोग मुझे आगरा की गाड़ी में बिठाने आये। मैं समझा, ये रुपये लाये होंगे। पर वे कहने लगे कि हम समझे, प्रिन्सिपाल साहब ने आपको दे दिए होंगे। आगरा की गाड़ी सामने खड़ी थी और मेरे पास किराए के पैसे भी नहीं थे। तब उन अध्यापकों ने चंदा करके मेरे लिए टिकट खरीदा। पैसे मेरे आज तक नहीं आए।[106] ये पंक्तियाँ साहित्यकारों के प्रति समाज के दायित्व को रेखांकित करती हैं।

"आचार्यजी, एक्सटेंशन और बगीचा" में एक लेखक हैं, उसके मित्र आचार्य हैं जिन्होंने अपनी मित्रता का लाभ उठाकर उसकी कहानी को अपने संग्रह में लेते हैं, उसे कोर्स में लगा देते हैं मगर लेखक को एक पैसा देने भी तैयार नहीं। इस बात की आपत्ति करते हुए लेखक ने पत्र लिखा तो वे "दातानुदात" बनने को तैयार होते हैं मगर रुपये देने के लिए तैयार नहीं होते। लेखक ने दुबारा प्रकाशक को नोटिस भेजी तो बहुत अनाकानी करके एक सौ का नोट आगे करते हैं। प्रस्तुत कहानी में मित्रों, आचार्यों और प्रकाशकों द्वारा लेखकों के शोषण के कुछ नमूने प्रस्तुत करके ऐसे महानुभावों पर व्यंग्य का कटाक्ष किया है।

"वे बहादुरी से बिके" कहानी में एक ऐसे लेखक के पाखंड, झूठी प्रतिष्ठा, अहं, दंभ, अज्ञान, स्वार्थ का पर्दाफाश करके परसाई ने उसके झूठी क्रांति कामिता की समाधि पर फटे पुराने जूते चढ़ाये हैं। यह क्रांतिकारी लेखक जब तक उसकी पुस्तकें थोक खरीदी नहीं गईं तब तक यह दावा करता है कि वह सरकार के हाथों बिकता नहीं है, उसके विचार एकदम क्रांतिकारक हैं और जिनकी पुस्तकें सरकार ने खरीदीं उनकी आलोचना करते हुए कहता है - 'तुम नहीं समझते। सरकार इस बहाने लेखक को खरीदती है। मैं नहीं बेचता/अपनी किताबें तुम्हारी सरकार को। आई डोन्ट सेल माइसेल्फ। तुम्हारा यह सेक्रेटरी गड़बड़ आदमी है।' मैंने कहा - सेक्रेटरी बदल जाय, तो क्या किताबें

बेघ दैंगे ?" उन्होंने डाँटा - गो हाइपोक्रैटिकल वल्गर्स । आइ हैव सेल्फ रिसपेक्ट । मैं सरकार का मोहताज नहीं हूँ ।[107] मगर इस आदमी को जबकि यह खबर दी गई कि उनकी तीन पुस्तकें सरकार ने खरीदी हैं तो उससे अभिव्यक्त यह प्रतिक्रिया दंग करनेवाली है । "मैंने ॥ हाथ जोड़कर कह कहा - "मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप किताबें सरकार को मत बेचिये । आप मत बिकिए । आप हमारी शान हैं ।" उन्होंने कहा - हम बेचेंगे, बेचेंगे, बेचेंगे । हम डरते नहीं हैं । आखिर इस ग़रीब देश की जनता तक पुस्तकें पहुँचाना भी तो हमारा कर्तव्य है ।[108] इन वक्तव्यों से हमारे लेखकों की क्रांतिकारिता का स्वरूप उभरकर आता है । इनकी दृष्टि में क्रांति का मतलब होता है व्यक्तिगत हानि । ऐसे लेखकों पर परसाई ने यहाँ तीखा व्यंग्य किया है । लेखक ने इस कहानी में हमारे लेखकों के अज्ञान का ऐसा व्यंग्य किया है कि यह तथाकथित लेखक सात्रे नरोदा आदि मोलर्स आदि को अपने मित्र घोषित करता है, कहता है कि अभी अभी उनसे मिलकर आया है जबकि उसको इस बात का पता तक नहीं उनका देहांत होकर काफी साल गुजर गए हैं । प्रसंगवश प्रस्तुत कहानी में परसाई ने सरकारी थोक पुस्तक खरीदी की राजनीति का भी उपहास किया है ।

परसाई मानते हैं कि हमारे कवियों में समय-बोध, संदर्भ का उचित ज्ञान का नितांत अभाव है । कविता को मानवीय संवेदनाओं का प्रतिबिंब न माननेवाले वे कवि हर क्षण बिकते जाते हैं । ऐसा नहीं होता तो ये कवि "अकाल का स्वागत" करते कैसे ? गंभीर कविताएँ कैसे लिखते ? ऐसे कवियों का व्यंग्य "अकाल उत्सव" में किया है । यहाँ तो कविता का मज़ाक किया गया है । "अपने अपने इष्ट देव" कहानी में लेखकीय प्रतिष्ठा पाने के लिए लालायित तुलसीदास/बनने की उत्कंठा से सिर खपानेवाले लेखक का व्यंग्य है जिसकी पुस्तक भी शिक्षा विभाग के एक पदाधिकारी की कृपा से कोर्स में लग गई यानी मानस के समान अपनी पुस्तक को घर घर में जाते जानकर यह लेखक संतुष्ट हुआ । इस कहानी में साधना के बिना सिद्धि की कामना करनेवाले, आसान ढंग से प्रचार पाने की इच्छा करने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है ।

परसाई ने अपनी अनेकों कहानियों में लेखकों को पात्र बनाया है । ये लेखक प्रचार के पीछे पागल हैं, कुंठग्रस्त हैं, समाज के प्रति इनकी कोई प्रतिबद्धता नहीं है, क्रांति इनके लिए झूठी प्रतिष्ठा का निशाना है । ऐसे स्वभाव के उन तमाम लेखकों, प्रकाशन व्यवसाय

की विसंगतियों व तथा लेखकों के प्रति समाज के दृष्टिकोण का व्यंग्य बरताई ने अपनी कहानियों में विस्तार से किया है ।

परसाई की लघुकथाएँ

हरिशंकर परसाई ने व्यक्ति और समाज के जीवन की विसंगतियों को व्यंग्य के द्वारा प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है । वैसे आधुनिक हिन्दी को व्यंग्य बोध का योगदान करने का श्रेय निश्चय ही परसाई को है । इन व्यंग्यों में सामाजिक राजनीति, आध्यात्म, धर्म, आर्थिक क्षेत्र की तमाम विसंगतियों की जाँच-पड़ताल परसाई ने व्यंग्य के निकष पर करके जो चित्र उन्होंने खींचे हैं, जिन चरित्रों का निर्माण किया है, वे इस देश के विभिन्न क्षेत्रों की सही तस्वीरें हैं, और इनमें इतनी विविधता है कि इतनी विविधता शायद ही समकालीन अन्य साहित्यकारों में मिले ।

परसाई ने व्यंग्य को उपन्यास, कहानी, व निबंधों के माध्यम से अत्यंत सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है और उनके कलेवर के अनुरूप उपन्यासों एवं कहानियों को मात्र एक घटना या प्रसंग का व्यंग्य नहीं मगर उनमें अनेकों अंशों को, घटनाओं को समाहित करने का प्रयत्न किया है । इस दृष्टि में इनकी कहानियाँ और उपन्यास एक का नहीं, अपितु अनेकों पाखंडों, भ्रष्टाचारों, विद्रूपों का एक साथ उजागर करते हैं ।

इन सबसे हटकर परसाई ने पर्याप्त लघुकथाएँ भी लिखी हैं । ये लघुकथाएँ आकार में छोटी हैं , मगर प्रभाव करने में एकदम नावक के तीर हैं । एक प्रसंग, एक घटना, एक विसंगति और एक भाव को एक लघुकथा में समाना और वहाँ की कटुता एवं टेढ़ापन को व्यंग्य के आवरण में सजाना अपने में एक कला है । इस कला में वे ही कथाकार सफल होते हैं जिनके अनुभव भरपूर हों, लोक-निरीक्षण की अद्भुत क्षमता हो, व्यंग्योद्-भावना की कला में निपुण हो, भाषा की सूक्ष्मताओं का पारंगत हो । परसाई इन सबमें पारंगत ही हैं । इसलिए ही वे व्यंग्य की खोज में नहीं जाते, दैनिक जीवन की अनेक प्रसंगों, संवादों और मानव व्यवहारों की कटुता में व्यंग्य को अपने आप खोज पाते हैं । यह व्यंग्य जबकि पाठकों तक पहुँचता है तो वह तिलमिला जाता है ।

परसाई की इन लघुकहानियों को दो भागों में बाँट सकते हैं - 1. लघु व्यंग्यात्मक

कथाएँ, 2. चुटकुले यानी अति लघु व्यंग्य । इस लघुव्यंग्य के बारे में बालेंदु शेखर तिवारी की परिभाषा इस प्रकार है - व्यंग्य विधा की लघुतर संरचना का नाम है लघुव्यंग्य । अनुभव और अभिव्यक्ति, संवेदना और संप्रेषण, रूप और लक्ष्य - किसी भी दृष्टि से लघुव्यंग्य का कोई तादात्म्य लघुकथा के साथ नहीं है । इस नाते व्यंग्य धर्म की ज़मीन पर तैयार सभी लघुकथाओं को अब लघु व्यंग्य मान लेने के सिवा कोई दूसरा विकल्प नहीं है...लघुकथाएँ व्यंग्य के मंच मंच पर चढ़कर नावक के तीर छोड़ती हैं और लघुकथा की मौजूदा लोकप्रियता का बहुत सारा श्रेय व्यंग्य के ज़ोरदार इस्तेमाल को दिया जा सकता है । लेकिन अब स्वीकार कर लेना होगा कि लघुकथा और लघुव्यंग्य दो सर्वथा अलग विधाएँ हैं । लघुव्यंग्य महज़ कथात्मक आचरण नहीं है । वह लतीफ़े की तरह कथा और पाठक से जुड़कर लुप्त होनेवाली विधा भी नहीं है । सत्य लघुव्यंग्य की धमनियों में रेंगता रहता है, परिवर्तन कामिता की राजदानी इस विधा के संरचन आँगन में महकती रहती है ।...वास्तव में लघुकथाएँ मैदानी नदी की सोचती हुई सी स्थिरता लेकर पेश करती हैं, जबकि लघुव्यंग्य में पहाड़ी नदी का आवेग और संघर्ष होता है । लघुकथा मूं में संवेदना का भव्य स्थापत्य होता है, जबकि लघुव्यंग्य में बदलाव की उग्र आकांक्षा होती है । लघुकथा व लघु व्यंग्य के बीच के अंतर को भी उपरोक्त पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं । लघुकथा में कथा का सूत्र होना अनिवार्य हो जाता है तो लघुव्यंग्य में कथा के बगैर भी व्यंग्य उभारा जा सकता है - घटनाओं की विसंगतियों से, मनुष्य के अंटसंट व्यवहारों से । लघुकथा और लघुव्यंग्य के बीच एक और अंतर यह है कि लघुकथा में पूरा परिवेश व्यंग्य का कैनवास बनता है जबकि लघुव्यंग्य में अनायास और अप्रत्याशित रूप से व्यंग्य स्वतः निखर उठते हैं । लघुकथा एक उपवन है तो लघुव्यंग्य गुलदस्ता है । लघुकथा आकार में जहाँ थोड़ा बड़ी हो सकती है वहीं लघुव्यंग्य चुटकुलों के रूप में भी रहता है । परसाई ने लघु व्यंग्यात्मक कथाएँ भी लिखी हैं और चुटकुले यानी लघुव्यंग्य भी लिखे हैं जो कि अपनी संप्रेषणीयता में सफल हुए हैं । परसाई की लघुकथाओं में चिंतन की सघनता भी है जहाँ कथा का प्रसंग चिंतन करने के लिए प्रेरित करता है, उस प्रसंग या घटना में छिपी विसंगति या वक्रता व्यंग्य को उघाड़ती है । इनके चुटकुले जैसी रचनाएँ एकदम चौंकानेवाले मोड़ लेकर अजीब और आश्चर्यजनक ढंग से अंत प्राप्त करके अनायास रूप में व्यंग्य का अनावरण करती है

परसाई की लघुकथाओं की वस्तु वैविध्यमय है । यहाँ आदमी की बातदियाँ हैं, समाज की विसंगतियाँ हैं, मनुष्य की स्वार्थ भावनाएँ हैं मनुष्य के जीवन को असह बनानेवाली स्थितियाँ हैं, सरकारी तंत्र की भ्रष्टता, सिफारिश - भाई भतीजावाद की पराकाष्ठा, फलस्वरूप मुरझा जानेवाली सद्गुण व की प्रतिभाओं की असहायकता, भूख की जलन और इस जलन की परवाह न करके अपनी भक्ति में झूमनेवालों की अमानवीयता, भूखे को एक कौर अन्न देने के बजाय बाध समितियों का गठन करनेवाले मूर्ख पुरुषों का पागलपन, भूखे के सामने अपनी विलासी अभिरुचियों को लादनेवाला सामंतवाद और ऐसे ही अनेकों विद्रूपों का व्यंग्य यहाँ है । साथ ही यहाँ के व्यंग्य संसार में हर आदमी इस ग्रंथी का शिकार है कि वह भला आदमी है और बाकी सब बदचलन पापी हैं । परसाई ने इन सभी आदमियों की हीनग्रंथियों का निस्संकोच व्यंग्य किया है । चारित्र्यहीन , दहेज, देश के प्रति गद्दारी, भ्रष्टाचार सरकारी तंत्र में सिफारिश, ढीलापन, ढोंगी अन्धद् भक्ति, जाति, कथनी-करनी में मौजूद विरोधाभा[स] को अपनी लघुकथाओं में पैना किया है ।

बदचलन या चरित्रहनन

उपरोक्त पंक्तियों में के परिप्रेक्ष्य में परसाई की लघुकथाओं का आकलन यहाँ प्रस्तुत किया गया है - इनकी "बदचलन" कहानी में बदचलन को ढूँढने का प्रयत्न है । डिप्टी साहब जोकि तबादला होकर आए, मकान ढूँढने निकले तो उनके पूर्वेतिहास को लेकर सभी उसे बदचलन कहने लगे । किन्तु धीरे धीरे "बदचलन" कहनेवालों की बदचलन उद्घाटित होने लगी यथा "ये जो मिसेज चोपड़ा हैं, उनका इतिहास आपको मालूम है ? जानते हैं उनकी शादी कैसे हुई ? तीन आदमी इनसे फँसे थे, इनका पेट फूल गया । बाकी दो शादी शुदा थे, चोपड़ा को इनसे शादी करनी पड़ी।... "श्रीवास्तव साहब की लड़की बहुत बिगड़ गई है । ग्रीन होटल में पकड़ी गई थी एक आदमी के साथ ।" "ये जो पाठे साहब हैं, अपने बड़े भाई की बीवी से फँसे हैं । सिविल लाइन्स में रहता है इनका बड़ा भाई ।"[109] जबकि मुहल्लेवालों के दुश्चरित्र एक-एक करके खुलता गया तो डिप्टी साहब के सामने यह सवाल था कि शरीफों के

मुहल्ले में मकान ढूँढा भी कैसे जा सकता है और यहाँ का व्यंग्य भी डिप्टि साहब के अंतिम वाक्य में है ।

इस बदचलन कहानी की तुलना "मनुष्य का निष्कासन" कहानी के व्यंग्य से की जा सकती है । इन दोनों लघुकथाओं का व्यंग्य एक ही है, मात्र नाम अलग अलग हैं । ईंट जो मकान मालिक है, ऐसे किरायेदार को चाहता है जोकि सज्जन हो, कैमिलीदार हो । [illegible] किन्तु मनुष्य की यह मजबूरी थी कि वह किसी कारणवश अपनी पत्नी को ले नहीं आया । मगर इस मोहल्ले के ऋषि यानी बूढ़े यानी दूसरों के स्कैंडलों पर अधिक रस एवं रुचि लेनेवाले उस मनुष्य को मुहल्ले से बाहर निकालने में सफल होते हैं । जैसाकि "बदचलन" के सब सज्जनों की अपनी अपनी कथाएँ हैं, वैसे ही यहाँ के सब के सब हरामी हैं किन्तु सब के सब अपने को सच्चरित्र सिद्ध करने में लगे हुए हैं - "मुहल्ले में कुछ रिटायर्ड बूढ़े रहते थे । वे ऋषि कहलाते थे । वे अपनी बहू से लड़ते थे और दूसरे की बहू के स्कैंडल की चर्चा बड़े रस से करते थे । मुहल्ले की स्त्रियों के चरित्र की रक्षा यही ऋषि करते थे ।[110] समाज की सुरक्षा इन तथाकथित मुहल्लेवालों के हाथ में है । परसाई ने इन सज्जनों को आड़े हाथ लिया है ।

दहेज समस्या

परसाई की लघु कहानियों में दहेज समस्या को लेकर विशेष रूप से चर्चा की गई है । दहेज के लिए अपने बेटे का टेंडर लगानेवाले पिताओं के लोभी मन का, और आधुनिक बोध से सचेत हो रहे युवावर्ग की दहेज विरोधी प्रवृत्ति का लेखक ने अत्यंत मार्मिक रूप से विश्लेषण किया है । सुअर, म चौबेजी की कथा, तिवारीजी की कथा - जैसी कहानियों में दहेज लेनेवाली मानसिकता का व्यंग्य है । "सुअर" - लघुकथा में एक "सुवर" के लिए लड़की तय हुई मगर लड़के के पिता चौबेजी लड़की के घर की चारों ओर सुअरों को घूमते देखकर, उनसे इतनी नफरत करने लगे, उसे हारिबल कहते हैं, परहेज करते हैं । मगर ऐसे व्यक्ति के सामने पैंतीस हजार रुपये की थाली रख दी गई तो जिस मुँह से हारिबल कहा था उसी मुँह से चौबेजी कहने लगे कि - "अरे, अरे उसे तंग मत करो, सुअर का बच्चा बड़ा खूबसूरत होता है । वेरी स्वीट ।[111] परसाई व्यंग्य इस

इस प्रभाव का करना चाहते हैं कि आधुनिक मनुष्य ही पैसे के पीछे इतना पागल है कि उसकी कथनी और करनी में कोई अंतर ही नहीं रह गया है ।

"चौबेजी की कथा" का नायक है पिता चौबेजी । यहाँ इस चौबे की उस मानसिकता का व्यंग्य है जोकि अपने बेटे की पदोन्नति पर दहेज का दाम भी निर्दयता से बढ़ाना चाहते हैं और यहाँ उस कन्यापितृ की चालाकी को उभारा गया है जिसने दहेज लोभी पिता को अच्छा पाठ पढ़ाया । दहेज माँगनेवालों में मानवीय अंशों के दबने की रीति को अच्छी तरह रेखांकित किया गया है । डिप्टी कलेक्टर के लिए चुने गए अपने बेटे का आर्डर विलंब से यानी दहेज का निर्णय होने के पहले ही न मिलने के कारण पछताते हुए लोकसेवा आयोग को यों गाली देता है - "फिर एकाएक चौबेजी दुखी हो गए । सिर ठोंका और गाली देने लगे । - साले, नीच कमीने कमीशनवाले । हरामजादे, महीने भर पहले यह आर्डर नहीं भेज सकते थे ?[112] दहेज का दर बढ़ाने की माँग करते हुए पत्र भेजा गया तो कन्या के पिता मिश्रजी अपनी बेटी के आई.ए.एस. में चुने जाने की खबर लिखकर उसे अप्रत्याशित आश्चर्य में डाल देते हैं ।

"तिवारीजी कथा" के पिता तिवारी की मानसिकता भी चौबेजी की मानसिकता से भिन्न नहीं है । चौबेजी अपने बेटे का दाम बढ़ाते हुए पत्र लिखते हैं तो तिवारी कैसे पीछे रह सकते हैं ? ये तो टेंडर बताते जाते हैं - "तिवारीजी को अविनाश की शादी करनी है । ये टेंडर लेते जा रहे थे ।कोई अपनी लड़की की बात करने आता तो वे कहते , "कानपुर के मिसिरजी तीस हजार कह गए हैं, इलाहाबाद के दुबेजी पैंतीस देने को तैयार हैं । ग्वालियर के पाण्डेजी चालीस हजार कह गए हैं । आप अपना बता दीजिए । नोट कर लेता हूँ । आपको निर्णय सूचित कर दूँगा ।[113] यह है कि दहेज निश्चित करने का ढंग जिस पर परसाई ने अपना रोष प्रकट किया है । इसके ठीक विपरीत दहेज लोभी पिताओं की स्वयं उनके बेटे-बेटी असंतुष्ट हैं और ये अपने को किसी भी हालत पर पैसे के मूल्य पर बिकवाना नहीं चाहते हैं। इस सचेत वर्ग का प्रतिनिधि है यहाँ का अविनाश अपनी प्रेमिका रजनी के पिता के संकट को समझकर उसी से शादी करके उन्हें दहेज बंधन से मुक्ति दिलाता है । "सुशीला" लघु कहानी की नायिका की तुलना अविनाश से की जा सकती है । अपने पिता के

कष्टों से तंग आकर अपने उस प्रेमी से शादी करने को तैयार हुई जिसे वह चाहती थी । अविनाश और सुशीला के इन पत्रांशों से इस बात का पता चलता है कि हमारा युवावर्ग किस दिशा में सोच रहा है - "मैंने सोचा कि अगर रजनी के पिता ने मकान बेचकर आपको रुपये दिए तो वह परिवार संकट में पड़ जायेगा और इसका असर रजनी पर पड़ेगा । किसी भी लड़की पर पड़ेगा । रजनी की शादी तो हो जायेगी, पर वह आपको जीवन भर नीच और दुष्ट मानेगी, जिन्होंने उसके परिवार को कष्ट दिया । वह आपसे नफरत करेगी....इसलिए आपके भले को ध्यान में रखकर मैंने कल उससे कोर्ट में बिना कुछ लिये शादी कर ली..."।[114] सुशीला का पत्र लगभग इसी प्रकार है - "मैंने रमेशवर्मा के साथ शादी कर ली है । रमेश को आप अच्छी तरह जानते हैं...मैं आपकी परेशानी देख रही थी । थोड़ी सी आपकी पेंशन है... छोटे भाई को पढ़ा लिखाकर उसके योग्य बनाना है...मैंने कम से कम इतनी सेवा तो आपकी की है कि आपका प्राविडेंट फण्ड बचा दिया । ऐसी लड़की भाग्य में कहाँ होती है ।[115] अविनाश की चिंता पिता के लोभ पर पानी फिराना है तो सुशीला की चिंता पिता को दहेज की परेशानियों से मुक्त कराना है ।

देशभक्ति

-"सर्वे और सुंदरी" कहानी ऐसे देशभक्तों का व्यंग्य करती है जो अपनी कामुकता की संतुष्टि के लिए देश को बिल्कुल नीलाम करने को तैयार रहते हैं । सर्वे विभाग से देश के नक्शे व गोपनीय अंशों का रहस्य बनाये रखने की आशा की जाती है मगर वे नारी देह पर लट्टू होकर, उसके शरीर पर अपने नक्शे उतारकर देश के नक्शे बेचने को तैयार होते हैं । बलराज मधोक के उस वक्तव्य का कि "हर हिन्दू देशभक्त और अहिन्दू गद्दार" का व्यंग्य करते हुए परसाई कहते हैं कि "हर हिन्दू देशभक्त है - सुंदरी के आने तक "।[116] इस कहानी में नारी शरीर के प्रति मनुष्य की दुर्बलता का व्यंग्य साहब के कथनों के द्वारा किया गया है ।

कवियों का कागजी विद्रोह

"असुर कवि" कथा के व्यंग्य में हमारे कवियों के कागजी विद्रोह और

चापलूसी का व्यंग्य किया गया है । एक कवि ने कविता लिखी - गोलीकांड एवं मुख्यमंत्री की निंदा करके । मगर वह इतने विचलित और घबरा गए कि उनकी पेट का सवाल उठा । इसलिए मंत्री की शरण में जाना उसे उचित लगा । शरण में गया भी । तब मुख्यमंत्री का यह उद्गार कि "यह वह कवि नहीं हो सकते जिन्होंने वह कविता लिखी है "हमारे कवियों की दयनीय स्थिति का व्यंग्य करता है, उनकी चापलूसी और निकम्मेपन को रेखांकित करता है ।

इसमें कानून का अंधाधुंध पालन -

मानवीयता की जगह पर कानून का कठोर पालन करने को तुले हुए शिक्षा विभाग के बड़े साहब को उसके ही कानून ने किस प्रकार फँसा दिया, इसका व्यंग्य "अनुशासन" कहानी में है । प्रशासनिक व्यवस्था की अमानवीयता इस कहानी में झलकी है जिसका परिणाम स्वयं बड़े साहब भोगते हैं क्योंकि उसके घर में आग लगने पर भी अध्यापक "थ्रू प्रापर चानल" न आ पाकर एकदम आवाक् सा खड़ा रहता है ।

राजनीतिः संसद की बहस : मंत्रियों का चारित्र्य

परसाई की एक अन्य कहानी "मुंडन" से बिल्कुल मिलती जुलती कहानी "संसद और मंत्री की मूँछ" है । मुंडन की वस्तु मंत्री का सिर है तो इस कहानी की वस्तु मंत्री महोदय की मूँछ है । देश में अनेकों ज्वलंत समस्याएँ हैं, मगर संसद के माननीय सदस्य या तो किसी के मुंडन पर या तो किसी की मूँछ पर इतनी बहस करते हैं और सारा देश का समय और पैसा बरबाद करते हैं जिस पर परसाई व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि हमारे सांसद इन दोनों के पार जाकर किसी विषय की चर्चा ही नहीं करते हैं । वास्तव में इस लघुकथा का व्यंग्य देश की विभिन्नताओं व संसद की तस्वीर है ।

उपरोक्त पंक्तियों में संसद की बहस का व्यंग्य है तो "पुलिस मंत्री का पुतला" में मंत्री के चारित्र्य का व्यंग्य है । मंत्री का पुतला बेकार पड़ा था ।" पुलिसवाले ने बड़े अफसरों से पूछा, "साहब, यह पुतला जगह रोके कब तक पड़ा रहेगा ? इसे

जला दें या काट कर दें ?" अफसरों ने कहा - "गजब करते हो ? मंत्री का पुतला है । उसे हम कैसे जलायेंगे ? नौकरी खोना है क्या ?....इतने में रामलीला का मौसम आ गया । एक बड़े पुलिस अफसर को "ब्रेनवेव" आ गई । उसने रामलीला वालों को बुलाकर कहा - "तुम्हें दशहरे पर जलाने को रावण का पुतला चाहिए न ? इसे ले जाओ । इसमें कोई कमी हो, तो लगा लेना ।[117] अर्थात् हमारे मंत्रियों के चारित्र्य की तुलना रावण से करके पुलिस ने अपने अंदर का रोष तथा मंत्री के चारित्र्य का उद्घाटन किया है ।

<u>भ्रष्टाचार</u> : <u>भाई-भतीजावाद</u> : <u>सिफारिशों का करिश्मा</u>

परसाई ने अपनी अनेकों कहानियों में व्यापारी वर्ग के भ्रष्टाचार एवं सरकार दफ्तरों के भ्रष्टाचार का व्यंग्य किया ही है । और विशेषकर रामायण के राम-भरत-हनुमान के चरित्रों का इतना सांदर्भिक उपयोग करके हमारे व्यापारियों की चालाकी को उजागर किया है । अयोध्या में खाताबही में व्यापारी वर्ग की रिश्वतखोरी तथा भ्रष्टाचार का रहस्य बताते हुए साम्यवादी हनुमान का व्यंग्य किया गया है जो रंग के फेरे में पड़कर वस्तुस्थिति को छिपाते हैं । हनुमान अपने लंगोटे के रंग के कपड़े में बंधी गई खाताबहियों को खोलकर देखता भी नहीं । यहाँ हनुमान भी आत्ममोह से निकलकर बाहर नहीं आ पाता है ।

"प्रथम स्मगलर" कहानी के व्यंग्य में लक्ष्मण को बचाने के लिए संजीवनीबूटी ले आनेवाले हनुमान को पकड़ तो लिया जाता है, स्मगलिंग का मुकद्दमा भी दायर किया जाता है मगर बाद में मुकद्दमे को दर्ज किये गये पन्ने को फाड़ दिया जाता है । क्योंकि भरत के अनुसार "स्मगलिंग" तो अनैतिक है । पर स्मगल किये हुए सामान से अपना या अपने भाई-भतीजे का फायदा होता है, तो यह काम नैतिक होता है । जाओ हनुमान, ले जाओ दवा । मुंशी से कहा - "रजिस्टर का पन्ना फाड़ दो ।[118] यह स्मगलिंग के अथवा ऐसे ही मुकद्दमों पर देश के सरकारी कर्मचारियों का रवैया कैसा होता है, इसका यहाँ व्यंग्य है ।

"अपने ग्रह लाल की चिट्ठी" कहानी का व्यंग्य राजनीतिज्ञों के सिफारिशी पत्रों पर है जो एकदम नालायकों को लायक बनाने के लिए उपयोग में आते हैं । यहाँ का अपने लाल कांग्रेसी प्रसाद को जो पत्र लिखता है, उस चमत्कार से स्पष्ट है कि आज के नेता लोगों के पत्रों से किस प्रकार कैसे कैसे लोग नौकरियाँ हासिल करते हैं । - "बड़ा लड़का शीतलावाहन लाल जो 8-10 साल से मैट्रिक फेल हो रहा था, इस बार आपकी दया से पास हो गया है । बेकार बैठा है, नौकरी कहीं नहीं मिलती । लोग कहते हैं नालायक है, पर अपना तो लड़का है ।आप तो जानते हैं कि जब से वह साइकिल पर से गिरा है, उसकी बुद्धि मंद पड़ गई । आप उसको कहीं अच्छी सी सरकारी नौकरी में चिपका देवें । मैंने उसके लिए खद्दर खादी की "ड्रेस" बनवा दी है ।[119] नालायक, मंदबुद्धिवाला शीतलवाहन थानेदार बनने की इच्छा रखता है, उसके लिए भी सिफारिश करवाने को पत्र लिखता है । आज हमारे यहाँ सिफारिशों के प्रभाव से कोई कुछ से कुछ बन सकता है, इसका व्यंग्य यहाँ है ।

सरकारी नियुक्तियों में सिफारिशों का अपना विशिष्ट स्थान है तो उसके कार्यविधान का अपना महत्व है । सरकार में उच्च अधिकारी से निम्नतम अधिकारी तक आदेश तो पारित करते हैं मगर आदेशों का कार्यान्वयन इतना ढीला होता है जिसका व्यंग्य "यस सर" - लघुकथा में किया गया है ।

सरकारी तंत्र की अमानवीयता को पर्दाफाश करनेवाले व्यंग्यों में "खेती" और "रोटी" शीर्षक लघुव्यंग्य अत्यंत सार्थक हुए हैं । "खेती" में सरकारी तंत्र में कागजातों पर ह देश के उत्पादन को बढ़ाने का उपक्रम है तो "रोटी" में गरीबों की भूख से राजा लोग किस प्रकार खिलवाड़ करते हैं, इसका असरदार व्यंग्य है । यहाँ का राजा अपनी प्रजाओं की भूख का निवारण करने में उतना उत्साह नहीं दिखाता है जितना उत्साह रोटी की समस्या हल का सुलझाने के लिए उपसमिति बिठाने में दिखाता है । राजा के प्रशासन का व्यंग्य इस बात में है कि वह उस किसान से कहता है - "भाई, तेरे दुख से मेरा हृदय द्रवित हो गया है । मैं तेरी रोटी की समस्या पर आज ही एक उपसमिति बिठाता हूँ । पर तुझसे मेरी एक प्रार्थना है - उपसमिति की रिपोर्ट प्रकाशित होने से

पहले तू मरना मत ।"[120] यह है सरकारी कार्यविधान जोकि आँखों के सामने की समस्याओं की अपेक्षा समिति गठित करने में दिलचस्पी दिखाता है ।

इन्हीं कहानियों में से मिलती जुलती कहानी है - "संस्कृति" । यहाँ भूख की अपेक्षा बाँसुरीवादन महत्व बन गया है । भूखे आदमी को अन्न चाहिए न कि संगीत । संस्कृति-प्रचार करनेवालों के प्रति लेखक का व्यंग्य है - "रंगीन आदमी बोला - "मैं उसे संस्कृति का राग सुना रहा हूँ । तुम्हारी रोटी से तो एक दिन के लिए ही उसकी भूख भागेगी, संस्कृति के राग से उसकी जनम-जनम की भूख भागेगी । वह फिर बाँसुरी बजाने लगा । और तब वह भूखा उठा उसने बाँसुरी झपटकर पास की नाली में फेंक दी ।[121]

ढोंगी भक्ति एवं जाति

"स्वर्ग भू में नरक" का व्यंग्य एक ओर मिलावटी व्यापार, दूसरी ओर भगवान की भक्ति करनेवाले उस व्यापारी का व्यंग्य किया है जोकि अपनी भगवद्भक्ति के पलड़े को ज्यादा मानता है । इस व्यापारी के मरने पर चित्रगुप्त ने इसकी भक्ति का ब्यौरा लेकर स्वर्ग को अलाट किया । मगर स्वर्ग में इसका खाना, इसका सोना हराम हो गया, यमधर्मराज ने मिलावटी सुख प्रदान किया । जैसी करनी वैसी भरनीवाली उक्ति की सार्थकता इस कहानी में है ।

हमारे समाज में जितनी जातियाँ हैं, वे सब गणेशोत्सव के संदर्भ में अलग-अलग अलग गणेश रखने की परिपाटी रखती हैं । पद्धति के अनुसार परंपरा के अनुसार ब्राह्मणों का गणेश उत्सव में आगे निकलता था । मगर उस दिन तेलियों का गणेश जुलूस में आगे निकला तो ब्राह्मण उनके गणेश को "ऐसी-तैसी" कहकर गालियाँ देने लगे । उनकी भक्ति का यह छिछला व्यंग्य देव-भक्ति में परसाई ने मार्मिकता से किया है ।

"जाति" कहानी का व्यंग्य उस दकियानूसी ठाकुर पर है जोकि जाति को अपनी प्रतिष्ठा का अविभाज्य अंग मानते हैं । जाति को व्यभिचार से भी महत्वपूर्ण स्थान देनेवाले ये अपने लड़के को व्यभिचारी होने देंगे मगर जातिभ्रष्ट नहीं होने देंगे - "किसी ने उन्हें समझाया कि लड़के-लड़की बड़े हैं, पढ़े लिखे हैं, समझदार हैं । उन्हें शादी कर

मैने ह दो । अगर उनकी शादी नहीं हुई तो, भी वे चोरी-छिपे मिलेंगे और तब जो उनका संबंध होगा, वह तो व्यभिचार कहा जायेगा । इस पर ठाकुर साहब और पंडितजी ने कहा - "होने दो, व्यभिचार से जाति नहीं जाती, शादी से जाती है ।[122] जाति को एक मूल्य के रूप में स्वीकार किये हुए लोगों पर यहाँ व्यंग्य किया गया है ।

युवावर्ग की ढोंगी क्रांति -

"क्रांतिकारी की कथा" में क्रांति मात्र एक नारा रह जाती है । बुर्जुआ संस्कृति का, यहाँ तक कि अपने पिता का भी विरोध करने का निश्चय करनेवाला, उसे दकियानूसी कहनेवाला युवक तब अपनी, क्रांति को हारा हुआ मानता है जबकि पिता उसे ले जाने के लिए टैक्सी ले आते हैं । सुविधाओं के अभाव में इनका क्रांति-स्वर जागृत होता है । उसकी पत्नी के इन शब्दों में उसके पति के व्यवहार का व्यंग्य है - "उसकी पत्नी चतुर थी । वह दो-तीन दिनों में क्रांतिकारिता देख रही थी और हँस रही थी । उसने कहा, "डियर, बात कहूँ । तुम क्रांतिकारी नहीं हो ।" उसने पूछा - "नहीं हूँ ? फिर क्या हूँ ?" पत्नी ने कहा - "तुम एक बुर्जुआ बोहेम हो । पर मैं तुम्हें प्यार करती हूँ ।[123]

हमारे युवकों की क्रांति का रूप यहाँ व्यंग्य की वस्तु बना है ।

कथनी-करनी में विरोधाभास

परसाई ने हमारे सामाजिकों का निरीक्षण अत्यंत सूक्ष्म रूप में किया है । मनुष्य के स्वभाव के द्वंद्वों एवं विरोधाभासों का अच्छा परिचय इनको है । इनकी कहानियों में इन सबका व्यंग्य किया गया है । "क्षमावाणी" के दो भाइयों के संबंध इतने तनावपूर्ण हैं कि ये एक-दूसरे से बोलते तक नहीं मगर ये "क्षमा वाणी" के सदस्य बनकर लोगों को क्षमा का पाठ पढ़ाते हैं । "उपदेश कथा" के उपदेश में उन राष्ट्रनेताओं की कथनी करनी के बीच के अंतर का व्यंग्य किया गया है जोकि दूसरों की स्त्रियों को बाहर आकर समाज सेवा करने के लिए उपदेश देते हैं अपितु अपनी स्त्रियों को घर की चार दीवारों से बाहर निकलने के लिए नहीं देते हैं । सेवकजी का यह समाधान उनके

व्यक्तित्व में निहित विरोधाभास का व्यंग्य प्रस्तुत करता है - 'तू अभी नादान है। बात समझता नहीं है। अरे, जब यह कहा जाये कि स्त्री बाहर निकले, तब यह अर्थ होता है कि दूसरों की स्त्रियाँ निकलें, अपनी नहीं।[124] 'अश्लील पुस्तकें' का व्यंग्य इस बात को रेखांकित करता है कि अश्लीलता का हम बाहर से विरोध करते हैं जबकि अंदर से हम उसका पालन-पोषण करते हैं। अश्लील पुस्तकों को जला डालने का निश्चय किया गया तो उन्हें पढ़नेवालों की संख्या बढ़ती ही गई। इसका व्यंग्य करते हुए लेखक टिप्पणी करते हैं - 'तीसरे दिन भी कोई लड़का किताबें नहीं लाया। एक ने कहा - अरे यार, फादर के हाथ किताबें पड़ गईं। वे पढ़ रहे हैं। दूसरे ने कहा - अंकिल पढ़ रहे हैं...तीसरे ने कहा - भाभी उठाकर ले गईं। बोलीं कि दो-तीन दिनों में पढ़कर वापस कर दूँगी। चौथे ने कहा - पड़ोस की चाची मेरी गैर हाजिरी में उठा ले गईं। पढ़ लें तो दो-तीन दिन में जला देंगे। अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलायी गईं। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी जा रही हैं।[125] इस प्रकार परसाई ने मानव-मन के द्वंद्वों एवं विरोधाभासों को बड़ी ही बारीकी से उभार व्यंग्य कसा है। 'मोर और गधा' कहानी का व्यंग्य आज के विकृत संस्कारों पर है। यहाँ वे गधे और कुत्ते एक कोटि के हैं जोकि संगीत और नृत्य जैसे अच्छे संस्कारों से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। इसलिए ही उन्हें मोर का नृत्य भी पसंद नहीं आता है, वह भद्दा लगता है। परिणामस्वरूप नाचते हुए मोर को वे वहाँ से भगा देते हैं। परसाई की कहानियों में इन कुत्तों गधों जैसे अनेकों चरित्र हैं जो कला को या तो बेकार मानते हैं या तो पागलपन स्वीकार करते हैं। परसाई ने इन सबका व्यंग्य किया है।

'मास्टर साहब पान खाते जाइए' लघुकथा में चापलूसी का व्यंग्य है जहाँ मास्टर साहब को पान की दूकानवाला अत्यंत प्यार से पान खिलाता है। अवसरवादी प्रवृत्ति न केवल राजनीतिज्ञों में है अपितु आम जनता भी इस प्रवृत्ति का अपवाद नहीं है जिसका व्यंग्य यहाँ किया गया है।

उपरोक्त संक्षिप्त विवेचन से परसाई की लघुकथाओं के संदर्भ में व्यंग्य की अभिव्यक्ति का परिचय मिलता है। इन लघुकथाओं में एक छोटा सा कथासूत्र है जोकि यहाँ के व्यंग

को एक संदर्भ में प्रस्तुत करने में सहायक है । यहाँ का व्यंग्य जैसाकि बताया गया है व्यक्ति, समाज एवं देश की विसंगतियों को रेखांकित करता है । परसाई की अन्य पुस्तकें स्वी अति लघुव्यंग्य-प्र धर्मिकाओं में भी व्यंग्य कथासूत्र के बिना भी निखर उठा है । मानव के व्यवहारों में, रोजमर्रे की जिंदगी में नजरंदाज करने योग्य प्रसंगों में भी परसाई की सूक्ष्म दृष्टि ने व्यंग्य को ढूँढा है , उन पर व्यंग्य का प्रहार किया है । ऐसी रचनाओं में - कबीर की बकरी , सहानुभूति, तरक्की का दुख, टंड, दया, होनहार, पांच लोककथाएँ, भिक्षा, सत्याग्रह, बच्चा की गोली, वात्सल्य, बैर, अब मैं आ गया हूँ, भक्तों में मार-पीट आदि का उल्लेख किया जा सकता है । ये अति लघुरचनाएँ अपने में सार्थक हैं ।

वैसे देखा जाय तो इनकी बहुत-सी लघुकथाओं की समस्याएँ वही हैं जो उनकी लंबी कहानियों की है तथा तथ्यों का पुनरावर्तन जैसा कि लंबी कहानियों में होता है वैसे लघु कथाओं में भी होता है । ऐसे स्थलों, कथाओं का निर्देश यथासंभव किया गया है । इस पुनरावृत्ति के बावजूद भी ये कहानियाँ ताजा इसलिए लगती हैं कि अभिव्यक्ति का विधान नहीं नया है, नवोन्मेषशालिनी है । इस दृष्टि से परसाई की लघुकथा इस विधा की अपनी उपलब्धियाँ हैं ।

परछाईं के रेखाचित्र -

आधुनिक हिन्दी की रेखाचित्र-विधा की महत्वपूर्ण निर्मात्री महादेवी ने रेखाचित्र की परिभाषा इस प्रकार दी है - रेखाचित्र शब्द का जन्म और अर्थ विस्तार चित्रकला के क्षेत्र में हुआ है, जहाँ कुछ रेखाओं में अंकित चित्र द्वारा हमें रंग और छायालोक से रहित किसी वस्तु या व्यक्ति की, उसे दूसरों से भिन्न करनेवाली विशेषताओं का प्रत्यभिज्ञान प्राप्त होता है ।[126] रेखाचित्र साहित्य की वह विधा है जिसमें समाज एवं व्यक्ति समूह में विशिष्ट गुणों एवं परिभाषा विशेषताओं से व विभिन्न लगनेवाली चेतनाओं का रंगविहीन चित्रांकन यानी शब्दों का रेखांकन होता है । "रेखाचित्र द्वारा वस्तु और व्यक्ति साकार हो उठते हैं, उनकी असाधारणता स्पष्ट होती अतः रेखाचित्र प्रचलित और स्वीकृति सर्पों के मध्य व्यक्ति के गौरव का, सौंदर्य और आकर्षण का, वैशिष्ट्य और महिमा का आकलन बन जाता है । रेखाचित्र यह सिद्ध करते हैं कि प्रत्येक अस्तित्व में सामान्य और विशिष्ट की एक संगति रहती है । इस प्रकार एक बहुत बड़ा सत्य रेखाचित्र लेखक अनजाने ही हमारे सम्मुख प्रकट करता है ।[12

रेखाचित्रों की चर्चा करते समय संस्मरणों की चर्चा अपने आप आती है । इन दोनों प्रकारों की मूल सामग्री यानी भावभूमि एक होते हुए भी रेखाचित्र में संवेदनशील मन की भित्ती पर अंकित किसी भी अविस्मरणीय घटना या व्यक्ति या पशुपक्षी के विशिष्ट गुणों व स्वभावों का शब्दांकन होता है जिससे दूसरों को प्रेरणा मिलती है, उदात्त मानवीय मूल्यों का संदेश मिलता है । संस्मरणों में व्यक्ति की निकटता, आंतरिक प्रगाढ़ता की मात्रा अधिक रहती है । दोनों में एक बात समान रूप से पाई जाती है - वह है व्यक्तिगत संबंध । इन्हीं संबंधों के कारण ही रेखाचित्र कार या संस्मरणकार अपने अनुभवों को अंकित करता है । ऐसा भी है कि कभी रेखाचित्र में संस्मरण और संस्मरणों में रेखाचित्र भी आ सकते हैं । इन दोनों का उद्देश्य होता है - व्यक्ति के विशिष्ट गुणों को रेखांकित करना । इन विशिष्ट गुणों के कारण ये पात्र रेखाचित्रकार के निकट या वैयक्तिक होते हुए भी इतने निर्वैयक्तिक होते हैं कि लोकमानस में इनका अपना महत्व प्रतिष्ठापित हो जाता है । महादेवी ने रेखाचित्र और संस्मरण की लेखिका होने के नाते इन दोनों के बीच के अंतर को इस प्रकार स्पष्ट किया है - "संस्मरण तथा रेखाचि

दोनों में समानता और अव्यक्त अंतर भी रहता है । दोनों ही विधाओं में किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि का अंतरंग मानसिक प्रत्यक्षीकरण है, जिसके लिए वे कुछ विशेष रेखाओं का अंकन करती हैं । किन्तु स्मरण अतीत का ही हो सकता है और रेखाचित्र वर्तमान से संबद्ध भी रह सकता है । संस्मरण में हमारी स्मृति-क्रिया, अपनी निरीक्षण धारणा, प्रत्यभिज्ञान आदि संयुक्त क्रियाओं के साथ हमारे अचेतन अनुभव में स्थिर कर, अव्यक्त आवेग संस्कार, संवेदन-प्रतिबिम्ब आदि का ऐसा पुनर्निर्माण करती है कि हम देश काल की प्रस्तुत सीमा पार कर जा सकते हैं ।...रेखाचित्र में हम अतीत को भी आँक सकते हैं और वर्तमान में उपस्थित किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना को भी । यदि हमारे ज्ञान मन में भविष्य का कोई स्वप्न बहुत स्पष्ट हो तो उसका रेखांकन भी संभव है ।"[128]

इस प्रकार रेखाचित्र और संस्मरण में मौजूद इन बारीक अंतरों के बावजूद भी संस्मरणों की तुलना में रेखाचित्रों का कलेवर बहुत व्यापक है । क्योंकि यहाँ अतीत और वर्तमान का संयोग हो सकता है, कल्पित अथवा जीवित व्यक्ति का दास्तान आ सकता है और निकट के या दूर के व्यक्तियों व परिचित या अपरिचितों का भी उनके गुणविशेषों के फलस्वरूप उन्हें लेकर अपनी संवेदना का अंश बनाकर रेखाचित्र खींच सकता है । संस्मरणों में जिसके बारे में लिखा जाता है, उसके जीवन तथ्यों पर प्रामाणिकता बरतना आवश्यक है जबकि रेखाचित्रों में कल्पना के लिए गुंजाइश है ।

रेखाचित्र के लिए साहित्य की कोई विधा अछूती नहीं हैं । काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक में रेखाचित्र के लिए पर्याप्त गुंजाइश हो सकती है जहाँ प्रसंगवश लेखक स्वयं अथवा अपने पात्रों के द्वारा किसी विशिष्ट चरित्र का रेखाचित्र खींच सकता है । किन्तु रेखाचित्र में कहानी का अंश नगण्य होता है, यह इसलिए कि रेखाचित्रों का उद्देश्य कथा निरूपण करना नहीं, परंतु "कथा" अपने पोषक पात्रों, व्यक्तियों की खूबियों को उजागर करना होता है । इसीमें इसकी सार्थकता है ।

पाश्चात्य साहित्य में रेखाचित्र-विधा का विकास पिछली शती में ही हुआ था भारतीय साहित्य में रेखाचित्र एक विधा के रूप में इस शती में ख्यात हुई । हि रेखा

की अनेकों परिभाषाएं दी गई हैं - "हैण्ड बुक आफ लिटररी टर्म्स" के अनुसार स्केच या रेखाचित्र एक लघु नाटक, कहानी अथवा चरित्रचित्रण होता है ।[129] स्टालमन साल का अभिप्राय है - "रेखाचित्र को एकदम सरल भी नहीं होना चाहिए । उसमें कुछ वक्रता भी होनी चाहिए, जिससे कि पाठक स्वयं अपना मार्ग ढूंढने का प्रयत्न करें।"[130] प्रकाशचंद्र गुप्त का कहना है - रेखाचित्र आज के क्रांतिकारी युग का साहित्यिक माध्यमह है जिसमें जीवन की झलकों को साधा स्वर प्रदान किया जा सकता है ।[131] इनपरिभाषाओं की अपनी अपनी सीमा है, और अपने में पूर्ण नहीं है जबकि भगीरथ दीक्षितx मिश्रजी की यह परिभाषा रेखाचित्र की सभी विशिष्टताओं को अपने में समाई हुई है ।" अपने संपर्क में आये किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगानेवाली सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप की देखी, सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभारकर रखना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाये, रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है ।[132] रेखाचित्र किसी विशिष्ट के गुणों को स्वीकारने का दूसरा नाम है । यहाँ व्यक्ति या वस्तु शब्दों के माध्यम से जीवंत हो उठता है ।

आधुनिक हिन्दी में रेखाचित्र की काफी समृद्ध परंपरा है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र और बालकृष्णभट्ट के कुछ निबंध चरित्रात्मक निबंधों को इस कोटि में रखा जा सकता है । पंडित पद्मसिंह शर्मा के "पद्म राग" के निबंधों में रेखाचित्रों की विशेषताएं पाई जाती हैं । किन्तु श्रीराम शर्मा के लेखन में हिन्दी रेखाचित्र के सुस्पष्ट रूप देखे जा सकते हैं । उनकी "बोलती प्रतिमा" में संकलित रेखाचित्र इस विधा की प्रतिमानात्मक रचनाएं हैं । श्रीरामशर्मा के बाद निराला की "कुल्ली भाट" और "बिल्लेसुर बकरिहा" रचनाओं को ले सकते हैं जोकि लाइफ स्केच हैं । "कुल्लीभाट" के रूप में स्वयं कवि का जीवन है, "बिल्लेसुर बकरिहा" में ग्रामीण जीवन का अंकन है । महादेवी वर्मा इस विधा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं । अपनी काव्यमयी भाषा से हिन्दी गद्य को सर्वथा नया आयाम प्रदान करनेवाली कवयित्री के रेखाचित्र मानवीय संवेदना की जीवंत प्रतिकृतियाँ हैं । "अतीत के चलचित्र" और "शृंखला की कड़ियाँ" "स्मृति की रेखाएं" संग्रहों में संकलित रचनाएं हिन्दी की अपनी संपत्ति हैं । सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी अपने रेखाचित्रों में अमर करने का श्रेय महादेवीजी को है ।

हिन्दी रेखाचित्र विधा को समृद्ध करनेवाले अन्य लेखकों में से रामवृक्ष बेनीपुरी (लालतारा, माटी की मूरतें, गेहूँ और गुलाब, मील के पत्थर), देवेन्द्र सत्यार्थी (रेखाएँ बोल उठीं) बनारसीदास चतुर्वेदी (रेखाचित्र, हमारे आराध्य), भगवतशरण उपाध्याय (सागर की लहरों पर) धर्मवीर भारती (ठेले पर हिमालय) के अलावा कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, अमृतलाल नागर, अज्ञेय, हरिशंकर परसाई और अन्यान्यों के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं ।

हरिशंकर परसाई आधुनिक हिन्दी गद्य के विशिष्ट रेखाचित्रकारों में से अग्रणी हैं । इनके रेखाचित्रों के पात्र आभिजात्य वर्ग के अथवा समाज के प्रतिष्ठित एवं शिष्ट व्यक्ति नहीं हैं अपितु आसपास की सामाजिक, राजनैतिक ज़िंदगी में संघर्षशील व्यक्ति को हर कहीं मिलनेवाले व्यक्ति हैं । ये समाज के नामी लोग नहीं हैं, राष्ट्र के स्तर पर प्रतिष्ठित नहीं हैं, और राष्ट्रीय स्तर पर खिताब पानेवाले व्यक्ति नहीं हैं किन्तु ये ज़िंदगी की भट्ठी में तपनेवाले सर्वहारा लोग हैं, हारे हुए इन्सान हैं । इन्हें जीवन वरदान नहीं अपितु अभिशाप है तथापि ज़िंदगी से हारे नहीं हैं । इनके रेखाचित्रों में चित्रित नेतानुमा राजनैतिक नेता भी सामाजिक संदर्भ में भ्रष्ट, अवसरवादी व पाखंडी हैं किंतु अपनी सफलता के लिए अत्यंत महत्वाकांक्षा से राजनैतिक क्षेत्र में आये हुए चरित्रहीन हैं जिनकी नौटंकी का शब्दांकन परसाई ने मनोज्ञ रूप से चित्रित किया है । इनके आम आदमियों में जैसे शुष्कता की पराकाष्ठा है वैसे इन नेताओं में चालाकी की पराकाष्ठा भी है ।

परसाई के रेखाचित्रों के पात्र वैसे कल्पित हैं अथवा हमारे सामाजिक, राजनैतिक जीवन का कोई भी व्यक्ति हो सकता है । मगर इन्हें पढ़ते समय पाठकों को कभी यह अनुभव नहीं होता कि ये कल्पित पात्र हैं क्योंकि रोजाने जीवन में या तो पाठक या तो स्वयं ये चरित्र रहते हैं या वे तो जिन्हें ये देखते हैं या जिनसे ये मिलते हैं वे ये पात्र रहते हैं । अर्थात् इन पात्रों का साधारणीकरण या साक्षात्कार भारत के हर गाँव में, गली में हो सकता है । यही इन रेखाचित्रों की सफलता है ।

परसाई ने अपने रेखाचित्रों में ज़िंदगी को, वास्तविकताओं को न नज़रंदाज़ करने का, न अपने पात्रों का विशेषीकरण करने का प्रयत्न किया है अपितु ज़िंदगी जैसी

मूल्यों का, पात्रों की चरित्रगत विसंगतियों, द्वंद्वों, तनाव के बिन्दुओं एवं क्षणों को उभारकर रखने का प्रयत्न किया है ।

परसाई के रेखाचित्रों के पात्र व्यवस्था के निर्मम हथौड़ों की चोटों से त्रस्त होते हुए भी ज़िंदगी से पलायन वादी कभी नहीं होते, जीने की जिजीविषा से कभी हाथ नहीं धोते । बदले में "जीने" के लिए निरंतर संघर्ष का प्रयास करते हैं, अपनी आस्था को निरंतर बनाये रखते हैं । मनीषी हो, रामदास हो, एम.एल. मास्टर हो, बातूनी हो, सेवकजी हों, हर किसी में जीने की अद्भुत आकांक्षा है । पूँजीवादीतंत्र, दफ्तरशाही, संस्कृति से कुचले जाने पर भी सिर उठाने की ताकत ये सब दिखाते हैं । मगर शोषित वर्ग के ये आम आदमी अपना सिर उठा नहीं पाते हैं जो कि इनके जीवन की ट्रेजडी है ।

परसाई की चित्रमयी भाषा में चित्रित इन सारे रेखाचित्रों के पात्र उदार मानवीय अनुकंपा के अधिकारी होते हैं । इनकी भाषा की चित्रात्मकता में इतनी अद्भुत शक्ति है कि शब्दों द्वारा जैसे जैसे पात्रों का स्थापन करते जाते हैं वैसे वैसे वे पात्र अपनी समस्त पीड़ा तथा उल्लास के साथ जीवंत हो उठते हैं । चूँकि पात्रों के साथ लेखक की तादात्म्यता ऐसी है कि वे कभी अपने पात्र से हटकर बाहर नहीं आते । उनके अंतरंग सखा के रूप में घुलमिलने के कारण बिना किसी लुकी छिपाई के ये अनावृत्त होते जाते हैं । इन रेखाचित्रों के सृजन में भाषा अपनी संपूर्ण सादगी, पर पूरी सामर्थ्य से क्रियाशील है ।

उपर्युक्त पंक्तियों के परिप्रेक्ष्य में परसाई के कुछ प्रतिनिधि रेखाचित्रों की समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है ।

"मनीषीजी" - परसाई का एक रेखाचित्र है । इसमें मनीषीजी के करुणाजनक किन्तु मस्ती से युक्त चरित्र का ऐसा रेखांकन प्रस्तुत किया है कि सारे रेखाचित्र में एक ओर लक्ष्यहीन जीवन की भटकती हुई ज़िंदगी को देखते हैं तो दूसरी ओर सिद्धांतहीन व्यक्ति की विच्छिन्नता को देख सकते हैं । मनीषीजी की पोशाक एवं उनके बाहरी व्यक्तित्व का वर्णन करने के द्वारा लेखक निबंध के शुरू में ही उसके अन्तःकरण को दिखा देते हैं । दुनियाभर की उपाधियों को बिना परीक्षा पास किये अपने नाम के

साथ लगाना, नाम के साथ छपने से उसके संपादक को गाली गलौज देकर अपूर्व संपादक होना, अपनी दवाई से मरीजों की बीमारियों को दूर करने का दावा करना आदि उनके विक्षिप्त स्वभाव की विशेषताएँ हैं। इधर उनकी स्थिति इतनी खराब है कि दो वक्त का खाना नसीब में नहीं है फिर भी उसकी परवाह तक न करने का आवारापन है। मनीषीजी 2-3 दिन तक भूखे रह सकते हैं किन्तु किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते हैं, अपनी भूख को संगीत के रूप में बिखेरते हुए मस्त रहते हैं। मनीषी के इस विशिष्ट गुण की दुहाई देते हुए परसाई लिखते हैं - परंतु इस व्यक्ति के मुख पर मैंने कभी चिंता की रेखा नहीं देखी, कभी परेशानी की छाया नहीं देखी, कभी दुख की मलिनता नहीं देखी.. भूख को इस प्रकार संगीत बनाकर आस-पास बिखेरता है, कोई सुन लेता है और भोजन करा देता है।[133]

मनीषीजी अपनी इस गरीबी और अभिशप्त जीवन के बावजूद भी उदारता के मामले में लाजवाब हैं, वे बड़े शरणागत वत्सल हैं। अपने अड्डे पर आनेवालों को कभी खाली हाथ या पेट भेजने की वे सोचते भी नहीं हैं। घर से भाग आए लड़के, बेकार आदमी, तिरस्कृत स्त्रियाँ मनीषीजी के औदार्य की छाया में आश्रय पाती हैं। इन सबको धर्मपुत्र, धर्मपुत्री बनाकर झूठ धर्मपिता बनने का रवैया अपनानेवाले इनकी उदारता का दुरुपयोग करने की समाज की निर्ममता दर्दनाक है। आखिर मानवीय भावों का आदर कौन करता है?

मनीषीजी के राजनैतिक विचार बड़े साफ-सुथरे हैं - उनका न किसी से द्वेष है न किसी से दुश्मनी। इसलिए ही वे सब पार्टी के हैं, हर कहीं से वे भाषण देते हैं। ऐसे भाषण देते हैं कि लोगों को रस मिलता है।

मनीषीजी महत्वाकांक्षी हैं। क्या क्या बनना और क्या क्या करना नहीं चाहते थे, दिवा सपने तो उन्होंने बहुत देखे किन्तु हमारी व्यवस्था ऐसी है कि गरीबों के सपने साकार होने का मौका नहीं देती। मनीषीजी के व्यक्तित्व की गरिमा उनकी हँसी में है। इस हँसी की व्याख्या करते परसाई लिखते हैं "क्या यह विक्षिप्त की हँसी है? क्या यह निरपेक्ष जीवन का हास्य है? क्या यह उस चरम विफलता की

हँसी है, जब आदमी सोच लेता है कि इससे अब कुछ नहीं बनेगा ? क्या यह उस उदासीन वृत्ति का हास्य है कि हमारे बनने या बिगड़ने का कोई मतलब नहीं ? अथवा दर्द को कलेजे की भट्ठी में गलाकर इसने हँसी के रूप में प्रवाहित कर दिया है ?[134] मनीषीजी के सहयोग, विक्षिप्त जीवन में भी मानवीय संवेदना का फौव्वारा ऐसा छलकता है जिसको उभारकर दिखाना इस रेखाचित्र का उद्देश्य है ।

इस रेखाचित्र में मौजीजी को एकदम पागल, विक्षिप्त कहकर उनकी उदार मानवी संवेदना, सामाजिक जीवन में सक्रिय रहने की इस उत्कंठ इच्छा को नज़रंदाज नहीं किया जा सकता है । वैसे इनकी समस्त इच्छाएँ हमारे मध्यवर्गीय परिवारों की इच्छाएँ हैं जो कभी साकार नहीं हो पाती हैं क्योंकि हमारे सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ, क्रूरता अमानवीयता हमेशा प्रबल और प्रखर रहती है । आर्थिक असमानता के कारण मुरझ जानेवाली मध्यवर्गीय आम आदमी की आशा-आकांक्षाओं का उद्घाटन एवं व्यंग्य यहाँ बारीकी से किया गया है ।

"रामदास" रेखाचित्र में एक ऐसे निम्न मध्यवर्गीय नौकर की त्रासदियों को चित्रण किया गया है जिसका जीवन आर्थिक संकटों के कारण इतना अभिशप्त बन गया है कि उसका पारिवारिक जीवन संकट में है । अपनी कम तनख्वाह में वह न बीवी बच्चों को अपनी नौकरी की जगह पर लाकर परिवार बसा सकता है न कम से कम साल में एक-दो बार जाकर उन्हें देखकर ही आ सकता है । इसकी आर्थिक विपन्नता ही उसका अभिशाप है जिसका व्यंग्य करते हुए परसाई लिखते हैं - "आनंदजी का कहना है कि उन्हें वर्षों बाद यह ईमानदार आदमी मिला है । उनका ख्याल है कि ईमानदारी इसका गुण न होकर असमर्थता है । बेईमानी के लिए आवश्यक चतुरता उसमें है ही नहीं ।[135] फलस्वरूप ऐसी जिंदगी गुजार रहा है कि उस जिंदगी से ऊपर उठने की जिजीविषा तक उसमें नहीं है । हिन्दुस्तान के किसी भी दफ्तर के किसी भी चतुर्थश्रेणी के चपरासी का प्रतिनिधित्व रामदास करता है - पोशाक खान-पान, रहन-सहन, जीवन शैली में । छलकपट से दूर किन्तु अपने व्यक्तिगत जीवन की अपेक्षा दफ्तरीय जीवन से जुड़े रहनेवाले रामदास और ऐसे करोड़ों नौकरों के जीवन की

विडम्बना यही है कि वे साधारण ज़िंदगी को भी जी नहीं सकते हैं । क्योंकि हमारी वर्ग व्यवस्था का ढाँचा ऐसा है कि रामदास इसको पार नहीं कर पाता है । परसाई ने इस "रामदास" में इस शोषित वर्ग की यथार्थताओं को, यहाँ की विसंगतियों को व्यंग्य के शिकंजे पर कसने और प्रहार करने का प्रयास किया है । परसाई का यह रामदास इस बात का साक्षी है कि आर्थिक संरक्षण के अभाव में मनुष्य का मस्तिष्क तक मारा जाता है । उसमें न सोचनेवाली शक्ति होती है न स्मरण करने की, यहाँ तक कि वह मनुष्य का शरीर लेकर यांत्रिक जीवन यापन तो करता है किन्तु इसकी प्राण चेतना, पूर्ण संवेदनशीलता एकदम ठप्प पड़ जाती है जिसका उदाहरण स्वयं रामदास है ।

"रामदास" रेखाचित्र में परसाई ने हमारे सामाजिक विदूपों का बड़े मार्मिक रूप से उपहास और व्यंग्य किया है । रामदास सूखा-सूखा सा है, दुबला-पतला है, रामदास भोजन नहीं करता.. फिर वह ज़िंदा कैसे है ? वह दफ़्तर के नीचे के होटल में वह चाय पी लेता है और एक दो आने का नमकीन खा लेता है । यही उसका भोजन है । इतना होते हुए भी रामदास और वैसे ही उनके भीतर आत्मसम्मान के स्फुलिंग होते हैं । परसाई कहते हैं - "लेकिन रामदास अपने को किसी से हीन नहीं समझता । उसके आत्मसम्मान का झंडा कभी झुकता नहीं । - वह किसी की कृपा स्वीकार नहीं करता । मुझे वह बदला देना नहीं भूलता । अगर आमना-सामना हो जाय, और संयोगवश मैं उसे देख न पाऊँ तो कभी खीझ कर कह देता है - "मास्टर साहब चाय पी लीजिए"[136] यह इन निम्न-मध्यवर्गीय लोगों की अस्मिता है । इस अस्मिता पर आँच आने के लिए वे कभी मौका नहीं देते ।

परसाई की कहानियों में "मकान" ढूँढने के प्रसंग अनेकों बार आये हैं । ये मकान मनुष्य में हीन एवं उपग्रंथियों को जन्म देते हैं । इस रेखाचित्र का व्यंग्य इस बात में है कि रामदास भी अच्छा सा मकान ढूँढने में लगा हुआ है । उसका कहना है कि अच्छा मकान मिलने तक वह परिवार नहीं लायेगा । उसकी इस अभीप्सा का व्यंग्य करते हुए परसाईजी कहते हैं - "उसे कभी अच्छा सा मकान नहीं मिलेगा । और वह यहीं बैठा-बैठा कानपुर से चिट्ठियाँ पाता रहेगा कि अब दूसरा लड़का नहीं रहा, अब लड़की भी

नहीं रही, और अब स्त्री भी नहीं रही ।[137] रामदास एक व्यक्ति नहीं, एक समूह का प्रतिनिधि है जिसका जीवन सूली ऊपर की महाविद्या की भाँति है । नितांत अकेले, दुख को साथी बनाकर, समाज में अभिशप्त होकर गुजारा करनेवाले रामदास जैसे अनेकों व्यक्ति भारत की गली-गली में दिखाई देते हैं । "रामदास" की दर्दनाक कथा इस वर्ग की करुणकथा है । जीवन की व्यथा यहाँ साकार हो उठी है

"एक ठंडे शरीफ़ आदमी" में परसाई ने एक ऐसे चरित्र का रेखांकन प्रस्तुत किया है जो बाहर से बिल्कुल ठंडे रहते हुए, शरीफ़ कहलाते हुए अंदर से अपना सब कुछ साधनेवाला है । ऐसे ठंडे शरीफ़ आदमियों से सारा वातावरण जैसे आक्रांत रहता है । अपने मतलब से मतलब रखनेवाले ये ऐसे अजीब व्यक्तित्व के होते हैं कि इन्हें दूसरों की पीड़ा पीड़ा ही नहीं होती, मानवीय संवेदनाओं से असंपृक्त होकर महज अपना उल्लू सीधा करने के प्रति ये प्रतिबद्ध रहते हैं । बिहार में अकाल पड़ा हुआ हो, दुर्घटना में कोई मर गया हो, वियतनाम में बम की वर्षा हुई हो, किसी की भी इन्हें चिंता नहीं है, क्योंकि इनमें से किसी का शिकार वह नहीं है । मगर ये व्यवहार में इतने चतुर होते हैं जिसके फलस्वरूप इनका नाम हर कहीं होता है, पुरस्कार-सम्मान बराबर मिलते रहते हैं । ऐसे लोगों की हमदर्दी, सहानुभूति भी भयानक होती है, इसलिए ही बीमार आदमी कहता है कि अगर मेरी बीमारी में वह रोज़ मुझे देखने आये तो, मुझे डर है, मैं कभी अच्छा न होऊँ ।[138] परसाई ऐसे ठंडे शरीफ़ जैसे आदमियों के स्वभाव पर व्यंग्य करते हैं - "सोचता हूँ, किस साधना से आदमी इतना ठंडा हो जाता है ? ज़िंदगी में इतनी तरह की आग है, कहीं कोई गर्मी इसे महसूस क्यों नहीं होती ? इसके [illegible] ज़िंदगी की जटिलता को सुलझाकर इसने किस तरह सीधा और सपाट कर लिया है । हमारे सामाजिक जीवन ऐसे "ठंडे" आदमियों की कोई कमी नहीं जिसका व्यंग्य यहाँ किया गया है ।

"संयोजक" रेखाचित्र मानवस्वभाव के एक आयाम का प्रतिनिधित्व करनेवाले "संयोजकों का बड़ा सुंदर चित्र प्रस्तुत करता है । परसाई के रेखाचित्रों की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ के चरित्र अपने व्यवहार एवं बातों से अपना चरित्र स्वयं अनावृत्त करते जाते हैं । इस बात का सशक्त उदाहरण है यहाँ का संयोजक है । संयोजक के

मेक-अप, जीवन-दर्शन को परत-दर-परत उभारकर रख दिया गया है और सो भी संयोजक के ही मुँह से । यहाँ परसाई, बस, लिपिकार हैं । इनके बहुत सारे चरित्र अपनी मुग्धता से या चालाकी का प्रदर्शन करने के लिए अपने ही मुँह से जीवन के विरोधाभासों का उद्घाटन करते जाते हैं, ऐसे पात्रों से यहाँ का संयोजक भी एक है । एक संयोजक के लक्षणों एवं स्वभावों का ऐसा मार्मिक रेखांकन, साथ ही उनका व्यंग्य परसाई ने कुछ किया है । हमारे यहाँ होनेवाले समारोहों की असलियत को नंगा करते हुए स्वयं संयोजक ही कहता है कि समारोह इसलिए कराये जाते हैं कि चंदा वसूल हो जाय, पीएच.डी. करनेवाले अपने भाई-भतीजों को पीएच.डी. मिल जाय और अपने लिए जाँचने पेपर्स आ जाय । इस विद्रूप मानसिकता का व्यंग्य परसाई इन शब्दों में प्र करते हैं - मैं ने पूछा - क्या इस सम्मेलन में बहुत से प्रतिनिधि आये हैं ? वह बोले - "जो काम के थे, उनमें से आधे ही आए हैं । आचार्य मिश्रजी आ गए हैं उनके अंडर में मेरा भाई रिसर्च कर रहा है । डॉ देव प्रकाश नहीं आये । इसका मतलब है कि अगले समारोह तक विश्वविद्यालय के पेपर मुझे नहीं मिलेंगे । शाम को मुख्यमंत्री आ जायेंगे । इन्हीं के लिए मैंने समारोह किया है । बाकी जो पचासों फालतू लोग आ गए हैं, वे मेरा चंदा भी लाने आए हैं । लेकिन, हाय, संध्याजी नहीं आयीं ।"[139] संयोजक के जीवन-दर्शन पर यहाँ प्रहार किया गया है ।

"बातूनी" में ऐसे बातूनी का रेखाचित्र है जो अपनी अनावश्यक बातों से सुननेवाले को कैसे दंड देते हैं । रस के लिए ही बकनेवाले ये बातूनी दुनियाभर के बड़े लोगों को अपना रिश्तेदार घोषित करते हुए सहारा अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने । गौरव अनुभव करनेवाले इनकी मित्रता एक बोझ है ।

"एक तृप्त आदमी" परसाई के श्रेष्ठ रेखाचित्रों में से एक है । नंदलाल याने एम.एल.मास्टर लोगों की दृष्टि में तृप्त आदमी है । दुनिया के प्रति इनके मन में कोई आक्रोश नहीं है, सिर्फ अपना और अपने परिवार के ही परिधि में कोल्हू के बैल के समान घूमनेवाले एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार का यह मास्टर तृप्त इसलिए है कि यहाँ अभाव है, जो भी गरीबी का दूसरा नाम है । इसकी "तृप्ति" क्या संतोष का परिणाम था अथवा आरोपित ? परसाई इसको परिभाषित करते हुए व्यंग्य इस

पुकार करते हैं - तृप्त आदमी आउट - आफ स्टाक होता जाता है एस.एल.मास्टर झरना है, रेगिस्तान का । उसे देख लेने से हैरत लगता है कि जैसे तीर्थ स्नान कर लि हो । वह पूर्ण तृप्त आदमी है । उसे कोई भूख नहीं है । और मुझे याद आता है कि पिछले साल जब मैं बीमार पड़ा था, तब मेरी भी भूख मर गई थी । अच्छे से अच्छे पकवान मेरे सामने रखे रहते थे और मैं मुँह फेर लेता था ।[140] इन पंक्तियों का व्यंग एस.एल. मास्टर की तृप्ति की खिल्ली उड़ाता है, अभाव से इनकी तृप्ति का जन्म हुआ है । हमारी क्रूर सामाजिक व्यवस्था के शिकार हुए लोगों में से एस.एल.मास्टर भी एक हैं जिनके मन में आशाएँ हैं, नाम कमाने को जी ललचाता है, प्रेम करने को दि करता है, हाथों के चमत्कारों से एकदम प्रभावित होनेवाला और उन चमत्कारों से अपने को बड़ा समझने की मध्यवर्गीय अस्मिता है । वास्तविकता का बोध होते ही इस अस्मिता का अंत होता है । इसकी ओर इशारा करते हुए लेखक का कहना है कि "सड़ के बायें किनारे की पटरी से सीधे चले जा रहे हैं - कुछ नीचे देखते, नपाता-नपात कदम रखते । रास्ते में लड़के एक के बाद एक नमस्ते करते निकलते हैं और मास्टर सिर हिला जवाब देते हैं । मास्टर के मन ने सिर उठाया । सोचा - "मैं चुनाव में खड़ा हो जाऊँ ?" उसी क्षण दूसरा ख्याल आया - "पर ये नमस्ते करनेवाले लड़के मतदाता कै थोड़े ही हैं " और तब उन्होंने मन ही मन अपनी उम्मीदवारी निःसंकोच वापस ले ली।[141]

एस.एल.मास्टर जैसों के लिए प्रेम भी वर्ज्य है । सामाजिक बंधन एवं मर्यादाओं में जकड़ा हुआ मध्यवर्गीय परिवारों के व्यक्ति चाहे प्रेम से हो, चाहे स्नेह से दूसरी स्त्री की ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देख सकता है । एक बार एस.एल. मास्टर की धनिष्ठता पड़ोसिन विधवा के साथ बढ़ गई जिस पर आपत्ति करते हुए पत्नी ने कहा - "जरा सोचो, लोग क्या कहेंगे । मास्टर के मन में बात गूँजती रही - "लोग क्या कहेंगे । दूसरे दिन से उन्होंने भाभी की तरफ देखा भी नहीं । एक दिन अनायास आमना-सामना हो जाने पर भाभी डबडबायी आँखों से बोली - "क्यों लाला, ऐसा ही नेह निभाया जाता है ?" मास्टर ने कहा - जरा सोचो तो लोग क्या कहेंगे।[142] ये घटनाएँ निम्न एवं मध्यवर्गीय समाज की अस्मिता एवं पहचान को कुचल देनेवाली बर्बर शक्तियों की ओर संकेत करती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि इस वर्ग के आदमी सर्वहारा हताश और सारे संसार से विमुख होकर मोहभंग का अनुभव करने लगते हैं ।

एम.एल.मास्टर का जीवन अर्थ व्यवस्था का शिकार हुआ है जिसके कारण हीनग्रंथियों से वह तिलमिला रहा है। मास्टर साहब अपनी मजबूरियों के कारण ऐसा यांत्रिक जीवन जीते हैं कि इनकी जीवनधारा में कोई रस नहीं है, जीवन के प्रति कोई आस्था नहीं। मगर ध्यान देने की बात यह है कि इस वर्ग के लोग अपनी यांत्रिक जीवनविधान के बावजूद भी अपने कर्तव्य के प्रति अत्यंत सचेत रहते हैं क्योंकि यही उनका आसरा होता है। पेट इनका सबसे बड़ा सवाल होता है - "वे मेहनत से पढ़ाते हैं। न खुश होते हैं, न नाराज़। न हँसते हैं, न डाँटते हैं। न प्रेम करते हैं, न घृणा। न हेडमास्टर की किसी बात में शंका करते हैं, न अपने से छोटों को सलाह देते हैं। ...दुकान पर खड़े एक आदमी ने कहा - "अमेरिका और रूस हमेशा क्यों झगड़ते रहते हैं? मास्टरजी बोले, झगड़ने दो अपना क्या लेते हैं। दूसरा दिन किसीको लक्ष्य किये बोला - "काश्मीर के मामले में क्या हो रहा है? मास्टर ने कहा - "होता होगा बड़े बड़े लोग तो लगे हैं। आदि।[143] इनका जीवन लौकिक से संयुक्त रहते हुए भी असंपृक्त सा है - कमलपत्र की भाँति। अभाव-गरीबी-अर्थ व्यवस्था का यह फल है।

जीवन के प्रति एम.एल.मास्टर का रुख जो है वही रुख "एक शरीफ आदमी का भी है। सांसारिक व्यापारों के प्रति इन दोनों की विचारधारा की समानता देखने योग्य है और ऐसी समानता को अन्यान्य पात्रों में भी बराबर देख सकते हैं।

एम.एल.मास्टर का परिचय परसाई ने इस ढंग से दिया है कि वे उनके कमरे के विवरण के साथ आवरण में दिये गए विवरणों से उनकी जिंदगी की असलियत का परिचय अपने आप होता है। "एक तृप्त आदमी की कहानी" वास्तव में एक अतृप्त आदमी की कहानी है।

परसाई मानते हैं कि व्यंग्य जीवन की समीक्षा है, वह हमें मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करते हैं। अपने ऐसे रेखाचित्रों में परसाई व्यक्ति के माध्यम से आज के समाज की असमानताओं, विसंगतियों और उसकी असामाजीयता को उघाड़कर रख रहे हैं। साहब महत्वाकांक्षी, मुफ्तखोर, असुविधा-भोगी, दलबदलनेवाला आदि रेखाचित्रों में मानव-स्वभाव के अजीबो-गरीब दास्तानों को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

वैसे देखा जाय, तो परसाई की हर कहानी एक सुंदर रेखाचित्र है जिसमें मनुष्य का विश्लेषण है, उसके अंतरंग की पहचान का प्रयत्न है । नर्मदाप्रसाद खरे की ये पंक्तियाँ इन रेखाचित्रों की सही तस्वीर पेश करती हैं - "रेखाओं से जीवन का मर्म बोलता है । व्यंग्यकार जब जीवन की व्यथा से अभिभूत होता है, वह "रामदास" जैसी वेदना को साकार करता है और जब उच्चवर्गीय पाखंड और सतहीपन पर हँसता है, तब साहब महत्वाकांक्षी को मूर्त करता है । इन रेखाचित्रों में हमारे परिचित चरित्र हर कहीं हैं, पर परसाई ने अपनी मर्मस्पर्शी दृष्टि से उनके भीतर पीड़ा, आत्मसम्मान, स्वार्थपरता, कुंठा, पाखंड, छल और दुर्बलता, ओछापन और गहराई है को दर्शाया है ।"[144] परसाई निश्चय ही हमारे विशिष्ट रेखाचित्रकारों में से अन्यतम हैं ।

परसाई के उपन्यास

तट की खोज

"तट की खोज" परसाई का एक लघु उपन्यास है जिसमें निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के आर्थिक संकट की शिकार बनी हुई एक शिक्षित युवति की दर्दभरी कहानी है। परसाई ने इस उपन्यास के द्वारा प्रेमचंद की साहित्यिक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाया है। प्रेमचंद ने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में नारी को प्रधानबिंदु बनाकर उस जीवन की मजबूरियों से उत्पन्न त्रासदियों को इस प्रकार निरूपित किया है कि इनके लगभग सारे मध्यवर्गीय नारीपात्र सामाजिक बुराइयों के जबर्दस्त शिकार हैं। अनमेल विवाह, वेश्यासमस्या, दहेज समस्या, गरीबी, अशिक्षा के कारण अपने जीवन से संघर्ष करनेवाली स्त्रियों के करुणाजनक चित्र प्रस्तुत करने में प्रेमचंद सिद्धहस्त हैं। एक दृष्टि से प्रेमचंद के कथासाहित्य का प्रमुख स्वर नारी रोदन है। यह स्वर प्रेमचंद के बाद के कथाकारों में भी प्रमुख रूप से प्रधान रहा है।

परसाई प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख कथाकारों में से हैं जिनके कथासाहित्य में नारी पात्रों की संख्या बहुत कम हैं, जहाँ जहाँ नारीपात्र आए भी हैं वहाँ या तो वे पुरुष समाज की शिकार बनकर आई हैं, या तो पुरुष के दंभी स्वभाव के नीचे कुचली हुई अभागिनों के रूप में आई हैं। और कुछ कहानियों में पुरुष समाज के कुत्सित स्वभाव पर बिना किसी संकोच के प्रश्नचिह्न लगाती हैं, उनका विरोध करती हैं। राम विराम, घेरे के भीतर के स्त्री-पात्रों को यहाँ देख सकते हैं। वैसे देखा जाय परसाई के नारी पात्र एक ओर निम्न मध्य मध्यवर्गीय संकटों के कारण पीड़ित हैं, दूसरी ओर उच्च वर्ग की झूठी प्रतिष्ठा एवं उच्चता भाव से ग्रसित हैं। और इनके कथासाहित्य के नारी पात्र ऐसा तो नहीं कि एकदम हुंकार करते हों मगर नारी अस्मिता के प्रति सचेत और आवाज़ बुलंद करने में भी पीछे नहीं हैं। ये पात्र गुप्तजी की "विद्युता" का स्मरण करवाते ता

नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की खोज और पहचान "तट की खोज" उपन्यास में की गई है। यहाँ की शीला प्रेमचंद के नारी पात्रों की अगली कड़ी है। प्रेमचंद के नारी पात्र समाज के दूषित वातावरण में पुरुषों के दंभ और समाज के बर्बर व्यवहारों के

कारण आहत हुई हैं तो परसाई के नारी पात्र, विशेषकर, शीला आहत नहीं होती अपितु और भी आत्मबल के साथ इस समाज से लड़ती है और अपना अस्तित्व बनाये रखती है । शीला तो नारी समाज की जागृत चेतना का स्फुलिंग है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में चित्रित नारीपात्रों में शीला का अपना विशिष्ट और भिन्न स्थान इसलिए है कि वह नारी अस्मिता का अंत नहीं होने देती और मूँदकर परंपरा की लीक का गुलाम बनना भी नहीं चाहती, भावुकता में बहकर जीवन से पलायन नहीं करना चाहती किंतु विचारों, अपनी बुद्धि और साहस से समय तथा समाज के प्रवाह के विरुद्ध तैरते हुए अपनी समकालीन नारियों में अदम्य धैर्य और अस्मिता भरती है । यह शीला अपने को उन तमाम नारियों से विशिष्ट बताते हुए कहती है - "शीला प्रेमचंद की सुमन या शरतचंद्र की कमल या जैनेन्द्र की मृणाल से हटकर गढ़ा हुआ चरित्र है.. मैं मन ही मन यह सब सोच ही रहा था कि शीला ने मुझसे कहा कि क्रांति कुमारजी, इस रूप में मुझे देखकर आपको भी ही आश्चर्य न हो रहा हो पर बहुतों को होता है । हमारे समाज में और हमारे साहित्य में समाज से उपेक्षित या पुरुष से प्रवंचित नारी या तो वेश्यावृत्ति स्वीकार कर लेती है या गंगा मैया की शरण चली जाती है । ये दोनों रास्ते मैंने नहीं अपनाये । मैं चाहती तो शरच्चंद्र की कमल की तरह या जैनेंद्र की मृणाल की तरह छद्म विद्रोह का रास्ता अख्तियार कर सकती थी, पर मैंने वैसा नहीं किया । क्या रूढ़ियों की गुलामी स्वीकारकर के असुरक्षित या जिद्दी पुरुषों की भीरुता या स्वार्थ के कारण प्रवंचित और लांछित लड़की के लिए वेश्यावृत्ति, आत्महत्या या आतंकवादी राजनीति या दिखाऊ विद्रोह के अलावा सहज सामान्य जीवन जीने की शैली का कोई विकल्प नहीं है ।[145] हिन्दी की एवं भारतीय साहित्य में चित्रित नारी पात्रों में से यह इस दृष्टि से भिन्न है । दिखाऊ विद्रोह से बिलकुल नफरत करके पूरे जीवन की सभी मान्यताओं से परंपराओं से विद्रोह करनेवाली शीला हमारे नारी पात्रों में, अभूतपूर्व है ।

"तट की खोज" उपन्यास महज दो पुरुष और एक स्त्री के बीच की प्रेम कहानी नहीं है । यह उन मध्यवर्गीय परिवारों की ग्रंथियों, हीनता और उच्चता के भावों से ग्रसित मानसिकता का विश्लेषण करनेवाला दास्तान है । यहाँ के तीनों प्रमुख पात्रों की समस्याएँ एक होते हुए भी अलग-अलग इसलिए हैं कि तीनों के चिंतन में समानता नहीं है,

किसी भी बिन्दु पर ये अक्सर आपस में मिलते नहीं हैं। शीला निम्न मध्यवर्गीय असहायता का ज्वलंत उदाहरण है, महेन्द्रनाथ मध्यवर्गीय नैतिकता के बोझ से पीड़ित है और मनोहर अपने परिवार की झूठी प्रतिष्ठा का शिकार है जोकि अपने अंतर की "सच्चाई" को सच्चाई के रूप में स्थापित करने में असमर्थ रहा है। परसाई के इस उपन्यास में मानवीय भावनाओं तथा विभिन्न विचारों के बीच टकराव की अपेक्षा बिखरते मानव मूल्यों, टूटते रिश्तों एवं मानवीय मूल्यों की कहानी है।

"तट की खोज" तंत्र की दृष्टि से आत्मकथात्मक उपन्यास है जिसके दो प्रमुख पात्र अपने अपने अंतरंग की उलझन एवं संघर्ष को आत्मनिवेदन के रूप में प्रस्तुत करते हैं और तीसरा पात्र महेन्द्रनाथ जोकि शीला के जीवन में महत्वपूर्ण पात्र अदा करता है, शीला के मानसिक संघर्ष और उसकी घुटन का जबरदस्त शिकार होकर तद्द्वारा अपना चरित्र निर्मित करता है। परसाई ने इस अवस्था या आत्मनिवेदन तंत्र को अपनाकर समस्याओं को भोगे हुए व्यक्तियों के मुँह से ही उनका विश्लेषण करवाने के तद्द्वारा उन समस्याओं की गंभीरता को रेखांकित कराने का प्रयास किया है।

"तट की खोज" उपन्यास में परसाई ने हमारी सामाजिक बुराइयों, विसंगतियों मध्यवर्गीय परिवारों की भयानक झलकियों, शोषक-शोषित लोगों की मानसिकता और उसके मूल्यों का इस लघु उपन्यास के कलेवर में इस कदर व्यंग्य किया गया है कि इसमें हमारे समाज के समस्त द्वंद्व एवं विरोधाभास अनावृत्त हो जाते हैं।

"शीला" जोकि इस उपन्यास की नायिका है, समस्या का केन्द्रबिन्दु है। शीला गरीब परिवार की है, माँ-विहीन लड़की है, उस ईमानदार पिता की बेटी है जोकि पेंशन पर गुजार कर रहे हैं, ऐसे परिवारों की लड़कियों को किस दृष्टि से यह समाज देखता है, इसको स्वयं शीला यों कहती है - "मैं खूब मन लगाकर पढ़ती थी। बड़ी प्रतिभाशालिनी मानी जाती थी। मैट्रिक और इंटर दोनों प्रथम श्रेणी में किये थे। अपने मित्रों तथा परिचितों में मेरी प्रतिभा का बड़ा आतंक था। मैं सुंदरी भी थी, ऐसा मुझे लगता है, क्योंकि सहपाठी लड़कों से लेकर मुँहबोले काका, मामा, दादा तक मुझे बड़ी लोलुपता से घूरते थे। कुछ लोग पिताजी से मिलने आते, तो वे पिताजी से बातें करने में ध्यान कम लगाते, परदे तथा किवाड़ के छिद्र में से

मुझे देख सकने का प्रयास करने में अक्षम[146] निम्नमध्यवर्गीय परिवार की लड़कियाँ अपने जीवन में सुंदर सपने देखने से भी वंचित हैं क्योंकि इनकी आर्थिक शक्ति इतनी कमजोर होती है वे अपने सपनों को संजो नहीं पाती हैं । इस प्रसंग में परसाई ने दहेज समस्या के भयंकर रूप को उघाड़कर रखा है । और दहेज के शिकंजे में पड़कर तड़पनेवाले मध्यवर्गीय परिवारों की मजबूरियों का विश्लेषण किया है । अपनी गरीबी के कारण मुँहमांगी दहेज देने में असमर्थ पिता की लाचारियों से आत्म साक्षात्कार करके नारी शर्तों में होनेवाली शादी को निरर्थक मानती है - "इतनी अपमान से विवाह करने की अपेक्षा नहीं करना अच्छा है, मैं विवाह नहीं करूँगी ।[147]

मध्यवर्गीय परिवार में पिता यही सोचता है कि अपनी बेटियों की शादियाँ हो जायें तो उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी । शादी के बिना घर में बेटी को रखना एकदम लज्जाजनक घटना है, मानो समाज से कटकर जीना है, मान-मर्यादा से हाथ धोने के बराबर है। इस बारीक मानसिकता का परसाई ने मार्मिक रूप से निरूपित किया है "लड़की के कालेज में पढ़ने से पिता कुछ समय के लिए चिन्ता से बच जाता है...लोगों से यह कहने के बदले कि विवाह नहीं हो पा रहा है, वह यह कह सकने की सुविधा पा लेता है कि अभी पढ़ रही है ।...घंटों बरामदे में बैठे शून्य आँखों से आकाश को देखती रहती । वे लोगों से मिलने-जुलने में बहुत झिझकते हैं वे । एक प्रकार की विकृत मान्यता के शिकार वे हो रहे थे ।[148]

परसाई का व्यंग्य सामाजिकों की दृष्टि पर प्रहार करता है, जहाँ लड़की की योग्यता, बुद्धि और प्रतिभा की अपेक्षा उससे लाये जानेवाले पैसे पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है । परसाई कहते हैं - माँ-बाप के हाथों में जो तराजू होता है वह इतना सेन्सिटिवी होता है कि "नारी की भावनाओं का कोई मूल्य रह नहीं जाता है । शीला अपने आत्मनिवेदन में दहेज-दानव की व्याख्या करते हुए नाना प्रसंगों का उदाहरण देती है जिसके कारण नारी को समस्याओं से गुजरना पड़ता है - "मुझे, मेरी समस्त विद्या बुद्धि और सौंदर्य के साथ दूसरे एक पलड़े पर रखकर रखते, तो हर बार मेरी ही पलड़ा हल्का पाते । तब पलड़े बराबर करने के लिए मेरे साथ रुपयों का वजन रखने को कहते। मैंने उस विवशता को अनुभव किया है । फोटोग्राफर के सामने जब मैं बिठायी जाती तब

मेरी अंतरात्मा क्रोध और ग्लानी से भर जाती ।[149] शीला के इन शब्दों से मध्यवर्गीय परिवारों में शादी किस प्रकार सौदा बनकर आती है, इसका मार्मिक व्यंग्य

महेन्द्रनाथ एक अजीब व्यक्तित्ववाला मध्यवर्ग का युवक है जिसके कृतित्व से व्यक्तित्व, कथनी से करनी इतना भिन्न है कि वह अत्यंत दयनीय रूप में पेश होता है। कागज़ों पर क्रांति का नगाड़ा बजानेवाले किन्तु जीवन में नितांत कायर बनकर जीनेवाले अनेकों पात्रों की सृष्टि परसाई ने की है जिनमें से महेन्द्रनाथ का स्थान सर्वोच्च है । परसाई मानते हैं कि महेन्द्रनाथ जैसे कागज़ी क्रांतिकारियों से समाज को ज्यादा खतरा है क्योंकि वे बाहर से आदर्श, क्रांति, परिवर्तन आदि की जोरदार बातें करते हैं जबकि ज़िंदगी की वास्तविकताओं से टकराते हैं तो ऐसा पलायनवादी होते हैं कि उनके व्यक्तित्व का पाखंडीपन, अंतर्द्वन्द्व, विरोधाभास बिना किसी प्रयास के कि अत्यंत सहज रूप में अपने आप खुलते जाते हैं । छ नैतिकता का मुखौटा पहनकर ज़िंदगी से भागनेवाला महेन्द्रनाथ ऐसे क्रांतिकारियों में से एक है ।

समाज में ऐसे व्यक्तियों के हर व्यवहार को मुमानी से देखने को लोग मजबूर हो जाते हैं - यहाँ तककि उनकी भावुकता और प्रेम को भी । इनकी भावुकता भी केवल दूसरों को धोखा देनेवाली है, यथार्थता से आँख मूंदनेवाली है । महेन्द्रनाथ के मुखौटे वाले व्यक्तित्व का परिचय देते हुए शीला का यह कथन कि - "जहाँ-तहाँ पत्रों में उसके लेख पढ़ती थी । उसके लेखों में बड़ा ओज, बड़ा विद्रोह होता । समाज की सड़ी रूढ़ियों पर, पाखंडों पर, मिथ्याचारों पर वह बड़ा कटु प्रहार करता, उसके लेखन में बड़ी संवेदना, करुणा होती । ऐसा लगता था कि भावी सामाजिक क्रांति का वह अग्रदूत होगा । नये समाज की रचना उसके हाथों से ही होगी ।[150] उसके अतीव आ विश्वास का द्योतक है । वह समझती है कि इस प्रकार के व्यक्तित्व को रखनेवाला सम के लिए उपयोगी होगा और अपने प्रगतिशील विचारों से समाज के पाखंडों का पर्दाफाश करेगा और वह व्यक्ति मानव-विरोधी नहीं होगा । शीला को इस बात का विश्वास नहीं था कि उसका प्रेमपत्र मोहजाल बिछाने का बहाना था । क्योंकि उस पत्र में वे सारे शब्द थे जिसके प्रभाव में कोई भी आ सकता था । शीला जैसे संवेदनशील युवति उदात्त विचारों व हृदयवाले के प्रति आकृष्ट हो गई तो इसमें आश्चर्य नहीं । शीला

महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व का व्यंग्य करते हुए कहती है - 'पर इस पत्र में ऐसी अच्छी बात कही गई थी और कितने उच्च स्तर पर । उसमें गंभीरता थी, कलात्मकता थी, एक "डिग्निटी" थी ।[151] ऐसा पत्र पाकर उन्माद का अनुभव अंत ही नहीं पड़ा था कि उसके ठीक चौबीस घंटे के बाद एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण शीला अपने स्वप्नीले संसार से एकदम ज़मीन पर आ गिरती है, मोह भंग का अनुभव करती है । आदर्श और यथार्थ के बीच अंतर जानने को मजबूर होती है ।

उस रात शीला अपनी सहेली के घर से देर रात जब वापस लौट रही थी, तो गुंडों ने उसका पीछा किया तो उनसे पिंड छुड़ाने के लिए दूसरा मार्ग न पाकर महेन्द्र के घर में प्रवेश करती है - इस आशा से कि वहाँ वह सुरक्षा पायेगी ।

परसाई ने इस प्रसंग की उद्भावना को अत्यंत नाटकीय आयाम देकर मनुष्य के अस्वस्थ मन का, झूठी छद्म क्रांतिकारिता का, प्रेम के निरर्थक शब्द जालों का और सबसे बढ़कर मनुष्य की कायरता का व्यंग्य किया है, आचरण की विसंगतियों पर प्रहार किया है । साथ ही समाज के विरोधाभासों को उद्घाटित किया है । और बताया है कि महेन्द्रनाथ जैसे कृत्रिम बद्ध क्रांतिकारी समाज के लिए अत्यंत आघातकारी होते हैं ।

शीला गुंडों के डर भय से महेन्द्र के घर क्या आई तो पड़ोस में हलचल मच गई । पड़ोस के वृद्ध भद्र पुरुष आकर शीला पर लांछन लगाने लगे । उनके व्यवहार का व्यंग्य करते हुए शीला कहती है - 'गुंडों से तो मैं बच गयी, पर ये शरीफ मुझे खा जायेंगे..[152]

शीला का मोह भंग तब होता है जबकि उसका पत्र-प्रेमी गुंडों के भय से घर आयी प्रेमिका की इज्जत की रक्षा करने के बजाय एकदम कायर, दुर्बल सा व्यवहार करके अपनी असलियत का परिचय देता है । शीला का यह कथन कि 'आपका सब लोग बड़ा विश्वास और आदर करते हैं । फिर आपको सत्य का बल है । आप साहसपूर्वक कह दीजिए, सबको विश्वास हो जायेगा ।[153] महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व का व्यंग्य करता है तो महेन्द्रनाथ का यह कथन कि 'तुमने बड़ा बुरा किया, बड़ी बदनामी होगी, ...एक तरकी है, मैं पीछे के दरवाज़े से निकल जाता हूँ । जब वे लोग नहीं पायेंगे, तो बदनामी नहीं होगी । दोनों साथ मिलेंगे तो उनका संदेह पुष्ट ही होगा ।'[154] उसके व्यक्तित्व के

पाखंड एवं हृकोसलेपन को उजागर करता है । लेखक और जीवन की सच्चाइयों को उघाड़ता है, शीला का मोहभंग करता है, यथार्थता का बोध कराता है । इस पुसंग के द्वारा विचारात्मक लेख-लिखनेवाले इस बौद्धी पुगतिकारी, आदर्श प्रेमी का भंडा फोड़कर इस समाज के उन तथाकथित बुद्धिजीवियों, विचारकों एवं सम्माननीय व्यक्तियों की थिनौनी मानसिकता का, जिनके आचार-विचार में कोई ताल-मेल नहीं है, परसाई ने कड़ा व्यंग्य किया है ।

शीला एक साहसिक महिला है जिसे प्रेम के मोह जाल ने ऐसा पाठ पढ़ाया और ऐसा कलंक लगाया जिससे लांछित होकर दुर्बल मन की कोई और शीला होती तो कभी की मर जाती किन्तु यह शीला बीनियस की भाँति आत्माघात, लांछन, छल-कपट की अग्नि से झुलस न जाकर दूसरा जन्म लेती है, जीने का साहस बटोरती है, यथार्थता से आत्मसाक्षात्कार करने लगती है और ऐसा आत्मविश्वास बढ़ा लेती है कि वह सोचती है जीवन जीने को है मरने को नहीं । शीला का कहलना है - "मैंने सोचा कि इसमें तो जीना असंभव हो जायेगा । जीने के लिए प्रयास करना पड़ता है । यह मौत है, जो बिना प्रयास मिल जाती है।[155] वास्तव में परसाई का जीवन दर्शन शीला के द्वार अभिव्यक्त हुआ है, अनेकों विपदाओं और कष्टों के बावजूद भी जीवन से न हारना, पलायनवादी न होना, जीवन के प्रति अनास्थावादी दृष्टिकोण न अपनाना परसाई की मान्यता है । शीला के उपरोक्त वाक्यों में जीवन के संबंध में व्यक्त उसकी मान्यता की तुला परसाई के "गर्दिश के दिन" में व्यक्त इनकी मान्यता से कर सकते हैं - "मैंने तय किया - परसाई डरो किसीसे मत । डरे कि मरे । सीने को ऊपर कड़ा कर लो । भीतर तुम जो भी हो । जिम्मेदारी को गैर जिम्मेदारी के साथ निभाओ।[156] इस जीवन दर्शन का प्रतिबिंब शीला है । शीला परसाई है जिनमें वैचारिक समानता है संसार की सहानुभूति और करुणा को किसी भी मूल्य पर स्वीकार करने को हरगिज तैयार नहीं । "दृढ़ता पूर्वक झूठ" का सामना करते हुए उसके साक्षात्कार करना इन दोनों का जीवन धर्म है ।

इस उपन्यास का महत्वपूर्ण पात्र मनोहर और इसकी बहन विमला मानवीय भावनाओं के झरने हैं । विमला द्वारा मनोहर का परिचय शीला से होता है, यह परिचय क्रमशः स्नेह और प्यार में बदलकर उससे शादी करने को भी तैयार हो रहता

शादी का प्रस्ताव होने पर शीला और मनोहर के बीच का यह संवाद उनकी जीवन दृष्टि का परिचय देता है - "और मैं - मैं तुम्हारा साथ दूँगा, मैं जीवन भर निबाह करूँगा।" वह चौंकी। माथा उठाया और बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि से सीधे मेरी ओर देखकर कहा - आप जल्दबाजी में ह कह रहे हैं। केवल निबाह के लिए विवाह करेंगे?" मुझे भूल लगी। मैं भूल गया था कि मैं बड़ी तीक्ष्ण-बुद्धि की स्त्री से बात कर रहा हूँ। "निबाह शब्द उसने पकड़ लिया। मैंने कहा - "नहीं, केवल निबाह के लिए नहीं। मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। मैं तुम्हें चाहता हूँ। तुम्हें अपनाऊँगा। तुम प्रतिष्ठापूर्वक मेरे घर में रहोगी।[157] शीला का व्यक्तित्व इतना प्रबुद्ध है कि वह किसीक से निर्वाहित होना नहीं पसंद करती। और अपनी स्थितिपर दूसरे की सहानुभूति की भी वह प्रतीक्षा नहीं करती।

शीला के घर में शादियाँ इसलिए रुक जाती थीं कि उसके पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, पैसे की तंगी इतनी रहती थी कि दहेज में वर को खरीदने की क्षमता उनमें नहीं थी। यह निम्न मध्यवर्गीय परिवारों का संकट है। इसके समांतर उच्च मध्यवर्गीय परिवारों को उनकी आर्थिक दृढ़ता निर्यंत्रित करती है, यहाँ तक कि उनको अमानवीय बना देती है। मनोहर और शीला के बीच के संबंधों में तनाव आने के लिए यह उच्च वर्ग बोध ही कारण है। इनकी भाभी बहुत और संपन्न घराने की थी, वह मानती थी कि उसके इस घर में आना ही मानो मेहरबानी है। इस उच्च मध्यमवर्ग समाज के उच्चता-बोध का रेखांकन करते हुए परसाई लिखते हैं - "मनुष्य का मूल्य करने के पहिले वे यह हिसाब लगाती थीं कि उसके पास कितना धन है। यदि वह उनसे कम होता तो, उसे वे आदमी मानने से साफ इनकार कर देतीं। यदि बराबर होता, तो वे उसका बड़प्पन नष्ट करने के लिए उसके संबंध में कोई कलंक ढूँढ लेती, उनके पास "रेडिमेड कलंक थे - "उनका बाप किसी को रखे है, वह शराबी है।[158] मानवीय संबंधों का को आदर न करके पैसे पर आधृत उच्चता बोध के कारण मनोहर की भाभी शीला जैसी नेक, सुंदर, प्रतिभावान लड़की को घर लाने में संकोच का ही नहीं अपितु पारिकृयबध करती जाती है। घर के विरोध का सामना करते हुए भी आखिर मनोहर शीला को धोखा न देकर शादी करने तैयार होता है।

शीला के चरित्र विकास में परसाई ने अद्भुत प्रबुद्धता दिखायी है । उपन्यास के शुरू से लेकर अंत तक स्थितियों से समझौता करने को वह कदापि तैयार नहीं आती । वह महेन्द्रनाथ से धोखा खा जाने के बाद इतनी संवेदनशील बन चुकी है कि मनुष्य के स्वभाव के मर्म को समझने में भूल नहीं करती । उसकी सोच की प्रबुद्धता इस बात में है कि मनोहर के प्रेम को प्रेम नहीं सहानुभूति मानती है, "निर्वाह" करने की उसकी बात पर आपत्ती करती है और यह जानती है कि मनोहर के घर उसका निर्वाह नहीं हो पाता है और इसलिए ही मनोहर के सहानुभूति युक्त प्रेम को स्वीकारने की अपेक्षा अपना व्यक्तिगत अस्तित्व बचाये रखना उचित समझती है । यही उचित मानती है कि मनोहर को समस्त समस्याओं से मुक्ति देकर खुद नया जीवन शुरू करे । शीला के यह वाक्य उसके निर्भीक व्यक्तित्व को रेखांकित करते हैं - "इसलिए मैंने सोचा कि आपको मुक्त कर दूँ ।...मनो जीवन को ठुकराकर चली आई हूँ । पर मैंने निराशा में ऐसा नहीं किया । जीवन के प्रति आज मेरी आस्था अधिक हो गयी है, इसलिए मैंने सहारा त्याग दिया ।"[159]

शीला का यह नया जीवन पुरुषत्व के दंभ पर नारी अस्मिता की विजय की प्रतीक है । नारी को लता अथवा अबला जैसे शब्दों से संबोधित करके उसका स्वतंत्र अस्तित्व छीनकर उसे अपनी गुलामी की जंजीरों में जकड़कर रखे हुए पुरुष वर्ग एवं सामंती सभ्यता से छूट गई और प्रतिष्ठा को अपने असीम साहस से चुनौति देकर नये जीवन की, नये तट की खोज करनेवाली शीला आधुनिक समाज की जागृत एवं विचार शील नारियों की प्रबल पत है, पुरुष एवं समाज से आहत, पीड़ित नारी समाज के लिए भरोसा है, शीला परसाई की अनुपम सृष्टि है ।

इस उपन्यास की भूमिका में परसाई ने लिखा है "मूल घटना मुझे अपने कवि मित्र ने सुनायी थी, वे काफी भावुक थे । मेरी उम्र भी तब भावुकता की थी । कुछ स्थानी भी था, तार्किक कम था...लिखकर पछताया । छपा तब और पछताया..अब मैं इसका सामना नहीं कर सकता । मेरी एक तिहाई रचनाएँ ऐसी हैं जिनका सामना करते मैं डरता हूँ ।[160] परसाई का उपरोक्त वक्तव्य इस बात पर प्रकाश डालता है कि "तट की खोज" की रचना प्रक्रिया क्या रही ? "तट की खोज" अपनी संरचना में भावात्मक

ऊपर है जो हर क्षण नया मोड़ लेकर अत्यंत शीघ्र गति से आगे बढ़ता है । उपन्यास में घटनाएँ जो सुनियोजित रूप और आकार पाकर पाठकीय संवेदना को स्पंदित करने में जिस रूप से क्रियाशील रही हैं, वे कुछ अंततः और लेखकीय कल्पना के परिणाम मान लेने पर भी यहाँ की समस्याएँ तो एकदम सर्वकालीन हैं । हमारे मध्यवर्गीय परिवारों, समाज एवं मनुष्य के चरित्र की विसंगतियों, विरोधाभासों, विद्रूपों का विश्लेषण करने में लेखक सफल हुए हैं । यहाँ की शीला, महेन्द्रनाथ, मनोहर, उसकी भाभी और यहाँ का समाज आज भी जिंदा है इसलिए ही इसका सामना करना एक चुनौती है ।

क्रांतिकुमार के अनुसार शीला आज भी जिंदा है, उसने अपने तट की खोज कर ली है, अध्यापिका बनी है । परसाई के जीवन दर्शन ने उसको नयी जीवन दृष्टि दी है । शीला के अनुसार परसाई की जीवन दृष्टि साफ करने में वह निमित्त बनी । शीला का कहना है - "मैं कह सकती हूँ कि सामाजिक बुराइयों के प्रति सामाजिक करुणा और सामाजिक रोश आकृष्ट करने का कार्य परसाई जी ने तट की खोज के माध्यम से ही प्रारंभ किया और मुझे इस बात का बहुत गर्व अनुभव होता है कि परसाई जी दृष्टि साफ करने में मैं निमित्त बनी।..वे दुनिया को बेहतर बनाने में लगे हुए हैं । और जनशिक्षा का जितना बड़ा काम हमारे दौर में अकेले परसाईजी ने किया है, उतना किसी अन्य हिन्दी लेखक क ने नहीं ।[161] नारी अस्मिता की रक्षा के लिए, नारी गौरव को बनाये रखने के लिए परसाई की चिंतनधारा हमेशा प्रेरणा बनकर रहेगी, वास्तव में यही इस उपन्यास की सफलता है । उपन्यास के शुरू में निम्न मध्यवर्गीय संघर्षों बड़े का शिकार हो तिलमिलानेवाली शीला "पुरुषाना बड़े अहंकारः" का दमन करने में सफल होती है । क्रांति कुमारजी से मिली तो हैरान गए । "बैरा बिल ले आया था । शीला बहुत खीज लगी थी । मैंने कहा - "नहीं शीलाजी, आज पेमेंट मैं करूँगा । शीला समझ गई । बोली फिर वही पुरुषाना अहंकार - क्यों, पेमेंट आप क्यों करेंगे ? आपसे मिलकर मुझे ज्यादा हुई है ।पेमेंट मैं करूँगी।[162]

पुरुष प्रधान समाज की अस्मिता एवं दंभ को बिलकुल नकारने के साथ ही सामाजिक बुराइयों क से संघर्ष करने का रास्ता शीला ने प्रशस्त किया है । है यह "तट की खोज" उपन्यास की उपलब्धी है ।

रानी नागफनी की कहानी

"रानी नागफनी की कहानी" परसाई की एक प्रसिद्ध औपन्यासिक रचना है जिसको लेखक ने फैंटसी कहा है। और शिल्प की दृष्टि से इसको "रानी केतकी कहानी" की श्रेणी ठहराया है। फैंटसी कथा की उस संरचना को कहते हैं जहाँ लेखक अपने स्वप्नलोक में स्वच्छंद विचरण करते हुए ऐसे अद्भुत संसार का सृजन भी करता है, जहाँ के पात्र भी ही कल्पना के हों, मगर वहाँ की सच्चाइयों का संबंध यथार्थ जगत से जुड़ा हुआ होता है। "फैंटसी कुल मिलाकर मानव-कल्पना की ऐसी निराधार दौड़ है जिसका अस्तित्व विचार और तर्क के निषेध पर टिका है। यह धारणा पूरी तरह सच नहीं है कि किसी निर्धारित ढाँचे में न बंधना या परिचित आकारों में न ढलना फैंटसी का स्वभाव है, लेकिन उसका परिचय इतने से पूरा नहीं होता।.. मनोविज्ञान की भाषा में फैंटसी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति, समस्याओं से पलायन और क्षतिपूर्ति का अचेतन प्रयास है। व्यक्ति की कुंठाएँ तथा पूरी न हो सकनेवाली इच्छाएँ और अभिलाषाएँ फैंटसी के माध्यम से चित्रित एवं तृप्त हो जाती हैं। इस रूप में फैंटसी व्यक्तित्व को संतुलित करती है।[163] स्पष्ट है कि फैंटसी एक ऐसी कल्पना मूलक दुनिया है जहाँ मनुष्य के अचेतन मन की आकांक्षाएँ मूर्त रूप पाती हैं, वस्तुजगत में जिन चीज़ों को संभव होता नहीं देखा जा सकता उन्हें फैंटसी या कल्पना लोक में संभव होता देखकर यहाँ के पात्र तृप्त होते हैं।

फैन्टसी का संसार निराला है क्योंकि यहाँ लेखक लोकमानस की गहराइयों में रची बसाई हुई कथाओं के ढाँचे को लेकर ऐसे अनेकों प्रसंगों की कल्पना करता है। और चरित्रों को निर्मित करता है। ये प्रसंग व चरित्रों लेखक की सृजनशीलता की क्षमता के अनुसार अर्थ की प्रेषणीयता में, विचारों के संक्रमण में काम आते हैं। शेरवुड वर्ग के अनुसार "फैंटसी में चरित्र पूर्णतः यथार्थ नहीं होते, किन्तु उनका चित्रण कुछ इस प्रकार किया जाता है कि वे यथार्थ का भ्रम पैदा करते हैं और कभी कभी तो यथार्थ की पूरी ईमानदारी से व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। फैंटसी में लोक कल्पना का पूरा इस्तेमाल होने के कारण फैंटसी लोकजीवन के विविध रंगों को उभारने में पर्याप्त सहायक होती है।

फैन्टसी व्यंग्य की उर्वरभूमि सिद्ध हो सकती है । क्योंकि यहाँ लेखक अपनी पूरी व्यंग्य-शक्ति का उपयोग करके ऐसे पात्रों एवं प्रसंगों को उभारकर ला सकता है जिससे व्यंग्य अपनी पूरी सामर्थ्य से अभिव्यक्त हो सके । यहाँ व्यंग्यकार अपने कल्पित पात्रों के माध्यम से व्यक्ति समाज, राष्ट्र, यहाँ तक कि समूची मानवजाति के इतिहास की विसंगतियों को, विद्रूपों को व्यंग्य के निकष पर कसकर समाज को उसकी असलियत का पता दे सकता है । "वास्तव में फैंटसी व्यंग्य को संप्रेषित करने का एक अत्यंत सशक्त माध्यम है जिसमें यदि व्यंग्यकार समुचित स्वच्छंदता बरतते हुए, संयत व्यवहार करते हुए व्यंग्य को उभारे तो वह स्थितियों और देशकाल के विद्रूप को अंकित करने में एक कलाकार की भूमिका को बेहतरीन ढंग से निभा सकता है ...फैंटसी में व्यंग्य लिखने के लिए अधिकांश व्यंग्य रचनाओं के लेखकों ने कथात्मकता के साथ-साथ नाटकीयता का भरपूर प्रयोग किया है । कलाकार की मानसतुष्टि होने के कारण फैंटसी में कल्पना के घोड़े दौड़ाने का पूरा पूरा अवसर तो मिलता ही है ।[165] लेखक की कल्पना, सृजनात्मक प्रतिभा और अनुभव के आधार पर फैंटसी का विशाल कैनवास निर्मित होता है और उसका महत्त्व भी बढ़ जाता है । फैंटसी में लौकिक व्यापारों की विसंगतियों तथा मानस-व्यापार के विद्रूपों का सशक्त लेखक बड़े ही सशक्त ढंग से उद्घाटन करके व्यंग्य करता है ।

"रानी नागफनी की कहानी" में परसाई ने फैंटसी का कलेवर अपने कथ्य की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए चुना है । वैसे भारतीय साहित्य की अनेकों चर्चित एवं सुप्रसिद्ध प्रसिद्ध कृतियाँ फैंटसी के कलेवर में आबद्ध हैं । इस युग के श्रेष्ठ कवि प्रसाद ने भी अपनी "कामायनी" में इस फैंटसी का उपयोग किया है । गजानन माधव मुक्तिबोध के अनुसार "कामायनी की कथा केवल एक फैंटसी है, जिस प्रकार एक फैंटसी में मन की निगूढ़ वृत्तियों का, अनुभूत जीवन समस्याओं का इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवनस्थितियों का प्रक्षेप होता है, उसी प्रकार "कामायनी" में भी हुआ है ।...दूसरे शब्दों में, प्रसादजी के अंतःकरण में जो एक जीवित और जीवंत, छटपटाती हुई, दुखती हुई ग्रंथी है - वह आभ्यंतर ग्रंथ अपने पूरे दुख, अपने संपूर्ण ज्ञान, अपने पूरे आवेग और अपने संपूर्ण भान, और भान के उलझाव के साथ कामायनी में प्रकट हुई है ।[166]...आगे प्रसादजी की "कामायनी

को एक फैंटेसी कहते मुक्तिबोध का कहना है - "कामायनी" की फैंटेसी के कैनवास पर लेखक का स्व प्रकट हो रहा है - ऐसा "स्व" जो अपनी भावुक आदर्शवादी आँखों से, वास्तविक जगत की, जिसका कि प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनुभव लेखक को रहा आया, उस आधुनिक जगत की आलोचना कर रहा है ।[167] कामायनी के ऐतिहासिक पात्रों की "दिव्यता" की चकाचौंध में आधुनिक मनुष्य की एवं समाज की विसंगतियों के विस्मृत हो जाने की संभावना के बावजूद भी प्रसादजी का लक्ष्य मन, हृदय और बुद्धि के अंतर्द्वंद्वों को, उनके विद्रूपों को, जीवनक्रम को रेखांकित करना ही है । कामायनी के सर्गों के शीर्षक भी इस बात को स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य किन किन भावों से आलोड़ित होकर समस्याओं और संघर्षों से गुजरता है । इस दृष्टि से कामायनी को फैंटेसी काव्य कहा जाय, तो उसकी महत्ता में कोई कमी नहीं आएगी ।

मुक्तिबोध ने "कामायनी:एक पुनर्विचार" में फैंटेसी के स्वरूप पर विचार करते हुए उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला है -

1. फैंटेसी के अंतर्गत, भावपक्ष प्रधान और विभाव पक्ष गौण और प्रच्छन्न तो होता ही है, साथ ही यह भाव पक्ष कल्पना को उत्तेजित करके, बिंबों की रचना करते हुए एक ऐसा मूर्त विधान उपस्थित करता है कि जिस विधान में उस विधान ही के नियम होते हैं ।[168]

2. फैंटेसी के x अंतर्गत कल्पना का मूल कार्य मन के निगूढ़ तत्वों को प्रोद्भासित करते हुए, विभिन्न रंगों में उन्हें अपने समस्त सौंदर्य के साथ उद्घाटित करता रहता है । मन के ये निगूढ़ तत्व, अंतर और बाह्य की परस्पर क्रिया - प्रतिक्रिया द्वारा उपलब्ध, सम्भारित और संशोधित होनेवाले वे जीवन-तत्व हैं कि जो तत्व, आंतरिक संवेदना, संवेदनाओं और बाह्य तथ्यों को परस्पर-समन्वित और एकीभूत करके, अपना स्व-स्वरूप विकसित करते हैं ।[169]

3. फैंटेसी के प्रयोग में, कई प्रकार की सुविधाएँ होती हैं । एक तो यह कि जिये और भोगे हुए जीवन की वास्तविकताओं के बौद्धिक अथवा सारभूत निष्कर्षों को अर्थात् जीवन-ज्ञान को, (वास्तविक जीवनचरित्र उपस्थित न करते हुए) कल्पना के रंगों में प्रस्तुत किया जा सकता है । इस प्रकार की ज्ञान-गर्भ फैंटेसी वास्तविक जीवन ही का प्रतिनिधित्व करती है ।[170]

५. वह फैंटसी ही क्या जिसमें असंगतियाँ नहीं ? किन्तु असंगतियाँ भी तरह-तरह की होती हैं ...फैंटसी में इच्छित विचारों का सन्निवेश हो जाता है और व्यक्तित्व की कुछ मूलभूत कमजोरियों व या कमियों की भी मनोवैज्ञानिक मानसिक तुष्टि हो जाती है ।[17]

संक्षेप में फैंटसी का मूल आधार कल्पना है, इसमें जीवन सत्यों का उद्घाटन किया जाता है, यहाँ वास्तविक जीवन की व्याख्या होती है, जीवन की तरह तरह की असंगतियों को उभारकर आलोचना और व्यंग्य किया जाता है ।

फैन्टसी के उपरोक्त लक्षणों के आधार पर परसाई की 'रानी नागफनी की कहानी' का मूल्यांकन किया जाय तो इस उपन्यास को फैंटसी का क्लासिक कहा जा सकता है । परसाई ने फैंटसी का कलेवा इसलिए चुना है कि वे यथार्थ जगत की विसंगतियों को उभारकर रखना और उन पर व्यंग्य करना चाहते हैं । चाहे अस्तभान हो, चाहे नागफनी, इस यथार्थ जगत की वास्तविकताओं से अपने को जोड़ न पाते हैं, यहाँ के नीति नियमों से हटकर अपने ही कल्पना लोक में अपने ही आदर्शों को लेकर उन्हीं को सत्य मानकर चलते हैं और उनकी इस जीवनशैली में जो असामंजस्य उभारकर आते हैं, विरोधाभास स्पष्ट होते हैं, उनको सामंतवाद के संस्कार मान सकते हैं, पूँजीवादी संस्कृति के बीजों को यहाँ पा सकते हैं । इनकी जीवन शैली में नीति-नियमों को, दुनिया के कायदे-कानूनों का कोई महत्व नहीं है । इनकी शासन-शैली भी इन्हीं संस्कारों से निर्देशित होती है, परिणामतः यहाँ अराजकता, भ्रष्टाचार, अवसरवाद, भाई-भतीजावाद अधिकार की कुर्सी हथियाने के लिए रचे जानेवाले भयंकर षड्यंत्र, एक-एक करके प्रकट होने लगते हैं । बिलकुल काल्पनिक पात्रों के द्वारा परसाई ने फैंटसी की रचना करके वर्तमान के समसामयिकों का पर्दाफाश करके जो व्यंग्य किया है वह इस सदी के हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धी है । अपने इस लक्ष्य को इस उपन्यास की भूमिका में स्पष्ट भी किया है - 'यह एक व्यंग्य-कथा है । फैंटसी के माध्यम से मैंने आज की वास्तविकता के कुछ पहलुओं की आलोचना की है । फैंटसी का माध्यम कुछ सुविधाओं के कारण चुना है लोक-कल्पना से दीर्घकालीन संपर्क और लोक-मानस से परंपरागत संगति के कारण फैंटसी की

व्यंजना प्रभावकारी होती है ।"[172] वैसे, परसाई ने एक स्थान पर कहा है कि उन्हें झूठ बहुत पसंद है, जहाँ भी झूठ मिले, उन्हें बड़ा संतोष होता है । समाज एवं व्यक्ति के जीवन में उपलब्ध झूठों का इस उपन्यास में बहुत सार्थक ढंग से व्यंग्य किया गया है ।

"रानी नागफनी की कहानी" बाहर से हास्य प्रधान कहानी लगने पर भी मूल उद्देश्य से समकालीन भारत की वास्तविकताओं तथा समाज की पूँजीवादी और सामंतवादी संस्कृति का सशक्त आख्यान है । रीति-कालीन युग की राजनैतिक स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन राजाओं की राजनीति, षड्यंत्र, लड़ाई-झगड़े, पद-प्रतिष्ठा का लोभ, झूठी प्रतिष्ठा, मूल्यों से रहित जीवनशैली, विलास एवं वैभव के जीवन में आसक्त इन राजाओं के जीवन-विधान एवं प्रशासन में उभरकर आनेवाली विसंगतियाँ एवं विद्रूप सार्वकालिक और सार्वदेशीय मूल्यों के रूप में निरंतर सक्रिय रहकर व्यक्ति और सामाजिक जीवन को भ्रष्ट करते आ रहे हैं जिनका व्यंग्य करने केलिए परसाई ने रीतिकालीन राजनैतिक वातावरण का उपयोग किया है । और तद्वारा वर्तमान भारत के सामाजिक एवं व्यक्ति जीवन की विसंगतियों तथा भ्रष्ट मानसिकता का उद्घाटन किया है । इस दृष्टि से "रानी के नागफनी की कहानी" एक ओर फैंटसी के तंत्र में एकदम मनोरंजक किस्सा लगने के साथ ही साथ कहानीकार की व्यंग्य दृष्टि व्यंग्य स्थलों को उभारकर तद्वारा समूची व्यवस्था की क्रूरता पर प्रहार करने में सफल हुई है ।

"नागफनी की कहानी" - एक प्रतीकात्मक फैंटसी है । यहाँ का हर पात्र और हर प्रसंग प्रतीकात्मक हैं । यहाँ दो राजवंशों की कहानी है जिनके जीवन मूल्यों में फरक नहीं है और दोनों राजवंशों की वर्तमान पीढ़ियाँ अपने कुल की गौरवमयी परंपरा का निर्वाह करने को "प्रतिबद्ध" है । अपनी-अपनी प्रतिबद्धता के प्रति इनकी निष्ठा एवं आस्था के कारण है देश के राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में न कोई परिवर्तन आ पाता है न कोई मूल्य स्थापित हो सकता है । बराबर विघटित हो रहे मूल्यों के सशक्त प्रतिनिधियों के रूप में राजपरिवारों की वर्तमान पीढ़ियाँ हैं जिन्हें आमने-सामने रखकर लेखक जातीय इतिहास का पुनरावर्तन दिखाया है - इस उपन्यास का राजकुमार अस्तभान जोकि परीक्षा में लगातार फेल होता आ रहा है मगर उसे इस बात की कोई चिंता नहीं है जबकि विरोधाभास यह है वह फेल होना गर्व की बात

समझता है और यह मानता है कि इसके द्वारा अपने वंश की परंपरा का निर्वाह कर रहा है । फेल होने के प्रसंग में अपने पिताजी को उसका लिखा पत्र इस बात को रेखांकित करता है - "जब यह चिट्ठी आपको मिलेगी, तब तक मैं इस असार संसार से कूचकर जाऊँगा । आप के हृदय को थोड़ा आघात अवश्य लगेगा - ऐसी मुझे आशा है । पर आप यह सोचकर शांति प्राप्त करेंगे कि आपके बेटे ने एक महान उद्देश्य के लिए प्राणोत्सर्ग किया है । पिताजी, अपने कुल में विद्या की परंपरा नहीं है, आप बारहखड़ी से आगे नहीं बढ़े और पितामह स्याही का उपयोग केवल अंगूठा लगाने के लिए करते थे । मैंने विद्या की परंपरा डालने की कोशिश की, पर मैं असफल हुआ ।[173] न केवल उक्त विद्या में अपितु विलास-भोग में असलभान परंपरा का निर्वाह करता आ रहा है जिसका संकेत अपने पिता को शराब का बोतल भेंट करने के प्रसंग में मिलता है - "अंतिम समय आपको एक भेंट देना चाहता हूँ । मेरे कमरे की अलमारी में 100 साल पुरानी शराब रखी है, जो मैंने जंगल मुहकमे के फर्नेंडीज साहब के मारफत मंगाई थी । यह बहुत बढ़िया शराब है । इसे आप मेरी तुच्छ भेंट के रूप में स्वीकार करें । इसे पीकर आप मेरा दुख भूल जायेंगे ।[174]

उधर नागमणी अपने असफल प्रेम के कारण आत्महत्या करने को तैयार है क्योंकि उसके वंश की यह उज्ज्वल परंपरा यही रही है । अपनी सखी से कहती है - "एक मैं अभागिन हूँ जिसने पाँच से प्रेम किया, पर, एक भी न विवाह करने को तैयार हुआ न आत्महत्या करने को । सबने किसी और से शादी कर ली । पर अब मैं क्या करूँ ? मैं ऊँचे कुल की कुमारी हूँ । मेरे कुल की नारियाँ पुराने ज़माने में हँसते-हँसते आग में कूद जाती थीं । मुझे तो पहला प्रेम टूटने पर ही आत्महत्या कर लेनी थी पर मैं ने धैर्य धारण किया । अब मैं हार गई हूँ । अब तो आत्महत्या करूँगी ।[175]

असलभान और नागमणी दोनों सामंतवादी संस्कृति के प्रतीक हैं । जैसाकि उक्त अंशों से स्पष्ट है , इनके चिंतन में समानता है, दोनों असफलता के शिकार है, दोनों परंपरा का निर्वाह करना चाहते हैं, दोनों अपने-अपने जीवन का अंत करने के लिए आत्महत्या का ही सहारा लेते हैं और साथ ही अपने पुरखों के साहस-पराक्रम का स्मरण करते हैं । अर्थात् इनके जीवन-चिंतन में जीवन के प्रति आस्था नहीं है, जिन्हें वे आस्थ

मानते हैं वे इतने खोखले हैं कि वे न वर्तमान को संचालित करते हैं, न भविष्य का निर्माण करने की क्षमता रखते हैं। अस्तभान और नागफनी उस सामंतवादी संस्कृति की कड़ियाँ हैं जो वर्तमान में भी जीवित हैं। परसाई ने इस सामंतवादी संस्कृति की स्वच्छंदता, विलासप्रियता, अनुशासन रहित प्रशासन की विशृंखलता का अस्तभान और नागफनी के जीवन के संदर्भ में फैंटसी के मुक्त आँगन में समकालीन भारत की वास्तविकताओं, विसंगतियों, विरोधाभासों एवं भ्रष्ट मूल्यों पर कठोर व्यंग्य किया है।

इतिहास के स्थूल ढाँचे के कलेवर में वर्तमान राजनीति के चिथड़ों को उघाड़ने का प्रयास इस उपन्यास में परसाई ने बड़ी ही सफलता से पेश किया है। नागफनी के विवाह के संदर्भ में अस्तभान अपने सखा मुफतलाल से बातचीत करते हुए "युद्धों" का असली रहस्य बताता है, यानी युद्धों के विध्वंसक रूप को छिपाकर उसके रचनात्मक पहलू को खोलता है। अस्तभान अपने पुरखों की राजनीति एवं षड्यंत्रों से भलीभाँति परिचित है। उन्हें "राजकीय रहस्य" के रूप में छिपाया करते हुए आ रहा है। जूते व्यापारियों के जूते बिकवाने, देश में व्याप्त भयंकर गरीबी तथा भूख के हाहाकार के पर पर्दा डालने, अपने राज्य की तलवारें बेचने के लिए पड़ोसी राज्यों में तनाव उत्पन्न करने के पीछे स्वार्थभावना, पलायनवादी प्रवृत्ति, और प्रजाओं को उकसाने की भावना क्रियाशील रही है और ये सब आपस में एक दूसरे से संबंधित हैं। अस्तभान के शब्दों में - "एक "पिताजी ने पड़ोसी राज्य से कहा - हमारे जूते खरीदो। उसने कहा कि हमें जरूरत नहीं है...यह सुनकर पिताजी ने युद्ध छेड़ दिया। घमासान युद्ध हुआ, हजारों आदमी मारे गए, सैकड़ों गाँव तबाह हो गए।... एक बार हमारे राज्य में भयंकर गरीबी फैली, लाखों आदमी भूखे और नंगे रहने लगे। वे ऊधम मचाते और राजमहल के सामने इकट्ठे होकर पिताजी से रोटी और कपड़ा माँगते। पिताजी को लगा कि वे सरकार को पलट देंगे। उन्होंने एक तरकीब निकाली। एक दिन बड़ी जोशीली अपील जारी की जिसमें कहा कि राजा निर्बलसिंह ने हमारी तीन वर्ग फीट जमीन अपने राज्य में मिला ली है। इस भूमि के निवासी जो हमारे भाई हैं और हमारा धर्म मानते हैं, हमसे अलग हो गए हैं.. वीरो उठो, मातृभूमि के सम्मान के लिए खून बहा दो और उस तीन वर्ग फीट भूमि पर बसनेवाले भाइयों को अपने में मिला लो।[176] अपनी गद्दी बच पर

जब कभी आफत आती है अथवा लोग संकट में पड़कर गद्दी के मारक बनने लगते हैं तो ये राजा 'मानव अधिकारों का हनन' और 'मनुष्य की स्वतंत्रता की गरिमा' के नाम पर आपस में लड़ाने की तथा प्रादेशिक भावना को उकसाकर लोगों को भ्रम में डालने दिशाहीन करने, इनसे बढ़कर समस्याओं की गंभीरता को या तो हल्का करने या तो उन पर पर्दा डालने की कूटनीति रखते हैं जो कि इतिहास की त्रासदी है । आज के संदर्भ में भी हमारे नेता प्रशासक इसी इतिहास का पुनरावर्तन ही कर रहे हैं कि जब कभी देश के सामने गंभीर समस्याएँ खड़ी होती हैं तो उन्हें हल करने के बजाय उनसे मुँह मोड़ने के लिए दूसरे कारणों की खोज करके गुमराह करने की प्रवृत्ति सामान्य हो चुकी है जिसका व्यंग्य यहाँ किया गया है ।

इस फैंटसी का एक और प्रमुख आयाम राजा निर्भयसिंह के वृत्तांत में है । राजा निर्भयसिंह शतायु है, इनकी अनेकों रानियाँ हैं, इक्यावन पुत्रों के पिता हैं मगर राजगद्दी का परित्याग करने ये राजा तैयार नहीं हैं, इसी बात के विरोध में वृद्ध हो रहे पुत्र भी नाराज़ हैं, अपने पिता की मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं । चूँकि हालात ऐसी है, राजा की यौन आकांक्षा अभी जागृत है । इसी भी नागमणी के सौंदर्य की चर्चा कानों पर पड़ी तब से उससे विवाह करने की लालसा जागृत हुई है । यह राजा निर्भयसिंह उस सामंतवादी विलासिता का ज्वलंत प्रतिनिधि हैं जहाँ राजा की प्रतिष्ठा इस बात पर निर्भर रहती थी कि वह कितनी रानियों से विवाह करता है । ये राजा विलास संभालयों का गठन किया है करते थे जिनका मुख्य कार्य राजा की इच्छाओं की पूर्ति करना होता था । यह निर्भयसिंह नागमणी जैसी इ युवति से शादी अपने परलोक के सुख के लिए करना चाहते हैं । अर्थात् राजकुल की परंपरा का निर्वाह इधर राजा करना चाहते हैं तो 'नागमणी की कहानी' में नागमणी इस परंपरा को आगे बढ़ाना चाहती है । अर्थात् पाँच प्रेमियों से प्रेम करने के बाद भी किसी एक को भी हासिल करने में असफल होकर, निराशा से दग्ध होकर अपनी माँ को चिट्ठी लिखती है - 'मैं जीवन से निराश हो गई हूँ । आज मुझे पाँचवें प्रेमी ने धोखा दे दिया । मैंने पाँच बार प्रेम किया, पर किसी प्रेमी ने न मुझसे शादी की, न आत्महत्या की । मुझे धिक्कार है । मैं तुम्हारी बेटी कहलाने योग्य नहीं हूँ । तुम मुझे क्षमा करना ।[177] उधर निर्भयसिंह अपने देहत्याग

के पहले अपनी अंतिम शादी नागफनी से करना चाहता है तो इधर नागफनी अपना एक भी प्रेम सफल न होने के कारण आत्महत्या करना चाहती है । इन दोनों के लिए प्रेम एक आस्था नहीं एक पवित्रभावना नहीं, अपितु अपनी कुल-मर्यादा की गरिमा की रक्षा करने की एक रिवाज़ है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भयभीतसिंह, राक्षससिंह, निर्लज्जसिंह सामंतवादी व्यवस्था के सारे लक्षणों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनके पुत्र अपने पूर्वजों की परंपरा का आस्था से निर्वाह कर रहे हैं । भारतीय समाज की जड़ता और निष्क्रियता, मूल्यों के प्रति एकदम परहेज भावना का रवैया अपनाकर समूची पुरातन व्यवस्था को ढीला तथा स्वच्छंद बनाने में इस सामंतवादी प्रवृत्ति ने जो योग दिया है, वह आज भी जीवंत है, इसलिए ही परसाई ने अपने व्यंग्य का आधार इन रीतिकालीन प्रवृत्तियों को माना ।

"रानी नागफनी" उपन्यास की विशेषता इस बात में है कि इतिहास के विविध तत्वों का उद्घाटन करते-करते यह उपन्यास वर्तमान धरातल पर अपनी सार्थकता ढूंढता है । भूत का वर्तमान के साथ सामंजस्य बिठाते हुए और वर्तमान में भूत का पुनरावर्तन रेखांकित करते आज की हकीकतों यहाँ की राजनीति, राजनैतिक क्षेत्र का अधःपतन, कुर्सी को हथियाने के लिए रचे जानेवाले षड्यंत्र, कुचक्र, अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, शैक्षिक जगत की अनुशासनहीनता, कला और सौंदर्य के प्रति बिगड़ती अभिरुचि आदि का खुलकर व्यंग्य किया गया है । इस दृष्टि से "रानी नागफनी" आधुनिक भारतीय समाज के शिष्ट एवं सभ्य कहे जानेवाले तरीकों के असली चेहरों का परत-दर-परत उद्घाटित करती है । अस्तभान और मुफतलाल, नागफनी और करेलामुखी और अन्यान्य पात्र हमारे ह्रासशील मूल्यों के पर्याय मात्र हैं । इसी आशय के साथ परसाई ने इनके नामकरण में चालाकता बरती है । "नागफनी की कहानी" वर्तमान भारत का सशक्त आख्यान है । गुलाबसिंह के अनुसार - "यह रचना एक व्यवस्था की प्रतीक है, जिसमें कोई एक राजा और उसकी प्रजा नहीं । इसके बदले राजा-परिवार के नाम से सारे पात्र व्यवस्था के अलग-अलग चेहरे हैं । आज की स्थिति में यह व्यवस्था कितनी सक्षम, स्वार्थपूर्ण और बेतुका है, इसकी मिसाल अस्तभान, नागफनी, भयभीतसिंह, राक्षससिंह और निर्लज्जसिंह है इनके पास एक ही चीज़ है, वह है सत्ता की शक्ति, जिससे

उन्होंने लेखक, कवि, चित्रकार, योगी, सैनिक, डाक्टर, मंत्री, विरोधी-इन आदि सबको जोड़ रखा है ।[178]

वैसे, इस उपन्यास का शीर्षक है - "रानी नागफनी की कहानी", किन्तु यह नायिका प्रधान कहानी नहीं । यहाँ मात्र नागफनी के जीवन की गतिविधियों की कहानी नहीं है जैसाकि "तट की खोज" की नायिका शीला है । नागफनी यहाँ की व्यवस्था का एक अंग है क्योंकि एक महत्वपूर्ण स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है जबकि सारा उपन्यास समूची व्यवस्था की जाँच पड़ताल करता है, संकीर्ण समाज की एक दूसरे से उलझी हुई अनेकों समस्याओं को उघाड़ता है, एक ओर मानव मन की गुत्थियों का मनःशास्त्रीय अध्ययन, दूसरी ओर समाज का समाज शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करके व्यंग्य करता है । गुलाबसिंह के अनुसार - "परसाईजी ने समाजशास्त्रीय दृष्टि से समाज की बर्बादियों की विवेचना की है । उसके भीतर के बीमार दिमाग, भ्रष्ट आचरण की समूची गंदगी को एक डाक्टर की तरह बड़े प्यार से, दुलार से, पुचकारते हुए, प्रत्येक घाव को सावधानी से परखते हुए तेज नश्तर चला देते हैं - सारी गंदगी और मवाद निकालकर रख देते हैं और लेखक एक डाक्टर की तरह बड़ी सफाई और भीतरी संतोष के साथ, हाथ धोकर एकदम अलग हो जाता है ।[179]

रानी नागफनी का हर प्रसंग, हर स्थल व्यंग्य की उर्वरभूमि है । तथापि कुछ ऐसे स्थलों का आगे विवेचन किया गया है जहाँ व्यंग्य को परिभाषित करने की कोई जरूरत नहीं अपितु व्यंग्य मूर्तिमान होकर साकार हो उठा है ।

साक्षात्कार : लोकसेवा आयोग

मुसलाल नौकरशाही वर्ग का प्रतिनिधि है, राजकुमार का बाल्यसखा है जिसका पूरा लाभ उठाने में वह कभी भूल नहीं करता है । राजकुमार के निरंतर फेल होने पर भी स्वयं "पास" होने का कुसूर करके वह "अपराधबोध" से पीड़ित है । अपने मित्र का हितैषी रहकर उसकी इच्छा के अनुसार सलाहें एवं मार्गदर्शन देकर ऐसा व्यवहार करता है मानों मुसलाल अलसमान का मनःशास्त्रीय अध्ययन किया हो और तद्द्वारा अपना

उन्हें सीधा करने की मध्यवर्गीय चालाकी इसमें है । अपने पास विशिष्ट योग्यता न होने पर भी अलसभान का "अपना आदमी" बनकर साक्षात्कार के लिए जाता है और वहाँ इससे जो सवाल किए जाते हैं वे सवाल हमारे देश के साक्षात्कारों की खिल्ली उड़ाते हैं - "नाम पूछकर सयानों ने फार्म "ख" देखा, लिखा था - कुँवर अलसभान का आदमी" । सयाने वात्सल्य से उसकी ओर देखने लगे । मुखिया ने बड़े प्रेम से कहा - खड़े क्यों हो, बेटा ! बैठ जाओ ।"..प्रश्न पूछे जाने लगे । एक सयाने ने पूछा - कुमार साहब कैसे हैं ? ..."अच्छे हैं"..."आज तुमने क्या खाया था ? मुफ्तलाल सपाक से बोला - "रोटी, चावल, दाल, सब्जी, अचार ।" मुखिया ने कहा - "कैसे सपाक से जवाब देते हो ! वेरी स्मार्ट।" तीसरे सयाने पूछा - "आजकल शहर में कौन सी अच्छी फिल्म चल रही है । मुफ्तलाल ने फौरन उत्तर दिया - चौदहवीं का चाँद, जिसमें वहीदा रहमान, गुरुदत्त , रहमान वगैरह काम करते हैं ।...मुखिया ने कहा - "बेटा तुम्हारी योग्यता से हम सब प्रभावित हुए । तुम डिप्टी कलेक्टर के लिए चुन लिए गए ।[180] इन साक्षात्कारों में कितनी प्रतिभाओं की हत्या की जाती है, भेद-भाव किस प्रकार किया जाता है, किस प्रकार प्रवंचना, भाई-भतीजावाद, सिफारिशों को महत्व दिया जाता है, इन सबके नमूने पेश करके परसाई ने "इंटरव्यू मुफ्तलाल का, होना डिप्टी कलेक्टर" अध्याय में साक्षात्कारों पर व्यंग्य प्रहार किए हैं । मुफ्तलाल के साथ जैसे सवाल किये गए वैसे सवाल उन प्रतिभावान उम्मीदवारों से किए नहीं गए । क्योंकि वे उनके अपने नहीं थे । उनकी दृष्टि में "एम.ए.फर्स्ट क्लास, एल.एल.बी. फर्स्ट क्लास का कोई महत्व नहीं है । डिप्टी कलेक्टर पद के साक्षात्कार में "वेदांत की माया और सांख्य की प्रकृति में भेद बताने को पूछा जाता है । स्वयं मुफ्तलाल एक प्रतिभावान उम्मीदवार की खिल्ली उड़ाकर चुनौति देता है कि वह कैसे चुना जायेगा । सामाजिक अन्याय हमारे प्रशासन तंत्र में नियमों की नाक के नीचे खुल्लमखुल्ला किया जाता है जिसका व्यंग्य परसाई ने किया है ।

हमारा अफसरशाही वर्ग भी इतना भ्रष्ट है कि जिससे आये दिनों में प्रतिभा की हत्या निर्ममता से की जाती है । परसाई ने इसी प्रसंग में हमारे लोक सेवा आयोगों की कटु आलोचना एवं व्यंग्य किया है । इन आयोगों के काम करने के तौर-तरीके, आवेदन पत्र माँगने के विधि-विधान, स्वयं आयोग से माँगा जानेवाला

वितरण इतने असामान्य होते हैं कि ये नौकरियाँ व्यवस्था से शामिल, सत्ता से जुड़े व्यक्तियों को ही मिलती हैं। जैसे अजीतसिंह के कुल गौरव की रक्षा करने को आत्मदान प्रतिबद्ध है उसी प्रकार अवैध मार्गों से आए ये अफसर भविष्य में उसी परंपरा का निर्वाह करने को तुले रहते हैं। भ्रष्टाचार भाई-भतीजावाद एक निरंतर क्रिया के रूप में सक्रिय रहती है। इस बात की ओर संकेत करते हुए लेखक कहते हैं - मुफ्तलाल की शादी करेला मुखी से हो गई थी। वह कलेक्टर हो गया था। कई बार घूस खाने के मामलों में फँस गया, पर इस कारण छोड़ दिया गया कि रानी नागफनी की सखी का पति है।[181] प्रभुसत्ता, शासन की कृपा का परिणाम मूल्यों का ह्रास है जिसके लिए उदाहरण यह मुफ्तलाल है, यह डिप्टी कलेक्टर होता है, घूस खाने पर भी छोड़ दिया जाता है। परसाई ने मुफ्तलाल के प्रसंग के द्वारा समूची प्रशासन व्यवस्था की विसंगति पर वार किया है। यही मुफ्तलाल अन्यत्र [illegible] बनकर अध्यापक बनता है।

<u>पत्रकारिता</u> - परसाई ने "नागफनी" में पत्रकारिता पर भी कटाक्ष किया है। क्योंकि व्यक्ति समाज और देश के हित को मद्देनजर रखकर जहाँ पत्रकारिता का धर्म निभाने का दायित्व पत्रकारों को निभाना है, वहाँ ये पत्रकार महज सनसनीखेज समाचार देकर पाठकों को "रोमांचित" करने का व्रत लिये हुए उन पत्रकारों और पत्रिकाओं को आड़े हाथों लेकर व्यंग्य किया है। यहाँ के पत्रकारों के रवैये का नमूना है - "पत्रकार के लिए मौत केवल समाचार होती है, अगर हम हर मौत पर रोने लगे तो सारी जिंदगी रोते ही कट जाय। महत्वपूर्ण मौत का हमारे लिए बड़ा उपयोग है - उससे रोचक समाचार बनता है। किसी बड़े आदमी की मौत हो जाती है, तो सारा संपादकीय और संवाद-विभाग हर्षित हो जाता है।[182] यह पत्रकारिता का धर्म है जो कि एक पत्रकार के शब्दों में है। इसी प्रसंग में मुफ्तलाल का पत्रकारिता पर अभिप्राय जो है वह आज की पत्रकारिता किस पथ पर जा रही है इस ओर संकेत करता है। इन पत्रकारों को नागफनी की आत्महत्या की तुलना में और भी समाचार होंगे जिनकी खोज में वे जा सकते थे किन्तु ये आत्महत्या वाली घटना को इतना महत्व देकर उसकी रिपोर्ट करने को आना हमारे पत्रकारों की गैर जिम्मेदारी को रेखांकित करता है, साथ ही हमारे पत्रकारिता - क्षेत्र के खोखलेपन को उघाड़ता है "आखिर आप लोग कैसे समाचार देते ही हैं

कि एक बच्चे के पाँच सिर हैं, आसमान से फूल की वर्षा हो रही है, मंदिर की छत से गाय का दूध टपक रहा है, शंकरजी की पिंडी एकाएक छै इंच बढ़ गयी, एक तन्त्रवादी मंत्र से मरे आदमी को ज़िंदा कर रहा है...इससे आपका अखबार भी बिकेगा और कुमार को भी प्रकाशन मिल जायेगा।[183] हमारी पत्रकारिता प्रगतिवादी विचारों का प्रचार करने के बजाय लोगों को प्रतिगामी विचारों की ओर ले जाने का कार्य व्यवस्थित ढंग से कर रही है, इसका व्यंग्य प्रस्तुत प्रसंग में कर दिया गया है। पत्रकारिता की स्वच्छंदता से अच्छा परिचय रखनेवाला अस्तमान अपना ही अखबार प्रकाशित करना चाहता है जिससे कि वह अपनी हु स्वच्छंदता से अपना नंबर छापकर पास हो जाय।

प्राध्यापकों की गुलामी

बुद्धिजीवि एवं प्राध्यापक सामंतवादी और पूँजीवादी व्यवस्था में शासन करनेवालों से ऐसे नियंत्रित होते हैं और वे इनके ऐसे गुलाम हो जाते हैं कि उनके तलुए चाटने के लिए भी सर्वथा तैयार रहते हैं। रीतिकालीन सामंतवादी व्यवस्था में अनेक किसीभी राजाश्रय में रहते आए कवि इस बात की साक्षी हैं कि जिसका खाना हुआ, उसका गाना गाया गया। इनका अस्तित्व शासनकरनेवालों के हाथों में रहता है। उस परंपरा का निर्वाह आधुनिक बुद्धिजीवि एवं प्रोफेसर कर रहे हैं। ऐसे प्रोफेसरों की दयनीय अवस्था का व्यंग्य परसाई ने नागफनी में किया है। यहाँ का प्रोफेसर अपने छात्रों के प्रेमपत्रों के विनिमय में हाथ बँटाता है। प्रेमपत्रों के इस विनिमय के लिए अपने प्राध्यापकों का उपयोग करते हुए ये छात्र या राजसत्ता से संबद्ध व्यक्ति थोड़ा सा संकोच संकोच भी नहीं करते हैं। करेलामुखी का यह कथन इस बात का उदाहरण है - "अपने महल के पास जो इंजनियरिंग कालेज के प्रोफेसर रहते हैं। वे मुफ्तलाल के मित्र हैं। उनके छोटे भाई द्वारा चिट्ठी प्रोफेसर साहब को भेज देंगे और वे उसे मुफ्तलाल के पास भेज देंगे। इस सेवा के लिए हम लोग प्रोफेसर को कुछ पारिश्रमिक दे दिया करेंगे, तुम जानती हो, प्रोफेसर को वेतन बहुत कम मिलता है।[184] इस कथन में प्रोफेसरों की योग्यता का ही नहीं किन्तु उसे प्राप्त होनेवाले वेतन का उल्लेख करके व्यंग्य किया जा रहा है जिसके कारण वह शोषित हो रहा है। राजसत्ता की दृष्टि से छपाई की सुविधा से ज्यादा से ज्यादा पुस्तकें जो छपती हैं, उनसे सबसे बड़ा उपयोग यह हुआ है कि उन पुस्तकों में

प्रेमपत्र छिपाकर भेजने में ड आसान हो गया है ।

अस्तभान हमारे विश्वविद्यालयों के कार्यविधान की आलोचना करता है, विश्वविद्या जिस ढंग से परीक्षाएं चलाते हैं, उनमें सुधार कर लेने के लिए अनोखी सलाहें देकर, कम से कम राजपरिवारों के लोगों के लिए रियायत दिखाने का इस प्रकार आग्रह करता है - "मैं विश्वविद्यालयों से पूछता हूं कि यह कहाँ का न्याय है कि जिन्हें चुन जाने को नहीं मिलता उन्हें तो डिग्री मिल जाती है और हम फेल हो जाते हैं । हमें बिना परीक्षा के ही डिग्री दे देनी चाहिए, एक-एक नंबर के लिए दर-दर भटकना पड़े, और जिनके पास फूटी कौड़ी नहीं है, वे घर बैठे नंबर पा जायें, घोर अन्याय है ।[165]

इस प्रकार अपनी राजसत्ता का उपयोग करके समूचे शिक्षा क्षेत्र को अपने नियंत्रण में रखने के द्वारा प्रशासन की अनुशासन-व्यवस्था को अस्तव्यस्त एवं भ्रष्ट करने की परिकल्पना जो उन राजाओं की थी, वही हमारे नेताओं की भी है । परसाई की इस प्रतीक-परिकल्पना के पीछे वर्तमान नेताओं तथा प्रभावशाली व्यक्तियों की इस प्रवृत्ति का व्यंग्य करना, उनका उद्देश्य रहा है । ये नेता विश्वविद्यालयों को नियंत्रित करते हैं, अपने प्रभाव से विश्वविद्यालय के वातावरण को भ्रष्ट एवं कलुषित करते हैं । ये किन किन तरीकों से भ्रष्ट करते हैं, इसका व्यापक विश्लेषण न केवल "नागफनी" में अपितु अन्यान्य कहानियों में, निबंधों में किया है और अपना आक्रोश प्रकट किया है । इस व्यवस्था की सबसे बड़ी विडंबना यह है आखिर, अस्तभान को मानद डाक्टरेट की उपाधि देकर सम्मानित किया जाता है जिससे एक बात तो स्पष्ट जाहिर होती है कि यहाँ परिवर्तन लाना बहुत ही मुश्किल है अतः तानाशाही और स्वच्छंद प्रशासन की ही हमेशा विजय होती है ।

<u>दहेज</u> - दहेज समस्या एक सामाजिक अभिशाप के रूप में भारतीय समाज में अपनी जड़ इस प्रकार जमा चुकी है जिसके कारण हमारे मध्यवर्गीय परिवार संतप्त है । "तट की खोज" में दहेज के कठोर प्रहार से आतंकित नारी की दर्दनाक कहानी का मनोज्ञ चित्रण है । प्रस्तुत उपन्यास में इस समस्या के सामंती रूप को उजागर किया है । मर्द बच्चों को सामंती वर्ग, उच्च वर्ग के लोग "पूँजी" समझते हैं और पाल-पोसने के अपने दायित्व को संभाव्य आमदनी की प्रतीक्षा में निभाते हैं, यहाँ तक कि मर्द बच्चों को पैदा करना भी सुदीर

अधीन समझा जाता है । अपने बेटे अलताफ की शादी के लिए मधूसूदन "टेंडर" बुलाने की बर्बरता का व्यवहार करता है क्योंकि वर्तमान समाज के अमीरों एवं शिक्षितों में धरोहर के रूप में आया है । यहाँ बेटा पिता की पूँजी है । बेटे को मार्केट में रखकर जो "टेंडर" बुलाया जाता है, उसका नमूना है - "एक 24 वर्षीय, स्वस्थ सज्जन को विवाह के बाज़ार में के रूप में बेचना है । सज्जन बी.ए. तक पढ़ा है और सुंदर है । लड़कियों के पिता निम्न पते पर सीलबंद लिफाफे में लिखकर भेजें कि वे कितने रुपये देंगे । टेंडर मंजूर होने पर एक-चौथाई रकम तुरंत जमा करनी होगी और शेष तीन-चौथाई पाणीग्रहण के समय देनी होगी । कन्याओं के पिता लड़की का फोटो या उसके रूप-गुण का विवरण न भेजें, क्योंकि सौदा रकम से तय होगा, रूप-गुण से नहीं ।[186] यह टेंडर नीलित विवाह के पवित्र बंधन पर कीचड़ उछालती है । परसाई ने इस प्रसंग की उद्भावना दो उद्देश्यों से की है, पहला, दहेज के भयंकर स्वरूप को उजागर करना, दूसरा, शादी की बही पर दस लाख चेक हाथ में लिए बिना हस्ताक्षर करने के लिए सर्वथा तैयार न रहनेवाले अलताफ के माध्यम हमारे आधुनिक युवाओं की असामर्थ्यता एवं पुंसहीनता का पर्दाफाश करना ।

<u>डाक्टरों की असलियत</u> - वैसे परसाई ने अपनी अनेकों कहानियों एवं निबंधों में भ्रष्टाचार के बहुरंगी रूपों का उद्घाटन किया है मगर "मायकमीज़" में भ्रष्टता, मुनाफाखोरी, दवा-व्यापारियों के साथ शामिल होकर उनकी दवा के स्टाक को बेचने के लिए रोगियों के साथ खिलवाड़ करनेवाले डाक्टरों पर व्यंग्य कठोर प्रहार किया है । अलताफ प्रेम के रोग से पीड़ित है, इसका इलाज करने के लिए आया हुआ डाक्टर इस रोग के निदान के लिए पेन्सिलिन मँगाने के लिए कहता है । प्रश्न करने पर डाक्टर चिढ़कर बोलता है - "तुम्हें क्या मालूम नहीं कि पेन्सिलिन की खोज से चिकित्सा पद्धति में क्रांति हो गई है । अब सिर्फ एक ही दवा रह गई है - पेनसिलिन । अखिल विश्व डाक्टर संघ ने हाल ही में प्रस्ताव पास किया है कि सब मेडिकल कालेज बंद कर दिये जायँ और चिकित्सा शास्त्र की पुस्तकें फूँककर दी जायँ ।...एक बार पेन्सिलिन लेने से आवागमन के बंधन से छूट जाता है, जाओ, बारह पेन्सिलिन इंजेक्शन और एक डिबिया मरहम लाओ ।[187] यह है हमारे डाक्टरों का शास्त्रज्ञान । हमारे डाक्टरों की डाक्टरी-उपाधियों का व्यंग्य यहाँ है ।

इन डाक्टरों की मुफ़्तखोरी, भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा इस बात में है कि ये डाक्टर ज़रूरत हो या न हो "क्लोरोमाइसिन" लिखने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इन्हें बीमारी दूर करने की उतनी चिंता नहीं जितनी चिंता "क्लोरोमाइसिन" के भारी स्टाक खत्म करने में है, इसकी चिंता है कि टाइफाइड क्यों नहीं आया जिससे कि यह दवा खत्म हो सके। दवाओं के अनुरूप रोगों का आना इनके शुभ अनुसार ज़रूरी है। वरना, इनकी आमदनी ठप्प पड़ जायेगी। इस ओर इशारा करते हुए स्वयं डाक्टर का कहना है - यह तो सहकारी उद्योग है। हमें वे कमीशन बड़े देते हैं। हम भी यह प्रयत्न करते हैं कि एक बार मरीज हमारे पास आ जाय, फिर तो जिन्दगी भर न छूटे। इलाज जितना लंबा चलेगा उतनी ही फीस हमें मिलेगी और उतनी ही दवा बिकेगी, जिससे व्यवसायियों को लाभ होगा और हमें भी कमीशन मिलेगा।[108] फीस और कमीशन के लोभ से मरीजों का रोग दूर न होने देने की आशा करना अस्वस्थ मानसिकता का लक्षण है। ऐसी मानसिक अस्वस्थता के शिकार हुए अनेकों डाक्टरों को आज के दिनों में हम हर कहीं देख सकते हैं जिसका व्यंग्य प्रस्तुत उपन्यास में ज़बरदस्त ढंग से किया गया है।

कविता, संगीत और चित्रकला : विभिन्न दृष्टिकोण

"रानी नागफनी" में प्रेम, कविता, संगीत, चित्रकला, नायनकला और सौंदर्यशास्त्र की परंपरागत परिभाषाएँ बिलकुल अर्थविकर्ष हो चुकी हैं। सामंतवादी विलास और नग्नता के आवरण में भोगविलास के अलावा सांस्कृतिक धारा का प्रवाह बिलकुल कटा हुआ था जिसका व्यंग्य करते हुए परसाई उसकी असली छवि के रूप अस्तभान और नागफनी की प्रेम और कलाभिरुचि के विभिन्न आयामों का उद्घाटन करते हुए इन्हें वर्तमान के साथ तालमेल बिठाते हुए कहते हैं कि आज की पीढ़ी भी हमारे सांस्कृतिक प्रवाह से, और कलागत संस्कारों से कटी हुई है। प्रभुसत्ता या प्रशासन से जो सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं उनसे इतने तृप्त हैं कि कला-संगीत की ओर इनकी कोई रुचि नहीं है। परसाई की अनेक रचनाओं में ऐसे नेताओं, अधिकारियों एवं उच्च वर्ग के लोगों को देख सकते हैं जो कविता, संगीत से बिलकुल अनभिज्ञ नेता, नेता होने के नाते जो बेमतलब बातें करते हैं जिनका अंधानुकरण बाकी नेता भी करते हैं, उनके गलत "हाँ" में अपना "हाँ"

मिलते हैं। सामंतवादी परंपरा का प्रतिनिधित्व करनेवाला सुलतान आधुनिक नेताओं में मूर्तिमान हो उठा है। सुलतान प्रेम रोग से पीड़ित होने पर उसका मन बहलाने के लिए उसे हँसाने के लिए विदूषक, गाना सुनाने के लिए कवि को भेजा गया। मगर विडंबना यह है कि राजकुमार का मानसिक संस्कार ऐसा है कि विदूषक पीटा जाकर रोने लगता है, गायक का मज़ाक उड़ाया जाता है, उसके आलाप से सुलतान का मन बहलना तो दूर वह बेहोश पड़ता है, फिर भी उसकी पद-गरिमा का ख्याल रखते हुए गायक का सम्मान किया जाता है। कविता सुनाने के लिए जो कवि आता है, उसके कवि बनने की अपनी मजबूरियाँ हैं, पूरे समाज और परिवेश के प्रति उसके मन में क्रोध है, विद्रोह है, उसके आचार-विचार में एक अजीब अशांति है, अभाव बोध है जिसकी अभिव्यक्ति अपनी रहन-सहन, पोशाक द्वारा करते हैं - "देखिए मैं न नहाता हूँ, न दाढ़ी बनाता हूँ, न बाल काटता हूँ। मैं स्वच्छता को पतनशील प्रवृत्ति मानता हूँ। युग अगर सफ़ाई पर ज़ोर देता है तो हम गन्दे रहकर युग के प्रति असंतोष व्यक्त करते हैं। हम विद्रोही हैं। हमें सब पर क्रोध है।[107] यह कवि गलत काव्य संस्कारों के शिकार हैं। इसलिए इनके कविता पाठ से सुलतान तक दीवार पर सिर मारने लग सकता है तो उस कविता का स्तर जान सकते हैं। आगे प्रेम में प्रेमिका के अभाव में कम से कम उसकी तस्वीर को कमरे में रखने की सुलतान की सलाह के अनुसार नागकनी की तस्वीर बनाने के लिए चित्रकारों को बुलाकर उसकी तस्वीर चित्र बनाने के लिए कहता है तो दोनों चित्रकार दो प्रकार के चित्र बनाकर उस चित्र की अलग-अलग व्याख्या करते हैं। पहला चित्रकार सौंदर्य शास्त्र और काव्य शास्त्र के आधार पर नागकनी के सौंदर्य की व्याख्या करता है तो दूसरा चित्रकार रंग में डुबोये एक चींटे को सफ़ेद कागज पर डालकर उसकी चाल के अनुसार रंग भरकर उसे राजकुमारी कहता है, राजकुमारी को एक "आड़ाकिया" कहता है। ऐसे अमूर्त चित्र को समझने के लिए खास बौद्धिक स्तर और कला-संस्कार की आवश्यकता पर ज़ोर देता है जिसके अभाव में सुलतान दोनों चित्रों की अंधाधुंध तारीफ़ करके आशिषियाँ देकर भेजता है।

इस प्रसंग में कुमार सुलतान के कला-संस्कारों की अपेक्षा वर्तमान युवा कलाकारों में कलागत संस्कारों, अध्ययन, तालीम, आस्था का जो अभाव है, उसको परसाई ने उभारा है। आज के कलाकारों की त्रासदी यह है कि मात्र आलाप को बड़े राग, अस्तव्यस्त पोशाक, दाढ़ी रखने मात्र से कवि और तूलिका एवं रंग का डिबिया रखने से चित्रकार मानने

छलनेवाली वर्तमान पीढ़ी के कुकर्मों का व्यंग्य किया गया है ।

प्रेम का रीतिकालीन स्वरूप

दूसरी ओर नागफनी के प्रेम एवं विरह के उत्ताप के [illegible] रूप को रेखांकित करने के लिए परसाई ने रीतिकालीन कवि बिहारी के दोहों की मदद ली है जोकि परिवेश निर्माण की दृष्टि से उचित ही है । नागफनी के प्रेम की गहराई का व्यंग्य करते हुए लेखक ने जो व्यंग्य के साथ ताने कसे हैं वे मार्के के हैं - "राजकुमारी, ऐसे अवसर पर तुम्हें विरह के गीत गाना चाहिए, विरहिणी हमेशा गाती हैं, जिससे उसका दुख हल्का होता है...राजकुमारी के शरीर से गर्म लपटें - सी उठती दिखायी दीं। उसके शरीर पर हाथ रखा तो उसका हाथ जल गया । ..कुमारी, नगर-सेठ का लड़का उड़ाऊखान कई बार तुमसे मिलने का प्रयत्न कर चुका, तुम उससे मिलो, उससे मिलने से तुम्हारा जी बहल जायेगा ।[188] ऐसे मुफ्तलालों से प्रेम का मजाक किया गया है । नागफनी और अस्तभान के प्रेम में कहीं ऐसी बिन्दु नहीं जहाँ दोनों अपने अपने प्रेम के लिए कुर्बानियाँ करने के लिए तैयार हों । इन दोनों के लिए प्रेम प्रतिष्ठा का चिह्न है, पवित्रता का बंधन नहीं । सामंतवादी परिवारों के ये प्रतिनिधि आधुनिक काल में भी जिंदा हैं जिनका व्यंग्य यहाँ किया गया है ।

राजनीतिक क्षेत्र की विसंगतियाँ

नागफनी की कहानी के परिवेश में लोकतंत्रीय प्रजातंत्र व्यवस्था के समस्त कुकर्मों, षड्यंत्रों, कूटनीतियों, कुचक्रों का बीजमंत्र स्वीकार करके जनता को गुमराह करनेवाले तथाकथित नेताओं की [illegible] एवं अस्वस्थ मानसिकता का पर्दाफाश करके परसाई इस बात उघाड़कर सामने रखते हैं कि आजकल जनहित भावना एक मूल्य रह ही नहीं गयी है । स्वार्थ के सामने जनहित इतना अवमूल्य हो चुका है पूँजीवादी जमीन पर आधृत प्रजातंत्रता व्यवस्था में सत्ता इन्हीं पूँजीपतियों, स्वार्थियों के हाथ आती है जिससे वे शोषण के बलबूते अपना उल्लू सीधा करने लगते हैं । गोबरधन दास अमात्य यानी मुख्यमंत्री हैं । भैया साहब इनके विरोधी हैं । भैया साहब और अमात्य के बीच अमात्य पद हासिल करने के लिए होड़ाहोड़ी है । गोबरधन दास किसी भी मूल्य पर हाथ आयी कुर्सी को अपने ।

पास रखना चाहते हैं तो मियाँ साहब उस कुर्सी को प्राप्त करने के लिए दीमक बनकर अमात्य की कुर्सी को खाने के लिए उतर गये हैं। कुर्सी पाने का संघर्ष आज की राजनीति का सबसे बड़ा लक्ष्य रहा है। इस कुर्सी ने राजनैतिक माहौल को इतना कुत्सित गंदा बना दिया है कि यहाँ हर नेता अवसरवादी, जातिवादी, प्रान्तीयवादी, भ्रष्ट, सिद्धांतहीन, कुकर्मी बन गया है। क्या गोबरधन दास, क्या मियाँ साहब, दोनों एक ही सिक्के के दो चेहरे हैं। परसाई ने भारत के राजनैतिक क्षेत्र की इन तमाम विसंगतियों को परत-दर-परत छीलकरके रखा है। नेताओं की प्रचारप्रियता, भाषणबाजी, उचित-अनुचित के बोध से सर्वथा अनभिज्ञ ये नेता हमारे देश के बहुतेरे नेताओं के प्रतिनिधि हैं। परसाई देखते हैं कि ये नेता अनाथालयों के सर्वांगीण विकास के लिए जोर देकर भाषण देते हैं, किसी भी बात का सिद्धांत से नहीं अपितु तब तक विरोध करते हैं जब तक उन्हें कुछ हासिल नहीं होता, मारने की हिंसा, और पकड़ी को अहिंसा माननेवाले और अपने गुट के सब सदस्यों को अपने चंगुल में रखकर संसदीय प्रजातंत्र का मजा देखते हैं। आलीशान बंगले में रहकर पत्रकार से कहते हैं कि कुटीर में रहते हैं। ऐसे नेताओं को यहाँ व्यंग्य का शिकार बनाया गया है। दुर्भाग्य यह है कि हमारा संपूर्ण राजकीय वातावरण इतना कलुषित हो गया है कि चाहे शासक पक्ष हो या चाहे विरोधी पक्ष हो, दोनों प्रजाहित के खिलाफ इसलिए हैं इन दोनों में सत्ता के लिए लड़ाई जारी है। परसाई ने इन दोनों वर्गों की मानसिकता का जबरदस्त व्यंग्य किया है।

साधु-संतों के असली चेहरे -

"मायजाल" में साधुवेषों में रहकर समाज के सभी काले धंधों में हाथ बटाने वाले उन साधु-संतों के असली चेहरे को दिखाकर व्यंग्य करने का प्रयत्न किया गया है। वास्तव में ये पूंजीवादी व्यवस्था के अविभाज्य अंग हैं, स्थापित व्यवस्था के हाथों की कठपुतलियाँ हैं, अपने चालाक व्यवहारों से लोगों की आँखों में धूल झोंकने में कभी पीछे नहीं रहते हैं इन संतों से समाज में असामाजिक तत्व किस प्रकार सिर उठाकर नाचने लगते हैं, इसको "मायजाल" बड़े मार्मिक प्रसंगों द्वारा प्रस्तुत करती है। योगी पुष्पगिरि का परिचय देते समय परसाई समाज में उनकी प्रतिष्ठा को रेखांकित करते हुए व्यंग्योक्ति का प्रयोग करके कहते हैं कि योगी पुष्पगिरि बड़े पहुँचे हुए महात्मा थे। जो कि पूर्वाश्रम में राजज्योतिष थे,

डाकू थे, चोर थे, हृदय हीन थे । मगर एक बार एक संत से मिलकर उसने वैसी दीक्षा ली, और हृदय न रहने पर भी हृदय परिवर्तन कर लिया और एकदम संत हो गए । इसके बाद में जटा बढ़ा ली, गेरुए वस्त्र पहन लिए, सुमरनी हाथ में लेकर योगी पुर्षपगिरि नाम धारी कहलाने । साधुवेश के पुर्षपगिरि के कल्याणकारी सेवाकार्यों की तालिका देकर इस गेरुए वस्त्र के आवरण में हमारे देश के मठ-आश्रमों में आए दिन चलनेवाले अनैतिक एवं अवैध कार्यों पर परसाई आक्रोश प्रकट करते हैं कि "मानव-सेवा के लिए योगी पुर्षपगिरि ने एक आश्रम खोला, जिसमें भगाकर लायी गई लड़कियाँ रखी जातीं और उनका व्यापार होता । यह उच्च कोटी की मानव सेवा ही थी ।" मात्र गेरुए कपड़े पहनकर महाधीश होने से कोई अपनी सहज मानसिक वृत्तियों में परिवर्तन नहीं लाते और जन्मजात संस्कारों में कायापलट नहीं होता है ।

गेरुए कपड़े और मूल संस्कारों के बीच की विसंगतियों को उभारने के लिए परसाई ने इस पुर्षपगिरि के आचार-विचारों को प्रस्तुत किया है । साधु के मुँह से "हरामजादी" जैसा शब्द निकलना लड़की को भगा लाने की क्रिया में तत्पर होना साधुजीवन की विसंगतियाँ हैं । पुर्षपगिरि के माध्यम से परसाई ने नकली संतों के जीवन की असलियत के दर्शन कराए हैं । इन साधुओं की पहुँच समाज के हर क्षेत्र में होती है और जहाँ भी होती है अपने साधु-भाव से अपनी स्वार्थ साधना इनका ध्येय होता है जिसकी ओर परस ने इशारा किया है । राग-विराग, और अन्यान्य कहानियों में भी परसाई ने ऐसे साधुओं की खिल्ली उड़ाई है ।

"रानी नागफनी की कहानी" - वर्तमान भारत की वास्तविकताओं की जीवंत गाथा है जहाँ मानवीय मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है । अस्तभान, मुफतलाल नागफनी, करेला मुखी, भयभीतसिंह, निर्लज्जसिंह, ज्ञानरिपु, विद्यादमन जैसे नामकरण अपने पात्रों के लिए करने के द्वारा परसाई ने मानव के पतनशील व्यक्तित्व की ओर संकेत किया है । अपने युग की विसंगतियों, विद्रूपों तथा भ्रष्ट मानसिकता पर अपना आक्रोश परसाई ने इस फैंटसी के द्वारा प्रकट किया है । व्यंग्य की तलवार लेकर उन सभी दकियानूसी विचारों, मूल्यों, जीवनविधानों पर ऐसा व्यंग्य प्रहार किया है पाठक तिलमिला जाता है, आग बबूला हो जाता है । नागफनी का कथासूत्र कल्पित होने

के बावजूद भी ये यहाँ के प्रसंग कल्पित नहीं हैं, यहाँ उठाए हुए तथ्य कल्पित नहीं हैं। भारतीय जनता अपनी रोजाना ज़िंदगी में जिन हकीकतों का सामना कर रही है, उन्हीं की साहित्यिक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति "नागफनी" में हुई है यदि परसाई नागफनी की कल्पित का सहारा नहीं लेते तो इन यथार्थ तथ्यों को अपने विचारों को इस कदर प्रेषणीय एवं प्रभावी नहीं बना सकते थे। इस दृष्टि से यहाँ की विसंगतिपूर्ण विद्रूप वास्तव में नागफनी के प्रति ऋणी हैं। नागफनी अपने पाठकों को आत्मबोध करने तथा अपने परिवेश की तमाम हालतों पर गंभीर रूप से चिंतन-मंथन करने को मजबूर करती है - यही इस फैंटसी की उपलब्धि है। कल्पना, विचार, एवं अभिव्यक्ति का सौंदर्य - इन तीनों का सुंदर समन्वय प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। गुलाबसिंह के अनुसार इतने लघुआकार में व्यवस्था का प्रतिबिंब या तो मुक्तिबोध की कविताओं में मिलता है या परसाई की व्यंग्य रचनाओं में। यह गुण केतकी का नहीं नागफनी का है। इसलिए इस फैंटसी में समकालीन भारतीय यथार्थ और कलात्मक की परंपरा का विकास मिलता है। समकालीन जीवन के विश्लेषण एवं विवेचन के लिए ऐसी रचनाओं की अहं भूमिका की आज भी प्रासंगिकता और अहमियत है।[189] "नागफनी" सामंतवादी व्यवस्था में जन्म लेती है, वर्तमान युग में विकास की परिणति इसको हासिल करती है। मगर स्थितियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। इसलिए "नागफनी" उन दिनों में जितनी प्रासंगिक रही, उतनी ही प्रासंगिक आज भी है।

<u>संदर्भ सूची</u>

1. "तिरछी रेखाएँ" - भूमिका - परसाई ग्रंथावली - भाग 6 पृष्ठ 249
2. सदाचार का ताबीज - भूमिका - " - भाग 6 पृष्ठ 240
3. आँखिन देखी - सं. कमला प्रसाद - पृष्ठ 35
4. परसाई ग्रंथावली - भाग 1 भूमिका - धनंजयवर्मा पृष्ठ 11
5. आँखिन देखी - सं. कमला प्रसाद - पृ. 36
6. परसाई ग्रंथावली - भाग 1 . भूमिका - धनंजय वर्मा पृ. 36
7. आँखन देखी - सं. कमला प्रसाद - पृष्ठ 31

8-51 तक परसाई ग्रंथावली - भाग 1

पृष्ठ संख्या क्रमशः 8 - 94, 9 - 98, 10 - 100, 11 - 138, 12 - 135,
13 - 135, 14 - 135, 15 - 136, 16 - 137, 17, 138, 18 - 138, 19 - 139,
20 - 357, 21 - 342, 22 - 139, 23 - 140, 24 - 140, 25 - 141,
26 - 142, 27 - 142, 28 - 182, 29 - 231, 30 - 199, 31 - 200, 32 - 201
33 - 195, 34 - 198, 35 - 259, 36 - 239, 37 - 261, 38 - 265, 39 - 39
40 - 240, 41 - 105, 42 - 108, 43 - 158, 44 - 156, 45 - 159,
46 - 158, 47 - 313, 48 - 177, 49 - 183, 50 - 389, 51 - 389

52 - अंकिम देवी - पृ. 325

53 - 70 तक परसाई ग्रंथावली भाग - I

क्रमशः 53 - 422, 54 - 422, 55 - 423, 56 - 428, 57 - 424, 58 - 49,
59 - 50, 60 - 50, 61 - 111, 62 - 111, 63 - 111, 64 - 112, 65 - 112,
66 - 113, 67 - 52, 68 - 375, 69 - 117, 70 - 349

71, 72 - परसाई ग्रंथावली - भाग - दो, पृष्ठ संख्या क्रमशः 241, 242

73, 74, 75 - वही - भाग - एक पृष्ठ संख्या क्रमशः 59, 59, 60

कृपया ध्यान दें - पृष्ठ संख्या 231 से फुट नोट संख्या 68 से 75 तक पुनरावर्तन हुआ है, मगर संदर्भ नहीं हैं -

68 - कबीर - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 171

69 से 95 तक परसाई ग्रंथावली भाग - एक पृष्ठ संख्या क्रमशः 69 - 86, 70 - 105,
71 - 152, 72 - 152, 73 - 155, 74 - 168, 75 - 189, 76 - 192, 77 - 293
78 - 325, 79 - 328, 80 - 337, 81 - 390, 82 - 391, 83 - 394, 84 - 413
85 - 27, 86 - 28, 87 - 54, 88 - 56, 89 - 84, 90 - 76, 91 - 119,
92 - 124, 93 - 148, 94 - 169, 95 - 170

96 से 100 तक परसाई ग्रंथावली - भाग दो पृष्ठसंख्या क्रमशः
96 - 146, 97 - 220, 98 - 221, 99 - 222, 100 - 132

101 परसाई ग्रंथावली -भाग - एक पृष्ठ - 272

102 और 103 वही भाग दो. पृष्ठ संख्या क्रमशः 102 - 251, 103 - 269

104 से 108 तक वही भाग - एक . पृष्ठ संख्या क्रमशः 104 - 208, 105 - 107, 106 - 90, 107 - 287, 108 - 290

109 से 125 तक परसाई ग्रंथावली - भाग दो. पृष्ठ संख्या क्रमशः

109 - 312, 110 - 332, 111 - 312, 112 - 346, 113 - 347, 114 - 348, 115 - 351, 116 - 316, 117 - 318, 118 -342, 119 - 359, 120 - 335, 121 - 371, 122 - 333, 123 - 329, 124 - 339, 125 - 341

126 - स्मारिका - महादेवी - पृष्ठ संख्या - 8

129 हिन्दी रेखाचित्र - हरिवंशलाल शर्मा - पृ.सं. 1

130 - वही - 4

131. हिन्दी रेखाचित्र - प्रकाशचंद्रगुप्त पृ.सं. 182

132. हिन्दी काव्यशास्त्र - भगीरथमिश्र . पृ.सं. 97

133 से 143 तक परसाई ग्रंथावली - भाग-एक

पृष्ठ संख्या क्रमशः 133 - 33, 134 - 35, 135 - 37, 136 - 37, 137 - 40, 138 - 128, 139 - 128, 140 - 404, 141 - 401, 142 - 403, 143 - 401

144 - तिरछी रेखाएँ - हरिशंकर परसाई - पलैप से 1

145 - अंकित देवी - कमला प्रसाद पृ.सं 93

146 - 155 परसाई ग्रंथावली - भाग-दो

पृष्ठसंख्या क्रमशः 146 - 94, 147 - 95, 148 - 95, 149 - 94, 150 - 98, 151 - 98, 152 - 100, 153 - 102, 154 - 102, 155 - 103

156 - अंकित देवी - कमला प्रसाद पृ.सं. 27

157, 158, 159 परसाई ग्रंथावली - भाग-दो पृष्ठ संख्या क्रमशः 118, 120, 125

160. परसाई ग्रंथावली भाग-छठा पृ.सं. 238

161-162 - अंकित देवी - कमला प्रसाद, पृष्ठ संख्या - क्रमशः 98, 99

163. आजकल - मासिक - फरवरी 87 . पृ.सं. 37

164, 165 - व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न . डा.शेरजंग गर्ग, पृ.सं. 75

166 से 171 तक कामायनी: एक पुनर्विचार: मुक्ति बोध

पृष्ठ संख्या क्रमशः 166-2, 167 - 9, 168 - 43, 169 - 4, 170 - 6, 171 - 8

172 - परसाई ग्रंथावली - भाग-छठा - पृ.सं. 238

173-177 - वही - भाग दो -

पृष्ठ संख्या क्रमशः 173 - 17, 174 - 17, 175 - 20, 176 - 57, 177 - 22

178-179 अंकिम देवी - कमला प्रसाद. पृ.संख्या क्रमशः 178 - 127, 179 - 128

180-188 परसाई ग्रंथावली - भाग दो - पृष्ठ संख्या क्रमशः 180 - 51, 181 - 89,
182 - 30, 183 - 31, 184 - 45, 185 - 18, 186 - 68, 187 - 40,
186 (अतिरिक्त) - 41, 187 (अतिरिक्त) - 34, 188 - 32

189 - अंकिमदेवी - कमला प्रसाद - 128

षष्ठम अध्याय

हरिशंकर परसाई का निबंध लोक : एक विश्लेषण

परसाई का निबंध लोक

भूमिका

निबंध गद्य साहित्य की एक विधा है । अंग्रेज़ी में निबंध के लिए "एसे" शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है - प्रयत्न या प्रयास । भारतीय भाषाओं में "एसे" शब्द के पर्याय के रूप को प्रबंध या निबंध शब्द प्रचलन में है । यह "एसे" या निबंध एक संक्षिप्त गद्य रचना है जो कि किसी निश्चित विषय की चर्चा करती है, एक दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है और ऐसा भी है कि लेखक के अभिप्रायों की ओर पाठकों का ध्यान खींचने का प्रयत्न करती है । यह निबंध "TREAS" अथवा "DISSERTATION" की भाँति सुव्यवस्थित हो, सिलसिलेवार हो, ऐसा कोई बंधन नहीं है । इसमें प्रतिपादित विषय परिपूर्ण हो, यह शर्त नहीं है क्योंकि निबंधों की रचना विशेषज्ञों के लिए नहीं की जाती है । और यहाँ का विषय तांत्रिक स्वरूप का भी नहीं होता है । शायद इसीलिए निबंधों में नाना क्षेत्रों के उदाहरण, प्रसंग, उपकथाएँ अपने आप स्थान प्राप्त कर लेती है ।

निबंध साहित्य का इतिहास पुराना है । हिन्दी में यह शब्द भारतेन्दु युग में प्रचलन में आया और इस शीर्षक से एक अलग विधा का ही निर्माण और विकास हुआ । मगर पाश्चात्य साहित्य में यह बहुत पुरानी विधा है । ग्रीकों में थियोफ्रास्टस और प्लुटार्क, रोम में सिसिरो और सेनेका "एसे" शब्द स्थापित होकर प्रचलन में आने के पहले ही इस विधा में काम कर चुके थे । मगर "एसे" शब्द जिस अर्थ में आजकल प्रचलन में है, उस अर्थ में इस शब्द को प्रचलन में लाने का श्रेय फ्रेंच लेखक मान्टेन को जाता है । मान्टेन ने जिन्हें पाश्चात्य निबंध कला का जनक माना जाता है, अपने गद्यात्मक साहित्यिक प्रयासों को इसी अभिधान से अभिहित किया था । इसके पहले "एसे" शब्द का प्रयोग मिलता है मगर उसका प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जाता था । यहाँ तक कि बड़ी-बड़ी गद्यात्मक रचनाओं को भी "एसे" कह दिया जाता था । किन्तु "एसे" को साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित करने का मान्टेन को ही दिया जाता है । इसकी "एसेस" "ESSAIS" नामक कृति सन् 1580 में प्रकाशित हुई थी जिसमें नाना विषयों की चर्चा है । ये चर्चाएँ

तत्संबंधी विषयों की गंभीर चर्चाओं से भिन्न है, अव्यवस्थित एवं तात्कालिक प्रयोजनों से युक्त प्रयोगिक "प्रयत्न" कहकर, इन प्रयत्नों को "एसे" शब्द से रेखांकित किया गया । मान्टेन के अनुसार "एसे" में निबंधकार वस्तु विशेष से संबंधित अपने व्यक्तिगत विचारों को कलात्मक सूत्र क्रम में पिरोता है ।

मान्टेन के बाद बेकों ने निबंधकार को वरपैकुलम टॉकर कहकर उसकी व्यक्तित्व प्रधानतावाली विशेषता पर जोर दिया । उनके अनुसार निबंधकार एक ऐसा वाचाल है जो अपनी वाचालता के अंतराल में अपनी दुर्बलताओं, विचित्रताओं और स्वाभिमानी चेतनाओं की प्रचिति भी कर देता है ।

हडसन ने उपरोक्त अंश को और भी स्पष्ट रूप में इस प्रकार कहा है कि "True Essay is essentially personal".
अर्थात् सच्चा निबंध निश्चित रूप से निबंधकार की व्यक्तिगत विशेषताओं से विशिष्ट रहता है ।

अलेक्जेंडर स्मिथ नामक विद्वान ने अपने "ON WRITING ESSAY" शीर्षक निबंध में निबंध को पद्यात्मक गुणों का ही दूसरा रूप माना है । उनका कहना है निबंध काव्य से इस बात में बहुत अधिक साम्य रखता है कि उसी के सदृश वह भी किसी व्यक्तिगत अनुभूति या मानसिक परिस्थिति विशेष से चाहे वह सनकपूर्ण हो, गंभीर हो या व्यंग्यात्मक हो, संबंधित रहता है ।

हक्सले और हिल नामक विद्वानों ने भी "एसेज" नामक पुस्तक की भूमिका में निबंध की वैधानिक विशेषताओं पर विस्तार से विचार किया है । उनके अनुसार - "साहित्यिक निबंध केवल वस्तु विशेष की संक्षिप्त व्याख्या मात्र नहीं है, उसे हम लेखक के मस्तिष्क में अटका वस्तु विशेष के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रियात्मक चित्र की अभिव्यक्ति कह सकते हैं । इसकी सबसे प्रमुख विशेषता वैयक्तिकता होती है ।

16वीं शती में बेकन ने अंग्रेजी निबंधों की परंपरा की नींव डाली । इन्होंने अनेक विषयों, यथा - सत्य, अध्ययन, यात्रा आदि पर अपनी चिंतन धाराएँ व्यक्त कीं ।

संक्षिप्तता, परन्तु क्लिष्ठ गंभीर शैली, कहावतों और मुहावरों के यथोचित प्रयोग इनकी निबंध शैली की विशेषताएँ हैं । बेकन ने इन्हीं अंशों को निबंध की सफलता के तत्व माने हैं । 19वीं शती में निबंध विधा का चरम विकास हुआ । हैज़लिट, डिक्विन्सी, लैम्ब के, 20वीं शती में चार्ल्स आर्थर चेस्टरटन, प्रीस्टले और [illegible] वार के निबंधों में साहित्यिक मूल्य पाये जाते हैं । इनके निबंध इस विधा के श्रेष्ठ नमूने हैं ।

अंग्रेज़ी के संदर्भ में उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखकर निबंध की विशेषताओं को इस प्रकार बता सकते हैं -

1. निबंध एक छोटी सी रचना है जिसे अवकाश के समय सरलता से पढ़ी जा सके और मस्तिष्क में रखी जा सके । दीर्घ निबंध या व्याख्यात्मक निबंध "एसे" नहीं हो सकते हैं ।
2. निबंधों में बहुत सी बातों की चर्चा होती है । निबंधों का उद्देश्य किसी सिद्धांत विशेष का प्रतिपादन नहीं होता है । वैसे सिद्धांत प्रतिपादन निबंध का लक्ष्य भी नहीं है अपितु उन्हें ध्वनित करता है । यह काम चित्रात्मक शैली में होता है न कि वर्णनात्मक शैली में ।

3. निबंध किसी एक विचार या भाव पर केन्द्रित रहता है । यह केंद्रीकरण कलात्मक ढंग से होता है । विचारों के प्रस्तुतीकरण में निबंधकार अपने अनुभवों एवं अध्ययन से नाना अंशों को लाता है । किन्तु ऐसा करते समय उसे इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि उसके संयोजन में व्यवस्था हो । विचारों की अव्यवस्था से निबंध की गरिमा एवं कलात्मकता नष्ट होती है ।
4. निबंध में लेखक अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में स्वतंत्र रहता है किन्तु अपने विचारों को पाठकों पर लादने का दुस्साहस उसे नहीं करना चाहिए । स्वतंत्र विचारों को निर्बाध रूप से व्यक्त करना ही निबंध का लक्ष्य होता है । अतः यह आवश्यक है कि निबंधकार अपने निबंध से संबंधित विषयों पर विभिन्न समय-संदर्भों में कहे गए अन्यान्य लेखकों की चिंतनधारा का भी मंथन करे और अपने विचारों को अपने व्यक्तित्व के मिलन से नवीन बनाकर प्रकट करे । निबंध की सफलता का श्रेय उसकी शैली को जाता है । शायद इसी को दृष्टि में रखकर शुक्लजी ने कहा है कि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की ।

निबंध की नाना विधाएँ हैं जिनमें से प्रमुख हैं विचारात्मक निबंध और ललित निबंध । विचारात्मक निबंध ललित निबंधों की अपेक्षा अधिक औपचारिक होते हैं । ऐसे निबंधों में निबंधकार अधिकारयुक्त वाणी में विषय का विवेचन, प्रतिपादन प्रस्तुत कर सकता है । यहाँ उसका पांडित्य भी झलके तो उससे कोई आपत्ति नहीं होगी । यहाँ विचारों का प्रतिपादन और निरूपण सिलसिलेवार रहता है । यहाँ निबंधकार अपनी मनपसंद के किसी भी विषय को लेकर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकता है । और अपने निबंधों के द्वारा अपने पाठकों तक अपने विचारों को पहुँचाने का प्रयत्न कर सकता है ।इस दृष्टि से ये निबंध, निबंधकार और पाठकों के बीच सेतु है, मंच हैं ।

परसाई के वैचारिक निबंध

परसाई हिन्दी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंधकार हैं जिन्होंने इस वैचारिक निबंध-विधा को अत्यंत लोकप्रिय बनाया और तद्वारा देश की मानसिकता को सही मूल्यों की ओर उन्मुख करने, सांप्रदायिक एवं अनुपयुक्त रूढ़ियों एवं विचारों पर प्रहार करके मानवविरोधी तत्वों को उद्घाटित किया है । परसाई के पूर्व और परवर्ती पीढ़ियों में ऐसा कोई लेखक शायद ही मिलेगा जिसके लेखन का कैनवस इतना सा विस्तार रखता हो । परसाई की निबंधराशि के अवलोकन से उनकी अपार विद्वत्ता का परिचय पग-पग पर होता है, उनकी यह विद्वत्ता विचारों को प्रखर और मानवीय बनाती है किन्तु कभी और कहीं भी प्रदर्शनी की सामग्री नहीं बनती है । विद्वत्ता, समृद्ध जीवन-अनुभव, अपार लोकानुभव, और प्रखर आलोचनात्मक दृष्टि ने इनके निबंधकार व्यक्तित्व में मानवीय संवेदना को अक्षय स्रोत के रूप में जीवंत रखा है । स्थानीय राजनीति से अंतरराष्ट्रीय राजनीति की चर्चा पंचायत के नेता से देश-विदेशों के महानेताओं के मुखौटों को उखाड़ने की निर्भीक चेष्टा, सामाजिक जीवन में व्याप्त शोषण, शापित और तापित लोगों की सांसतियों को अत्यंत मानवीय-अनुकंपा से देखने की स्नेहिल दृष्टि परसाई के निबंधों को एक ओर काव्य रूप देती हैं तो दूसरी ओर उन्हें आम जनता के निकट ले जाती है । परसाई की निबंध कला की विशेषता इस बात में है कि इनकी सम्मोहक शैली के कारण ही इनके निबंध आस्वाद्य बन जाते हैं । नैतिक अधःपतन, बेईमानी, गुमराह करनेवाली आधुनिक

शिक्षा और शिक्षासंस्थानों के आचार्यों की चरित्र हीनता, क्रूरता आदि की परसाई अपने प्रायः सभी निबंधों में चर्चा करते हैं मगर हर कहीं परसाई-शैली की छाप होती है, इस शैली के कारण ही परसाई के निबंधों में पुनरावर्तन के बावजूद भी पठनीय होती हैं ।

परसाई के ललित निबंधों में उनके तुलनात्मक पक्ष की चरमसीमा को देख सकते हैं। इनके वैचारिक निबंधों में विचारों की सघनता है, चिंतन-मंथन है तो ललित निबंधों में मानव स्वभाव के वैचित्र्यों को, उसके भाव और मनोविकारों पर लेखक की चिंतनधारा प्रवाहित हुई हैं । इनके ललित निबंध भी सोद्देश्य हैं । एक गंभीर नैतिक उद्देश्य ने निबंधकार को इस लेखन के लिए प्रेरित किया है । अपने उद्देश्य की पूर्ति में निबंधकार स्वयं भागीदार होकर पाठकों से ऐसे आत्मीय वातावरण में बतियाने लगता है जिसके परिणामस्वरूप यहाँ की वस्तु, शैली एवं उसके निर्वाह में विविधता आई है । इन ललित निबंधों को पढ़ते समय ऐसा अनुभव होता है कि बहुश्रुत, लोकानुभव से संपन्न व्यक्तित्व से हम संवाद कर रहे हों । परसाई के ये निबंध अपनी सरस स्निग्ध शैली, नाना कवि-चिंतकों की उक्तियों की यथोचित प्रयुक्ति , कहावतों और मुहावरों के सरस प्रयोग से पाठकों को ये निबंध आस्वाद्य बनते हैं । यहाँ के हर निबंध में एक संदेश है, मगर उपदेश नहीं है । ये इतने उल्लासदायी हैं कि पाठकों के मन को झकझोर करते हैं । इस दृष्टि से परसाई का हर निबंध एक सुंदर कविता है । जो एक सुंदर कविता जो प्रभाव करती है वही प्रभाव ये निबंध करते हैं ।

व्यंग्य परसाई की रचनाधर्मिता का प्रधान धर्म है, व्यंग्य ने यहाँ के निबंधों में अपना साम्राज्य बनाया है । व्यंग्य के बिना इन निबंधों का महत्व एवं संदर्भ नहीं रह जाता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय में परसाई के निबंधों का अध्ययन किया गया है ।

वैचारिक कोटि की रचनाओं में विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाले स्तरीय निबंध, विशिष्ट लेख, स्तंभ लेखन आदि आते हैं । ऐसा लेखन सामान्यतः समकालीन जगत् की ज्वलंत समस्याओं को लक्ष्य करके किया जाता है । ऐसे लेखन द्वारा जनता की मानसिकता का परिष्कार करने, विचारों के निकष पर तोलने के लिए निबंधकार पाठकों को प्रेरित करता है । वैचारिक निबंध लेखक के लिए कोई भी विषय भी वर्ज्य नहीं है । यह सही है कि ऐसे निबंधकार भी अपनी प्रतिबद्धता पर टिके रहकर विचार या सिद्धांत

प्रस्तुत करते हैं मगर यह आवश्यक नहीं कि पाठक पूर्णरूप से उन्हें मानें । निबंधकार के अभिप्रायों से असहमत होकर भी पाठक चिंतन करने को बाध्य होता है । यही ऐसे निबंधों की सफलता है ।

परसाई के निबंधों में समकालीन समाज की हकीकतों के प्रति एक विवादग्रस्त सर्वत्र पाया जाता है । अपने निबंधों में समसामयिक सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में विघटित हो रहे मानवमूल्यों के बारे में लेखक चिंतित हैं । विशेषकर उन नेताओं के बारे में जो अपने को गाँधी के अनुयायी कहते हुए अपनी वास्तविक जिंदगी में गाँधी सिद्धांतों को हवा में उड़ा देनेवालों पर परसाई का क्रोध अपनी चरमसीमा पर अभिव्यक्त हुआ है ।

परसाई ने अपना सर्व लेखन विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत किया है - यथा सुनो भई साधो, यह मखरा क्या है, कबीर खड़ा बाजार में, तुलसीदास चंदन घिसे आदि । इन सभी शीर्षकों के अंतर्गत लिखे गए निबंधों के केन्द्र नायक हैं - परसाई । कबीर जैसा कि बाजार खड़े में खड़े होकर अपने चारों ओर की दुनिया को देखता, परखता और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ जाता था, उसी प्रकार यहाँ के नायक यानी परसाई का साधो बहुआयामी व्यक्तित्ववाला है । वह साधु है, शिक्षक है, आम नागरिक है, संसार से बंधा हुआ है, लौकिक है और संसार से निर्मोही बना हुआ विरागी भी है । परसाई के निबंधों में साधु, कबीर या तुलसी राजनैतिक, चिंतन विचार, विश्लेषण करता है । यह साधु किसी पर गुस्सा नहीं करता है, किसी की निंदा नहीं करता है क्योंकि परसाई के अनुसार साधुओं को गुस्सा नहीं करना चाहिए । इस दृष्टि से देखा जाय तो यहाँ के निबंधों में एक ठंडा दिमाग क्रियाशील है, उसमें लोकमंगल की दृष्टि है । स्वार्थेच्छा नहीं है । यही वजह है कि यहाँ के निबंधों से एक निर्लिप्त मन का चिंतन है जो कि इस संसार को बेहतर देखना चाहता है किन्तु संसार के बंधनों से अपने को बाँधना पसंद नहीं करता है परसाई की दृष्टि व्यंग्यात्मक है, समाज के नेत्यात्मक तत्वों पर वार करती है, विसंगति को रेखांकित करती है और साथ ही यहाँ का साधु या कबीर अच्छाइयों को नजरंदाज करनेवाला भी नहीं है । उदाहरण के लिए कांग्रेसी सरकार की तीखी आलोचना करने के बावजूद भी नेहरू की योजनाओं और उनकी राजनैतिक दूरदृष्टि की प्रशंसा करने से पीछे

नहीं हटता है। परसाई का यह साधु मानवीयता का गायक है। परसाई के निबंध विचार क्रांति के जीवंत मशाल हैं। भारत जैसे देश में जहाँ अक्षर ज्ञान के अभाव में आम आदमी अपने समाज और देश की गतिविधियों से बिल्कुल कटा हुआ है, परसाई के निबंध उसमें जागृति पैदा करने का दायित्व, पिछले चार-पाँच दशकों से करते आए हैं जो कि इन स्तंभ लेखों की खास विशेषता है। उन्होंने निबंध और कहानियाँ, रेखाचित्र और उपन्यास के अलावा और अखबार के कालमों के जरिए मानसिक जड़ता और सामाजिक उदासीनता को भी तोड़ा जो पूरे समाज और खासकर उसके बुद्धिजीवी वर्ग में फैल चुकी है और एक खास कलावादी प्रवृत्ति के तहत जहाँ साहित्य ही साहित्य का स्रोत बना रह गया है। परसाई का यह लेखन हमारी बेहद तात्कालिक और जरूरी दुनिया के रूप है और हमें उससे मुठभेड़ की ताकत देता है। यह लेखन भी ऐसा माध्यम बनाता है जो समकालीन मनुष्य के सुंदर और उदात्त के साथ उसके विकृत और हास्यास्पद को भी उघाड़ता है और साहित्य को सजीव और प्रबोधक बनाता है।"[1]

परसाई के निबंधों में चर्चित विषय, उठाये गए मुद्दों का दायरा इतना व्यापक है कि आश्चर्य होता है कि वर्तमान जगत् कितनी ही समस्याओं, संकटों, तनावों और संघर्षों का शिकार है और परसाई की सूक्ष्म दृष्टि इन सबको आत्मसात करने में कितना मनोबल धारण कर पाई है। इन तमाम तनावों के बावजूद भी परसाई के निबंध आस्था और अस्मिता को मानव में सुरक्षित रखने के लिए एक सुगठित भूमिका तैयार करने में निश्चित ही सार्थक प्रयास करने में सफल हुए हैं।

वास्तव में परसाई का असंतोष और असमाधान ही स्तंभ लेखन का आधार है। व्यवस्था की अव्यवस्थाएँ शासन का दु-शासन यहाँ के निबंधों की मुख्य सामग्री है। इंप्रूवमेंट ट्रस्ट, अध्यापकों व अधिकारियों के तबादले, पाठ्यपुस्तकों का निर्माण व वितरण, पढ़ने-पढ़ानेवालों की समस्या, अध्यापकों का सम्मान, होस्टल, रेलवे की व्यवस्था, वहाँ का भ्रष्टाचार, पुलिस की जिम्मेदारी और गैर जिम्मेदारी, नगर निगम, लॉटरी, विश्व-विद्यालयों के अध्यापकों की मानसिकता, दूरदर्शन, आकाशवाणी, फिल्म डिविजन, विधानसभा, लोक सभाओं के कार्य-कलाप, सांप्रदायिक दंगे, मंत्रिमंडलों का बनना - विसर्जित होना, मंत्रियों के सहर्ष करिश्मे, डायरेक्टरों की कथा, प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था में इस्तिफों का नाटक,

नेताओं का भ्रष्ट चारित्र्य, मिलावट, चुनाव, धर्म, प्रतिष्ठान, संस्थानों की कार्यशैलियाँ, सरकार की नीतियाँ, मठ और महंत, आयोगों और समितियों का खोखलापन, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की चर्चा, विभिन्न राजनैतिक पार्टियों एवं/उन पार्टियों के नेताओं के स्वार्थों व मुखौटों का अनावरण करना, परंपरागत मूल्यों की अर्थहीनता की चर्चा और ऐसे ही अनेकों विषय हैं जिन पर परसाई ने अपने निबंधों में गंभीरता से चिंतन किया है, विश्लेषण-विवेचन किया है और इस युग को एक जीवन दृष्टि दी है। व्यक्ति की अस्मिता से विश्व-चेतना तक यहाँ चर्चा की गई है।

आगे उनके कुछ निबंधों का विश्लेषण किया गया है जिनके अध्ययन से हम परसाई के वैचारिक निबंधों के महत्व का मूल्यांकन कर सकते हैं -

<u>राजनैतिक क्षेत्र की नौटंकी -</u>

परसाई ने अपने स्तंभ लेखवाले निबंधों में देश की राजनैतिक क्षेत्र की नौटंकी के बहुआयामी रूपों को अत्यंत मनोरंजक एवं आकर्षक ढंग से उद्घाटित करने का प्रयास किया है। परसाई राजनैतिक शक्ति को राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण ही नहीं अपितु प्रभु नियंत्रक शक्ति मानते हैं और इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि यही हमारे राष्ट्रजीवन की जड़ है। इसलिए ही उन्होंने अपने स्तंभ लेखों के माध्यम से राजनैतिक क्षेत्र की स्वार्थपरता, अवसरवादिता, नारेबाजी और मुखौटों आदि का खुलकर व्यंग्य किया है। प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था, शासन प्रणाली पर तीव्र असंतोष प्रकट करते हैं क्योंकि हर कहीं जनहित की बातें तो चलती हैं जबकि असली जीवन में जनहित की अपेक्षा स्वार्थ की नंगा नाच ही दिखायी पड़ता है। परसाई इस विसंगति को गंभीरता से लेते हैं। और अपनी व्यंग्यात्मक आलोचना से उस पर प्रहार करते जाते हैं।

हमारे नेताओं के कुर्सी मोह पर परसाई ने अनेकों प्रसंगों में लिखा है। "रानी नागफनी" में तो इसकी पराकाष्ठा है। एक बार कुर्सी मोह लग जाये तो उससे हाथ धोने के लिए ये तैयार ही नहीं होते। व्यंग्य यह है कि एक ओर ये नेता देश का दायित्व लेने के लिए नये खून को याने युवकों को आमंत्रित करते हैं तो दूसरी ओर कुर्सी खाली करने के लिए हरगिज तैयार नहीं होते। परसाई ने "नया खून पुराना खून" लेख में

कुर्सी हथियाये हुए नेताओं की निर्मम और कठोर मानसिकता का व्यंग्य किया है । पुराने नेता अपने स्थानों पर बने रहने के लिए जो कारण देते हैं वे हास्यास्पद हैं क्योंकि वे कुर्सी खाली करेंगे तो वे बेकार हो जायेंगे, उनके अनुभव निरर्थक हो जायेंगे । जिसके बलबूते वे दंगे फसाद करना जानते हैं, चुनाव जीतना जानते हैं और इसी अनुभव के आधार पर असामाजिक तत्वों को सुरक्षा देना भी ये ही लोग जानते हैं । उनका सोचना है कि वे अधिकार से उतर जायेंगे तो जो नया खून आयेगा, उसे इन सब तरकीबों को सीखने में समय लगेगा, तब तक देश भाड़ में जायेगा । परसाई ने इन तथाकथित पुराने खून की पद-लोलुपता का तीव्र व्यंग्य किया है और उनके पद में बने रहने की दृष्टि को मानवतावादी दृष्टि कहा है - "साधो, नये खून को सोचना चाहिए कि उसके सामने तो पूरी जिंदगी पड़ी है, कभी भी पद पर बैठ सकेंगे । पर पुराने खून के दिन गिने गिनाये हैं । उन्हें कुछ दिन और जम रह लेने दो । साधो, अगर केवल मानवतावादी दृष्टि से ही देखा जाय तो भी पुराने खून का जमे रहना उचित मालूम पड़ता है ।"[2] "नये खून" को राजनीति में आमंत्रित करने का उनका नारा ढकोसला है । "वह अपनी जीत के बारे में प्रधान मंत्री से अधिक निश्चिंत रहता है । वह समझता है कि सारा देश उस क्षण का इंतजार कर रहा था कि कब ये खड़े हों और सारे वोट इनकी पेटी में डाल दें । साधो, आत्मविश्वास कई तरह का होता है - धन का, बल का, बुद्धि का । मगर मूर्खता का आत्मविश्वास इन सबसे बड़ा होता है । साधो, ऐसा बेचारा नासमझ उम्मीदवार जब जमा पूँजी खोकर बाद में पछताता है ।"[3] मुग्ध जनता को हमारी पार्टियाँ किस प्रकार उल्लू बनाती हैं, इसका पर्दाफाश किया गया है ।

चुनाव में उम्मीदवारों का किस्सा यह है तो चुनाव घोषणा पत्रों का हाल और भी अजीबोगरीब है । यहाँ पर हर पार्टी यही समझती है कि देश का उद्धार उससे ही होगा । इन घोषणा पत्रों के असली रूप का उद्घाटन करते हुए परसाई कहते हैं - साधो, मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा है कि किस पार्टी को वोट दूँ । सभी तो अच्छे हैं । देश में इतनी बड़ी संख्या में इतने अच्छे लोग हैं, यह मुझे हर बार चुनाव के समय मालूम होता है और मुझे बड़ी आशा बँधती है कि इस देश का भविष्य उज्ज्वल है ।"[4] इन सारे घोषणा पत्रों से लोगों को भ्रम में डाल दिया है कि लोग यह निश्चय कर पा रहे हैं कि वोट किसे दिया जाय। वास्तव में ये चुनाव गुमराह करनेवाले साधन हैं ।

चुनाव के समय छपनेवाले घोषणा पत्र इतने सम्मोहक होते हैं कि जनता यह निश्चय नहीं कर पाती है, इतने अच्छे से अच्छे लोगों में से किसको चुना जाय और किसको न चुना जाय । ऐसे अनेकों घोषणा पत्रों में से परसाई को भारतीय जनसंघ का घोषणा पत्र बहुत अच्छा लगता है, उसकी नीतियाँ, कार्य प्रणालियाँ एकदम प्रभावकारी लगती हैं । इसलिए ही उनकी आलोचना करते हुए ये नीतियाँ जनता को किस प्रकार गुमराह करती हैं, इस ओर ध्यानाकर्षण करते हुए कहते हैं, "साथी, सबसे बड़ी आशा जनसंघ ने तुम जैसे निठल्लों को दी है, घोषणा की है कि जिन्हें काम नहीं मिलेगा, उनका पेट भरने का दायित्व शासन लेगा । साथी, बड़े मजे रहेंगे । जब राज्य ही पालन-पोषण करेगा, तब काम करनेवाला तो बेवकूफ कहलायेगा.....आयुर्वेद को राष्ट्रीय पद्धति बनाया जायेगा । साथी, अगर तुम्हारी हड्डी टूट जायेगी तो एक्सरे नहीं करा पाओगे, क्योंकि एक्स-रे आयुर्वेद में नहीं है।"[5] जनसंघ की खेतों को मात्र गोबर का खाद देकर रासायनिक खादों को निकालना, गोशालाओं की स्थापना करने का निश्चय करना आदि ऐसी नीतियाँ जिनको जनता के सामने रखकर वोट माँगनेवाली जनसंघ-पार्टी देश को विकासोन्मुख नहीं बना बनाती किन्तु अवरोध की ओर दिनोंदिन ले जाती है । परसाई जनसंघ की साम्प्रदायिक, हिन्दू धर्म की फैसिस्ट ताकत का कड़ा विरोध करते हैं । और मानते हैं कि ऐसी पार्टियों से देश भाड़ में जायेगा । परसाई की स्पष्ट धारणा है कि जनसंघ कभी समय के साथ स्पंदन नहीं कर पाता है ।

चुनाव प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था की भाग्य विधायिनी शक्ति है । देश का भाग्य निर्धारण भी यही चुनाव करते हैं । चुनाव की इस अनंत शक्ति से नेहरूजी के बच्चे जो उन्हें "चाचा" कहते हैं, भी वाकिफ हैं । इसलिए तो ये बच्चे अपने इस जन्म दिन के अवसर पर बाल दिवस के संदर्भ में तोहफा यह माँगते हैं कि "नेहरू कहते - "बेटा अपने लिए माँगो। मिठाई, खिलौने ? " बच्चा कहता है - नहीं चाहिए । हमारे बापूजी को टिकट दीजिए । अब पंडितजी क्या करते ? बाल हठ के सामने झुकना पड़ता ।... साथी, नेहरू खीझकर उस बच्चे को उतार देते और दूसरे को गोद में लेकर पूछते - "तुम खिलौने लोगे ? " वह कहता - "नहीं चाचाजी, हम खिलौने नहीं लेते । हमारे पिताजी को राज्यपाल बना दीजिए ।"[6] यहाँ परसाई इस बात की ओर भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए व्यंग्य करते हैं कि बच्चों की मानसिकता को भी भ्रष्ट करने तक

हमारे नेताओं की क्रूरता सक्रिय रही है । इस प्रसंग पर इस बात की ओर संकेत करना परसाई नहीं भूलते कि नेहरूजी भी चालाक रहे कि बच्चों को प्यार देकर उनके माँ बापों से वोट ले रहे हैं । यहाँ परसाई की कल्पना थोड़ी अतिरंजक लगती है ।

चुनावों के छल-प्रपंचों का रहस्योद्घाटन करके परसाई ने अपने अनेकों निबंधों में किया है । "चुनाव में नक्षत्र" लेख इस बात के लिए एक सशक्त उदाहरण है । यहाँ चुनावों के उम्मीदवारों एवं पार्टियों की मानसिकता, उम्मीदवारों का दन्द्वन्म, उनकी चालाकी-धोखेबाजी की बारीकियों को दिखाया गया है । चुनावों में उम्मीदवारों को नमस्कारों के भ्रम में पड़ना इतना घातक सिद्ध हो सकता है कि परसाई का विश्वास है कि नमस्कार देनेवाले वोट नहीं देंगे । हमारी पार्टियाँ भी ऐसी हैं कि जहाँ पार्टियों को यह विश्वास नहीं रहेगा कि अमुक स्थान पर उनकी जीत नहीं होगी, वहाँ ऐसे डब्बू को ढूँढ़ती हैं जो कि भ्रमों का शिकार रहता है ।

कांग्रेस सरकार का प्रशासन

परसाई कांग्रेसी-संस्कृति के प्रति तीव्र असमाधान की भावना रखते हैं । इनका मानना है कि स्वतंत्र्योत्तर भारत की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में भ्रष्ट मूल्यों के बीज बोकर उन्हें पोषित करने में इन कांग्रेसजनों का सबसे बड़ा योगदान है । स्वातंत्र्यपूर्व दिनों के नेताओं की अभीप्साएँ देश को प्रगति पथ पर ले जाने की थीं, मानव कल्याण उनका मकसद था, ऐसे सर्वोदय समाज की स्थापना इनका लक्ष्य था जहाँ पर नागरिक का हित समाहित था । दीन दुखियों के आँसुओं को पोंछने में धन्यभाव अनुभव किया जाता था, "स्व" की भावना कभी किसी भी हालत में झांक भी नहीं सकती थी । यानी देश इनका सब कुछ हुआ था । गाँधीजी और उनकी कुर्बानी से प्राप्त "स्वराज्य" में अधिकतर ऐसे स्वार्थी नेता अधिकार में आए कि ये नेता और इनके चेले स्वराज्य में अपना विकास करने में जुट गए । गाँधी, गाँधी सिद्धान्तों एवं सर्वोदय समाज की स्थापना के नारों की ओट में जनता को भुलावे में करने के प्रयास निरंतर जारी रहे । सामाजिक जीवन में क्रूरता, स्वार्थता, शोषण आये दिनों में पर्याप्त मात्रा में बढ़ते गए । परसाई ने अपने व्यंग्य लेखों के माध्यम से कांग्रेसियों और उनकी शासन प्रणाली की विसंगतियों, विरोधाभासों

और उनके स्वार्थ मनोभाव पर अपने निर्मम व्यंग्य प्रहार किए हैं, साथ ही हालतों का गंभीर विचार-विश्लेषण किया है ।

परसाई के निबंधों और कहानियों की विशेषता इस बात में है कि वे व्यक्ति या संगठन की विसंगतियों का पर्दाफाश करने के लिए जिस कुशलता से प्रतीक-योजना की परिकल्पना करते हैं, उससे तत्संबंधी व्यक्ति अथवा संगठन की विसंगतियाँ अपने आप उभरकर आती हैं । ये प्रतीक इतने सशक्त होते हैं कि वे हालातों का भाष्य करने लगते हैं । परसाई के निबंध और कहानी साहित्य में वैषम्य को रेखांकित करने के लिए ये प्रतीक सार्थक रूप से प्रायः काम आते हैं । कांग्रेस जनों को जेब कतरे साबित करने के लिए उनके अधिवेशनों में होनेवाली घटनाएँ अर्थपूर्ण लगती हैं । दुर्गापुर के अधिवेशन में स्वयं सेवकों के वेश में कुछ जेब कतरे घुस आये और जेब काटते पकड़ गए । इस घटना में परसाई विशेष अर्थ ढूँढते हैं और इसे महत्व का भी मानते हैं क्योंकि आखिर कांग्रेस ने देश को क्या सिखाया ? इसका व्यंग्य करते हुए कहते हैं - 'साथी, यह खबर कांग्रेस के पूरे चरित्र को सूचित करती है । इससे कई निष्कर्ष निकलते हैं । कुछ पेशेवर जेब कतरों ने सोचा कि जेब काटने के लिए कांग्रेस में घुसना जरूरी है । मगर वहाँ घुसने के लिए कांग्रेस मैन होना जरूरी है । तो उन्होंने कांग्रेस स्वयं सेवकों का बिल्ला लगाया और कांग्रेस में घुस गए । एक बार घुसने के बाद उन्होंने जेब काटना शुरू कर दिया ।'[7] यानी कांग्रेस जन देश की भलाई की अपेक्षा दूसरों की जेब काटने की जो विशिष्ट क्षमता रखते हैं, उसका व्यंग्य करके गागर में सागर की भाँति कांग्रेसियों की व्याख्या की है । परसाई जानते हैं कि आजादी के उपरांत देश में कांग्रेसियों और जेब कतरों के बीच अलग पहचान करना असंभव सा हो गया है । यह तो परम दौर्भाग्य पूर्ण बात है कि हर साल जेब कतरों की संख्या बढ़ती और कांग्रेस प्रेमों की संख्या घटती जा रही है । एक कांग्रेसी दूसरे भाई कांग्रेसी से डरकर रहने के लिए सावधान करने की नौबत जो आयी है, यह बेहद शर्मनाक घटना है ।

परसाई नारों को देश का दौर्भाग्य मानते हैं । ये नारे इतने बेमतलब और अर्थविहीन के हो चुके हैं कि आज इन नारों का दायरा सीमित हो चुका है । जब ये नारे सुनायी पड़ते हैं तो समझना चाहिए कि कोई नेता दौरे में हैं । 'आखिर एकता क्यों हो ?'

वाले निबंध में परसाई ने एकतावाले नारों की विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत की है । गाँधीजी के ज़माने में, आज़ादी की लड़ाई के दौरान नारों का अपना विशिष्ट महत्व था, ये नारे मंत्र होते थे । उन नारों की तुलना आज के नारों से करते हुए लक्ष्य युक्त साधकों और लक्ष्यहीन स्वार्थियों के बीच के ज़मीन-आसमान अंतराल को रेखांकित करते हैं । "एकता" मात्र उन दिनों में एक मूल्य थी, किन्तु आज एकता मात्र मंत्री बनने की एक शर्त है । इसका व्यंग्य करते हुए परसाई लिखते हैं - "एकता किसलिए ? एकता का उद्देश्य क्या ? मगर इसके पहले सवाल उठता है - कांग्रेस मैन होने का उद्देश्य क्या है ? साथी, कांग्रेस मैन होने का उद्देश्य है शासन में किसी पद पर हो जाना । मंत्री से लेकर ग्राम पंचायत के सरपंच तक जो पद हैं, उन पर होना कांग्रेस मैन का लक्ष्य है । तब सवाल उठता है - एकता क्यों चाहिए ? एकता इसलिए चाहिए कि इससे दल बहुमत में होगा और तभी हम पद पर होंगे ।...साथी, शंकर एकता को रोते हैं क्योंकि वे मंत्री थे मंत्री नहीं रहे । टोपीवाले एकता का विलाप करते हैं क्योंकि उनका मंत्रिमंडल नहीं है । मेहताब एकता को रोते हैं, क्योंकि उड़ीसा में वे मुख्यमंत्री नहीं हैं । "[8] एकता के लिए हर कोई नेता परेशान इसलिए है कि वह पदविहीन हैं । परसाई राजनैतिक क्षेत्र की नब्ज़ से, वहाँ के नेताओं की मानसिकता से भली-भाँति परिचित हैं । इसलिए ही इनके वर्णन में, पुरस्-योजना में कहीं भी कल्पकता का अनुभव नहीं होता है । ये नेता हमारे बीचों बीच रहनेवाले हैं ।

परसाई ने "ठिठुरता हुआ गणतंत्र" शीर्षक निबंध में गणतंत्र दिवस के उन शानदार समारोहों का व्यंग्य किया है जोकि मात्र पारंपरिक और सांप्रदायिक रह गए हैं । समाजवाद लाने की घोषणा तो हरएक गणतंत्र में की जाती है मगर समाजवाद तो इनके सिद्धान्तों में से नहीं है । यह "समाजवाद" इस निबंध में सूर्य का प्रतीक है जिसे लेखक ने कभी गणतंत्र के दिन नहीं देखा है और हर गणतंत्र दिवस पर बादल ही बादल छाये रहते हैं । दिल्ली की दुर्दशा इस बात में है कि दिल्ली की अपनी कोई नीति नहीं है, वैसे ही दिल्ली का कोई मौसम नहीं है । परसाई "सूर्य" रूपी सिद्धांत यानी उजाले को देखना चाहते हैं मगर यह उजाला देश की राजनीति के अंधकार में इस प्रकार फँसा या अटका हुआ है कि उसका बाहर निकलने की कोई संभावना ही नहीं है क्योंकि पार्टीबाजी, गंदी राजनीति का शिकार बना हुआ है यह देश । इसका व्यंग्य करते हुए परसाई लिखते हैं - "इधर जब कांग्रेस के दो हिस्से

हो गए तब मैं ने एक इंडिकेटी कांग्रेसी से पूछा । उसने कहा - "हम हर बार सूर्य को बादलों से बाहर निकालने की कोशिश करते थे, पर हर बार सिंडिकेट वाले अड़ंगा डाल देते थे । अब हम वादा करते हैं कि अगले गणतंत्र दिवस पर सूर्य को निकालकर बतायेंगे । एक सिंडिकेटी पास खड़ा सुन रहा था । वह बोल पड़ा - यह नेता (प्रधान मंत्री) कम्युनिस्ट के चक्कर में आ गई है । वही उसे उकसा रहे हैं कि सूर्य को निकालो।"[9] सूर्य को निकालने के बादलों को हटाने के मामले में सब दिलचस्प हैं मगर सब उलझे हुए हैं, नाना प्रकार की ग्रंथियों से ग्रसे हुए हैं । देश को लेकर किसी को चिंता नहीं है, सभी अपने को लेकर सोच रहा है । आखिर गणतंत्र के दिवस जो तालियाँ बजती हैं, क्या वे तालियाँ सचमुच की है ? जनता की जय ध्वनियाँ हैं ? इसका उत्तर है, ये जयध्वनियाँ नहीं अपितु जनता की मजबूरियाँ हैं । परसाई का व्यंग्य है - "स्वतंत्रता दिवस भीगता है और गणतंत्र दिवस ठिठुरता है । मैं ओवर कोट में हाथ डाले परेड देखता हूँ कि प्रधान मंत्री किसी विदेशी मेहमान के साथ खुली गाड़ी में निकलती हैं । रेडियो टिप्पणीकार कहता है - "घोर करतल ध्वनि हो रही है । मैं देख रहा हूँ, नहीं हो रही है । हम सब तो कोट में हाथ डाले बैठे हैं... फिर भी तालियाँ बज रही हैं । मैदान में ज़मीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं जिनके पास हाथ गरमाने के लिए कोट नहीं है । लगता है, गणतंत्र ठिठुरते हाथों की तालियों पर टिका है । गणतंत्र को उन्हीं हाथों की ताली मिलती है, जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिए गर्म कपड़ा नहीं है ।"[10] वास्तव में गणतंत्र दिवस लोगों की गरीबी का मज़ाक करने का पर्व है । वहाँ के भाषण झूठे हैं, नारे झूठे हैं, यहाँ तक कि वहाँ जो झाँकियाँ, प्रदर्शित की जायेंगी, वे भी सरासर झूठ हैं । हमारा मोटो "सत्यमेव जयते" है, मगर वहाँ सत्य को छिपाकर झूठे का प्रदर्शन किया जाता है । हरिजन हत्यायें, हरिजन जलकांड, देश में आये दिनों में होते आ रहे जुल्मों की परवाह करने वाला वहाँ कोई नहीं । गरीबों का मज़ाक करनेवाला है यह गणतंत्र का उत्सव । निबंध का व्यंग्य यह है कि प्रधानमंत्री समाजवाद के आगमन की सूचना देती हैं मगर वह समाजवाद कागज़ों पर आया है जिसको भी हमारे बाबू लोग दबाकर बैठे हुए हैं । ऐसी हालात में गरीबों के दरवाजों तक वह समाजवाद कब आयेगा, इसकी प्रतीक्षा है ।

इस देश के प्रशासन का बागडोर लंबे समय तक कांग्रेस के हाथों में रहा जिसने अपने

अधिकार-काल में देश को जिन हालातों ने गुजरने को मजबूर किया, इसका सजीव आकलन परसाई की रचनाओं में मिलता है । देश की भौतिक-दुर्गति को लक्ष्य में रखकर परसाई इस देश की बात के लिए चिंता प्रकट करते हैं । यहाँ के नेताओं में मानवीयता का नितांत अभाव है ।

परसाई अपने निबंधों में आभिजात्य नहीं रहते, मगर आम आदमी की मासदियों को समझने और उनके लिए कारण बनी परिस्थितियों का व्यंग्य खूब करते हैं । "राम का दुख और मेरा" निबंध में किराये के मकानों की दुस्थितियों पर कटाक्ष किया है और कहा है राम तो पुत्रविहीन होने से डरते हैं जबकि आम आदमी "गृहहीन" होने के कारण डरते हैं । राम का दुख देखने के लिए लक्ष्मण था, जबकि किरायेदारों के दुख को कोई मकान मालिक परवाह तक नहीं करता है । क्योंकि वह किराये के लिए मकान जो बनवाते हैं, बिलकुल व्यवहारिक ढंग से बनवाते हैं । परसाई का व्यंग्य इस बात को लेकर है कि इस देश में आम आदमी का दुःख देखनेवाला कोई रह नहीं गया है इसी संदर्भ में उन्होंने प्रसंगवश उन इंजीनियरों पर भी व्यंग्य किया है जिनको गृह निर्माण कराने की प्राथमिक बात भी मालूम नहीं है । छत टपकती है तो यह इंजीनियर सुझाव देता है - "ठीक है, समझ गया ऊपर से प्लास्टर हो ही चुका है । भीतर से प्लास्टर हो जाने पर एक बूँद भी नहीं आएगी".... इस युक्ति से मैं प्रभावित हो गया । पर मेरे भाई में व्यवहार बुद्धि अधिक है । उसने कहा - "ऐसा करने से दीवारों में पानी घुसता जायेगा और किस दिन ऊपर दीवार खिसक पड़ेगी", इंजीनियर ने उत्तर नहीं दिया

इसी संदर्भ में परसाई हर जिले में इंजीनियरींग कालेज खोलने की सलाह देते हैं जिससे कि ऊपर उल्लेखित इंजीनियर जैसे इंजीनियर निकले और देश भर में कच्चे पुल और टिकनेवाली इमारतें बन सकें ।" यहाँ हमारी सरकार की उन नीतियों की आलोचना की गई है जहाँ कालेज खुल जाते हैं मगर अच्छी शिक्षा नहीं दी जाती है, परिणाम स्वरूप जो स्नातक निकलते हैं वे कच्चे होते हैं । "नये श्रवणकुमार" के निबंध में भी आधुनिक समाज की शिक्षा प्रणाली का व्यंग्य है जो कि बच्चों को बचपन से ही "शरण" में जाने की शिक्षा दी जाती है और स्वतंत्र चिंतन-मनन करने की प्रेरणा नहीं देती है और "शरण" में जाने की शिक्षा पाकर बड़े होनेवाले आधुनिक श्रवणकुमार इस प्रकार अपने कंधों पर मनुष्यता के प्रति, सम

कु.यु ह के प्रति अंधे हुए अंधियारों को ढोकर पद, अधिकार, कैबिनेट, विधान सभा, विश्वविद्यालय, अकादमियों की ओर चलते चलते नहीं । ये भाग्यकुमार आँखोंवाले हैं और वे जो बैठे हैं, अंधे हैं । परसाई व्यंग्य करते हैं, - "कितनी कावड़ें हैं, - राजनीति में, साहित्य में, कला में, धर्म में, शिक्षा में । अंधे बैठे हैं और आँखोंवाले उन्हें ढो रहे हैं ।"[12] "एक दीक्षांत भाषण" निबंध में परसाई ने एक मंत्री के दीक्षांत भाषण का व्यंग्य किया है जो कि मंत्री महोदय का है । इस दीक्षांत भाषण को पढ़ते समय ऐसा अवश्य लगता है कि मंत्री महोदय अंट-संट बोलते जा रहे हैं मगर वे आज के भारत की सही तस्वीर खींच रहे हैं - 1. पुलिस हर छात्र के पीछे खड़ी है अनुशासन की रक्षा के लिए । मगर ऐसा किसी भी देश में नहीं है और ऐसा भी दिन आयेगा जब कि देश के विश्वविद्यालय पुलिस लोगों से चलाए जायेंगे । यानी वर्तमान भारत में पुलिस और शिक्षा क्षेत्र का संबंध इतना आत्मीय हो चुका है । 2. हूटिंग करने की परिपाटी विद्यार्थियों में आए दिन हम जो देख रहे हैं वह इस परम सीमा तक पहुँच चुकी है कि भाषण कर्ता को बोलने तक नहीं देती और इस हूटिंग के कारण हमारे छात्र अच्छा सुनने से भी वंचित रह गए हैं । इस हूटिंग के दुष्प्रभाव को रेखांकित करते हुए कोयल का यह कहना मार्मिक है - "मैंने कोयल से पूछा था - बहनजी, आप पेड़ों पर बैठी क्या गाती है ? उसने कहा - पहले मैं शहर में गाती थी, पर विश्वविद्यालय के लड़कों ने हूट करके भगा दिया । इसलिए पेड़ पर बैठकर गाना पड़ता है ।"[13] अर्थात् हमारे छात्र मंत्रियों के भाषण को न सुनें किन्तु कोयल की बोल को भी सुनने में आस्था नहीं रखते हैं - आज के छात्र समुदाय की इस प्रवृत्ति का व्यंग्य इस मंत्री ने अत्यंत मार्मिक ढंग से किया है - "मैं यह भी जानता हूँ कि मोर पहले स्टेज पर नृत्य करता था । पर आप लोगों ने कंकड़ मारकर उसे भी जंगल में भगा दिया । मैं जानता हूँ कि मेरी जगह अगर बृहस्पति भी भाषण देते होते, तो वे भी हूट कर दिये जाते । आपके उपकुलपति उन्हें आमंत्रित करके देखें । मैं दावे से कहता हूँ कि वे यहाँ आने से इनकार कर देंगे ।"[14] इस वक्तव्य में मंत्री की मानसिकता का नहीं अपितु हमारे छात्रों की मानसिकता का व्यंग्य है । 3. इस निबंध की खूबी इस बात में है कि छात्रों की बंदरबाजी का व्यंग्य सूक्ष्म रूप में किया गया है । घर में अपने बेटे और बहू की "भौं भौं" "म्याऊ" का उदाहरण देकर भाषण के बीच में छात्रों द्वारा की

आनेवाली जानवर योनी का व्यंग्य किया है । ४. मंत्री चाहता है कि ये युवक भविष्य का निर्माण करें क्योंकि बिगड़ा हुआ या उनसे बिगड़ा गया वर्तमान उनके समक्ष रहता है । बनाने का कार्य चूंकि भविष्य में छात्र लेंगे, वर्तमान के मंत्री इस देश को कहाँ ले जा रहे हैं, इसका पता मंत्री के इस वक्तव्य से लगता है "अगर आप राजनीति में भाग लेंगे, तो हमें राजनीति छोड़नी पड़ेगी । आप लोग चरित्रवान् बनें । अगर आप चरित्रवान नहीं बनेंगे तो हमें बनना पड़ेगा । आप ईमानदार बने, आप के ईमानदार बनने पर हम ईमान दार बनने से बच जायेंगे वरना हमें इस ढलती उम्र में ईमानदार बनना पड़ेगा ।"[15] इन वाक्यों में आज की अनुचित राजनीति का व्यंग्य किया गया है जहाँ राजनीति गंदगी से, बेईमानी से लिपटी हुई है ।

५. इस निबंध का सार्थक व्यंग्य इस बात में है कि हमारे विश्वविद्यालय ऐसे व्यक्तियों को अपनी उच्च उपाधियों से सम्मानित कर रहे हैं जिनके वे सर्वथा योग्य नहीं होते "डाक्टर बनने की इच्छा मेरी बचपन से थी, पर अक्ल ने साथ नहीं दिया । आज यह इच्छा पूरी हो रही है । मैं जानता हूँ कि यदि मैं मंत्री न होता, कानूनी डाक्टर क्या कंपाउण्डर भी मुझे कोई नहीं बनाता ।[16] यह दीक्षांत भाषण शिक्षा एवं राजनीति क्षेत्र की विसंगतियों का बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य प्रस्तुत करता है ।

जनता सरकार का प्रशासन

परसाई का राजनीतिक-बोध अत्यंत सजग है, सूक्ष्मग्राही है, दिन ब दिन बदलती राजनीतिक स्थितियों के विश्लेषण की पैनी दृष्टि, सकारात्मक चिंतन, चिंतन धाराओं को समझने और परखने की अद्भुत तीक्ष्ण मति साक्षात् है जिसे उनके तमाम राजनीतिक स्तंभ लेखन में देख सकते हैं । इस दृष्टि से परसाई का समस्त लेखन भारतीय राजनीति एवं सामाजिक प्रश्नों को एक-एक करके उजागर करता है । परसाई ने इस देश की राजनीति में अनेकों मोड़ देखे हैं । और हर कहीं स्वार्थ की नंगी नाच देखी है ।

कांग्रेसी सरकार, कांग्रेसी संस्कृति, कांग्रेस की कार्य प्रणाली, उसकी भ्रष्टता से जनता तंग आ चुकी थी, दूसरे शब्दों में आजादी की लड़ाई के दौरान जो सपने देखे गए थे उन को साकार न हो पाते देखकर देशवासियों का मोहभंग हुआ था । फलतः देश के

शासन में परिवर्तन लाने का निश्चय करके यहाँ की जनता ने 1977 में दूसरी आजादी की लड़ाई लड़ी जिसमें सफलता भी मिली। किंतु सत्ता में आई जनता सरकार के नेताओं के आपसी कलह के कारण सरकार गिरी। जनता पार्टी के नेताओं की अंदरना के कारण एक नया आयाम, नयी गति प्राप्त करने के अवसर से देश चूक गया। परसाई ने इस ऐतिहासिक परिवर्तन का स्वागत करते हुए बाद में हुई नौटंकी का विश्लेषण बड़े मार्मिक ढंग से किया है। जनता शासन के दौरान लिखे गए अपने स्तंभ लेखों में जनता शासकों के असली रूपों का उद्घाटन किया है। जनता पार्टी मात्र संयोग से बनी थी क्योंकि इन्दिरा गांधी ने शुरू में ही लड़ने के लिए इनको मौका नहीं दिया इस ओर इशारा करते हुए जनता पार्टी के गिर जाने के कारणों का विश्लेषण करते हुए परसाई ने अत्यंत मार्मिक विश्लेषण किया है - "साधो, मधुलिमये ने डेढ़ साल पहले कहा था कि अगर इंदिरा गांधी चार महीने बाद चुनाव करातीं तो जनता पार्टी बनती ही नहीं, क्योंकि हमें आपस में लड़ने का वक्त मिल जाता, हमें लड़ने का वक्त मिला नहीं और हमने एक पार्टी बना ली, यानी साधो, जो लड़ाई आपस में लड़ने का सुभीता इंदिरा गांधी ने नहीं दिया, वह लड़ाई बाद में लड़ी गई और जनता की क्रांतिकारी सरकार गिर गई। दूसरी आजादी का दौर खत्म हो गया।"[17] जनता पार्टी की स्थापना, उसका शासन और उसका गिरना - ऐसी तीन अवस्थाएं हैं, जिनसे गुजरते गुजरते यहाँ के नेताओं का रंग ऐसा बदलता गया, स्वार्थ और अधिकार का नशा ऐसा चढ़ता गया कि जिसकी परिणति उसके शीघ्र पतन में हुई। परसाई जनता पार्टी के शासन के विरोधाभास, विसंगतियों, ढोंगों एवं मुखौटों का विश्लेषण करके उसके अधःपतन के लिए इन्हीं अंशों को उत्तरदायी बताते हैं और व्यंग्य करते हैं कि अपनी कब्र खोद लेने का अधिकार सबको है - "साधो, तुम पूछोगे कि गुरु, जनता पार्टी क्या पागल हो गई? देखो साधु, हर राजनैतिक ब दल को अपनी कब्र खोदने का हक है। जनता पार्टी से उसका यह मूल अधिकार कोई नहीं छीन सकता। वह पार्टी सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर देगी ब कि हमें अपनी कब्र खोदने का अधिकार दिलाया जाय।" जनता सरकार की नियति का इससे बड़ा विश्लेषण एवं व्यंग्य अन्यत्र नहीं मिल सकता। हमारे नेताओं की चंचलता, मेंढकी प्रवृत्ति, अवसरवादिता के कारण न वे एक सिद्धान्त पर टिके रह पाते हैं, न कुर्सी मोह को छोड़ सकते हैं। अपने छोटे छोटे दायरों से

बाहर आ पाना इन नेताओं से संभव नहीं है । इन नेताओं की इस मानसिकता का व्यंग्य परसाई ने निर्भीकता से किया है । अनुरक्षा की राजनीति में शीर्षक लेख में परसाई ने जनता पार्टी के राजनीतिक स्वरूप का व्यंग्य किया है - 'साथी, तुम सोचते हो कि यह क्या हो रहा है । जनता , जनता (एस) भारतीय जनता, और जनता (बे) पर जनता पार्टी हो गई । चरणसिंह का लोकदल हो और राजनारायण की जनता (एस) एक दूसरे की लड़ाई । एक दूसरे की पोल उछालना । काट-छाँट, टाँग खींचना, इधर से उधर भागना । हाय, भैया ! पार्टी तोड़ना और बनाना । सुबह कुछ बोलना, शाम को उससे उल्टा । छक्के । यह सब क्या है ... ।'[19] जनता पार्टी संपूर्ण क्रांति का आदर्श लेकर, इस भारतीय जनजीवन में आमूलचूल परिवर्तन लाने की महत्वाकांक्षा से अवतीर्ण हुई थी । किंतु परिणाम उससे उल्टा निकला । परसाई के अनुसार इस संपूर्ण क्रांति की व्याख्या है - मनमानी, अनुशासन हीनता, स्वच्छंदता । संपूर्ण क्रांति के उद्घोषक जयप्रकाश भी अपनी संपूर्ण क्रांति की यह दशा देखकर घबरा गए होंगे - 'लोकनायकजी, जनता नौटंकी का मजा आप भी लीजिए आप बहुत सीरियस हैं । जरा हँसा कीजिए । आपने ऐसी नौटंकी नहीं देखी होगी जिसमें सभी विदूषक हों । समझ में नहीं आता, किसके करतब पर हँसें ।'[20]

इस प्रकार हम देखते हैं कि परसाई की रचनाएँ जनता शासन की समस्त दुर्बलताओं तथा ढंगों का निर्भीकतापूर्वक अनावरण करके एक ऐसी दुनिया के दर्शन कराती हैं जहाँ उच्च उदात्त मूल्य नहीं अपितु मनुष्य का स्वार्थ ही अट्टहास करता है । 'अपील का जादू' शीर्षक निबंध में प्रधानमंत्री की अपील के कारण व्यापारियों ने मानवीयता और नैतिकता का बड़े उदार ढंग से पालन किया तो लोगों में चीजें इतनी कम कीमत में बिकने लगीं कि जिन्हें खाकर लोग बीमार पड़ते गए, कम कीमत में मिले कपड़े पहनने से शरीर झुलसने लगा अर्थात् प्रधानमंत्री की अपील के फलस्वरूप जनता हाय हाय मचाने लगी । परसाई यहाँ इस बात को स्पष्ट करना चाहते हैं कि देश की जनता अभी नैतिकता का मार्ग अपनाने योग्य संस्कारों को प्राप्त नहीं कर सकी है ।

परसाई ने अपने निबंधों में कांग्रेस और जनता सरकार के कार्यविधानों का जबरदस्त व्यंग्य किया है । मगर कांग्रेसी सरकार की जड़ों को हिलाकर जो जनता सरकार आई, क्या वह जनता के कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध है थी ? परसाई के अनुसार उनकी प्रतिबद्धता कमीशन बिठाने के प्रति अत्यंत जागरूक रही है । सरकार की इस कमीशन वाली नीति की आलोचना और व्यंग्य जांच कमीशन और सरकार का कुम्भा मामला निबंध में किया है । उनका यह व्यंग्य कि 'लोग चिल्लाते रहे कि हुजूर दर्जनों कमीशन बैठ चुके हैं, सैकड़ों रिपोर्ट हैं । इनकी समस्याएं सब जानते हैं, किताबों में छपती हैं, अखबारों में छपती हैं, हर आदमी जानता है, क्या सरकार नहीं जानती ? नहीं । सरकार को रेडिमेड जानकारी से सरोकार नहीं । उसे अपने कमीशन के माफ़त जानकारी चाहिए ।...सरकार के कोई समस्या हल करनी नहीं है, उसके बस की बात नहीं है । जब समस्या हल न करनी हो, या वह हल न होती हो, तो कमीशन बिठा दो ।'[21] समस्याएं उठती हैं तो उन समस्याओं को सुलझाने की ओर आस्था न दिखाकर योजना [illegible] सहानुभूति मात्र से समस्या का समाधान ढूंढने की जनता पार्टी की नीति का व्यंग्य यहाँ है । रोटी की समस्या पर शिकायत करनेवाला इस समस्या पर नियुक्त [illegible] कमीशन की रिपोर्ट आने तक जिंदा ही नहीं रहेगा ।

वर्तमान राजकीय एवं सामाजिक जीवन में भाई भतीजावाद का विस्तार होकर साला बहनोईवाद पनप रहा है, परिणामतः यहाँ अन्याय, स्वार्थ की भी कोई सीमा नहीं है । अराजनैतिक व्यक्ति राजनैतिक व्यक्तियों का उनके पदों का इतना दुरुपयोग [illegible] कर रहे हैं कि इस तालिका को ही परसाई प्रस्तुत करके पूछते हैं कि यह सारा मामला देश को कहाँ ले जा रहा है । यहाँतक कि जयप्रकाश नारायण के अमृत महोत्सव के लिए जो चंदा वसूल किया गया, उसमें भी भ्रष्टता है -' सुनने का कहना है कि इसके लिए शासकीय मशीनरी का दुरुपयोग किया गया । गरीब व्यापारियों तक से जबरन पैसे वसूल किये गये ।[22] सरकार बदलने से स्कैंडल [illegible] नहीं रुके कहकर इन [illegible] [illegible] स्कैंडलों की जाँच के लिए कमीशन बिठाने का आग्रह "डंडा और बांसुरी निबंध में करते हैं । परसाई अत्यंत मार्मिक रूप से कहते हैं कि नेता मनोहर और [illegible] कमीशन की रिपोर्ट के [illegible] बगैर रेडियों में कुछ सुनने के लिए रहा ही क्या है ।

परसाई ने अपने तत्कालीन स्तंभ लेखों में जनतावादियों के अधिकार ग्रहण करने के दिन से लेकर अधिकार त्यागने के दिन तक की लगभग सभी प्रमुख घटनाओं को ध्यान से आँका है और उनकी शासन प्रणाली की विशिष्ट शैली की आलोचना, विश्लेषण और व्यंग्य दिया है ।

धर्मः- परसाई इस देश के संतों एवं धर्मों को उनके सही रूप में समझने का आग्रह करते हैं । किसी भी संत को किसी एक कौम के, धर्म को किसी समूह के मानने के खिलाफ हैं । संतों को एवं धर्म को संप्रदाय के कटघरे में म: रखने को कहते हैं । वास्तव में सांप्रदायिकता, धर्म के प्रति - मिथ्याभिमान त्यागकर उन्हें सही रूप में पहचानने की आवश्यकता महसूस करते हैं । परसाई का कहना है कि हमारे यहाँ धर्म का मर्म समझने का प्रयास ही नहीं किया गया है, उल्टे में धर्म को स्वार्थ के लिए उपयोग में लाने के प्रयास बराबर किये गए । धर्म पर परसाई के विचारों को समझने के लिए " क्या संतों का दिमाग खराब होता है ?" "तेरा मेरा मनुआ कैसे एक होय रे" और "सबद रहते बोलो सरदारजी" जैसे लेखों को देख सकते हैं । इन लेखों में गुरुनानक और सिख धर्म के संदर्भ में हमारे देश में संतों को किस प्रकार हम एक कौम के बंदी बना चुके हैं, इस ओर संकेत किया है । यहाँ परसाई का दृष्टिकोण अत्यंत उदार एवं मानवीय है । गुरुनानक के संदर्भ में उनका यह कथन - "नानक ने कोई कर्मकांड नहीं चलाया, गुरुवाणी में मानव प्रेम, सदाचार, भाईचारा, दया, परोपकार आदि की शिक्षा है । कोई दाढ़ी और केश न बढ़ाए, ~~गुरुद्वारे~~ गुरुद्वारा न जाय, तो भी वह संतों का उपदेश मानकर "सिख" हो सकता है । "सिख" का अर्थ है - सीखा हुआ, यानी शिक्षित यानी ज्ञानवान हम सब "सिख" होने की कोशिश कर सकते हैं । गुरु नानक जैसी मानवीयता का शिखर और कहाँ मिलेगा ।" परसाई नानक वाणी से इतने प्रभावित हैं कि यदि उनको कोई धर्म ग्रहण करना अनिवार्य हो तो सिख धर्म ग्रहण करने तक तैयार होते हैं । यानी मानवीय अं अंतःकरण की अमृतधारा नानक की वाणि में है । दुर्भाग्य इस बात में है कि नानक की वाणी को समझने की क्षमता इन सिखों में नहीं है इसलिए ही पंजाब के स्वर्ण मंदिर, नानक निवास, गुरुद्वारों में जो हत्याकांड इन वर्षों में हो रहे हैं, उन पर तीव्र क्षोभ प्रकट करते हुए परसाई पूछते हैं कि इन तमाम हत्यों का क्या मतलब है ? मानवीयता के पुजा

नानक ने क्या इसलिए पंथ चलाया कि अपराध करनेवालों और अपराधियों की रक्षा इस पंथ की ओट में हो जाय । नानक को यदि इस बात की कल्पना होती कि अपने स्थापित पंथ की यह दुर्गति होगी, वे पंथ कभी नहीं चलाते, यदि उनकी आत्मा अमर है तो अपने पंथ की यह दुर्गति देखकर पछताती होगी ।

परसाई धर्म के नाम पर लड़नेवाले "संत" भिंडारा वाले जैसे "संतों" और ढोंगियों के असामाजिक कार्यों और धर्म को सीमित दायरे में देखनेवालों को आड़े हाथों लेकर नानक और अन्यान्य संतों की वाणी को जीने के लिए कहते हैं । सांप्रदायिकता, प्रान्तीय शासकीय स्तर पर अपनी कुटनीतियों को पूरा करने के लिए धर्म का आलंबन लेनेवालों को परसाई ने इस निबंध में धर्म का वास्तविक रूप समझाया है, भाईचारे के आधार पर जीने का आग्रह किया है । परसाई की चिंता इस बात की है कि इस देश में धर्म जोड़ने का नहीं अपितु लड़ने का साधन बन गया है ।

सांप्रदायिक शक्तियाँ धर्म को हमेशा स्वार्थ के लिए उपयोग करती हैं और इनकी दृष्टि इतनी सीमित और संकरीली होती है कि अपने धर्म पर दूसरों की नकारात्मक तथा रचनात्मक आलोचना, टीका टिप्पणी और सलाहों तक स्वीकार करने की उदारता न दिखाकर उल्टे उसे "आघात" समझती हैं । हमारे सिख भाईयों के बारे में यह बात बिल्कुल सही है । परसाई ने सिख धर्म के महान उपदेशों पर प्रकाश डालकर उनका जीवन में पालन करने का आग्रह किया तो सिखों ने समझा कि यह धर्म पर आघात है । सिखों की इस संकरीली दृष्टि पर परसाई चिंता एवं खेद प्रकट करते हैं । गुरु नानक पर लिखी अपने लेखों पर आई प्रतिक्रियाओं के संदर्भ में परसाई की यह टिप्पणी इस देश की मदांध मानसिकता की ओर संकेत करती है "उनकी शिकायत है कि मैंने उनके धर्म पर आघात किया । सही यह है कि मैंने धर्म पर आघात किया ही नहीं था । मैंने यह सलाह दी कि तुम खुद अपने धर्म पर आघात मत करो । अगर मेरी सलाह बुरी लगी तो, सलाह वापिस । तुम अपने धर्म पर डटकर आघात करो । धर्म तुम्हारा है । करो तुम अपने ही धर्म पर हमला... साथी, मैंने पाखंड के बारे में कहा था । अगर मैंने गलत कहा था, तो मेरी सलाह वापस । डटकर पाखंड करो । मेरा क्या बिगड़ता है । यहाँ कट्टर सिख

धर्मानुयायियों पर तीव्र व्यंग्य है। यह व्यंग्य न केवल सिखों का है, पर हर धर्म के उन कट्टर पंथियों का व्यंग्य है जो कि धर्म का सार ग्रहण करने की परवाह न करके छिलके को महत्व देते हैं।

परसाई देश के विभाजन के खिलाफ हैं, हिंसा की राजनीति से इनका सख्त विरोध है। इसलिए ही सिखों से आग्रह करते हैं कि अपनी परंपरा के नाम पर अलग खालिस्तान की माँग सामने रखकर देश की एकता का भंग न करें। परसाई एक और महत्वपूर्ण अंश की ओर पाठकों का ध्यानाकर्षण करते हैं कि इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहाँ पूँजीपतियों एवं सामंतवादी शक्तियों ने अपना या तो साम्राज्य बनाने या तो अधिकार हथियाने के लिए हमेशा आम जनता का शोषण किया है। धर्म का अफीम की भाँति उपयोग करके आम जनता को गुमराह करने की कोशिश बराबर की जा रही है। इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि "साथी, मैं पंजाब के बाहर सारे भारत में फैले सिखों से कहता हूँ कि वे तो कुछ बोलें। उनके नाम से ही भिंडरवाला और लोंगोवाल हिंसक आंदोलन चला रहे हैं। वे कहते हैं - सिखों की अलग परंपरा है... पाकिस्तान बनवाया था पंजाब के बड़े बड़े मुसलमान जमींदारों ने और कुछ उत्तर प्रदेश के रईस मुसलमानों ने। अकाली आंदोलन किसका है? यह आंदोलन साधारण सिख जनता का नहीं है। यह आंदोलन पंजाब के बड़े बड़े जमीन्दारों का है। धनवान बड़े-बड़े भूमिपतियों का है और ये कम हैं। मुट्ठी भर हैं। मगर इनके पास हथियार बन्द दस्ते हैं, गुरुद्वारों पर इनका कब्जा है। इनका आतंक है। सारे सुभीते, सारे फायदे, सारे काले धंधों का लाभ इन कुछ बड़े भूमिपतियों को चाहिए। इसी गलत स्वार्थ के लिए ये धर्म का, पंथ का झंडा उठाये हैं, गुरु का नाम लेते हैं। गुरु वाणी के पाठ की बात करते हैं। अब ये इस पर आ गये हैं - पैसेवाले कुछ अकाली कि हमारी माँग सरकार नहीं मानेगी तो हम भारत से बाहर होकर अलग खालिस्तान बना लेंगे और इसे धार्मिक माँग कहते हैं।[25] इस अंदरूनी राज से आम सिख परिचित नहीं रहता। जब कि धर्म का नशा इसी पर चढ़ा रहता है। भिंडरावाले की हिंसात्मक कार्यों की तीव्र आलोचना करनेवाले परसाई हमारे सरदारों से आग्रह करते हैं कि धर्म का वास्तविक अर्थ समझें, हिंसा का सहारा न लें, देश की एकता भंग न होने दें। धर्म सद्व्यवहार का दूसरा नाम है ।

जिसकी सार्थकता के लिए हर सिक्खों का कुर्बान होने की आवश्यकता सबसे ज्यादा है। पंजाब, मानव, सिक्खों पर विचार करते समय परसाई ने जो विचार व्यक्त किए हैं वे समग्र भारत के सभी धर्मावलंबियों के संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं। इस देश के विभिन्न प्रसिद्ध धर्मों का एवं संप्रदायों के अनुयायी अपने अपने धर्म का मर्म समझकर आगे बढ़ें तो देश का भला होगा। परसाई ने अपने निबंधों में धर्म के वास्तविक अर्थ को एक मसीहे के रूप में व्याख्यायित करने का सफल प्रयास किया है।

परसाई किसी व्यक्ति अथवा धर्म को, वह चाहे कितना ही महान हो, आराधना के भाव से नहीं देखते, बदले में उनकी कमियों को ढूंढते और समाज में उसके महत्व की प्रासंगिकता के मद्देनजर रखकर स्वीकार अथवा अस्वीकार करते हैं। मनुष्य-मनुष्य के बीच में खाईयाँ पैदा करनेवाले हर धर्म और आचार्य, गुरु महंतों को शंका की दृष्टि से देखा करते हैं। सिक्खों की धर्मांधता का जैसा उन्होंने खंडन किया है, उसी प्रकार हिन्दू की सांप्रदायिकता, मुसलमानों की कट्टरता, आधुनिक स्वामियों के पाखंडों को बर्दाश्त नहीं किया है। शंकराचार्य के नाम शीर्षक लेख में पुरी के शंकराचार्य के नाम लिखे अपने लेख में उसके प्रतिगामी एवं मानवद्वेषी विचारों का व्यंग्य किया है। पत्रिकाओं में विज्ञापन देकर "अनंत श्री विभूषित जगद्गुरु" जैसी उपाधियों को छपानेवाले शंकराचार्य के व्यक्तित्व के पाखंडी रूप को उघाड़कर रखा है। भगवान को एक मानकर चलने के जातियों के आधार पर भगवान को बाँटना, सहारा जाति, बिरादरी-धर्म के बीच आपसी विद्वेष को पनपने देना सामाजिक पाप है। ऐसे करते समय हमारे शंकराचार्य थोड़ा भी संकोच नहीं करते। समाज को नई दिशा, नयी चिंतन धारा नई चेतना देने के बजाय ये शंकराचार्य समाज को सदियों पीछे ले जा रहे हैं। उनकी एक मीटिंग के बारे में परसाई की यह प्रतिक्रिया मार्मिक है :- "प्रभु मैंने सुना है, सारे शंकराचार्यों की कोई मीटिंग होने वाली है, जिसमें आप लोग सामाजिक समस्याओं पर चर्चा करनेवाले हैं। यह क्या गजब कर रहे हैं? आपको समाज से मतलब रखना तो पाप है, प्रभु आप लोग जगद्गुरु हैं इसलिए आपका पवित्र कार्य है, जगत् को मूर्ख बनाये रखना।"[26] धर्म, और जाति को स्वार्थ- एवं आवेश के लिए प्रयोग करना आजकल सामान्य बात हो चुकी है, जिसकी ओर इशारा करके सचेत रहने के लिए परसाई ने आम जनता से आग्रह किया है।

महेश योगी और रजनीश को परसाई ने आड़े हाथों लिया है । महेश योगी को "महेश योगी आर्थिक साम्राज्य" के कारण बताते हैं तो रजनीश को उच्चारण पाठ सिखाने का श्रेय स्वयं परसाई अपने पर लेते हैं और कहते हैं रजनीश समाजविरोधी विचारधारा के हैं जिससे समाज को कोई नया रास्ता नहीं मिलनेवाला है - "वे घोर समाजवाद विरोधी हैं । वे संपन्न अघाए स्वेच्छाचारियों के "भगवान" हैं । मैंने उनकी सारी तरकीबें, हथकंडे, धर्म, कुछ कुकर्म, उनके कई साल देखे हैं । बताइये, मैं उनसे क्या सीखता ? वे अगर ईमानदार हों तो मुझे अपना गुरु मानना चाहिए ।[2]

धर्म को अत्यंत उदारवादी नींव पर परिभाषित करनेवाले परसाई धर्म के शोषक रूप का खंडन किया है, अनुष्ठान पर ज़ोर देनेवाले संप्रदायों का घोर विरोध किया है । मानव नियति को बदलने का दावा करनेवाले तथाकथित धूर्तों पर निस्संकोच प्रहार किया है ।

अंध विश्वास

परसाई रेशनलिस्ट चिंतक हैं । उन्होंने रूढ़िग्रस्त अंधविश्वासों, विचारों और अर्थहीन शास्त्रार्थों की कड़ी आलोचना की है । अपने "अष्टग्रह योग" निबंध में 1962 में आए अष्टग्रह योग के भय की आशंका उत्पन्न करने का सारा श्रेय इस देश के पुरोहित शाही, तुच्छ संस्कृति को देते हुए, उन देशों की ओर संकेत करते हैं जहाँ पुरोहित नहीं, वहाँ के लोग क्या करेंगे और यह भी पूछते हैं कि क्या ग्रह उन देशों की तरफ नहीं जायेंगे ? अर्थात् परसाई हमारी जनता की बेवकूफी, अंधविश्वास एवं वैज्ञानिक सोच के अभाव को उभारकर रखते हैं । यहाँ का पुरोहित शाही वर्ग अष्टयोग के बहाने या किसी दूसरे बहाने भयभीत आम जनता का शोषण करता रहता है । जो कि पूँजीवादी व्यवस्था का दूसरा नाम है । ग्रह बेचारे वहाँ जाकर क्या करेंगे । वहाँ न कोई भविष्य बतलायेगा न ग्रहों की शांति के लिए यज्ञ और पूजा-पाठ करायेगा । ग्रह भी समझदार हैं । वे वहीं जाते हैं जहाँ लोग उनसे डरते हों ।

पसंद किया है । नेहरू ने इस देश को विकास पथ पर ले जाने के महत्वपूर्ण सपने देखकर उस दिशा में नाना कार्यक्रम शुरू करके विकास के पौधे लगाए मगर उन पौधों को सुरक्षित करने के लिए फेन्स नहीं लगायी, जिसके कारण विकास कार्यक्रम अवरुद्ध होते गए । नेहरू के अधिकार काल में भी भ्रष्टाचार अपना तांडव नृत्य कर रहा था । इस का स्मरण बाँधते हुए "बकरी पौधा चर गई" निबंध में हमारे स्वार्थी राजनीतिज्ञों की घूसखोरी का व्यंग्य करते हैं - "पौधा जवाहरलाल ने लगाया था, यह सही है । यह पौधा 10-12 साल पहले ही लगाया गया था । प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय यह पौधा लगाया गया था । यह है राष्ट्रीय विकास का पौधा । इसके आस पास सफल योजनाओं के चबूतरे बनाये गए । जैसे ब्लाक डेवलपमेंट सहकारी आंदोलन, विभिन्न प्रोजेक्ट । इसकी रक्षा के लिए चौकिदार भी हो गए यानी बड़े अफसर, मंत्री और नेता साथी, मगर ज्यों ही पौधा बढ़ा, भ्रष्टाचार की बकरी आयी । उसने चौकीदार से कहा - तू मुझे पौधा चर लेने दे । आखिर, इसका दूध ही तो बनेगा । तू मुझे दुह लेना । चौकीदार ने बकरी को योजना के चबूतरे पर चढ़ जाने दिया और बकरी पौधा चर गयी।"[28] यहाँ भ्रष्टाचारियों को बकरे कहकर परसाई ने बड़ा प्रहार किया है । हमारे नेताओं की मानसिकता ऐसी है कि वे किसी भी हालत में स्वार्थ की परिधि से बाहर आना चाहते ही नहीं । परसाई कहते हैं कि इन पौधों की सुरक्षा के लिए नेहरू फेन्स भी लगाते तो अच्छा होता ।

संस्थानों एवं प्रतिष्ठानों की यथार्थता

हमारे देश में स्वयं सेवी समाजों, संस्थानों, प्रतिष्ठानों की स्थापना "सेवा" को लक्ष्य में रखकर की जाती है, मगर यह सेवा सरकार के अनुदान के अनुपात को दृष्टि में रखकर की जाती है । अनुदान बंद हुआ ह कि नहीं न कोई समाज रहता है न सेवा रहती है । परसाई ने अपने निबंधों में ऐसे अनेकों समाजों एवं प्रतिष्ठानों की कार्यशैली की आलोचना और वहाँ के सेवावृत्तियों का व्यंग्य किया है । ऐसा ही एक समाज है - भारत सेवक समाज । इस समाज का व्यंग्य करते हुए परसाई लिखते हैं - साथी, भारत-सेवक समाजवाले लोग हैं बड़े चतुर । तुमने भारत की सेवा करने के लिए समाज बनाया । तुम्हारे मन में प्रश्न उठा कि "भारत" कहाँ है ? भारतके की सेवा

का क्या अर्थ है ? तुमने पवित्र मन से चिंतन किया, तो अंतरात्मा से उत्तर आया कि जो पैसे दे, वही भारत है, अतः और उसीकी सेवा करनी है । पैसा देनेवाली सबसे बड़ी कंपनी सरकार है, इसलिए हमने भारत के प्रधान मंत्री को सबसे पहले अपना अध्यक्ष बनाया था और तमाम सरकारों से अनुदान लेना शुरू किया...कोई पूछे कि यह "काम" क्या है जिसे आप करते हैं, तो इसका सीधा उत्तर है कि हमारा काम है सरकार से दान प्राप्त करना और उसे खर्च करना । हमारे समाज में सेवा शब्द का अर्थापकर्ष किस चरमसीमा तक हुआ है, इसका जीता जागता चित्रण परसाई अपने निबंधों में कराते रहते हैं । धोखा-फरेब, लूट, रिश्वत खोरी, स्वार्थता आदि यहाँ सेवा के पर्याय शब्द बन गए हैं । "सेवा" करने का नाम जो लेते हैं, उसे संदेह और अनुमान की दृष्टि से देखने के दिन आ गए हैं । यह निश्चय ही दुःखपूर्ण घटना है । परसाई न केवल "भारत सेवक समाज" की, अपितु ऐसे ही अन्यान्य संस्थाओं की कार्य प्रणालियों को देखकर अत्यंत विषाद भाव से कहते हैं कि "हे देशवासियों, गांधीयुग में "सेवा" नामक जो धर्म था, उसे गांधी के बाद "धंधा" बना लिया गया है । इस धंधे में जनता हमारी कर्जदार है । उससे वसूली का काम हमने सरकार को सौंपा था, पर सरकार धोखा दे गयी । इसलिए हम खुद जनता से वसूल करेंगे । साथी, अगर जनता कहे कि हमें सेवा नहीं करानी है तो उससे कहो कि तुम्हें सेवा नहीं करानी, पर हमें तो करनी है । हम बलात् सेवा करेंगे ।[29] "सेवक समाज" को भी मिलाकर आज जितने भी समाज हैं, उनको दिये जा रहे अनुदान बंद कर दिया जाय तो सेवक का असली रूप सामने आता है ।

जैसे "भारत सेवा समाज" है, वैसे ही अंगुले प्रतिभा प्रतिष्ठान है जो कि सार्वजनिक सेवा के उद्देश्य से शुरू हुआ था, जब इसका मामला भी संगीन बना तो परसाई ऐसे प्रतिष्ठानों को संबोधित करते हुए व्यंग्य करते हैं कि "साथी, जरा सोचो, आखिर अंगुले ने ऐसा क्या किया ? वह तो हम साधुओं के भले के लिए एक ट्रस्ट बना रहा था । गांधीजी ने खुद ट्रस्टीशिप का सिद्धांत प्रतिपादित किया है । काला बाजारियों, मुनाफाखोरों को ट्रस्टी बना डाले तो समाज के धन के वे रखवाले हो जाते हैं..मगर साथी, इस देश में हर शुभ काम संगीन हो जाता है, बदनामी का कारण हो जाता है ।

अकालपीड़ित राहत कोष इकट्ठा होता है तो वह काण्ड हो जाता है। बाढ़पीड़ित सहायता-फण्ड बन जाता है तो वह भी स्कैण्डल हो जाता है।"[30] परसाई का व्यंग्य यहाँ इतना गंभीर है, मतलब है कि इस यहाँ की सहानुभूति में हमारे देश के सेवा प्रतिष्ठानों की कार्यप्रणालियों का व्यंग्य किया गया है। देश में आए दिनों में जो कांड होते हैं, स्कैण्डल होते हैं, उनको सब भुला दिया जाता है क्योंकि दूसरा कांड खड़ा होता है। दूसरे शब्दों में संस्थाओं एवं प्रतिष्ठानों से समाज की सेवा एवं भलाई की अपेक्षा उसके पदाधिकारियों की स्व-कामनाएँ पूरी होती हैं। सब भ्रष्ट संस्थाओं का व्यंग्य परसाई ने अपने अनेकों निबंधों में किया है।

<u>बजट : अमानवीय दृष्टि</u>

भारतीय बजट और कर डालने के सरकार के ढंग की परसाई आलोचना करते हैं कि इस मामले में हमारी सरकार और मंत्रीगण, जनहित और जनोपयोगी दृष्टि को ख्याल में रखते ही नहीं। यदि रखते तो गांजा जैसी चीजों पर कर न डालकर रेल-यात्रा जैसी बहुपयोगी यातायात का किराया नहीं बढ़ाते। हमारी मंत्री यह नहीं जानते हैं कि रेल आमजनता का नित्योपयोगी यातायात साधन है। चूँकि बजट बनानेवाले और उसको स्वीकार करनेवाले सांसदों के पास "पास" होते हैं। और यात्रा उनको बोझिल नहीं लगती। अतः "कर" देनेवाले दूसरे हैं, ऐसा सोचकर ये कई तरह "कर" बढ़ाते जाते हैं। भारत सरकार के इस रवैये के पीछे शायद यह भावना रही होगी कि रेल द्वारा भारत में "भावात्मक एकता" लायी जा सकती है। इसका व्यंग्य करते हुए परसाई जी कहते हैं - "साधो, डब्बों की भीड़ से लोग व्यर्थ परेशान होते हैं। असल में इससे राष्ट्रीय एकीकरण होता है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सब एक दूसरे के पसीने की खुशबू में डूब जाते हैं।...साधो, डब्बे में भीड़ होने से बड़े लाभ होते हैं। इसमें मनुष्य में कई अच्छे गुण आते हैं।" परसाई का व्यंग्य इस अंश पर है कि हमारी सरकार जितना ध्यान रेल भाड़ा बढ़ाने में देता है उतना ध्यान न रेल की भीड़ कम करने को देती है न सुविधाएँ देने।

<u>दिखावटी संस्कृति</u>

परसाई हमारे शासन के असंख्य दोषों को उजागर किया है जिनके कारण जनता

संत्रास का अनुभव कर रही है। वैसे, हमारी सरकार समाजवादी सिद्धांतों पर राष्ट्र का विकास करना चाहती है। मगर परसाई ने इस समाजवाद को मिलावटी समाजवाद कहकर उसकी खिल्ली उड़ायी है। समाज का परिवर्तन यहाँ तक हुआ है कि यहाँ मिलावट जैसी प्राणघातक सामाजिक अपराधों को सरकार गंभीर रूप से लेकर उसे सुधारने का प्रयत्न नहीं कर पाती है। मिलावट के लिए सोवियत रूस में फाँसी का दंड दिया जाता है किन्तु भारत इतना दयालु देश है, यहाँ की संस्कृति की गरिमा इतना भव्य है कि यहाँ दंड किसी को नहीं दिया जाता। परसाई इस उदार संस्कृति को दुआएँ देते हैं - "तुमने सुना होगा कि हाल ही में सोवियत देश में मिलावट के अपराध में दो आदमियों को फाँसी हो गयी। तुम कहोगे, अरे बापरे! मिलावट पर फाँसी! पर मिलावट से एक आदमी की नहीं, समाज की हत्या होती है। एक हत्या से बड़ा अपराध है जहाँ ऐसी सजा तब हो सकती है, जब कानून बने, पुलिस रिपोर्ट न बदले, साहब घूस न ले और वकील साहब अपराधियों को बचाने न पहुँचे...पर साधो, इस दयावान देश में इतनी कठोरता नहीं हो सकती। यह धर्मगुरु देश है। यहाँ साँप को दूध पिलाया जाता है। यहाँ अपराधी को दंड कैसे मिल सकता है?"[32] इस देश में उपरोक्त बातें चूँकि सम्भव नहीं तब मिलावट को अपराध माना भी कैसे जा सकता है? परसाई मानते हैं कि हमारे चारित्र्य को राष्ट्रीय चारित्र्य का अंश मिला ही नहीं है। "मिलावट - एक हक" शीर्षक लेख में भी भारतीय जीवन में मिलावट की संस्कृति के विविध रूप को दर्शाया गया है। यहाँ उन दर्दनाक और शर्मनाक दिनों की कल्पना की गई है जबकि देश में मिलावट जैसी धृष्टता करने के लिए खुले आम आवेदन किये जायेंगे।

सरकार के कार्यविधान का यह स्वरूप है तो जनता की मानसिकता भी बहुत खराब है। "आजादी" को एक अमूल्य वरदान न मानकर एकदम "स्वच्छंदता" मानकर यहाँ की जनता व्यवहार करती है। यहाँ के नागरिक का यह सवाल है - "साधो, मुझे तो यह बायें चलाना बहुत गलत लगता है। संविधान में जो मौलिक अधिकार मिले हैं, उनमें एक यह भी है कि भारतीय नागरिक भारत में कहीं भी जा सकता है। जब वह कहीं भी जा सकता है, तो बीच सड़क से या दाहिने बाजू से क्यों नहीं चल सकता? आखिर यह प्रजातंत्र है, कोई तानाशाही तो है नहीं। हमें

आजादी मिली है तो क्या इसलिए कि मनमाहा घन फिर न सकें ।"[33] परसाई अनेकों संदर्भों में इस बात की ओर संकेत भी किया है जनता को शिक्षित किए बिना, अनुशासन नहीं लाया जा सकता ।

शिक्षकों की समस्याएँ

परसाई ने अपने अनेकों निबंधों, कहानियों एवं स्तंभ लेखों में शिक्षकों का मुद्दा उठाया है । उन्हें पूर्ण आदर देते हुए भी उनकी अकर्मण्यता एवं निराशा पर कठोर व्यंग्य किया है । परसाई ने शिक्षकों के प्रति सरकार जो तिरस्कार, निरादर और शोषण करती आई है, उसका विरोध किया है - शिक्षकों का कल्याण, पढ़ने-पढ़ाने चले, बलिहारी गुरु आपकी, अध्यापकों केंद्र आंदोलन, शिक्षकों की प्रतिष्ठा, शिक्षक सम्मान से इनकार करो - जैसे निबंधों में शिक्षा जगत की असंगतियों को उघाड़ा है, यहाँ केंद्र शोषण को उजागर किया है, और शिक्षकों को आत्मसम्मान से जीने के लिए आग्रह किया है । सरकार अध्यापकों को महत्व का स्थान नहीं दे रही है । यह चिंता का विषय रहा है इसका व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि आजकल शिक्षकों को "दयनीय" के खाते में डालकर उसके कल्याण के लिए चंदा वसूल किया जाता है । परसाई इस चंदा संस्कृति का व्यंग्य करते हैं - "साथी, मुझे लगता है कि सरकार जानती है कि देश को शिक्षक वगैरह की कोई खास जरूरत नहीं है । देश को जरूरत है कलेक्टर की, पुलिस अफसर की और आबकारी अफसर की । इसलिए इन मुहकमों के कर्मचारियों के लिए सहायता-कोष नहीं खुला । शिक्षक एक गैर जरूरी चीज है इसलिए उसे जिंदा रखने के लिए कुछ चंदा-चंदा कर देना चाहिए ।"[34]

एक दूसरे प्रसंग में दूसरे देशों की तुलना में भारतीय अध्यापकों की चिंतनीय हालत का विश्लेषण करते हैं । विशेषकर हमारे प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों की बुरी हालत को गंभीर दृष्टि से देखते हैं । समाजवादी देशों में अध्यापकों की प्रतिष्ठा का उल्लेख करते हुए परसाई कहते हैं - "आखिर समाजवादी देशों में शिक्षकों की प्रतिष्ठा क्यों है । वे क्यों नहीं शिक्षकों की प्रतिष्ठा पर सेमिनार करते ? सीधा कारण यह है कि वहाँ के जीवन मूल्य स्वस्थ हैं । यहाँ बेईमानी और काले धन का जीवन मूल्य

नहीं है। यहाँ प्राइमरी स्कूल के अध्यापक का वेतन हमारे विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों से कम नहीं है। और उसे बहुत सुविधाएँ हैं। हमारे यहाँ सबसे कम वेतन अध्यापक को देंगे। न वह किसी को डरा सकता है, न किसी को बिगाड़ सकता है और न बाकायदा कर सकता है...उससे पैसे खाये जाते हैं और शहरों में सुविधा भोगी नेता और विद्वान उसकी प्रतिष्ठा पर सेमिनार करते हैं।[35] परसाई ने शिक्षक पर लिखे अपने निबंधों में शिक्षकों में आत्मगौरव भरने का प्रयास किया है। यहाँ परसाई ने अध्यापकों से यह कहा है कि शिक्षक दिवस को न मनाए, उस दिन का सम्मान न करायें। सम्मान करके उल्लू बनानेवालों की बातों में न आयें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परसाई ने अपनी कहानियों, निबंधों और उपन्यासों में भ्रष्टाचार के विभिन्न रूपों को परत-दर-परत खोल रखा है। यदि इनके निबंध साहित्य का स्थायी भाव भ्रष्टाचार कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भ्रष्टाचार ने भारतीय राजनीतिक जीवन का अभिन्न अंग बनकर एक ओर राजनीतिक सामाजिक जीवन को भ्रष्ट कर दिया है। भ्रष्टाचार का साम्राज्य ऐसा अपराजेय है कि उसे पराजित करने के लिए सरकार नाना कार्यक्रम बनाती है मगर व्यक्ति नैतिकता के बलबूते जब तक अपने चरित्र को स्थापित नहीं करेगा, तब तक भ्रष्टाचार को दूर करना असंभव है। परसाई ने अपने निबंधों में भ्रष्टाचार के बुरे रूपों तथा उसको दूर करने के लिए किए गए प्रयासों का विश्लेषण एवं व्यंग्य किया है। भ्रष्टाचार निरोधक आंदोलन, भाजपा भ्रष्टाचार का विरोध कैसे करेगी, भ्रष्टाचार के [illegible] सैम्पल, रामराज्य ने मुंडन क्यों किया, जैसे निबंधों के अलावा अपने समसामयिक विषयों पर लिखे लगभग सभी निबंधों में भ्रष्टाचार की बारीकियों को उद्घाटित किया है। के. संतानम की अध्यक्षता में बिठाई गई भ्रष्टाचार जाँच समिति का काम वास्तव में क्या होना था, परसाई इस ओर संकेत करते हैं - "साथी, संतानम कमेटी का काम था यह खोज करना कि सरकारी कर्मचारी और जनता में कौन वर्ग और उसके भ्रष्टाचार के लाभ से वंचित हैं और उन्हें उनका न्यायोचित लाभ दिलाना...साथी, संतानम् कमेटी का जो उचित काम था, उसे छोड़कर वह दूसरे काम में उलझ गई। भ्रष्टाचार को रोकना उसी तरह है जैसे गेहूँ की फसल को नष्ट करना। बड़ी पार्टी में पैसे लेकर ठेका देना कोई आज की बात नहीं है। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि ax हमारे

सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार के बीज बहुत गहरे गए हैं जिनको उखाड़ना आसान नहीं है । एक दूसरे संदर्भ में परसाई इसीको स्पष्ट शब्दों में कहते हैं - "आदमी को बंदर से आदमी बनने में लगभग एक लाख साल लगे हैं । इन लाख सालों में आदमी विकास करते-करते कुत्ता बन जायेगा, तब भ्रष्टाचार मिटेगा । यानी जब मानव बदले बिना भ्रष्टाचार नहीं मिटेगा । जब तक आदमी की नस्ल है, भ्रष्टाचार रहेगा"[37] अत्यन्त विषाद के साथ परसाई इस निर्णय पर पहुँच रहे हैं । राष्ट्रीय जीवन में भ्रष्टाचार एक कलंक है, धब्बा है, जिसे अपनी हर रचना में अ रेखांकित करने का प्रयत्न परसाई ने किया है ।

नेताओं के का परिमांकन : दो उदाहरण

परसाई ने अपने समय के लगभग सभी नेताओं की चर्चा अपने स्तंभ लेखों में की है और राजनीतिक व्यक्तियों का व्यंग्य बराबर किया है । इनके व्यंग्य का लक्ष्य बननेवाले व्यक्ति भले ही कितने ही उच्च पद पर हों, वह कितने ही महामहिम हो, परसाई उनकी परवाह नहीं करते । परसाई का लक्ष्य मात्र उनकी चरित्रगत विसंगतियों पर रहता है, उनके चरित्र के अंतर्द्वंद्वों पर रहता है । परसाई की व्यंग्य दृष्टि तत्कालीन भारत के लगभग सभी नेताओं पर रही है और विदेशों के प्रमुख नेताओं पर भी ।उदाहरण के लिए जे.बी. कृपालानी का इन्होंने काफी व्यंग्य और आलोचना की है । कृपालानी, परसाई के अनुसार कभी सिद्धांतवादी नहीं रहे, गांधीवादी कहलाते हुए गांधी तत्वों के प्रति उदासीन रहे । कृपालानी साम्यवादी रहे, उसमें न पटे, तो बाहर आए । और स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़े । उनके राजनीतिक अस्थिर व्यक्तित्व की खिल्ली उड़ाते हुए परसाई व्यंग्य करते हैं - "साथी, दादा कृपालानी मेनन के खिलाफ बंबई से चुनाव लड़ रहे हैं । दादा कृपालानी स्वतंत्र उम्मीदवार हैं, मगर स्वतंत्र पार्टी में नहीं हैं । हर पार्टी के साथ चलने को तैयार हैं । फिलहाल उनका समर्थन प्रजा समाजवादी पार्टी, स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ कर रहे हैं कल अगर मुस्लिम लीग चाहे तो उसे भी वे साथ ले सकते हैं ।[38] परसाई कृपालानी का भारतीय इतिहास में स्थान निर्देश करते हुए कहते हैं कि

भविष्य में जे.बी. मंघाराम बिस्कुट के मालिक के रूप में ये पहचाने जायेंगे न कि राष्ट्र नेता के रूप में । परसाई मानते हैं कि कृपालानी अपनी राजनीतिक चंचलता के कारण इतिहास से बिल्कुल ही जायेंगे ।

परसाई ने अपनी रचनाधर्मिता का आधार मानव मूल्यों को स्वीकार किया है । हर कहीं चरित्रहीनता, चारित्र्य पतन देखा जा रहा है जिसके कारण इस देश में राष्ट्रीय चारित्र्यवाला सिद्धांत ही स्थापित नहीं हो पाया है । यही वजह है कि परसाई चारों ओर के चरित्रपतन को, उसकी विसंगतियों को रेखांकित करते हैं । वे चरित्रहीन समाज एवं व्यक्ति को समाज का अभिशाप समझते हैं । व्यक्ति-चरित्र से राष्ट्रचारित्र्य निर्मित होता है, अतः इन दोनों को एक दूसरे का पूरक बताकर दोनों के सकारात्मक विकास का आग्रह करते हैं । और खासकर राष्ट्रमंच पर रहनेवाले उन अगुवे नेताओं के चरित्र जब उपहास योग्य बनता है परसाई बहुत चिंतित होते हैं । यही चिंता उनके निबंधों में स्पष्ट निखर उठी है जिन्हें उन्होंने हमारे नेताओं पर लिखे हैं ।

चरणसिंह परसाई के विशेष कृपा पात्र नायक हैं । उन्होंने अपने अनेकों निबंधों में [illegible] चरणसिंह के चरित्र की विसंगतियों को उघाड़ने का प्रयत्न किया है -

"चरणसिंह की बाललीला" एक ऐसा ही निबंध है जिसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री चरणसिंह के उस वक्तव्य की आलोचना है जो कि उनकी पदगरिमा के अनुकूल नहीं था । उनकी सभाओं में होनेवाले शोर शराबों, अपमानों की प्रतिक्रिया में यह घोषणा करना कि ऐसे ही अपमानों को विपक्षियों की सभाओं में मचाया जायेगा, कहाँ तक उचित है । यहाँ चौधरी चरण सिंह से बढ़कर, परसाई को प्रधानमंत्री पद की गरिमा की चिंता है क्योंकि प्रधानमंत्री के पद पर रहनेवाले से ऐसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जाती है । इसलिए ही परसाई कहते हैं - प्रधानमंत्री का कर्तव्य है कि ऐसा प्रबंध करें कि किसी सभा में गड़बड़ न हो । मगर प्रधान मंत्री खुद कहते जा रहे हैं कि हम हुड़दंग करेंगे । तुमने इधर हमें सतवाया तो हम तुम्हें उधर सतवा देंगे । बोलो, दुनिया का कौन प्रधानमंत्री ऐसी अद्भुत बात कहेगा ? कौन प्रधानमंत्री अपने लोगों से कहेगा कि जाओ, उस सभा पर पत्थर फेंक आओ ।"[39]

जनता सरकार बनी तो यही चौधरी साहब गृहविभाग और प्रधानमंत्री पद हथियाने के लिए इस्तीफे का डर दिखाकर अधिकार के प्रति अपनी आस्था दिखाते रहे - इसका व्यंग्य करते हैं - "लौह पुरुष चौधरी चरणसिंह इस एक साल में सात बार इस्तीफे की धमकी दे चुके हैं। इन दिनों उनके शुभचिंतक कह रहे हैं ...चौधरी साहब को दिल की बीमारी है। सेहत अच्छी नहीं लगती। कोई हल्का विभाग दे दिया जाय। इस पर चरणसिंह आँखें निकालकर कहते हैं, गृह विभाग से बड़ा विभाग नहीं दिया जा सकता, इसी गम में तो दिल का दौरा पड़ा। प्रधानमंत्री के पद का बोझ होता तो दिल का दौरा नहीं पड़ता।"[50] "कैक्टस वन और चौधरी की पीर" निबंध में परसाई ने चरणसिंह के इन वक्तव्यों का व्यंग्य किया है कि जिन्हें वे हर दिन देते थे कि मेरी मंत्रीमंडल में लौटने में कोई दिलचस्पी नहीं है। ऐसा बार-बार कहकर क्या चौधरी पद के प्रति अपने आकर्षण को तीव्र तो नहीं बना रहे हैं?

चरणसिंह की विचार-चंचलता के अनेकों दिलचस्प नमूने यहाँ प्रस्तुत करने के द्वारा परसाई इस फैसले पर पहुँचते हैं कि चौधरी चरण सिंह ग्राम पंचायत का सरपंच होने के लिए भी लायक नहीं हैं, फिर भी प्रधानमंत्री पद हासिल करने के लिए उनकी भागदौड़ पर तीखी आलोचना करते हैं। पद के लिए सिद्धांतों को एकदम हवा में उड़ा देनेवाले चरणसिंह बरखास्त होने को भी तैयार खड़े रहते हैं। परसाई चरणसिंह में राजनीतिक व रवैयों की आलोचना करते हुए कहते हैं - "इन सारे दिनों जब लगता था कि चरणसिंह किसानों का भला करने और भ्रष्टाचार मिटाने के अभियान में लगे हैं, वे वास्तव में कुर्सी की तरफ देख रहे थे। गर्म दिमाग के फेंके दम दे रहे थे। चौधरी झुकना मत। मगर चौधरी हर ऐसी पुकार पर और झुक जाते थे...अब। मुझसे बिना पद के रहा नहीं जाता। मेरी तबीयत ही खराब हो जाती है।"[51] परसाई हमारे राष्ट्रीय नेताओं के चरित्र में विरोधाभासों, द्वंद्वों के प्रतिनिधि के रूप में चरणसिंह का चित्रण करते हैं। ये तथाकथित नेता अपने को महात्मा गाँधी से भी बड़ा मानते हैं और यहाँ तक कि गाँधी के चरित्र में भी गलतियाँ ढूँढने का प्रयास करते हैं - "साथी, चरणसिंह ने महात्मा गाँधी को भी ढेर कर दिया। उनकी भी दो गलतियाँ बता दीं। एक तो यह कि महात्मा गाँधी ने खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। दूसरी गलती यह कि उन्होंने सरदार पटेल पर नेहरू को तरजीह

दी ।"[62] परसाई ने अपने तमाम स्तंभ लेखों में चरणसिंह के चरित्र के विरोधाभासों को पर्दाफाश करने का एक भी मुहूर्त हाथ से जाने नहीं दिया है । उनके राजनीतिक व्यक्तित्व को उन्होंने अच्छा समझा है । फलतः कहते हैं कि चरणसिंह को न इतिहास का ज्ञान है न राजनीतिक बोध । उनका व्यक्तित्व एकदम अगांभीर्य है । पद अधिकार के पीछे सिद्धांतों को और देश के हित की इतनी आसानी से तिलांजलि नहीं देते । राष्ट्रहित और दल की परिधि से बाहर न आनेवाले इन नेताओं के प्रति परसाई के मन में अत्यन्त द्वेष भावना है ।

ब्राह्मण - हरिजन, शोषक और शोषित

परसाई का राजनीतिक बोध जहाँ राजनीतिक क्षेत्र की विसंगतियों का उद्घाटन करता है तो उनका सामाजिक बोध सामाजिक शोषण, अन्यायों और असमताओं को देखकर अंगार उगलता है । मार्क्सवादी लेखक परसाई इस बात को सोच भी नहीं सकते कि मानव-मानव के बीच अन्तर रहे, एक उच्च वर्ग का आदमी अपने "उदार" व्यवहार से दूसरे आदमी के प्रति - "कृपा" प्रदर्शित करे । परसाई ने भारत के इस पुरोहित शाही, बुर्जुआ एवं सामंतवादी दृष्टिकोण का कड़ा विरोध किया है । आजादी के 40 साल के बाद भी हरिजनों के साथ बैठकर भोजन करने से ही अपना बड़प्पन दिखानेवाले ब्राह्मणों का परसाई ने तीव्र खंडन किया है और हरिजनों के प्रति हो रहे अन्यायों का खंडन करते हुए वर्णव्यवस्था के जिम्मेदार मनु और शंकराचार्य पर प्रहार किया है - "इस देश की दुर्गति करनेवाले दो महामनीषी हैं - वर्ण व्यवस्था स्थापित करनेवाले मनु और जगत को मिथ्या बतानेवाले शंकराचार्य"।[63] परसाई क्षुब्ध हैं क्योंकि इन दोनों मनीषियों ने ब्राह्मणों को भिखमंगे होने को मजबूर किया है । यह इसलिए हुआ है कि ये जानते नहीं थे कि शारीरिक श्रम का क्या महत्व है । इतिहास ने इस वर्ग को अभिशप्त कर दिया है, अपनी करनी का फल भुगतने को विवश कर दिया है - "साथी, इस ब्राह्मण ने समाज के एक बड़े हिस्से को शूद्र बनाकर अछूत बनाकर शिक्षा-संस्कृति से वंचित करके जो पाप किया, उसका फल यह अभी भी भोग रहा है । शारीरिक श्रम नहीं करने से और कोई उत्पादन नहीं करने से ब्राह्मण

पूज्य से घटकर हीन, भिखमंगा हो गया । भिक्षा को अपना धंधा मानने लगा ।"[44] ब्राह्मण वर्ग श्रम का महत्व नहीं समझता था और यहाँ तक कि अपने को श्रम से अछूत रखा था जिसका परिणाम अब यह वर्ग भोग रहा है । इतिहास ने इतने महत्वपूर्ण मोड़ लिये हैं कि 'आजकल हरिजन अफसर हुआ है, और ब्राह्मण देवता उसके चपरासी हैं । अ ब्राह्मण ने जूते की दुकान में सेल्समैन की नौकरी कर ली है और चमार डेप्युटी कलेक्टर हो गया है ।[45] जब हालात यहाँ तक आ चुकी है तो आज ब्राह्मण लोगों का हरिजन लोगों के साथ भोजन करने का समाचार चमत्कारिक या सनसनीखेज नहीं होना चाहिए । ऐसे समाचारों को प्रचार देने की मानसिकता को परसाई शर्मनाक समझते हैं । आजादी के 40 साल के बाद भी छुआछूत की भावना को प्रश्रय देना हमारे पिछड़ेपन का संकेत है । परसाई इस प्रवृत्ति का व्यंग्य करते हुए कहते हैं - 'साथी, यह समाचार चमत्कारिक नहीं होना चाहिए कि ब्राह्मण भोजन में हरिजन भी शामिल हुए यह आम बात हो जाना था । मगर यह घिनौनी और वाहियात अभी भी बनी हुई है, यह हमारे लिए शर्म की बात है । मगर हरिजनों की कृपा है कि उन्होंने ब्राह्मणों को अपने साथ भोजन कर लेने दिया ।[46] सामाजिक असमानता, शोषण और विसंगतियों के प्रति परसाई सदा से चिंतित और परेशान रहे हैं । परसाई ने अपने अनेकों निबंधों में हरिजनों पर अत्याचार, सतीप्रथा, धर्मकांड जैसी ज्वलंत समस्याओं पर विचार किया है और इन्हें मानव विरोधी करार करते हुए व्यंग्य किया है । 'धर्म 'हरिजनों को पीटने से का यज्ञ' - निबंध में परसाई उस देश के धर्मकांडों तथा यह संस्कृति का ढोंग करके यज्ञों के नाम पर दिनों दिन होती आ रही भयंकर विभीषिकाओं की ओर ध्यानाकर्षण करते हुए आज की पीढ़ी से यह आग्रह करते हैं कि वे इन यज्ञ धर्मकांडों का विरोध करें । इस निबंध की वस्तु तत्कालीन समाज की ज्वलंत समस्या है वो कि इन्दौर के आस पास घटी । इन्दौर के पास एक करोड़ की लागत से एक यज्ञ हुआ जहाँ एक करोड़ रुपये का अन्न, शक्कर, घी, आदि को आग में झोंक दिये गये । लोगों की इस प्रवृत्ति का कि यज्ञ करने से देश के लिए कुछ होगा, व्यंग्य करते हुए कहते हैं - 'देश में जब करोड़ों आदमियों को खाने को नहीं मिलेगा, तो ये धार्मिक पाखंडी उसे आग में झोंकेंगे । मेरे ख्याल से यज्ञ करानेवाले समय-समय पर परीक्षा करते रहते हैं कि देश का अविवेक और चेतनाहीनता अभी तक बरकरार है

कि नहीं । लोग देखते रहे कि हमारा अन्न, घी, शक्कर आग के हवाले किया जा
रहा है । और वे जय बोलते हैं । लोग अभी अविवेकी और कायर हैं । इन लोगों
से डरने की अभी कोई जरूरत नहीं है । यज्ञ में वास्तव में अन्न, घी, शक्कर नहीं
जलते - विवेक स्वाहा । बुद्धि स्वाहा । तर्क स्वाहा । विज्ञान स्वाहा ।"[47] परसाई
इसलिए चिंतित हैं कि देश में वैचारिक जागृति नाम की चीज बिलकुल ठप्प पड़ गयी
है । परसाई इन पाखंडी यज्ञों को चिंता रखने के लिए हमारी दकियानूसी पार्टियों
को भी कारण बताते हैं । वरना यज्ञ का विरोध करने के लिए सत्याग्रह करने को तैयार
समाजवादी कहाँ गये, उनकी प्रतिबद्धता कहाँ गई । उनकी इस मनोभावना का व्यंग्य
करते हुए परसाई कहते हैं कि "या शायद संघ से उनका समझौता हो गया हो कि
तुम यज्ञ में सहायक बनो और हम दूर कहीं नारे लगायेंगे । वैदिक मंत्रोच्चार में नारों
से कोई बाधा नहीं पहुँचेगी । समाजवाद की प्रगतिशीलता और यज्ञ पाखंड वगैरह की
जड़ता का सह अस्तित्व हो सकता है ।[48]

परसाई यज्ञ नामक कर्मकांड की उसकी सामाजिक कल्याण में भूमिका को चुनौती
देते हैं और कहते हैं कि वे ये मंत्र इतने ढकोसले हैं कि उनका हिन्दी अनुवाद हो जाय
तो वे प्राइमरी कक्षा की किताबों के लायक हो सकते हैं तथा भगवान के अस्तित्व
को ही आगे प्रश्न करते हैं । यदि भगवान हैं तो वह मंदिर में है न मस्जिद में ।
किन्तु भगवान है ही नहीं है । अगर होता तो वह इतना निर्दयी होता नहीं था
कि यज्ञ एक ओर हो तो दूसरी ओर हरिजन दूल्हा पिटा जाय । परसाई मानते हैं
कि अगर भगवान होता और वह न्यायी होता तो वह यज्ञ-कुंड में यज्ञ करनेवाले को
ही डाल देता । परसाई भारतीय जनजीवन में जो धर्मान्धता, पाखंड, रूढ़िवाद की
जो परंपरा है उसके लिए ब्राह्मण वर्ग को जिम्मेदार मानते हैं । इस वर्ग ने समाज
को पिछड़ा रखा है चिंतन के मार्ग को अवरुद्ध कर रखा है । ब्राह्मण वर्ग के इस पाखंडी
रूप का खंडन और व्यंग्य परसाई यों करते हैं - "बच्चा जब माँ के पेट में आता है
तभी से पोथी-पत्री और पूजा शुरू हो जाते हैं । आदमी जब पैदा हुआ तो ब्राह्मण
तैयार बैठा है । फिर चालू होता है लंबा सिलसिला - छठी, नामकरण कनछेदन
जनेऊ, विवाह - सब में ब्राह्मण । आदमी मर जाये तो तेरहवें दिन ब्राह्मण भोजन

करके दक्षिणा ले जायेंगे ।"49 ब्राह्मण संस्कृति की दुहाई देकर परसाई ने उनका व्यंग्य किया है ।और उनकी इस यह संस्कृति को इस बात का संकेत स्वीकार किया है कि उच्च नीच की भावना समाज में बनाये रखने के लिए मानों ये सारे यज्ञ, विदाई आवश्यक हों ।

यज्ञ की धूम से वातावरण शुद्ध होने का दावा करनेवाले लोगों से परसाई का सवाल यह है कि देश भर के कारखानों से हर रोज निकलनेवाले धुएँ को रोकने के लिए, भला कितने यज्ञ करने होंगे । इनका मानना है कि वायु प्रदूषण को रोकने के लिए यज्ञ जारी रखना समाधान नहीं है ।

पुर्नश्चः, इस निबंध में परसाई ने नये-नये भगवानों, देवी-देवताओं के उगम पर चिन्ता प्रकट की है क्योंकि ये हमारी चिंतनशीलता की जड़ें हिला रहे हैं । इनका यहाँ तक अनुमान है कि ये चमत्कार दिखानेवाले, या दिखाने के लिए सहायक होनेवाले वास्तव में देश को आगे बढ़ाने की चिंता नहीं करते । यह भी शोषण का एक विधान है । लेखक कहते हैं - 'इस योजना का उद्देश है जनता को पिछड़ा हुआ रखना, उसकी समझ को वैज्ञानिक न होने देना, उसे अंधविश्वासी और दकियानूस रखना, उसे भाग्यवादी और संघर्षहीन बनाना । कुछ उद्देश हैं कि लोग परिवर्तन कामी न हो । वे सड़ी-गली इस व्यवस्था से विद्रोह न करें । ...यह एक देशव्यापी षड्यंत्र है जिसमें राजनैतिक, सरमायेदार, बुद्धिजीवी आदि शामिल हैं ।50 यानी प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक चिंतन धारा मानों इन कुछ ही लोगों के योजना बद्ध कार्यक्रम के कारण एकदम रुक गई है । ये लोग विज्ञान को नहीं मानते, डाक्टरों को नहीं मानते, चिंतन को नहीं मानते । इन सभी यथार्थताओं के परिप्रेक्ष्य में परसाई अत्यंत आग्रह के साथ नई पीढ़ी के युवकों से कहते हैं कि वे वैज्ञानिक चिंतन के आधार पर समाज का निर्माण करें । भाग्य वादिता के चक्कर में न पड़कर समस्याओं से संघर्ष करें ।

परसाई के साहित्यिक निबंध : एक सर्वेक्षण

'वसुधा में प्रकाशित अपने संपादकीय लेखों और अन्यान्य साहित्यिक निबंधों

में समसामयिक मुद्दों पर परसाई के विचार हैं। परसाई अपने इन संपादकियों के लिए विषयों का चुनाव करते समय अखिल भारत के महत्व के उन विषयों को उठाते हैं जिनकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है । सामान्यतः यह देखा जाता है कि पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीय और अन्यान्य लेखों का महत्व तात्कालीन और सामयिक होता है । मगर परसाई की निजमति ने तात्कालीन और सामयिक महत्व के विषयों को भी ऐसा स्वरूप दिया है जिस के कारण ये लेख पत्रिका के दूसरे अंक के आते ही बासी न पड़कर आज भी अपनी प्रासंगिकता को बनाये रखे हुये हैं । जो कि इन लेखों की उपलब्धी है । "वसुधा" साहित्यिक पत्रिका होने के कारण यहाँ के लेखों में देश के सांस्कृतिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है ।

यहाँ के निबंधों में परसाईपन की छाप सर्वत्र दिखाई पड़ती है । संपादक से जिस ढंग का साहस, निर्भीकता और जिस ढंग की विवेकात्मक बुद्धि की अपेक्षा की जाती है, वे सारे गुण परसाई में कूट-कूट कर भरे हैं । अपने विश्वास एवं अपनी मान्यताओं के साथ परसाई किसी भी स्तर पर समझौता नहीं करते, किसी की भी सैद्धांतिक स्तर पर आलोचना करने से नहीं चूकते । सुननेवाले को कितना भारी लगे अपने विचारों को निस्संकोच कह देने में परसाई जो अद्भुत साहस दिखाते हैं, वह लाजवाब है, किसी दूसरे लेखक में कम देखने में आनेवाला जोखिम है ।

यहाँ के संपादकीयों और अन्य लेखों में सांस्कृतिक महत्व के महत्वपूर्ण विचारों को लेकर चर्चा की गई है । सरकार, साहित्य, साहित्यकार, समाज, हिन्दी की दुर्गति, हिन्दी का भविष्य, साहित्य में श्लील-अश्लील की समस्या, आलोचक का दायित्व, प्रगतिशील आंदोलन का स्वरूप और महत्व, पंचतंत्र जैसे अनेकों विषयों पर परसाई के बेबाक विचार यहाँ व्यक्त हुए हैं । इन लेखों द्वारा परसाई की वैचारिकता और उनके जीवन एवं साहित्य-दर्शन के अनेकों महत्वपूर्ण पहलू उभरकर आये हैं -

इन संपादकीय लेखों की पूरा दृष्टि विशेषकर हिन्दी पर रही है । हिन्दी की स्वाभाविक उन्नति में बाधक और हिन्दी की अवनति के लिए कारण बनी हुई शक्तियों की आलोचना की गई है । दुश्मनों की गिनती में हिन्दी फैनेटिक्स के प्रति हिन्दी

मोह का खंडन करते हुए हिन्दी के विकास के लिए संतों के आदर्श का पालन करने के लिए जोर देते हैं । "हिन्दी विरोधी शक्तियाँ" शीर्षक संपादकीय में राजाजी के उस तथाकथित भाषण के इस वक्तव्य के प्रति कि भारत में राज्यों के आपसी संबंधों की भाषा अंग्रेज़ी होनी चाहिए" परसाई अपनी असहमति प्रकट करते हुए हिन्दी का प्रबल समर्थन करते हैं । और बड़ी विनम्रता से राजाजी से पूछते हैं - "क्या केवल दक्षिण के ध्यान से राष्ट्रभाषा निश्चित होगी ? उत्तर, पूर्व और पश्चिम भारत का इसमें कोई हित नहीं देखा जायेगा" और अगर दक्षिणवालों ने विदेशी शासकों की विदेशी भाषा इतनी कुशलता से सीख ली तो, क्या वे राष्ट्रभाषा हिन्दी को नहीं सीख सकेंगे" या क्या वे राष्ट्र की भाषा को सीखना तौहीन समझेंगे और विदेशी भाषा पर गर्व करेंगे ? "51 हिन्दी भाषा की समस्या को हल करना परसाई बड़ा आसान समझते हैं क्योंकि भाषा की समस्या इससे भी गंभीर है । भावात्मक एकता, राष्ट्रभाषा की जरूरत, अंग्रेज़ी को हिन्दी से स्थानापन्न करने की बात क्योंकि परसाई करते हैं तो वे इस ओर ध्यान नहीं देते कि हिन्दी के प्रति जो उत्साह और प्रेम दक्षिणवालों में है, उसका शतांश प्रेम भी दक्षिणी भाषाओं के प्रति हिन्दी वालों में नहीं है । हि को एक यज्ञ के रूप में स्वीकार करके उसका प्रचार-प्रसार दक्षिण में कर रहे हैं । हिन्दी वालों का रवैया जो दक्षिणी भाषाओं के प्रति है, वह उनका साम्राज्यवाद है कैमिटिसिज्म है । इस संपादकीय लेख को लिखने के तीस साल के बाद भी हालातों में कोई परिवर्तन नहीं आया है । बदले में हिन्दी के प्रति दक्षिण में परहेज भावना ही ज्यादा हुई है । हिन्दी को "राष्ट्रभाषा" कहने के लिए ही दक्षिण में आपत्ति की जा रही है । दक्षिणवालों के अनुसार हिन्दी ही एक मात्र राष्ट्रभाषा नहीं है, भारत की सभी भाषाएँ राष्ट्रभाषाएँ हैं । हिन्दी को लेकर परसाई के विचारों से सहमत होना संभव नहीं हो पाता है ।

परसाई भाषा के विषय में बहुत भावुक से लगते हैं हिन्दी का मसला सेठ गोविन्ददास, पुरुषोत्तम दास टंडन समझनेवाले आंदोलनकर्ताओं की आलोचना करनेवाले परसाई भी जहाँ तक हिन्दी का सवाल है उससे आगे नहीं जाते ।

इसी सिलसिले में "दुराग्रह" शीर्षक प्रसिद्ध संपादकीय निबंध का उल्लेख होना

आवश्यक है जिसमें परसाई ने हिन्दीवालों के, खासकर, समाजवादी पार्टी के अति भाषा प्रेम के कारण हिन्दी का अहित किस प्रकार हो रहा है, इसका अत्यंत व्यावहारिक रूप से विश्लेषण किया है तद्वारा अपना विशिष्ट हिन्दी प्रेम दिखाया है । परसाई का यह सवाल एवं तर्क ऐसे संगत है कि "क्या राज्यपाल गिरी इतने वर्षों में भाषण पढ़ने लायक हिन्दी नहीं सीख सकते थे " और हिन्दी जिनकी शासन की भाषा हो, उस राज्य के सर्वोच्च वैधानिक पद पर आसीन होकर क्या यह उचित है कि वे दूसरी भाषा में ही भाषण करें" गिरी की भाषागत कमजोरी तो थे और उनके निकटस्थ लोग जानें, हमें इसमें कहीं हिन्दी न सीखने का थोड़ा हठ जरूर दीखता है ।"[52] यह सवाल मात्र गिरि से ही नहीं अपितु दक्षिण में आए हुए उन राज्यपालों एवं केन्द्र प्रशासन की सेवाओं पर आकर यहीं के निवासी बने हुए लोगों से भी किया जा सकता है । इन लोगों ने इस प्रदेश के भू-भाग की भाषा - संस्कृति की परवाह तक नहीं की है । आज भी यही चल रहा है । प्रस्तुत प्रसंग में इस बात को रेखांकित किया जा सकता है कि हमारे यहाँ भावात्मक एकता की चर्चा गली गली में होती है, मगर उसकी सार्थकता व्यवहार में नहीं हो पा रही है । परसाई भाषाई सद्भाव को एकमुखी के रूप में देखते हैं क्योंकि भाषाई सद्भाव द्विमुखी होता है । भावात्मक एकता का नारा नहीं, अपितु एक अनुभूति है ।

हिन्दी के भाषाई स्वरूप को बनाये रखने के प्रति - परसाई तीव्र आस्था दिखाते हैं । उदाहरण के लिए "क्वारा-क्वाँरी" और ऐसे ही शब्दों के कारण रसोद्रेक में किस प्रकार भंग हो रहा है, इसका रोचक उदाहरण "क्वाँरा की दुर्गति" सx संपादकीय में दिया है - "पिछले 7-8 वर्षों में हिन्दी कविता में कुछ शब्दों की ऐसी पिटाई गयी है कि अब कविता में इन्हें देखकर रसोद्रेक होना बंद हो गया है, केवल दया आती है । एक नमूना देते हैं - क्वाँरा और क्वाँरी न जाने कब से चला आ रहा है क्वाँरा और क्वाँरी । हिन्दी के क्वाँरेपन के आरंभ में धर्मवीर भारती के प्रयोग "क्वाँरी सांसों के देवता" ने ध्यान खींचा था, इसके बाद तो क्वाँरा और क्वाँरी की झड़ लग गयी । शायद ही कोई सप्ताह ऐसा गुजरा हो जब किसी कविता में यह प्रयोग न पढ़ा हो ।"[53] शब्दों के ऐसे निरंतर प्रयोग से एकरसता उत्पन्न होकर

कविता अपनी जीवंतता खो जायेगी जिसकी चेतावनी देते हुए परसाई ऐसे प्रयोगों से सावधान रहने के लिए नये लेखकों से आग्रह करते हैं - "पंतजी ने दो मात्राओं की कमी देखी तो "फिर" धर दिया और हर किसी संज्ञा के पहले "सशक्त" लगाना शुरू कर दिया, माखनलाल चतुर्वेदी जू, चोटी और ईमान के बिना दस वाक्य नहीं लिखते। नये लोग बुजुर्गों से कम से कम यह बात न सीखें।"[54] भाषा को स्वच्छ और प्रभविष्णु बनाये रखने के लिए परसाई का यह आग्रह अत्यंत स्वस्थ दृष्टि का परिणाम है।

परसाई ने अपने कुछ संपादकीय निबंधों में कला को व्यक्तिगत लोभ, राजनीति और समझौतावाद से पृथक रखने के लिए आग्रह किया है। चूंकि कला साहित्यकार की अनुभूतियों का प्रतिबिंब है, उसके विचारों की अभिव्यक्ति है, अतः यहाँ स्वतंत्रता होनी चाहिए। इस संदर्भ में प्रेमचंद को वे आदर्श स्वीकार करते हैं जो कि इस समझौते के दुष्परिणाम को समझते थे। इसलिए ही उन्होंने किसी भी संदर्भ में अपनी कला में समझौता करने का प्रयत्न नहीं किया। इस दृष्टि से लेखकीय स्वतंत्रता पर हावी होनेवाली शक्तियों के संबंध में "सरकार और साहित्यकार" रेडियो की बात, पीढ़ियों के संघर्ष, साहित्य और राज्य का संरक्षण, हिन्दी विरोध आदि लेखों में विस्तार से चर्चा की है। पद, पदोन्नति, आर्थिक लोभ लेखक की दुर्बलताएँ हैं जिनके शिकार होने पर लेखक तत्संबंधी व्यवस्था की प्रशंसा में लग जाता है। परिणामस्वरूप समझौता साहित्य निकलने लगता है, तब साहित्य महज भोजन होता है। परसाई कहते हैं - समझौते से भयंकर विनाशक चीज कलाकार के लिए दूसरी नहीं। समाज सत्य को सामाजिक संदर्भ में लेखक जिस रूप में अनुभूत करता है, उसी रूप में उसे निस्संकोच प्रकट करने में झिझक पैदा न हो। जहाँ असत्य है, पाखंड है, मिथ्याचार है, वहाँ कला नहीं। राजनीति और समाजनीति में समझौता की गुंजाइश है, साहित्य और कला के क्षेत्र में समझौता आत्मघात का लक्षण है...प्रमाण में उन अनेक लोगों की रचनाएँ सामने रख लीजिए, जो उच्च पद पाने के बाद लिखीं। उनमें वह तेज, वह स्पष्ट अभिव्यक्ति, वह तीखी प्रक्रिया, उद्वेग व जीवनालोचन नहीं है जो फाकामस्ती के वक्त की रचनाओं में थी। इनमें से अनेकों के तो मूल्य बदल गये हैं।[55]

परसाई मानते हैं कि कलाकार या साहित्यकार अपनी अनुभूतियों की प्रति तभी प्रामाणिक रह सकता है जबकि वह किसी लोभ में बह बहकर सिद्धान्तों के साथ समझौता नहीं करता है ।

हिन्दी साहित्य की अस्मिता पर जब जब चोट लगी है तब तब परसाई ने अपना क्रोध जाहिर किया है । और इसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों को आड़े हाथों लिया है । "भारतीय कविता 1953" के शीर्षक लेख में इसी शीर्षक के संकलन में संकलित हिन्दी कविताओं के चयन के संदर्भ में दिनकरजी पर इनकी बेबाक टिप्पणी देखने योग्य है । इसमें अखिल भारत के स्तर पर हिन्दी की प्रतिष्ठा को गिराने का सारा श्रेय दिनकरजी को देते हुए कहते हैं "छायावादी दलदल में फँसे हुए, अस्पष्ट, असामाजिक, परंपरागत कार्य को ही हिन्दी का काव्य बताकर दिनकर ने हमारी भाषा और साहित्य के प्रति अपराध किया है । कोई अन्य भाषा-भाषी इसे पढ़ेगा तो हमारी लघुता और शक्ति हीनता पर हँसेगा । हिन्दी के अधिकार की खिल्ली उड़ायेगा ।"[56] अज्ञेय से संपादित "कंटेम्पररी हिन्दी लिटरेचर" के संबंध में भी परसाई ने इसी शीर्षक के अपने निबंध में अज्ञेय की आलोचना के मानदंडों पर प्रश्नचिन्ह लगाये हैं । उनकी आलोचना को पूर्वाग्रह से पीड़ित, व्यक्ति-निष्ठा से आपूरित बताकर सोदाहरण उनकी आलोचना-दृष्टि का खंडन किया है और बताया है कि ऐसे लेखों से साहित्यिक अस्मिता को भी कितनी गहरी चोट पहुँचती है - "अज्ञेय का यह लेख हिन्दी साहित्य के संबंध में केवल भ्रम फैलायेगा । चिंता इसलिए अधिक बढ़ जाती है कि यह अंग्रेजी पुस्तक अहिन्दी भाषियों के लिए है । साहित्य अकादेमी जैसी जिम्मेदार संस्था को इतनी महत्वपूर्ण पुस्तक के संबंध में सावधानी बरतनी थी ।[57] इस चेतावनी को साहित्य अकादेमी ने गंभीरतापूर्वक नहीं लिया । इसके कुछ वर्षों बाद इसी शीर्षक से प्रकाशित संकलन में डॉ. नामवर सिंह के लेख पर भी पूर्वाग्रह और किसी एक गुट के पक्षधर होने की आलोचना की गई । लगता ऐसा है कि ऐसे संकलनों में लिखने के लिए जिस वस्तुनिष्ठ दृष्टि की आवश्यकता होगी, वह अभी हमारे लेखकों में नहीं आई है ।

परसाई अपने इन संपादकीय और अन्यान्य लेखों में लेखकीय व्यक्तित्व के द्वारा

होने के लिए जिम्मेदार व्यवस्था की कड़ी आलोचना की है । परसाई निश्चित रूप से मानते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में लेखकों का शोषण इतनी मात्रा में होता है कि सामंतवादी अपने हितों की रक्षा के लिए लेखकों से भाषण लिखवाने, अपने पिता का जीवन चरित लिखवाने , स्वागत गीत और अभिनंदन पत्र तैयार करवाने में लेखकीय शक्ति का दुरुपयोग करवाते हैं । ऐसे पूँजीवादियों के हाथ में बच्चनजी जैसी प्रतिभाओं का हनन किस प्रकार होता है, इसका जीता जागता चित्र "बच्चनजी पर राजमद का प्रहार" संपादकीय में दिया है ।

"पुस्तक की भूमिका" वाले संपादकीय में परसाई ने पुस्तकों के भूमिका लेखन की राजनीति, भूमिका लिखने और लिखानेवालों की मानसिकता का उद्घाटन किया है । भूमिका लेखन को धंधा बनाये हुए लोगों पर कटाक्ष किया है । भूमिका के धंधे से लोगों में एक ओर भूमिकाओं के प्रति आस्था घट रही है, दूसरी ओर भूमिका से लेखक और भूमिका लेखक दोनों अपने को मुफ्त में बड़ा मानने लगते हैं । इसलिए परसाई चेतावनी देते हैं - "हिन्दी के भूमिका लेखकों को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए । फार्म की खानापूरी करके "कैरेक्टर सर्टिफिकेट" प्रदान नहीं करना चाहिए "धर्म संकट" और "मुंहदेखी" के झमेले में तत्त्व की ओर से इतने उदासीन नहीं होने चाहिए । भूमिकाओं में आस्था घट रही है । "[58] भूमिकाओं की इस दुर्गति के लिए निष्ठाहीनता, सिद्धांतहीनता कारण है । परसाई इस संदर्भ में विदेशों में भूमिकाओं के महत्त्व की ओर इशारा करते हैं । वहाँ भूमिकाओं के लिए अपना महत्त्व है, क्योंकि साहित्य और मूल्यों के प्रति भी उनकी उतनी ही निष्ठा है । इसलिए वहाँ भूमिकाएँ विश्वसनीय होती हैं । इस प्रसंग पर परसाई दो उदाहरण देते हैं कि "डोवर विल्सन की भूमिका का मतलब वह विश्वसनीय होती है, दूसरा बर्नार्ड शाह का, जिन्होंने एक बार सी.ई.एम जोड सरीखे आदमी की पुस्तक की भूमिका लिखने से इनकार करते हुए कहा था कि "फिर तुम्हारी पुस्तक को कोई नहीं पढ़ेगा, मेरी भूमिका ही सब पढ़ेंगे ।[59] भूमिका लेखन में जिस साहस, सत्य कहने की हिम्मत होनी चाहिए और जो कि विदेशी लेखकों में है, क्या हमारे पास है" इस सवाल पर परसाई के विचार अत्यंत महत्त्व के हैं । भूमिका-दान करनेवाले और माँगनेवालों को गंभीर रूप से इस पर विचार करना चाहिए ।

"सरकारी पुरस्कार" - शीर्षक संपादकीय में सरकारी पुरस्कारों के लिए विचारार्थ सामान्यतः हर सरकार लेखकों से पुस्तकों की माँग करती है । और लेखक भेज भी देते हैं । इस प्रकार अर्जी देकर पुरस्कार पाना, अर्जी न देने की वजह से श्रेष्ठ पुस्तकों को पुरस्कार से वंचित करना भाई कहाँ तक उचित है । परसाई इस मुद्दे को उठाकर इन तथाकथित पुरस्कारों की राजनीति का भंडा फोड़ते हैं । और पांडुलिपियों पर पुरस्कार देने की नीति को अप्रसूत पुत्र का बीमा कराने के जैसे कहकर खिल्ली उड़ाते हैं । ये दोनों विधान परसाई के अनुसार लेखकीय व्यक्तित्व की शोभा बढ़ानेवाले नहीं हैं ।

"प्रतिनिधि चरित्र का सवाल" संपादकीय हिन्दी साहित्य पर झूठा गर्व करनेवालों पर तीव्र प्रहार है । परसाई राष्ट्रीय साहित्य के नाम पर जो सृष्टि हम कर रहे हैं, उसकी सार्थकता पर बुनियादी सवाल करते हुए पूछते हैं कि क्या यह सचमुच का राष्ट्रीय साहित्य है ? क्या हमने एक ऐसे चरित्र का निर्माण कर पाये हैं जो कि सच्चे अर्थ में भारतीय चरित्र का प्रतिनिधित्व कर सके । राष्ट्रीय संदर्भ पर एक महत्वपूर्ण सवाल उठाकर उसकी चर्चा छेड़ी है जो कि अत्यंत प्रासंगिक है । गुप्त, प्रेमचंद, रेणु यशपाल, अश्क, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी और अन्यान्य लेखकों के अमर पात्रों की सीमाओं का मूल्यांकन करते हुए शा, टालस्टाय, शेक्सपियर जैसे लेखकों से चित्रित पात्रों की तुलना में हमारे लेखकों के पात्र कहाँ तक टिक पाते हैं ? राष्ट्रीय चारित्र्य क्या इनमें प्रस्फुटित हुआ है ? इस ओर संकेत करते हुए परसाई जो कारण देते हैं वह चिंतन के योग्य है - "हिन्दीवालों में अभी विश्वव्यापी और राष्ट्रीय कौन कहे, अपने देश की अनुभूति ही नहीं है और न आप इस ओर अग्रसर ही हुए हैं ... फालस्टाफ, शेक्सपियर के युग में सरायों और दरबारों में घूमनेवालों का प्रतिनिधि है । पिकविक इंग्लैंड के उदीयमान "पेटीबुर्जुआ" समाज का अगुआ है, और सिडनी कार्टन हर व्यक्ति के उच्च आत्मत्याग की भावना का प्रतिनिधि । आप यह सब हर जगह पायेंगे । क्या हार्डी केवल इसलिए सफल नहीं हुआ कि उसने "वेसेक्स" के जीवन के कण-कण से अपना परिचय जोड़ा" और इसी तरह बाल्ज़ाक, ज़ोला, फ्लाबेयर, अनातोले, दास्तोवेस्की, अर्नेस्ट टेलर, टालस्टाय आदि सभी कलाकारों ने अपने आसपास के जीवन और अपने युग से ऐसा परिचय जोड़ा कि वे उनमें साकार हो उठे । हिन्दीवालों में यह भावना कहाँ विचार कहाँ और भावना कहाँ"....जब तक अपने आप में यह छल कपट चलता

रहेगा, तब तक ऊँचा साहित्य लिखना पत्थर पर दूब उगाना है । इस धरती की धूल में पहले लोटना सीखिए । परसाई के इन शब्दों में हमारे लेखकों से अपनी यथार्थताओं तथा अपनी मिट्टी की सौंध से आत्मसात करने का आग्रह करते हैं । जीवन से कटा हुआ साहित्य मात्र अक्षरों का खिलवाड़ होता है । इससे आगे कुछ नहीं अपने लेखकीय उद्देश्यों पर पुनर्विचार करने तथा आत्ममंथन करने का आग्रह यहाँ किया गया है ।

"वसुधा" में प्रकाशित विचारात्मक निबंधों में से प्रगतिशील साहित्य पर उसके वार्षिक अधिवेशनों के दौरान दिये गए भाषण एवं अन्यान्य लेख जिनमें लेखक की जिम्मेदारी संगठनों की जरूरत, प्रतिबद्धता की अनिवार्यता, पूँजीवादी समाज की भयानक हालातों का बड़ा मार्मिक विवेचन किया है । इन लेखों से नये लेखकों को नयी दृष्टि मिलती है, एक जीवन दर्शन से उसका साक्षात्कार होता है, उसे एक लक्ष्य का बोध होता है । मानव विरोधी शक्तियों में जूझने के लिए बल मिलता है । यह सब इसलिए संभव होता है कि इन भाषणों में शब्द-चमत्कार नहीं अपितु जीवन के प्रति अत्यंत आस्थाभाव एवं स्वस्थ मन की चिंतनधारायें अभिव्यक्त हुई हैं । प्रगतिवाद लेखक महासंघ का अध्यक्षीय भाषण, विदा लेते हुए, मेरी कैफियत प्रगतिशील लेखक संघ की शाखाओं के पत्र जैसे लेखों में लेखकों को सही दृष्टि और पहचान देने का प्रयास है । इन सारे निबंधों उनकी जनवादी विचार-धारा एवं मार्क्सवादी चिंतनधारा का परिपाक मिलता है ।

परसाई के आलोचक रूप को उनके अनेकों निबंधों में देख सकते हैं । "सरकार और साहित्यकार, आलोचना की आवश्यकता, पीढ़ियों का संघर्ष, हलवाँ साहित्य, साहित्य और राज्य संरक्षण, भारतीय कविता , पुस्तक की भूमिका, सरकारी पुरस्कार साहित्यकार का साहस, प्रतिबिम्ब [illegible] चरित्र का निर्माण, हल्का साहित्य जैसे निबंधों में साहित्य संबंधी चर्चा है, साहित्य और समाज के संदर्भ में अनेकों बुनियादी समस्याओं को उठाया गया है । साहित्यकार और आलोचक के दायित्वों पर प्रकाश डाला गया है । और इनकी जिम्मेदारियों की ओर संकेत किया गया है । साहित्य सृजन को एक तपस्या के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है "आलोचना आवश्यकता" शीर्षक निबंध में कवि- कर्तव्य की चर्चा करके कविता में नारी क

उसके मग्न रूप में प्रस्तुत करें, धातियों की माँग करनेवाले कवियों की मानसिकता की आलोचना करते हुए नारी की गरिमा को बनाये रखने को बताते हैं ।

आज की कविता की दुर्दशा पर परसाई को बड़ी चिंता है । क्योंकि या तो कवि सम्मेलनों या रेडियों में या सरकारी मंचों से सचमुच की कविता निर्वासित रूप से गायब हुई है । यहाँ से कंठ की प्रधानता है, तलवार गायन की प्रधानता है । ऐसे गायन से अच्छी कविता की बड़ी दुर्गति होती है । मंचीय कविता जो कर्णप्रिय होने के कारण गद्यात्मक पंक्तियाँ रागिनियों में या धुन में इस प्रकार पद्यवत पेश की जाती हैं कि गद्य ही पद्य का रूप धारण कर लेता है । इस प्रवृत्ति से कविता पर होनेवाले दुष्परिणामों को परसाई यों रेखांकित करते हैं - " कवि की इज्जत को जितना इस व्यावसायिक काव्य पाठ ने कम किया है उतना किसी ने नहीं । तरह-तरह के अपमान, अवहेलना, और उपहास सहने पड़ते हैं । दूसरा एक दुष्परिणाम यह हुआ है कि स्टेज की कविता अलग किस्म की होती जा रही है और मुद्रित कविता अलग।... अच्छी कविता की बड़ी दुर्गति हो रही है । रंगमंचीय सफलता काव्य रचना की कसौटी बन गई है । अच्छे स्वर से निरर्थक शब्दों को गानेवाले कवि समाज में जाने जाते हैं, पर अच्छा लिखनेवाले, लेकिन, मंच पर न पढ़नेवाले श्रेष्ठ कवियों को भी लोग नहीं जानते यह स्थिति साहित्य के भविष्य की दृष्टि से निश्चय ही चिंताजनक है, आतंककारी है मोरों के स्थान पर उल्लू महत्व पाते हैं ।

मंचीय कविता उपद्रवकारी भी हो सकती है, घृणित स्पर्धा, मार-काट, और निंदा तक वह उतर सकती है । परसाई कवि सम्मेलनों की जरूरत को स्वीकार करते हुए भी सामाजिक तक कविता को पहुँचाने का मार्ग और वातावरण को स्वस्थ बनाये रखने का आग्रह करते हैं ।

"बेपढ़ी समीक्षा" शीर्षक लेख में हिन्दी समीक्षा के अतीव सू नमूने हैं ।वर्तमान हिन्दी साहित्य में अधिकारिक स्कूलों की आलोचना करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के एक वक्तव्य का उल्लेख करते हैं कि पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहीं लिखा है कि हिन्दी में जो पढ़ता है, वह आलोचना नहीं लिखता और जो आलोचना लिखता

है वह बदला नहीं है । वर्तमान आलोचना की गति आज भी लगभग वैसी ही है । परसाई इस वक्तव्य का समर्थन करते हैं ।

साहित्य में सिद्धांत संबंधी गंभीर चर्चा "नामदेव" ढसाल की कविता और अश्लीलता का प्रश्न शीर्षक निबंध में है । नामदेव ढसाल की कविता "भूख" में प्रयुक्त कुछ शब्दों और मुहावरों के प्रयोग को लेकर उन्हें अश्लील करार कर देनेवालों पर प्रहार किया है और इस अश्लीलता का समर्थन किया है जो कि एक फिलिंग के रूप में अभिव्यक्त हुई है । इसी संदर्भ में साहित्य में भाषा प्रयोग की बारीकियों पर यहाँ विचार किया गया है । और भाषा के सौंदर्यशास्त्र की रूढ़िबद्ध परिभाषा में परिवर्तन लाने का आग्रह किया है ।

"वसुधा" के मंच से अपने संपादकीयों एवं साहित्य सिद्धांत संबंधी निबंधों में परसाई ने जो सवाल उठाये थे और जिन मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाये थे, वे आज भी उसी अवस्था में है । तीस-चालीस सालों के बाद भी इन निबंधों में चर्चित विषय बासी नहीं हुए हैं । वास्तव में परसाई द्वारा उठाई गई समस्याओं पर चर्चा और पुनर्चर्चा अभी शुरू होती है । अपने चिंतन के द्वारा पूरे युग को सोचने को बाध्य करते हैं परसाई, यही उनके निबंधों की उपलब्धी है ।

परसाई में आराधना भाव का बिलकुल अभाव है । अपनी दृष्टि में जो कुछ और तर्कहीन लगता है उसको साफ साफ कहने में वे संकोच का अनुभव नहीं करते हैं । पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों, प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञों की सीमाओं की ओर संकेत करते समय भी आगे पीछे नहीं देखते । इसी कारण से इनके निबंधों में वस्तुनिष्ठता हर कहीं देखी जा सकती है - राजाजी के वक्तव्यों की सीमा की विस्तृता से आलोचना करते हैं, पंत, माखनलाल जैसे प्रतिष्ठित कवियों के शब्द-प्रयोगों की अनावश्यक पुनरुक्ति से बचने का आग्रह करते हैं, नेहरू की प्रमाणिकता पर गंभीर संदेह करते हैं यथा "दिनकर की पुस्तक "संस्कृति के चार अध्याय" की पंडितजी ने भूमिका लिखी है, पर हम नहीं समझते, उन्हें उसे पलटकर देखने की भी फुरसत मिली होगी ।"

भूमिकाएँ : सृजन-क्रिया की आधार भूमि

परसाई ने अपनी हर पुस्तक की भूमिका लिखी है । इन भूमिकाओं में परसाई ने एक ओर अपनी प्रेरणा, अपने व्यंग्यों की भावभूमि, रचना प्रक्रिया, प्रतिक्रिया और साहित्य सृजन से संबंधित सैद्धांतिक चर्चा की है तो दूसरी ओर रचना के प्रकाशन के बाद उस रचना ने जन मानस को किस प्रकार आंदोलित किया, इसका भी जायजा लेने का प्रयत्न किया है ।

व्यंग्य परसाई के न केवल कृतित्व का, अपितु व्यक्तित्व का भी अभिन्न अंग हो गया है कि जिसके बिना परसाई एकदम अनस्तित्व से दिखायी पड़ते हैं। अर्थात् व्यंग्य के बिना वे एक पंक्ति भी लिख नहीं पाते । अपनी भूमिकाएँ लिखते समय भी परसाई व्यंग्य का ही सहारा लेते हैं । सपाट बातें सपाट रूप में कहने की जगह व्यंग्य से ही पाठकों का स्वागत करते हैं, ।

परसाई की भूमिकाओं में लेखक का आत्मविश्वास अपने कथ्य के प्रति अविकल निष्ठा स्पष्ट जाहिर होती है जिस के कारण परसाई अपनी रचनाओं को महान कृतियाँ कहने झिझकते नहीं । "शाश्वत साहित्य" लिखना अपना उद्देश्य स्वीकार न करते हुए भी कालजयी कृतियाँ यानी अपने काल की सार्थक व्याख्या करनेवाली रचनाएँ देने में परसाई को अभूतपूर्व सफलता मिली है । अपनी रचनाओं की सार्थकता के संबंध में लेखक में तभी आत्मविश्वास आ सकता है क्योंकि जब वह साहित्य का उद्देश्य और उत्तरदायित्व समझता है । अपने व्यापक अनुभव, गंभीर चिंतन, कलात्मक अभिव्यक्ति के फलस्वरूप ही ये रचनाएँ सामयिक जनता के बोध को आत्मसात कर पायी हैं । यही वजह है कि परसाई ने कहा है कि "मुझे तो ये सब महान कलाकृतियाँ लग रही हैं, सबको अपनी ऐसी ही लगती है, कह देने और नहीं कह देने का फर्क है ।"[63] इसके बावजूद भी परसाई अपनी और अपनी रचनाओं की सीमाओं से भी परिचित हैं । किसी भी शर्त पर लेखक को अहंकार वर्ज्य है । उनका कहना है कि "अनुभव ने सिखाया है कि लेखक का अहंकार व्यर्थ है । हम कोई युग प्रवर्तक नहीं हैं । हम छोटे-छोटे लोग हैं ।

हम कुल इतना कर सकते हैं कि जिस देश समाज और विश्व के हम हैं जिससे हमारा सरोकार है, उसके उस संघर्ष में भागीदार हों जिससे बेहतर व्यवस्था और बेहतर इन्सान पैदा हो ।"[64] लेखक को अपनी रचनाओं के प्रति आत्मविश्वास भी है और उसकी सीमाओं की जानकारी भी है । इन दोनों का संतुलन हम परसाई में देख सकते हैं

उनकी हर भूमिका या तो एक सुंदर व्यंग्य रचना है या तो व्यंग्य की व्याख्या है । और इ इन दोनों प्रसंगों में परसाई ने अपनी सहज सरलता को बनाये रखा है । उदाहरण के लिए "हँसते हैं...रोते हैं" की भूमिका का यह व्यंग्य मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्थापित करने के लिए जिस गुण की जरूरत है उस गुण के अभाव में वह क्या होता है, इसका मार्मिक उद्घाटन करना है । "एक आदमी आकर वहाँ खड़ा हो गया और बोला - "भैया, दुनिया में दो ही तरह के आदमी होते हैं, हँसनेवाले और रोनेवाले ।

मैंने पू कहा - और जो न हँसते हैं न रोते हैं

वह बोला - वे आदमी थोड़े ही हैं ।

मैं बोला - उन्हें लोग देवता कहते हैं ।

वह बोला - देवता होते होंगे, मगर आदमी नहीं होते ।[65]

इस दृष्टि से हँसने और रोने के संयोग से आदमी बनता है । और दुनिया में रोनेवाले इतने हैं कि हँसनेवालों को ढूंढ़ना पड़ता है । हँसना परसाई की दृष्टि में दवा है, निष्कपट शुद्ध हँसी मन के खोटों को दूर करती है । परसाई कहते हैं - "हँसता हुआ मुख दुर्लभ है । हम इसी उम्मीद से यहाँ बैठे रहते हैं कि दस-पाँच वास्तव में प्रसन्न मुख दिख जायें - दुखाक्रांत इस भीड़ में ।...सच्ची हँसी बड़ी अच्छी चीज है और जिन्हें मन के दुख की बीमारी हो, वे मेरा यह नुस्खा नोट कर लें - वे किन्हीं ऐसे आदमियों की हँसी में स्नान कर लें जो निश्छल, निःस्वार्थ, निर्मल हँसी हंस रहे हों - रोग दूर हो जायेगा"।[66] परसाई ऐसी निर्मल हँसी की दुहाई देते हैं ।

परसाई के "तट की खोज" और अनेकों ऐसी अन्य रचनाएँ हैं जिनकी निर्मम यथार्थता इस प्रकार पाठकों को झकझोर करती हैं कि इनके सत्यदर्शन का मुकाबला करना पाठक को भी मुश्किल है और लेखक को भी । ऐसी रचनाएँ बहुत कम होती हैं जिनमें परसाई की कुछ रचनाएँ हैं । इस अंश को स्पष्ट कर करते हुए "तट की खोज" के संदर्भ

में परसाई कहते हैं कि "मित्र ने जो घटना सुनायी थी वह मेरे मन में गूँज रही थी। मेरी संवेदना कहानी की उस लड़की के प्रति गीली थी। मैंने दो रात जागकर इसे लिख डाला।... लिखकर पछताया। छपा तब और पछताया.... अब मैं इस रचना का सामना नहीं कर सकता। मेरी एक तिहाई रचनाएँ ऐसी हैं जिनका सामना करने में डरता हूँ।"[67] ऐसा अनुभव हमारे कितने लेखक महसूस करते हैं?

सदाचार की तावीज, बेईमानी की परत, सुनो भई साधो, तिरछी रेखाएँ, और अंत में, वैष्णव की फिसलन आदि संग्रहों की भूमिकाओं में परसाई ने व्यंग्य की जबरदस्त वकालत की है और लेखन-कर्म की प्रतिबद्धता पर विस्तार से चर्चा की है। व्यंग्य के प्रहारों से डरकर, उसकी कटुता से घबराकर, व्यंग्य के स्वरूप पर प्रश्नचिन्ह लगानेवाली 'ब्राह्मण' परंपरा को व्यंग्य का महत्व विश्व साहित्य के संदर्भ में समझाने के सशक्त प्रयत्न किये हैं और लोक मंगल की दृष्टि से व्यंग्य के अस्तित्व को स्थापित किया है। साहित्यशास्त्र में एक अलंकार के रूप में काम आता रहा यह व्यंग्य परसाई साहित्य तक आते-आते एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हुआ जिसका श्रेय परसाई की रचनाओं के साथ ही साथ परसाई की इन भूमिकाओं को भी है। व्यंग्य पर परसाई की विचारधाराओं की चर्चा अन्यान्य अध्यायों में प्रसंगवश की गई है।

परसाई ने इन भूमिकाओं में अपने पाठकों का बड़ा ख्याल रखा है। ध्यान देने की बात यह है कि आलोचकों की पूर्वाग्रह दृष्टि, गुटबंदी समीक्षा, अप्रतिबद्ध प्रतिमानों की कसौटी पर की जानेवाली आलोचना और विश्वविद्यालयीय अकादमिक समीक्षा आदि की अपेक्षा पाठकों के रसास्वादन और उनकी आलोचना में ही परसाई ने गंभीर बातें देखी हैं तथा उनकी प्रतिक्रियाओं तथा आक्षेपों का समाधान देने का बराबर प्रयास किया है।

परसाई का कल्पना से कोई सरोकार नहीं है। इनकी कोई भी रचना निरी कल्पनाश्रयी नहीं है। अपितु यथार्थता की भूमि पर निर्मित जीतीजागती रचनाएँ हैं। हाँ, इनकी कहानियों और औपन्यासिक कृतियों के पात्र कल्पित हैं, मगर यहाँ का कटेंट असत्य नहीं है, यथार्थताएँ झूठी नहीं हैं। इन्हें पढ़ते समय इसका प्रगाढ़ अनुभव

होता है कि इनके चरित्रों से हम रोजमर्रा के जीवन में टकरा रहे हैं, मिल रहे हैं, संवाद कर रहे हैं । इनके भावात्मक निबंधों में हम अपने अंतरंग के ही दर्शन कर रहे हैं और जगत की सामयिक राजनीति के ब्यौरों को पढ़ते समय पूरी की पूरी तस्वीर उभरकर सामने आती है । परसाई की सृजन प्रक्रिया का क्या रहस्य है ? इतने सारे पात्रों और प्रसंगों से कैसे साक्षात्कार कर पाते हैं ? किस प्रकार व्यंग्य की उद्भावना कर पाते हैं ? ये सवाल अत्यंत कुतूहलदायक हैं किन्तु परसाई अपने व्यंग्य-सृजन की प्रक्रिया को अत्यंत सहज क्रिया मानते हैं जिसकी ओर उन्होंने अपनी भूमिकाओं में यदा-कदा उल्लेख किया है कि इन व्यंग्य रचनाओं की रचना अनायास ही की जाती है । मित्रों से सामाजिक राजनैतिक विषयों और सामयिक घटनाओं पर चर्चा रोज ही होती है ।...लोगों से बात करते करते किसी स्थिति का चित्र मन में चमक उठता है और व्यंग्य की रेखाएँ खिंच जाती हैं । अधिकतर तब व्यंग्य के चित्र निकलने लगते हैं ।[68]

परसाई के विचारों, मान्यताओं, विश्वासों और सृजन-प्रक्रिया के संकेतों को समझने की दिशा में ये भूमिकाएँ निश्चय ही महत्वपूर्ण योग देती हैं ।

परसाई के ललित निबंध

ललित निबंध वह आत्मनिष्ठ साहित्यिक विधा है जिसमें निबंधकार अपने किसी प्रिय विषय अथवा वस्तु अथवा भाव पर अपना चिंतन-मनन इस प्रकार प्रस्तुत करता है जोकि संवाद या आत्मीयता के धरातल पर बहुत ही बोधगम्य, इसीसे सुबोध और सरल होता है। क्लिष्टता ललित निबंधकार का शत्रु है, पटुता यहाँ xx बोझ है, पांडित्यप्रदर्शन यहाँ काम की चीज नहीं है । ललित निबंधों का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं है । निबंधकार पाठकों को एक दृष्टि, दर्शन एवं नैतिक मूल्यों के हिमायती के रूप में मिलने को उद्यत होता है । अपनी लेखन प्रक्रिया में वह एक आत्मीय दोस्त सरीखा संवाद करता जाता है इस दृष्टि से एक ललित निबंध पढ़ने का अर्थ होता है एक बहुश्रुत पंडित एवं लोक संस्कारों से घनीभूत व्यक्तित्व से साक्षात्कार करना यहाँ निबंधकार पाठकों के साथ अत्यंत आत्मीय तादात्म्य करता है - पाठकों

को अपने विश्वास में लेकर । यही कारण है ललित निबंध गंभीर विधा होने के बावजूद भी बंध की दृष्टि से ढीला ढाला ही होता है ।

ललित निबंधों को मंदस्मृति के गीत माना गया है । निबंध ऐसा होता है आकार में छोटा और कथात्मकता से रहित गद्यविधा है जिसमें चिंतन की धारा रहती है, इस दृष्टि से निबंधकार समाजचिंतक है । वह उस चिंतनधारा को तब तक प्रवाहमान रखता है जब तक उसे सत्य के दर्शन नहीं होते । चूँकि निबंधकार सत्य एवं मानवमूल्यों का अन्वेषक होता है अतः आम पाठक उसके साथ तादात्म्यता स्थापित नहीं कर सकता है अतः निबंधों के पाठक वर्ग को संस्कारों से युक्त होना अनिवार्य बन जाता है ।

विद्वानों ने ललित निबंध की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं । मान्टेन के अनुसार "निबंध विचारों, उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है । निबंधों का केन्द्र स्वयं निबंधकार होता है, इसलिए ही मान्टेन ने एक प्रसंग में स्वीकार भी किया है कि "अपने निबंधों का विषय मैं ही हूँ । ये निबंध अपनी आत्मा को दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास मात्र हैं, कोई नवीन चीज नहीं ।" इस स्वीकृति से यह अंश स्पष्ट होता है कि श्रेष्ठ निबंधकार अपने निबंधों में अपना ही अन्वेषण करता है, दूसरों के दोषों को उजागर करने के बजाय अपने को ही उजागर करता है ।

प्रसिद्ध निबंधकार गुलाबराय का कहना है - "निबंध उस गद्यरचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया गया हो ।[69] इस परिभाषा में निबंधकार की परिधि का विस्तार हुआ है । मान्टेन के अनुसार निबंधकार ही निबंधों का केन्द्रबिंदु है तो गुलाबराय के अनुसार कोई भी विषय निबंध के कलेवर में आ सकता है, बस, उसके प्रतिपादन में निबंधकार को विशेष जागृति बरतनी होती है ।

डॉ. भगीरथ मिश्र की परिभाषा में ने निबंध की सशक्त व्याख्या की है - "निबंध वह गद्यरचना है जिसमें लेखक किसी भी विषय पर स्वच्छंदतापूर्वक परंतु एक विशे

सौष्ठव, संक्षिप्ति, सजीवता और वैयक्तिकता के साथ अपने भावों विचारों और अनुभावों को व्यक्त करता है ।[70] इन परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि ललित निबंध वह साहित्यिक विधा है जो कि आलोचनात्मक तथा अन्य अन्यान्य निबंधों की तुलना में अधिक सरस, ललित और व्यक्तिगत छाप को अपने में समाया रहता है । अर्थात् ललित निबंध "निजी रागात्मकता" की अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है । यहाँ निबंधकार अपने विचारों तथा अपने जीवन-दर्शन को प्रतिपादित करने के पक्षधर होते हुए भी इस प्रक्रिया में वह तर्क अथवा किसी सीमा के बंधन में अपने को रखना नहीं चाहता है । क्योंकि वह एक विषय पर निबंध का लेखन-कार्य शुरू करता तो है किन्तु क्रमशः वह इस प्रकार पुर्तनांतर करता जाता है कि अपनी रुचि और प्रकृति-प्रवृत्ति के अनुसार नाना विषयों को लाकर विवेचन शुरू करता है । निबंधकार कहीं से भी जीवन संदेश का अन्वेषण कर सकता है । तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं से भी वह जीवन साक्षात्कार कर सकता है । यह तभी हो सकता है जबकि वह सर्जनात्मक प्रतिभा के धनी हो, संवेदनशील हो, सहृदयी हो, जीवन के प्रति प्रीतिभाव रखता हो । ललित निबंधकार के विशिष्ट गुणों को रेखांकित करते हुए डॉ॰ विश्वंभर नाथ उपाध्याय का कहना है - 'ललित निबंध लेखक वही हो सकता है जो पैनी दृष्टि से जिंदगी को देख सकता हो । मच्छर और जूते की कील से लेकर मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विषयों पर भी ललित निबंध लिखे जाते हैं किंतु निबंध में विषय [illegible] सर्वथा माध्यम मात्र रहता है, उसमें पाठक लेखक की निरीक्षण शक्ति, लेखक की नैतिक भावना, उसकी सौंदर्य दृष्टि और भावना को देखता है । इसके अलावा लेखक की शैली निबंध को सफल बनाने में सबसे अधिक सहायक होती है । वाक् कुशलता के बिना निबंध नहीं लिखा जा सकता ।'[71] पंडित रामचंद्र शुक्लजी ने निबंधकार की विशिष्टताओं की चर्चा करते हुए इस प्रकार अपना अभिप्राय प्रकट किया है - 'तत्वचिंतक या दार्शनिक अपने व्यापक सिद्धांतों के प्रतिपादन के लिए उपयोगी कुछ संबंधसूत्रों को पकड़कर किसी ओर सीधा चलता है और बीच के ब्यौरों में कहीं नहीं फँसता है । पर निबंध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छंद गति से इधर उधर फूटी हुई शाखाओं पर विचरता चलता है । यही उसकी अर्थ संबंधी विशेषता है...जो करुण प्रकृति के हैं उनका मन किसी बात को लेकर, अर्थ-संबंध सूत्र पकड़े हुए, करुण स्थलों की ओर झुकता और गंभीर

वेदना का अनुभव करता चलता है । जो विनोदशील हैं उनकी दृष्टि उसी बात को लेकर वैसे पक्षों की ओर दौड़ती है ।" प्रस्तुत उद्धरण से ललित निबंधकार का मनोधर्म स्पष्ट होता है । ललित निबंधकार चंचल-हिरन की भाँति व्यक्तिगत रुचि के अनुरूप लोकमानस का विश्लेषण करता जाता है ।

इधर हमारे ललित निबंधकारों ने अपने निबंध-लेखन में व्यंग्य का अत्यंत प्रभावकारी ढंग से उपयोग किया है । व्यंग्य और विनोद निबंधकार के कथ्य को अत्यंत रोचक और प्रभावकारी बनाते हैं जिनके बिना निबंध अपना वांछित प्रभाव डाल सकता है । निबंधों में व्यंग्य की महत्ता को रेखांकित करते हुए भी नवलकिशोर का कहना है कि - "व्यंग्य विनोद का स्थान भी निबंध में बहुत महत्वपूर्ण है । विनोद तबीयत को गुदगुदा देता है और गंभीर बात भी सरल हो जाती है । व्यंग्य से सारे ऊपरी आवरण हट जाते हैं और वास्तविकता अपने नग्नरूप में उपस्थित हो जाती है । जिन निबंधों में युग के प्रश्न उठाये जाते हैं, जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया जाता है, मानव प्रकृति के अध्ययन का प्रयास होता है, व्यंग्य विनोद का समावेश उन्हें रोचक बना देता है, जैसेकि कविता के प्रभाव को अनुकूल लय उत्कर्ष प्रदान कर देती है । ...व्यंग्य-विनोद का नियोजन निबंध में उस समय अनिवार्य हो जाता है, जब अभिव्यक्ति की आजादी न हो या बात को सीधे ढंग से रखना अवांछनीय हो । व्यंग्य विनोद आंतरिक उत्साह का व्यंजक भी है ।[72] हिन्दी साहित्य के संदर्भ में तो भारतेंदु और द्विवेदीयुग के समस्त निबंधकारों ने, व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख आधार बनाया है जिसकी ओर पिछले अध्याय में संकेत किया जा चुका है । रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, गुलाब राय जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने केवल ललितनिबंधों में, अपितु अपने साहित्यिक और आलोचनात्मक निबंधों में भी व्यंग्य का इस प्रकार प्रयोग किया है कि ये निबंध अपने लक्ष्य को डंके की चोट करने में सफल हुए हैं

इधर ललित निबंधों को मात्र व्यक्तिगत लहरियों तथा मुक्त चिंतन मात्र न मानकर उसे शास्त्र और एक शैली स्वतंत्रविधा के रूप में स्थापित किया गया है । निबंध को लेखक की जीवनदृष्टि का परिपाक कहा गया है । हिन्दी के सुप्रसिद्ध ललित निबंधकार [illegible] कुबेरनाथ राय का निबंध संबंधी चिंतन निबंध को विशाल

कैनवास पर स्थापित करता है । उनका कहना है -"ललित निबंध एक ऐसी विधा है जो एक ही साथ शास्त्र और काव्य दोनों है । एक ही साथ, आगे-पीछे के क्रम में नहीं । महाकाव्य भी काव्य और शास्त्र दोनों होता है । परंतु पहले वह काव्य होता है, इसके बाद शास्त्र । प्रत्येक महाकाव्य के हृदय में कोई न कोई शास्त्र अर्थात् दर्शन अवश्य रहता है । वैसे ही ललित निबंध भी शुद्ध मौज़ शौकिया मात्र आनंद से जुड़ी विधा नहीं है । इसमें एक व्यक्त या अव्यक्त जीवन दृष्टि रहती है । यह शुद्ध गद्यकाव्य न होकर एक दृष्टि संपन्न विधा है । इसीसे यह एक ही साथ शास्त्र और काव्य दोनों है।[73]

निबंधकार की जीवन दृष्टि उसके निबंधों में झलकनी चाहिए क्योंकि वह अपनी रचना का आधार समाज को स्वीकार करके उसके प्रति प्रतिबद्ध रहता है । समाज की विसंगतियों , विद्रूपों और वहाँ के मूल्यों की पड़ताल करना निबंधकार का कर्तव्य हो जाता है अतः यह उसका उत्तरदायित्व है कि एक जीवन दर्शन प्रस्तुत करे जोकि लोक मंगल में सहायक हो । जैसे ,महाकाव्य अपनी बृहत्तर कैनवास पर जो दर्शन देता है वैसे निबंधकार अपनी सीमा में जीवन को उदात्त बनाने को सोचना चाहिए । इस प्रकार यह ललित निबंध विधा एक "दृष्टि संपन्न विधा" है और इसकी साधना में निबंधकार का अध्ययन, लोकानुभव, सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि आदि सहायक होते हैं जिसके आधार पर वह अपने जीवन दर्शन का पोषक- रस ग्रहण करता है । निबंधकार के धर्म पर प्रकाश डालते हुए कुबेरनाथ कहते हैं - "विषय के आसपास शिव के साँड़ की भाँति मुक्त चरन और विचरन ललित निबंध है ।[74]

ललित निबंधों के व्यक्तिपरक निबंध (पर्सनल एसे) कहा गया है । कुबेर नाथ राय मानते हैं इस संज्ञा से ललित निबंधों की मर्यादा सीमित होती है । ललित निबंध को व्यक्तिपरक निबंध कहने की प्रवृत्ति पर आक्षेप करते हुए कुबेरनाथ आगे लिखते हैं - "दुर्भाग्यवश ललित निबंध की एक संज्ञा" व्यक्तिपरक निबंध (पर्सनल एसे) भी है । इस संज्ञा के कारण भी हिन्दी पाठकों में यह भ्रांति फैली है कि यह वस्तुनिष्ठ रम्य रचना न होकर लेखक की आत्मकथा का टुकड़ा है और वे प्रत्येक संदर्भ में लेखक के यथार्थ जीवन को ढूँढने की मूर्खतापूर्ण चेष्टा करते हैं ।[75] कुबेरनाथ राय ललित निबंध विधा को

उसमें अभिव्यक्त लेखकीय छाप यानी व्यक्तित्व के आधार पर उसके निजी व्यक्तित्व की रेखाओं को ढूंढने के प्रयासों की आलोचना करते हुए कहते हैं - "साहित्य का "मैं" सर्वदा समूहवाचक सर्वनाम होता है । वह शाश्वत "मैं" है । वस्तुतः "व्यक्तिपरक" शब्द का संबंध "तथ्य" से नहीं है, "भंगिमा" से है । व्यक्तिपरक निबंधों में लेखक का "जीवन" (यानी जीवन का कच्चा माल) नहीं उसका "व्यक्तित्व" व्यक्त होता है और वह भी "तथ्य" (कंटेंट) में नहीं बल्कि भंगिमा और शैली में । अतः लेखक के निजी जीवन की खोज एक अत्यंत सीमित अर्थ में ही उसके ललित निबंधों में होनी चाहिए ।[76]

कुबेर नाथ राय ललित निबंध को शुद्ध साहित्य मानने के साथ ही साथ उसे रसबोध कराने की विधा भी मानते हैं । ललित निबंध "रसबोध" कराने में समर्थ होने चाहिए । निबंध रसबोध कराने में असफल होते हैं तो समझना चाहिए कि उस हद तक निबंध असफल हैं । ललित निबंध के रसबोध को रेखांकित करते हुए कुबेरनाथ राय ने कहा है - "ललित निबंध तो उतना ही "शुद्ध साहित्य है जितना कि गीत काव्य । तो इसके भीतर भी जो माल परोसा जाता है वह "स्वलोक" के कारखाने में तैयार होता है । अतः उसके अध्ययन विवेचन में यथार्थ जीवन या भौतिक लोक की विलोम-अनुलोम इच्छाओं को बहुत महत्व देना समीचीन नहीं .....ललित निबंध एक "ललितबोध" या "रसबोध" पर आधारित होता है । भले ही यह रस "भीमनाक" या करैला पाक हो । "रम्य" अर्थात् "रमणीय" सदैव मधुर के अर्थ में ही गृहीत नहीं होता है । कोई भी अनुभव जो प्रगाढ़ और गहन-गंभीर हो, जो उदात्त हो, जो चित्त को विस्तृत करके "स्व" की कोटर से हमें मुक्त कर दे, या कम से कम जो चित्त को चमत्कृत कर सके, वह सब रम्य या रमणीय कहे जाने का अधि[कारी] है । ललित निबंध में गद्य में प्रस्तुत "रम्य रचना" है ।[77] कुबेरनाथ राय ने जो कि स्वयं ललित निबंधकार हैं, जिन्होंने अपने ललित निबंधों के माध्यम से इस विधा को आयाम दिया है और भारतीय मानस को नये संस्कार दिये हैं, ललित निबंध विधा को शुद्ध साहित्य एवं रसात्मक बोध साहित्य सिद्ध किया है । ललित निबंध निबंधकार की मात्र वाक्चातुरी या उसका स्वगत भाषण नहीं अपितु जीवन के उदात्तमूल्यों को प्रतिपादित और स्थापित करनेवाली सशक्त विधा है ।

परसाई अपने वैचारिक निबंधों में अत्यंत गंभीर और व्यवस्था के कटु आलोचक हैं किन्तु ललित निबंधों में अत्यंत सरल और मुक्त चिंतक हैं । उन्होंने मानव स्वभाव की गहराइयों में जाकर उसके संकीर्ण स्वरूप को समझने के सार्थक प्रयास किये है । इस दृष्टि से परसाई के ललित निबंध मानव स्वभाव के भाष्य हैं । इस भाष्य में परसाई ने अपनी चमत्कृत करनेवाली भाषा भंगिमा, कहावतों , सूक्तियों, प्राचीन कथासूत्रों, मुहावरों, तथा चौंकानेवाले बिंबों का इतना सार्थक उपयोग किया है जिसके कारण इनके ललित निबंध भावना के मुक्त आंगन में विचरण करते हुए जीवन मूल्यों का अन्वेषण करते हैं । इस प्रक्रिया में परसाई बुद्धि पक्ष का प्रश्रय न लेकर हृदय पक्ष के पक्षधर होते हैं परसाई के ललित निबंधों की विशेषता उनकी व्यंग्यमयी शैली की वक्रता में है, प्रसंग कल्पना में हैं, व्यक्ति और समाज की विसंगतियों की जड़ पकड़ने में है, जगद्दर्शन द्वारा आत्मदर्शन और आत्मदर्शन द्वारा जगद्दर्शन कराने की कला में है ।

परसाई के ललित निबंध व्यक्तित्व प्रधान हैं । इनके निबंधों में विषयों का व्यक्तिपरक विश्लेषण है, इस विश्लेषण का मूल आधार लेखक के अपने अनुभव हैं अपनी अनुभूतियाँ हैं । जिस विषय को अपने निबंध का लक्ष्य बनाते हैं, उसके विश्लेषण के लिए जो परिवेश और प्रसंग निर्मित करते हैं वे व्यक्तिमूलक होने पर भी उनसे संप्रेषित होनेवाले सब लेखकीय दर्शन के कारण व्यक्तिगत सीमा पार कर करके सार्वत्रिक बनकर रसात्मक बोध के योग्य बनते हैं ।

परसाई के ललित निबंधों का बंध बने बनाये सिद्धांतों की लीक पर आधृत नहीं है, वहाँ उन्मुक्तता है । उनकी शैली ग्रांथिक न होकर आत्मीय संवाद के समान है, लगता है परसाई अपने पाठकों से अनौपचारिक बातचीत कर रहे हों । इस दृष्टि से इनके निबंधों को पढ़ना कभी बोझ नहीं लगता अपितु आनंददायी अनुभव होता है । घटनाएँ और वाक्य एक दूसरे के हाथ पकड़कर प्रांजल गति से गतिमान रहते हैं ।

परसाई के कथा साहित्य और निबंध साहित्य के बीच निश्चित विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती है कि यह निबंध है और यह कहानी है । अतः इनके निबंध निबंधात्मक कहानियाँ हैं और इनकी कहानियाँ कथात्मक निबंध हैं । इनके

निबंधों और कहानियों में कहानी भी है और विचार भी हैं । परसाई ने अपनी इस विशिष्ट शैली के द्वारा निबंध और कहानी की परिभाषा ही बदल दी है । हिन्दी ललित निबंध-परंपरा को समृद्ध करने में परसाई का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । जिसका संकेत करते हुए कमला प्रसाद का कहना है - "रामचंद्र शुक्ल अक्सर "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" दोहराते थे।" जीवन भर इस कसौटी में खरा भी उतरने का संघर्ष वे झेलते रहे । क्रोध, करुणा, श्रद्धा और भक्ति जैसी मानवीय प्रवृत्तियों को खोजते हुए वे निरपेक्ष पांडित्य से जूझे । जीवन और ज्ञान के संदर्भ जीवित - यथार्थमूलक अनुशासनों की सहायता से वे मनुष्य का स्वभाव जान पाये उसी स्वभाव को उन्होंने निबंधों में व्यक्त किया । दरअसल बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी की निबंध परंपरा को रामचंद्र शुक्ल ने काफी विकसित किया । आजादी के बाद इसी उत्तराधिकार को निभाने की जिम्मेदारी परसाईजी ने ली है ।[78] परसाई ने एक प्रतिबद्ध जनवादी लेखक होने के नाते अपने निबंधों के द्वारा आम आदमी की रुचियों का परिष्कार किया है, अवरुद्ध मानसिकता को नये मूल्यों का बोध कराया है और उनके संस्कारों की जाँच-पड़ताल की है जो कि इनके निबंधों की उपलब्धि है ।

कमलाप्रसाद के शब्दों में, "हरिशंकर परसाई के निबंध और उनका गद्य स्वतंत्रता के बाद सबसे ताजा, प्रखर, जनतांत्रिक और विशिष्ट है । अपने समय का आत्मिक जनतंत्र इतना वाचाल और अगाध कम है । वैचारिक और भावात्मक दोनों दृष्टियों से उन्होंने तुलनात्मक सौंदर्य को संदेशमूलक बनाकर संस्कृति के इलाके में पैठने को जन्म दिया है ।[79]

आगे परसाई के कुछ ललित निबंधों की समीक्षा प्रस्तुत की गई है जो कि उनकी निबंध कला के विशिष्ट नमूने हैं -

<u>कविता और यथार्थता</u>

"तुलसी तुलसी" में परसाई भारतीयों की भावुक मानसिकता पर कटाक्ष किया है क्योंकि ये "तुलसी तुलसी" का गायन करके अपने को धन्य मानते हैं, भावात्मक तुष्टि

जाते हैं । हमारे कवियों ने ऐसी कविताओं की रचना करके हमारी जनता को यथार्थता की ओर आँख उठाकर देखने से मना किया है । परिणामस्वरूप हम वास्तविकताओं से दूर हटते जा रहे हैं । परसाई की दृष्टि 'सुजलां सुफलां' जैसी कविताओं में प्रयुक्त शब्दों, संगीत, लय और अर्थसंपदा के प्रति नहीं है । यहाँ भावुकता है, दैवीकरण है और आराध्यभाव है । इन सबके कारण ही हम हिमालय को नगाधिराज कहते हैं, गंगा-यमुना आदि नदियों के प्रति अभिमान करके इतराते हैं अर्थात् जल और प्रकृति को महान बताकर उनके अस्तित्वबोध पर गर्व करते हैं । परसाई इस प्रवृत्ति का खंडन करते हैं और झूठे गर्व पर इतराने के बजाय जीवंत दीन-हीन जनता के सुख-दुख के प्रति स्पंदित होने के लिए कहते हैं । परसाई ने अत्यंत गंभीर और विषाद भाव से "सुजलां सुफलां" वाले गीत में वर्णित शब्दों के बिल्कुल विपरीत जीवन को वर्तमान ज़िंदगी में दर्शाकर हमारे लोकजीवन के कृष्णपक्ष को उजागर किया है । प्रस्तुत कविता स्वप्नदर्शी भावुक है, लोगों को भ्रम में डालनेवाली है । नग्नता से, वास्तविकताओं पर परदा डालकर एक यूटोपिया लोक का सृजन करनेवाली है । परसाई इस कविता के एक-एक शब्द में जो "झूठ" है उसका पर्दाफाश इस प्रकार करते हैं - "बंकिमचंद्र होते तो मैं उनसे पूछता कि क्या यही तुम्हारी सुजलां सुफलां मलयज शीतलां शस्य श्यामलां" मातृभूमि है ? सुजला ! वाह, सावन का महीना सूखा जा रहा है, हर साल फसल प्यासी मर जाती है और बंकिम कहते हैं - सुफलां ! और सुफलां कहा हैं ? किसी के अमरूद को हाथ तो लगा लो । तथा रुपये सेर के आम कितनों के लिए सुलभ" हैं ? और मलयज शीतलां ?? इधर बायें तरफ से कारपोरेशन की नाली की दुर्गंध आ रही है और सामने से धूल भरी हवा के बवंडर आने की । शस्य राशि कहाँ है ? दूसरे देशों से अन्न उधार लेकर इस स्वर्ण भूमि के पचास करोड़ देवता पेट भर रहे हैं । गाँवों में मनुष्य पशुओं का हिस्सा छीनकर खा रहे हैं और बंकिम को "शस्य श्यामला" दीख रहा है ।[80] देश की गरीबी, भूख और नग्नता को छिपाकर भ्रमलोक में ले जानेवाली कविताओं से परसाई परहेज़ करते हैं ।

"सुजलां सुफला" निबंध का आरंभ ही यहाँ के सूखे के वर्णन से होता है । यहाँ

पानी नहीं है, यहाँ धरती पर आसमान से गिरी हुई बूँदों को स्पर्श किया जा सकता है । तब भी हम गीत गाते हैं । प्रस्तुत निबंध में वास्तविक जीवन और कविता के बीच की दूरी को रेखांकित किया गया है ।

दफ्तर और आम आदमी कीट विवशता :-

परसाई ने "मिल लेना" निबंध में मिलने और मिलाने वालों की विवशताओं को चित्रित किया है । दूसरे शब्दों में हमारी दफ्तर शाही संस्कृति में लोगों का काम आसानी से नहीं होता है जिसके कारण लोग ऐसे लोगों को पकड़ते हैं जो अधिकारियों के निकट के होते हैं और एक बार "मिल लेने" में संकोच का अनुभव नहीं करते हैं । प्रस्तुत निबंध में एक व्यक्ति लेखक से किसी मंत्री साहब से मिलने के लिए कहता है, मगर यह लेखक संकोच करते करते आखिर मजबूर होकर मिल भी गए, किन्तु तभी उनके दफ्तर में आई फाइलें और उनपर चिपकाये गए चिटों की शब्दावलियाँ और उनकी व्याख्या सुनकर एक शब्द भी बोल नहीं पाए । इसका कारण भी लेखक स्वयं बताते हैं - "इसी समय चपरासी फाइल लेकर आया - उसमें "इमीडियट" और "अर्जेंट" की पर्चियाँ लगी थीं...थोड़ी देर सेक्रेटरी आया - उसके पास भी फाइल थी । उसमें भी "इमीडियट" और "अरजेंट" की पर्चियाँ लगी थीं ।...वे कभी उन पर्चियों की तरफ देख लेते, मैं भी नज़र डाल लेता । दोनों की नज़रें मिलतीं, तो मैं समझ जाता कि इन पर्चियों का असर उनपर पड़ रहा है । वे बेमन से बातें करने लगे । यों इन पर्चियों का मतलब मैं जानता हूँ - इमीडियट का अर्थ है साल भर, अरजेंट का पाँच साल । जिस कागज पर कोई पर्ची न हो, उस मामले को बिना निपटाये आदमी रिटायर हो सकता है ।[8] यह हमारे दफ्तरों का कार्यविधान है जहाँ स्नेह, विवशता, मजबूरी, गरीबी की सुनवायी नहीं होती है मगर "धनी" लोगों का ही यहाँ उद्धार होता है । प्रस्तुत निबंध में हमारे मंत्री और दफ्तरों की निष्क्रियता पर प्रहार किया गया है ।

स्नानः बुर्जुआ वर्ग का संकेत

"स्नान" - एक ललित निबंध है जिसमें परसाई ने स्नान के संबंध में प्रचलित

विश्वासों एवं अंधविश्वासों का विवेचन किया है । स्नान का भारतीय जीवन में इतना महत्व है कि उसके बगैर हमारा दैनिक जीवन शुरू ही नहीं होता है । भले ही कोई दोपहर तक भूखा बैठा रहे किन्तु जबकि खाने को बुलाया जाता है तो यही कहता है कि उसने स्नान नहीं किया है, इसलिए खाना भी नहीं खायेगा । मगर यहाँ परसाई आश्चर्य प्रकट करते हैं कि स्नान और खाने के बीच क्या संबंध है - "और मुझे आज तक यह समझ में नहीं आया कि नहाने और खाने का क्या संबंध है ? कोई दोस्त इतवार को सुबह आ जाता है और दोपहर तक बैठता है, मैं उससे भोजन करने के लिए कहता हूँ, तो वह कह देता है - अभी तो नहाया नहीं है । कितनी लचर दलील है ? नहाया नहीं है, तो खाना क्यों नहीं खा जायेंगे ? नहाते शरीर से हैं, पर खाते तो सिर्फ मुँह से हैं ।[82] इस प्रकार नहानेवालों स से ज्यादा, नहाने को इनकार करनेवालों से परसाई का ज्यादा प्रेम है । खासकर परसाई प्रयाग जाकर बिना स नहाये आनेवालों के प्रति परसाई के मन में अपार श्रद्धा है क्योंकि प्रयाग जाकर नहाना पापों से छुट्टी पाने का विधान है और उससे पाप करने की छुट्टी मिलती है । प्रयाग में स्नान करनेवाले संस्कारों के गुलाम होते हैं । किन्तु प्रयाग जाकर बिना नहाये जो आता है वह सचमुच नरपुंगव है, वह परंपरा के प्रति विद्रोह करनेवाला पुरुषसिंह है ।

रोज नहानेवालों के इस अभ्यास के पक्ष-विपक्ष में परसाई सुंदर तर्क देते हैं । एक ओर स्नान को स्फूर्ति का केन्द्र, दिमाग साफ करने का विधान, काम में मन लगाने की विधि माननेवालों में भी अनेक ऐसे आलसी कामचोर मिलते हैं जो कि स्नान करके एकदम ऐसे स सो जाते हैं कि दूसरे दिन सुबह तक उठने का नाम तक नहीं लेते । इसलिए परसाई स्नान का संबंध उपरोक्त अंशों से जोड़ने को इनकार करते हैं । दूसरी ओर जो किसी भी मौसम में दो-तीन बार स्नान करके बड़भागी समझते हैं, उन्हें भी परसाई व्यंग्य करते हैं । इस दृष्टि से देखा जाय तो स्नान बुर्जुआ वर्ग का पोषक, सामंतवादी संस्कृति की धरोहर है । इसलिए परसाई ने स्नान के प्रति विद्रोही नारा लगाया है । "स्नान" निबंध स्नान की अच्छाई-बुराइयों को लेकर , अत्यंत आत्मीय स्वर में संवाद करता है ।

नीलकंठ - दुःख प्रदर्शन का विधान

"नीलकंठ" निबंध में परसाई ने शंकर के नीलकंठ होने के पीछे उनके दिखावे की प्रवृत्ति को मूल कारण बताते हुए कहते हैं शिव का नीलकंठ उनके विष पी जाने का संकेत है। यदि यह संकेत गले पर नहीं होता तो संसार को इस बात का पता ही नहीं चलता कि उसने ज़हर पीया है। अर्थात् संसार के सम्मुख अपने कष्ट का प्रदर्शन करने के लोभ से शंकर भी बच नहीं पाये। इस दृष्टि से हमारे दुख-भोगियों के लिए शंकर आदर्श हैं क्योंकि शंकर ने ही इस प्रदर्शन कारी प्रवृत्ति का श्रीगणेश किया है। परसाई ने प्रस्तुत ललित निबंध में ऐसे कुछ अजीबो-गरीब व्यक्तियों की विशिष्ट मानसिकता का उद्घाटन किया है जोकि दुख का प्रदर्शन करके संसार की सहानुभूति हासिल करना चाहते हैं। ये नीलकंठ ऐसे हैं कि "स्वेच्छा से विषपान करने में "नीलकंठता" का बड़ा आकर्षण है। अपनी कोशिश यह होती है कि ज़हर तो कम से कम पियें, पर कंठ अधिक से अधिक नीला हो और कोई तो गले पर नीली स्याही पोतकर ± "नीलकंठ" बने फिरते हैं।[83] अर्थात् ये नीलकंठ अपने दुख का व्यापार करना चाहते हैं, इस व्यापार में जो सहानुभूति का ब फल मिलता है, उसे रसानुभूति का आनंद ग्रहण करते हैं। प्रस्तुत निबंध में परसाई इस बात को रेखांकित करना चाहते हैं कि मनुष्य क स्वभाव इतना विचित्र और संकीर्ण होता है कि उसे दुख भोगने की अपेक्षा सहानुभूति ही महत्वपूर्ण लगती है उदाहरण के लिए - लड़ाई में घायल व्यक्ति अपने घाव को पूँजी बनाकर सहानुभूति अर्जित करता है, माता के देहांत होने पर मुँह लटकाकर अथवा सि मुँड़वाकर लोगों की हमदर्दी को हासिल करना चाहता है, चाचा की मृत्यु से अंदर ही अंदर खुशी का अनुभव करनेवाला सज्जन बाहर से "पहाड़ टूट गया", "वज्रापात हो गया" जैसी शब्दावलियों का यथेष्ठ प्रयोग करके अनुकंपा का पात्र होना पसंद करता है, उधार लिये हुए पैसे को वापस लेने से इनकार करनेवाला मित्र यह कहकर लोगों की दया का पात्र बनना चाहता है कि लोग हमें तंग कर रहे हैं और ये सब तब खुश होते हैं जब ब लोग कहते हैं - "यह बेचारा बड़ी तकलीफ़ उठा रहा है, "रामनाम भैया, बड़ा बुर हुआ, क्या बीमारी थी ?" और आपको लोग बहुत तंग करते हैं, आप बड़ा नुकसान

उठाते हैं ये लोग दुख के धन्धे में आनंद उठानेवाले हैं। ऐसे लोगों को परसाई दया के पात्र मानते हैं, इनकी जीवन दृष्टि को अपूर्ण मानते हैं, दुख का विश्वीकरण इस प्रकार करना लोकमंगल नहीं मानते हुए परसाई कहते हैं - 'दुख का ऐसा धर्म मुझे बहुत बुरा लगता है। या तो जहर पीयो मत, यदि पीना ही पड़े, या दूसरों के मंगल के लिए स्वेच्छा से पी लो, तो कंठ नीला किये मत घूमो। पर यहाँ तो मैं दुख का व्यापार फैला देखता हूँ।'[84] इन सब नीलकंठों की प्रदर्शनकारी प्रवृत्ति के कारण सचमुच के नीलकंठी दुनिया की कृपादृष्टि के पात्र ही नहीं बनते, वास्तव में ये कृत्रिम दुखभोगी समाज के शत्रु हैं, शोषक हैं मानवीयता पर कलंक हैं जिसकी ओर परसाई ने अत्यंत मार्मिक ढंग से इशारा किया है - 'पर देख रहा हूँ कि इस ज़माने में दुहरा शोषण चल रहा है - आदमी की रोटी तो छीनी ही जाती है, उसके हिस्से की करुणा भी छीन ली जाती है। शंकर के नाम पर एक पक्षी ही "नीलकंठ" बना फिरता है और श्रद्धालुओं की श्रद्धा-भक्ति लेता है। आसमान में नीले कंठ के परिन्दे उड़ते देखता हूँ और इनकी भीड़ में वास्तव में विषपान करनेवाला बेचारा किसी कोने में दुबका खड़ा रहता है।'[85] परसाई की जनपक्षधरतावाली दृष्टि प्रस्तुत निबंध में निखर उठी है।

निंदा - एक अपूर्व रस

"निंदा रस" परसाई का एक ललित निबंध है जिसमें उन्होंने निंदा की महत्ता और हीनता को रेखांकित किया है, निंदा को ही रस का दर्जा देकर उस रस में डुबकियाँ लगानेवाले व्यक्तियों की मानसिकता का पर्दाफाश किया है। परसाई इस निबंध में निंदा भाव का बड़ा सुंदर विश्लेषण किया है कि निंदकों का आत्म परितोष निंदा करने में है और जिसकी निंदा करते हैं उनकी महत्ता को स्वीकार करने की उदारता, अपनापन तक इनमें नहीं है। ये निंदक भक्त जनों से भी परम श्रद्धालु होते हैं उतनी एकाग्रता, तन्मयता उनमें होती है - 'दो-चार निंदकों को एक जगह बैठकर निंदा में निमग्न देखिये और तुलना कीजिए दो-चार ईश्वर भक्तों से जो रामधुन लगा रहे हैं। निंदकों की सी एकाग्रता, परस्पर आत्मीयता, निमग्नता भक्तों में दुर्लभ है। इसलिए

संतों ने निंदकों को 'आँगन की कुटी छवाय' पास रखने की सलाह दी है ।[86] निंदकों को जितनी तन्मयता निंदा में मिलती है, उतनी तन्मयता भक्तों को भक्ति में नहीं मिलती है ।

निंदा एक दवा है, जिसके पान करने से निंदक के सारे रोग दूर जाते हैं । ये निंदक बीमार पड़े हकीम के पास जाकर दवा लेने के बदले किसी की निंदा में तत्पर हो जाएँ तो वे अद्भुत ढंग से चंगे हो जायेंगे । इसका एक दिलचस्प प्रसंग परसाई उद्धृत करते हैं - "हमारी एक पड़ोसिन वृद्धा बीमार पड़ी थी । इससे पानी माँगकर पीती थी - उठा नहीं जाता था । सहसा किसी ने आकर कहा कि पड़ोसी डाक्टर साहब की लड़की किसी के साथ भाग गई । बस, चाची एकदम उठीं और काँखती-काँखती दो-चार पड़ोसियों को यह शुभ संवाद अपने व्यक्तिगत "कामेंट" के साथ सुना आयीं । उस दिन से उनकी हालत सुधरने लगी ।[87] इस प्रकार निंदा नाना आयामों का एक-एक करके परसाई उद्घाटन करते हैं ।

निंदा का मूल उत्स उद्घाटित करते हुए परसाई का कहना है कि निंदा निंदक की बड़ी हानि तब करती है जबकि ईर्ष्या-द्वेष से निंदा की जाती है । निंदा का उद्गम हीनता और कमजोरी है, दूसरों की महत्ता को स्वीकारने की कृपणता निंदा को जन्म देती है । "निंदा" में दूसरों की महत्ता को अवमूल्यन करके अपने को प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति रहती है मगर अंततोगत्वा निंदक की ही हानि होती है । निंदा न व्यक्तिगत जीवन का अभिशाप है, अपितु सामाजिक जीवन में भी वह अमंगल कारी है

आलोचना और निंदा में साफ अंतर है । आलोचना से स्वस्थ-समाज को बनाने की प्रेरणा रहती जबकि निंदा में बिगाड़ने की । "अपने वतन में इतनी शराफत कहाँ है दोस्त" निबंध में भी परसाई प्रसंगवश निंदा की चर्चा करते हुए कहते हैं - "निंदा की मैं परवाह नहीं करता । मैं कुछ लोगों की आलोचना तो करता हूँ, पर निंदा नहीं दोनों में बहुत फर्क है । आलोचना स्वस्थ प्रवृत्ति है । निंदा कैंसर है । निंदक अपनी मौत मरता है । अकाल मृत्यु । यह उसके शरीर की नहीं, उसकी आत्मा की, उसकी स्पिरिट की मृत्यु होती है ।[88] निंदा एक ऐसा रस, एक ऐसा भाव है जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों का अशुभ होता है ।

अभिनंदन : निजी ढिंढोरा पीटने का विधान

"अभिनंदन - निबंध में परसाई अभिनंदन करवाने के चक्कर में पड़े हुए व्यक्तियों की मानसिकता और अभिनंदनों की यथार्थता के रहस्यों का अत्यंत मार्मिक ढंग से उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि ये अभिनंदन किस प्रकार अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं। अभिनंदन एक सामाजिक गौरव है, पवित्र सम्मान है जिसे समाज अपने बीच के विशिष्ट व्यक्ति के प्रति अर्पित करता है। किन्तु ये अभिनंदन आज के दिनों में इस प्रकार अर्थविहीन हो चुके हैं कि सचमुच के अभिनंदन को भी शंका की दृष्टि से देखने के दिन आ गए हैं।

परसाई प्रस्तुत निबंध में अभिनंदनों के चमत्कारों का ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं और कहते हैं आजकल अभिनंदन होते नहीं हैं, करवाये जाते हैं। परसाई के शब्दों में "अभिनंदन तीन तरह के होते हैं - कुछ तो अपने आप हो जाते हैं - याने जिसमें अभिनंद्य को माला पहनने और मुस्कुराने के सिवा कुछ नहीं करना पड़ता। कुछ कराये जाते हैं जिनमें सारा काम अभिनंद्य को करना पड़ता है, पैसा इकट्ठा करने से लेकर अभिनंदन पत्र छपाने तक। कभी कभी अभिभाषण भी उन्हीं को लिखवाना पड़ता है। फिर माला पहनकर मुस्कुराया भी वही करते हैं। कुछ अभिनंदन मिश्रित होते हैं - यानी कुछ लोग अभिनंदन करने को उत्सुक रहते हैं, पर उन्हें प्रोत्साहित करना पड़ता है और उनकी मदद करनी पड़ती है। इनमें पहले प्रकार के अभिनंदन कम होते हैं, अधिकांश अभिनंदन के कामों को अपने ही पुरुषार्थ पर निर्भर रहना पड़ता है।[89] इस विवेचन से स्पष्ट रूप से इस बात का अनावरण हो जाता है कि, पहली किस्म के अभिनंदन आज के दिनों में कम होते हैं क्योंकि सचमुच अभिनंदन पाने योग्य व्यक्ति अभिनंदन करा लेने की सोच भी नहीं सकता जबकि दूसरे किस्म के लोग ही हमारे यहाँ ज्यादा है जो अपना ढिंढोरा स्वयं पिटवाने के आदी होते हैं। ये लोग यहाँ तक कि अपना अभिनंदन करवाने के लिए स्वयं पैसा भेजते हैं। यदि सम्मान नहीं हुआ तो पैसा वापस भेजने का आग्रह करते हैं। परसाई जी एक अभिनंदनकामी व्यक्ति की एक चिट्ठी की पंक्तियाँ उद्धृत करके अभिनंदन का राज खोलते हैं - "आप अपने शहर में मेरा जन्म दिन समारोह मनाने के लिए तीन सौ रुपये ले गए थे। पर न आपने

समारोह किया, न रुपये लौटाये। कम से कम रुपये तो लौटा दीजिए।[90] परसाई कहते हैं कि व्यक्ति को प्राप्त अभिनंदनों के आधार पर उसका महत्व स्वीकार करेगा तो निश्चित रूप से वह धोखा खायेगा। इस प्रकार करानेवाले अत्यंत समर्थ होते हैं - वे नेता होते हैं, अधिकारी होते हैं।

यहाँ के लेखक का अभिनंदन नहीं होता है क्योंकि न उसके पास अधिकार है, न फायदा करने न नुकसान करने का बल है। लेखक अपना अभिनंदन करने को कहते हैं - "मैंने कहा - साहित्य में उम्र बढ़ाकर अभिनंदन नहीं किया जा सकता?", वे बोले - किया जा सकता है। हम ने किया भी है, मगर तुम्हारा नहीं हो सकता। तुम न किसी का फायदा कर सकते हो, न नुकसान। तुम्हारे नाम से पैसा भी इकट्ठा नहीं हो सकता।[91]

"अभिनंदन" ललित निबंध अभिनंदन की राजनीति एवं कूटनीति रंग बिरंगे रूपों का एक एक करके प्रस्तुत करता जाता है। जिन्हें पढ़ते समय हर पाठक अभिनंदन से विभूषित व्यक्तियों को संदेह की दृष्टि से देखने को मजबूर होता है।

चंदा: आधुनिक जीवन का अभिशाप

परसाई के निबंधों में हास्य-विनोद के प्रसंग स्थान-स्थान पर बिखरे हुए हैं। इनमें हास्य-व्यंग्य उद्भावना की अपूर्व क्षमता है। ये हास्य विनोद व्यंग्य के प्रभाव को प्रगाढ़ बनाने में सहायक हुए हैं, साथ ही मनोरंजन और रस विभोर भी कर देते हैं।

ललित निबंध का क्या स्वरूप हो और उसमें हास्य-व्यंग्य का सम्मिश्रण किस ढंग का हो, इन बातों का उत्तर परसाई के "चंदा" नामक निबंध में मिलता है। "चंदा" निबंध पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि क्या चंदे के गर्भ में इतना सारा भरा हुआ है? निबंध लेखक का मुक्त चिंतन चंदा-लोक में विचरण करते हुए नाना अनुभवों को एक सूत्र में पिरोते हुए "चंदा पुराण" प्रस्तुत करता है।

"चंदा" वसूल करना बड़ा ही दुस्साध्य काम है। किसी के साथ दुश्मनी साधनी है तो परसाई उसे चंदा वसूल करने के काम में लगा देने की सलाह देते हैं।

चंदा किसी के प्रति प्रतिशोध लेने का जबरदस्त विधान है ।

"चंदा" एक आत्मकथ्यात्मक निबंध है जिसमें लेखक जो कि एक पत्रिका के संपादक की हैसियत अपनी पत्रिका के लिए ग्राहक-चंदा वसूल करने निकलते हैं तो उस दौरान जिन समस्याओं का सामना करते हैं, जिन व्यक्तियों से मुलाकात करते हैं, उनका सविस्तार वर्णन करने के द्वारा इस देश की त्रासदियों का प्रत्यक्ष निरूपण करके मानव-स्वभाव के अजीबो-गरीब व्यवहारों के दर्शन कराते हैं जो कि इस निबंध का कथ्य और लक्ष्य है ।

चंदे से संबंधित लेखक के अनुभव बड़े निराले हैं । इसलिए उन्होंने अनुभवों के आधार पर जो सिद्धांत बनाये हैं वे भविष्य के चंदा वसूलनेवालों के लिए मार्गदर्शी सूत्र बन जाते हैं । मांगना तीन प्रकार का होता है - अपने लिए मांगना, अपने समेत दूसरों के लिए मांगना । अपने लिए मांगने में लज्जा है । अपने समेत दूसरों के लिए मांगने में एक गर्व है । गांधीजी तीसरे प्रकार के मांगनेवालों में थे और उन्हें देनेवाला स्वयं गर्वित होता था । हम दूसरे प्रकार के मांगनेवाले थे ।[92]

परसाई अपने अनुभवों के आधार पर यह भी बताते हैं कि जो स्वयं प्रेरित होकर चंदा वसूल करने को उद्यत होते हैं उनको यह काम बिलकुल सौंपना नहीं चाहिए । क्योंकि वे चंदा रस से परिचित हुए रहते हैं ।

परसाई चंदा वसूल करने निकले तो ऐसे सेठ व्यापारियों से मिले जो कि चंदे से नफरत करते हैं, चंदा वसूल करनेवालों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं । उनसे अपमानित होने के बावजूद भी लेखक इस से पस्त नहीं होता क्योंकि उसका उद्देश्य चंदा वसूल करने के साथ ही साथ मानव स्वभाव का उद्घाटन करना है - एक सेठ जिससे चंदा वसूल करना बिलकुल असंभव था,, लेखक अपने पुलिस इन्स्पेक्टर मित्र के साथ उसके यहाँ गया तो उसने चंदा दे दिया । चंदा देने के बाद उसने ऐसा देखा मानो कह रहा हो कि इस देश के विधान में अगर नागरिक के जीवन-रक्षा के मौलिक अधिकार का उल्लेख न होता तो मैं तुझे यहीं मार डालता । अर्थात् मनुष्य सज्जनता और सत्कार्य का उतना आदर नहीं करता है जितना अधिकार-दंड का करता है ।

चंदा वसूल करने के लिए विलक्षण बुद्धि कुशलता की जरूरत होती है, तब जाकर सेठों से चंदा वसूल किया जा सकता है । लेखक ने पत्रिका पढ़ने के लिए फुरसत नहीं मिलनेवाले सेठ से उसके दुकान धर्म में चंदा वसूल कर ही लिया । अर्थात् हमारे लोगों के पास व्यापार करने, धन कमाने को समय रहता है जबकि मानसिक संस्कार पाने के लिए न समय होता है न पैसा । परसाई इस बात को रेखांकित करना चाहते हैं । आज के दिनों में चंदा वसूल करनेवाले किन्तु उसका अकाउंट न देने वाले वसूलदारों की संख्या इतनी ज्यादा है कि लोग ये समझ बैठे हैं कि चंदा देना एक रसूल है, बस उसे पूरा करो । इसलिए वे चंदा वसूल करनेवालों की सूरत से बात परिचय रखते हैं । उनके आते ही, उनका विवरण पाने के पहले ही बता देते हैं - "बस, बस, साहब, मैं तो सिर्फ चंदे का नाम पूछ रहा था । मैं यह थोड़े ही पूछता हूँ कि उसका क्या होगा ? पी है वार्षिक ? मैंने शुल्क बताया और उन्होंने दे दिया ।[93] चंदा देनेवालों की दृष्टि में चंदा लेनेवालों का नैतिक पतन हो चुका है, वह एक बला है जिसे टालने के लिए ये आतुर रहते हैं ।

परसाई ने चंदा देनेवालों के एक विचित्र स्वभाव को रेखांकित किया है जोकि चंदा देने को तैयार रहते हैं मगर अमुक व्यक्ति जितना देगा उतना ही वह भी देगा, न कम न ज्यादा । ये दोनों एक-दूसरे के पास चंदा माँगनेवालों को भेजते रहते हैं । चंदा माँगनेवाला इधर-से उधर भाग-दौड़ करते करते ऐसा थक जाता है कि आखिर चंदा लिये बिना ही चला जाता है । यह चंदा बचाने और चंदा माँगनेवालों को तंग करने का विधान है । कुछ लोग ऐसे होते हैं कि अपने मुँह से बताते नहीं किन्तु देंगे 10 रुपये से ज़्यादा नहीं ।

चंदा वसूल करनेवाले की दुर्गति का एक अनूठा नमूना प्रस्तुत करके परसाई इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि भविष्य में वे चंदा वसूल नहीं करेंगे । एक बार दूसरे गाँव में चंदा वसूल करने गए तो वहाँ के व्यापारी ने कह दिया - हाँ, ऐसा तो होता ही है, अपने शहर में आदमी की इज्ज़त नहीं होती, बाहर ही होती है । जबलपुर में आपकी इज्ज़त नहीं होगी, इसलिए आपको यहाँ आने की तकलीफ़ करनी पड़ी ।[94] चंदा वसूल करने जो भी निकलता है उसका हर क्षण संकट से गुजरता है, अपमान से पीड़ित रहता है, जिसकी ओर लेखक ने इशारा किया है ।

अंत में परसाई चंदा और चंदा माँगनेवालों की दुर्नीति के कारण ढूँढते हुए बताते हैं कि यह सामान्य विचार बन गया है कि चंदा माँगनेवाला बेईमान होता है, वह रकम खा जाता है और काम नहीं करता। इसलिए कोई देनेवाला इस बारे में दिलचस्पी नहीं लेता कि चंदे का क्या उपयोग हुआ....चंदा हमेशा खाने के लिए माँगा जाता है और मेरे सामने जो यह आदमी बैठा है, वह निहायत दुष्ट बेईमान आदमी है और मुझसे जो रकम मिलेगी, वह इसके पेट में जायेगी।[95] जीवन भर चंदा वसूल करने में जुटकर जीवन की सार्थकता का अनुभव करनेवाले व्यक्तियों को लेखक धन्यवाद देते हैं और चंदाधर्मियों पर जनता का विश्वास उठता हुआ देखकर चिंता भी प्रकट करते हैं। चंदा, चंदा देनेवालों और चंदा माँगनेवालों की चित्तवृत्तियों का बारीक चित्रण प्रस्तुत निबंध में परसाई ने प्रस्तुत किया है।

श्रद्धा : मुँह बंद करने का एक विधान

विकलांग श्रद्धा का दौर- श्रद्धेयों की दुर्नीति पर लिखा गया एक हास्य-निबंध है। मगर यहाँ के हास्य में भी सत्य का ऐसा उद्घाटन किया गया है, वास्तविकता के दर्शन कराए गए हैं कि श्रद्धा किसी व्यक्ति के महान व्यक्तित्व पर आश्रित हिमालयी गौरवमयी भावना है मगर इस निबंध में परसाई ने उन श्रद्धालुओं की मनोप्रवृत्तियों को उघाड़ते हैं जिनके कारण वे श्रद्धा दिखाते हैं - एक ने श्रद्धा दिखाकर चरण छुए और कहा - "अपना तो नियम है कि गौ, ब्राह्मण, कन्या के चरण जरूर छूते हैं।[96] इसका मतलब यह कि वह लेखक के चरण लेखकीय व्यक्तित्व के कारण नहीं छुए, किन्तु "ब्राह्मण" मानकर छुए। दूसरे ने श्रद्धेय बनने के लिए अपने नाम के आगे पहले "आचार्य", फिर "भगवान" का नेमप्लेट लगाकर कंठीधारी होकर रजनीश ही गए।

तीसरा, वयोवृद्ध समझकर चरण छूता है, यहाँ तक कि वह कमीना भी हो, बस 60-70 साल का हो गया कि वहीं वह श्रद्धेय बनता है।

चौथा, लेखक की टाँग टूट जाने की हमदर्दी में श्रद्धा दिखाते हुए एक ही चरण को छूता है। ऐसा करते समय उसके मन में यह भावना रहती है कि "इसकी टाँग टूट गई है। यह असमर्थ हो गया। दयनीय है। आओ, इसे हम श्रद्धा दे दें।[97]

वधियां डायबटीज मरीज के प्रति भी दया करके उसका चरण छूता है । श्रद्धालु चरण छूकर श्रद्धेयों श्री का मुंह बंद करना चाहते हैं मगर परसाई चूंकि एक निर्भीक व्यक्ति हैं, "श्रद्धेय" बनना नहीं चाहते हैं । देश और समाज के प्रति जो प्रतिबद्ध है वह श्रद्धालुजनों से आच्छादित होकर अपने शब्दों को बंद करना नहीं चाहते हैं । उनका कहना है कि "श्रद्धेय बनने का मतलब है "नान परसन", "अव्यक्ति हो जाना" श्रद्धेय वह होता है जो चीज़ों को हो जाने दे - किसी किसी का विरोध न करें ।[78] यह श्रद्धा देश को गुमराह कर रही है श्रद्धा के दौर में पड़कर लोग इतने प्रतिगामी हो चुके हैं कि असलियत को पहचानने में वे विफल हो रहे हैं । नेताओं, अदालतों, बुद्धिजीवियों, डाक्टरों के असली रूप को देखने पर उन पर श्रद्धा नहीं लात मारने को लेखक का मन चाहता है । प्रस्तुत निबंध हास्य के तेवर में देश की असलियत को नंगा करके श्रद्धालुओं और श्रद्धेयों का व्यंग्य करता है ।

पहला सफ़ेद बाल : आत्मावलोकन का प्रेरणास्रोत

"पहिला सफ़ेद बाल" परसाई के चिंतनपरक निबंधों में से एक है जोकि जीवन के सत्य को लेकर उन्मुक्त चिंतन प्रस्तुत करता है । पहले सफ़ेद बाल के दीखते ही बुढ़ापे के भय से ग्रस्त होकर एकदम निराशा एवं हताशा का अनुभव करने की प्रवृत्ति को परसाई पराजय तथा पलायनवादी कहकर, इस मनोवृत्ति पर विजय प्राप्त करने, बुढ़ापे को प्रकृति-धर्म मानकर और भी उत्साह एवं उल्लास से कार्य प्रवृत्त होने का आग्रह करते हैं, जीवन के प्रति अनन्य प्रेम और आस्था जागृत करने का प्रयत्न करते हैं ।

प्रस्तुत ललित निबंध लेखक की जीवन दृष्टि एवं दर्शन का समर्थ प्रतिनिधित्व करता है । परसाई की जीवन दृष्टि इतना उदार और आस्थामूलक है कि इनके साहित्य में यह आस्था कभी भी मंद नहीं पड़ती है । अनेक संघर्ष तथा जीवन समस्याओं के बीच भी इनके पात्र झुकने तथा हार मानने को इसलिए तैयार नहीं रहते हैं कि उनके सृष्टिकर्ता की जीवन म के प्रति प्रतिबद्धता इतना ठोस और सुदृढ़ है कि यहाँ बलिदान एवं मृत्यु के लिए महत्व है किन्तु पराजय के लिए नहीं । यही दृष्टि "पहिला सफ़ेद बाल" में भी दृष्टिगत हुई है । यहाँ निरुत्साह के स्थान पर उत्साह का ध्वज फहराया गया है ।

लेखक मनुष्य की मनोवृत्तियों से अच्छी तरह परिचित हैं। मनुष्य अपने सिर पर सफेद बाल का आगमन होते ही चिंता से ग्रस्त होता है, बुढ़ापे का बोध होकर तनाव का अनुभव करने लगता है, युवाओं के बीच अपनी प्रतिष्ठा को खोया हुआ सा अनुभव करने लगता है। अर्थात् सफेद बाल का पता लगते ही मनुष्य की मानसिक स्थिति इस प्रकार विक्षिप्त होती है जिसका मनोवैज्ञानिक चित्रण परसाई ने प्रस्तुत निबंध में किया है। "सफेद बाल" को प्रकृति का सहज व्यापार स्वीकार करने को तैयार न रहनेवाला व्यक्ति बेचारे आइने पर अपना रोष प्रकट करके कुढ़कुढ़ीपन का अनुभव करने लगता है - "मुझे गुस्सा है, इस आइने पर। वैसे तो यह बड़ा दयालु है। विकृति को सुधारकर चेहरा सुडौल बनाकर बताता रहा है। आज एकाएक कैसे क्रूर हो गया। क्या इस एक बाल को छिपा नहीं सकता था? इसे दिखाये बिना क्या उसकी ईमानदारी पर बड़ा कलंक लग जाता?"[99]

परसाई के अनुसार बुढ़ापा मनुष्य को आत्मावलोकन का अवसर प्रदान करता है। बीते जीवन में अपने किये का सर्वेक्षण करने की चेतावनी देता है। इस प्रसंग में परसाई की चिंतनधारा सकारात्मक है और स्वस्थ है। वे बुढ़ापे को शारीरिक धर्म मानते हैं। उनके अनुसार मन और मस्तिष्क को बुढ़ापा नहीं है। इसलिए ही कहते हैं - "यौवन सिर्फ काले बालों का नाम नहीं है। यौवन नवीन भाव, नवीन विचार ग्रहण करने की तत्परता का नाम है, यौवन, साहस, उत्साह, निर्भयता और खतरे भरी जिंदगी का नाम है। यौवन लीक से बच निकलने की इच्छा का नाम है और सबसे ऊपर बेहिचक बेवकूफी करने का नाम यही यौवन है। मैं बराबर बेवकूफी करता जाता हूँ। यह सफेद झूठा प्रवंचना है, हिसाब करने की कोई जल्दी नहीं है। सफेद बाल से क्या ह होता है?[100] सफेद बाल बाहर के इस बात के संकेत हैं कि शरीर क्षीण होता जा रहा है जबकि मन और मस्तिष्क ठीक ठीक है तो कभी बुढ़ापा नहीं आता है। जीवन को देखने की निर्मल और स्वस्थ दृष्टि है। यह दृष्टि मनुष्य को चिंता और बोझ से मुक्त करती है और जीवन के प्रति निष्ठा को पैना बनाती

सफेद बाल और यौवन के बीच कोई संबंध नहीं है। क्योंकि इधर गरीबी के कारण कितने ही लोगों के बाल जन्म से ही सफेद हैं? यदि सफेद बाल निराशा के संकेत हैं तो इन बच्चों का क्या होगा? क्या इन्हें हताश होकर जीवन से हार

मानना है ? परसाई समृद्ध बातों का संबंध मनुष्य के यौवन से उसकी चेतना से जोड़ना नहीं चाहते । वे ययाति के जैसे अपने बच्चों का यौवन लेकर अपने बच्चों का भविष्य छीनने के पक्ष में नहीं है । बदले में वे बच्चों के भविष्य को सुंदर बनाने के पक्ष में है ।

प्रस्तुत निबंध एक गंभीर निबंध है जो जीवन की सच्चाई का अंतर्दर्शन कराता है । यहाँ परसाई ने अत्यंत आत्मीय ढंग से अपनी सहज नाटकीयतापूर्ण व्यंग्यमयी शैली में जीवन की अस्मिता को उजागर किया है ।

<u>कहावतः अनुभवों की संचयिका</u>

कहावतों का चक्कर निबंध में परसाई ने कहावतों की न केवल विशिष्ट व्याख्या करने का प्रयत्न किया है अपितु उनमें निहित विरोधाभास पूर्ण अर्थों को तलाशने और कहावतों को चरितार्थ करनेवालों की मीमांसा भी की है ।

वैसे, कहावतें वेदों के समान हैं, वेद झूठ साबित हो सकते हैं किंतु कहावतें झूठ साबित नहीं हो सकती हैं क्योंकि ये कहावतें झूठ साबित नहीं हो सकती हैं क्योंकि ये कहावतें मनुष्य की अनुभव-संचयिका से प्रसूत अनमोल रत्न हैं जो कि पीढ़ी दरपीढ़ी चलती आ रही हैं । तब कहावतें कैसे झूठ हो सकती हैं ? प्रस्तुत निबंध में कुछ कहावतों का मर्म समझाया है । उदाहरण के लिए "लव दा नेबर" कहावत है । एक ओर इस कहावत का अभिप्राय को सार्थक करने के लिए तुला हुआ एक पड़ोसी दूसरी पड़ोसिन के इश्क में पड़ा तो खूब पिटा गया, दूसरी ओर एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी से इस कहावत के व्यंग्यार्थ को समझकर लाभ उठाने लगा । इस प्रसंग में परसाई ने अत्यंत उपयोगी तथ्य उपस्थित किये हैं - पड़ोसी होशियार हो तो उससे प्यार करके परीक्षा में नकल की जा सकती है क्योंकि प्यार रखनेवाले का उपकार ही लोग करते हैं, और पड़ोसी से प्यार करेंगे तो उम्र बढ़ती है । दो पड़ोसों में एक पड़ोस पत्रिका मँगाये, और दूसरा न मँगाये तो मुफ्त में पत्रिका पढ़नेवाला पत्रिका मँगानेवाले को दुआएँ देता है, ऐसा आशीर्वाद देता है कि उसकी लंबी उम्र हो जिससे कि वह पत्रिका मँगाते रहे और मुझे मुफ्त में पत्रिका पढ़ने को मिले तदारा पैसे बचे । इस

प्रकार पत्रिका नहीं मँगानेवालों और मँगाने वालों की मृत्यु के आँकड़े प्रस्तुत करते हुए परसाई इस मनोरंजक तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि पड़ोसियों को पत्रिका देनेवाले लोग लंबी उम्र पाते हैं - "पर मेरा विश्वास है कि अखबार माँगनेवाले पड़ोसी से बढ़कर आपका शुभचिंतक दूसरा नहीं। वह आपके दीर्घ जीवन की कामना करता है, जिससे वह आजीवन आपका अखबार पढ़ सके। वह आपसे पहिले संसार से विदा होना चाहता है ताकि वह एक दिन भी बिना अखबार पढ़े इस दुनिया में न जिये। मेरा विश्वास है कि लंबी उम्र के लोगों के जीवन का अध्ययन किया जाय, तो मालूम होगा कि पड़ोसियों को अखबार देनेवाले लोग ही लंबी उम्र पाते हैं।[101]

यह सही है कि कहावतों में अनुभव है, लोकज्ञान का अपार अनुभव कहावतों में समाया हुआ है तथापि परसाई कुछ कहावतों में तक नहीं देखते। उदाहरण के लिए "लुक बिफोर यू लीप" याने कूदने के पहले देखो, इस कहावत के प्रसंग में परसाई का कहना है कि वह पहले देखेगा तो कूदेगा नहीं। वैसे ही "ए [illegible] मैन इज़ नोन बाइ द कंपनी ही कीप्स" कहावत भी है। परसाई मानते हैं कि इसमें भी परिवर्तन होना चाहिए।

इस निबंध के आरंभ में परसाई ने उस अध्यापक का उदाहरण दिया है जो "ऑनेस्टी इज़ द बेस्ट पॉलिसी" वाली कहावत लड़कों से रटवाते थे, मगर स्वयं लड़कों की फीस खाकर नौकरी से बरखास्त हुए। परसाई इस बात का व्यंग्य प्रस्तुत निबंध में करना चाहते हैं कि मनुष्य कहावतों से सबक सीखने के बजाय, उन्हें अपने स्वार्थ एवं स्वलाभ के लिए इस्तेमाल करता आया है जो कि एक विडंबना है।

परसाई के ललित निबंधों का वस्तु-संसार अत्यंत व्यापक है। इनके निबंध मनुष्य को संचालित करनेवाले मूलभावों तथा समाज के जिम्मेदार मनुष्य के सामाजिक व्यवहारों का गंभीर विवेचन हास्य-व्यंग्य के आवरण में प्रस्तुत करते हैं। मानव मन की गुत्थियाँ इतने संकीर्ण हैं जिनको इदमित्थम् के रूप में परिभाषित करना उतना आसान नहीं है। किन्तु परसाई की सूक्ष्म निरीक्षण चेतना ने अपने अध्ययन-चिंतन-मनन और सबसे बढ़कर जीवन के समृद्ध अनुभवों के आधार पर मानव की गुत्थियों को

समझने परिभाषित करने और चित्रित करने के प्रयास किए हैं। परसाई की मानवीय संवेदना का प्रमाण इस बात में देखा जा सकता है कि परसाई किसी भी संदर्भ में मानवीय अनुभूति पर आँच आने नहीं देते। व्यंग्य की लाठी से व्यक्ति एवं समाज के दोषों पर निरंतर प्रहार करते समय भी व्यंग्य के शिकार बने व्यक्ति और समाज के प्रति तिरस्कृत दृष्टि न अपनाकर उनकी वर्तमान ज़िंदगी को और बेहतर बनाने की चिंता करते हैं। इस दृष्टि से परसाई के ललित निबंध रचनात्मक हैं, इनमें स्वच्छंदता के नाम पर यहाँ लक्ष्यहीन विचार-यात्रा नहीं है अपितु व्यक्ति और समाज के वर्तमान-संकट के भाष्य हैं। इन भाष्यों में व्यक्ति, समाज और देश का हर व्यवहार समाहित हुआ है।

परसाई सृजनात्मक लेखक के रूप में हिन्दी कहानी एवं उपन्यास विधा को अपना विशिष्ट योगदान दिया ही है, साथ ही वैचारिक साहित्य के निर्माण में भी इनका योगदान कम महत्व का नहीं है। भारतीय जनमानस को रूढ़िग्रस्त आचरणों, प्रतिगामी विचारों एवं अमानवीय वर्णवादी व्यवस्था के शोषक रूपों के प्रति सजग करने का महत्वपूर्ण दायित्व परसाई ने निभाया है। इनके वैचारिक निबंधों का कैनवास और इनकी संवेदना का धरातल इतना व्यापक है कि परसाई ने समसामयिक जगत की राजनीति आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक - सांस्कृतिक जगत की विसंगतियों, विद्रूपों, पाखंडों, ढोंगों तथा विश्वासघातों को यानी इन क्षेत्रों में अंतर्निहित नकारात्मक प्रतिविरोधी स्थितियों को नंगा करके स्वस्थ समाज एवं मूल्यों पर आधारित समाज-व्यवस्था के निर्माण के प्रति जनता को प्रेरित करने का काम अपने निबंध-लेखन द्वारा किया है। ये निबंध एक ओर यथार्थता के जीवंत दस्तावेज हैं तो दूसरी ओर सही मूल्यों की खोज करने और उन्हें गढ़ने का साहस प्रदान करते हैं। 'धनंजय वर्मा' के शब्दों में, "उन्होंने ढेर निबंध और कहानियाँ, रेखाचित्र और उपन्यास के अलावा और साथ-साथ अखबार के कॉलमों के ज़रिए उस नागरिक जड़ता और सामाजिक उदासीनता को भी तोड़ा जो पूरे समाज और खासकर उसके बुद्धिजीवी वर्ग में फैल चुकी है...परसाई का यह लेखन हमारी ठेठ तात्कालिक और अपनी दुनिया के रू-ब-रू है और हमें उससे मुठभेड़ की ताकत देता है। वह लेखन को एक ऐसा माध्यम बनाता है जो समकालीन मनुष्य के सुंदर और उदात्त रूप के साथ उसके विकृत और हास्यास्पद को भी

उघाड़ता है और साहित्य को सजीव और प्रबोधक बनाता है...समकालीन मनुष्य और उसको घेरे हुए इस चौतरफा संसार के बारे में इस अध्येता लेखक का कितना गहरा और सूक्ष्म पर्यवेक्षण है और अपने समय के यथार्थ की आलोचनात्मक अवधारणा यहाँ कितनी समृद्ध है, इसका सबूत है इस लेखन के प्रति उत्सुक पाठक की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया और इसकी लोकप्रियता ।[102] पाठकों की इस संवेदनात्मक प्रतिक्रिया तथा इनके स्तंभनिबंधों की लोकप्रियता का प्रमुख कारण इन निबंधों की संवाद शैली है । यहाँ सरलता, प्रांजलता और आत्मीयता का माहौल रहता है । गूढ़ चर्चा को यहाँ गुंजाइश नहीं है, अपने विचारों को लादने का आग्रह यहाँ नहीं है । परसाई का निबंध साहित्य पाठकों से किया गया संवाद है इस संवाद में एक मित्र की भाँति विचार-विनिमय है ।

जनता की मानसिकता को सही मूल्यों की ओर ले जाने की दिशा में पत्र पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित होनेवाले स्तंभ लेखों का अपना विशिष्ट महत्व है । ये स्तंभ लेख आम व्यक्ति के संकट से लेकर अंतर राष्ट्रीय राजनीति तक के समस्त मुद्दों को अपने में समा लेते हैं जिन पर लेखक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करके सार्वजनिक अभिप्राय को स्थापित करने का प्रयत्न करता है । एक सजग स्तंभ लेखक का विशाल पाठक वर्ग होता है जिसके साथ निकट का संबंध होने के कारण एक ओर वह उस वर्ग की रुचि और मानसिकता का परिष्कार करने में निश्चित रूप से हाथ बंटाता है तो दूसरी ओर जिस समाज का वह सदस्य होता है, उस समाज के आचरण पक्ष पर, उसकी चिंतन प्रणाली पर, उसके दकियानूसी विचारों पर कटाक्ष करके उसको सही दिशा देने का प्रयत्न करता है । परसाई ने अपने लेखकीय जीवन का अधिकांश समय इस स्तंभ लेखन को दिया है । उन्होंने इस सदी के भारतीय जीवन का आकलन अपने विभिन्न स्तंभ लेखों द्वारा प्रस्तुत किया है । अरस्तू की चिट्ठियाँ, और अंत में, सुनो भई साधो, ये माजरा क्या है, कबीर खड़ा बाजार में, तुलसीदास चंदन घिसैं आदि शीर्षकों में लिखे गए लेखों स्तंभ-निबंधों, संपादकीय लेखों और महत्वपूर्ण भाषणों में व्यक्त किये गए परसाई के विचारों ने इस देश के जनमानस को मथ डाला है इनमें व्यक्त विचारों के कारण जितनी प्रशंसा मिली उतनी ही भर्त्सना भी प्राप्त हुई है, यहाँ तक कि जान पर भी आफत आयी है । भ्रष्टाचारों मिथ्याचारों

और पत्रों पर निरंतर प्रहार किये जाने के कारण "परिवर्तन" जैसी पत्रिका को बंद करना भी पड़ा । आपात काल के दौरान लिखे निबंधों का ऐसा परिणाम निकला कि उस पत्रिका के एक एक अंक की तो बड़ी दुर्गति हुई । [illegible] परसाई के इन निबंधों का उद्देश्य स्वान्तः सुखाय नहीं अपितु लोक हिताय है । परसाई के इन निबंधों में व्यक्ति, समाज, देश और जगत की गतिविधियों को, वहाँ की संकीर्ण दुनिया को समझने और व्याख्यायित करने का प्रयास है । जनता में सामाजिक जागृति, मानवीय संवेदना, राजनैतिक बोध पैदा करना इन निबंधों का लक्ष्य रहा है जिसमें ये निबंध पूर्णतः सफल हुए हैं और यही परसाई के निबंधों की उपलब्धी है ।

संदर्भसूची

1-8 तक परसाई ग्रंथावली भाग 5, क्रमशः पृष्ठ संख्या क्रमशः 1-4, 2-19, 3-40, 4-41, 5-43, 6-35, 7-87, 8-81

9-10 परसाई ग्रंथावली - भाग 6 - पृष्ठसंख्या क्रमशः 9-76, 10-77

11-16 परसाई ग्रंथावली भाग 3, पृष्ठ संख्या क्रमशः 11-17, 12-20, 13-422, 14-422, 15-423, 16-423

17-21 परसाई ग्रंथावली - भाग 5 पृष्ठसंख्या क्रमशः 17-128, 18-128, 19-135 20-321, 21-34

22 परसाई ग्रंथावली - भाग 3 - पृष्ठ संख्या 44

23-26 परसाई ग्रंथावली - भाग 5 पृष्ठसंख्या क्रमशः 23-235, 24-240, 25-247, 26-335

27 परसाई ग्रंथावली - भाग 6 - पृष्ठसंख्या 467

28-46 परसाई ग्रंथावली - भाग 5 पृष्ठसंख्या क्रमशः 28-33, 29-47, 30-114 31-49, 32-51, 33-55, 34-56, 35-305, 36-67, 37-103, 38-36 39-91, 40-321, 41-98, 42-109, 43-190, 44-190, 45-190, 46-190

47-50 परसाई ग्रंथावली - भाग 2 पृष्ठ संख्या क्रमशः 47-193, 48-193, 49-193 50-194

51-68 परसाई ग्रंथावली भाग - 6 पृष्ठसंख्या क्रमशः : 51-153, 52-189,
53-151, 54-152, 55-165, 56- 169, 57-177, 58-181, 59-181,
60-201, 61-168, 62-154, 63-237, 64-255, 65-233, 66-234,
67-238, 68-246

69 - काव्य के रूप, गुलाब राय, पृष्ठसंख्या 236

70 काव्यशास्त्र - डा॰ भगीरथ मिश्र - पृष्ठ संख्या 76

71 - साहित्य संदेश, अगस्त 1966, आलोचनात्मक निबंध और ललित निबंध -
डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय पृ॰सं॰ 64

72 - साहित्य संदेश, अगस्त 1966, वैयक्तिकता के कुछ उपकरण, नवलकिशोर पृ॰सं॰ 54

73-77 दृष्टि-अभिसार - कुबेरनाथ राय भूमिका से ।

78-101 परसाई ग्रंथावली - भाग 3, पृष्ठसंख्या क्रमशः 78-2, 79-7, 8
80-186, 81-170, 82-96, 83-161, 84-163, 85-164, 86-30, 87-30
88-23, 89-311, 90-311, 91-310, 92-212, 93-214, 94-215, 95-21
96-228, 97-228, 98-230, 99-196, 100-197, 101-168

102 परसाई ग्रंथावली भाग 5 - पृष्ठ संख्या 4

सप्तम अध्याय

हरिशंकर परसाई की भाषा और शैली

हरिशंकर परसाई की भाषा और शैली

हिन्दी भाषा की अपनी परंपरा है, साहित्य का अपना इतिहास है। इस इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट है कि हिन्दी कवियों ने भाषा की बारीकियों को इस प्रकार आत्मसात कर लिया है कि सचमुच ही उन्होंने गागर में सागर भरा है। सूरदास, तुलसी, कबीर, बिहारी, हमारे रीतिकार कवियों की वाणियों में भाषा का सही अर्थ में उन्मुक्त प्रयोग हुआ है। परसाई के पूर्व भी भारतेंदु युग द्विवेदी युग और प्रेमचंद जैसे लेखकों ने भाषा की संप्रेषणशक्ति का निश्चय ही संवर्धन किया है। इन सबकी भाषा का वाचिक परंपरा से परसाई को प्राप्त हुआ है। जो लेखक परंपरा से जुड़ा रहता है, उसका व्यक्तित्व सही अर्थ में विकास होता है, उसकी भाषा बनती है, शैली बनती है। यहाँ अनुभूति या अनुकरण से वह बच सकता है। परसाई का गहरा अध्ययन, भारतीय संस्कृति के साथ निकटतम परिचय रखने का परिणाम यह हुआ कि इनकी अपनी भाषा बनी, शैली बनी जिसका अनुकरण दूसरा कर नहीं सकता है। परसाई के आरंभिक लेखन में ही भाषा और शैली पर उनके जबरदस्त अधिकार को देख सकते हैं। इस अधिकार को अधिकारिक रूप से कहने का साहस और आत्मविश्वास परसाई में है। "हँसते हैं, रोते हैं" की भूमिका की यह पंक्तियाँ इस दृष्टि से महत्व की है - "शैली के मामले में किसीकी नकल करने से साफ बच गया हूँ। पदचिन्ह अगर कहीं किसी के दिख गए हैं, तो उनको बचाकर निकला हूँ कि कहीं मेरे पैर उन पर न पड़ जायें। भाषा जैसी बोलता हूँ, वैसी ही लिखी है।[1]

जैसा कि वैचारिक धरातल पर परसाई का जीवन-दर्शन उनके व्यापक चिंतन मंथन से प्रतिपादित हुआ है, वैसे ही उनके भाषा-प्रयोग से जो शैली निर्मित हुई है उसका अनुकरण असंभव है। यह शैली उनकी अपनी है। परसाई के पाठक इस बात से अच्छी तरह परिचित हैं कि इ इनकी शैली ने हिन्दी साहित्य में एक सर्वथा नया आयाम उद्घाटित किया जिससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है किन्तु उसकी नकल नहीं की जा सकती है। क्योंकि नकल तो ग्रांथिक भाषा की जा सकती है जिसके परिनिष्ठि रूप और नियम होते हैं। किन्तु जनता की भाषा प्रवाह मान जल है जिसे एक

अंग्रेजी में समाया नहीं जा सकता है । इस संदर्भ में परसाई का कहना है - "हम लोग कोई भाषा नहीं बनाते, विश्वविद्यालय में भाषा बनती है । जिस राह से लोग चलेंगे वही सड़क होगी । जिस पगडंडी से लोग चल रहे हैं वह ही सड़क कहलायेगी तो हम तो भाषा सीखते हैं । जिस समाज के अंदर हम रहते हैं सब वो ही हमको भाषा सीखाता है । अनुभव भी देता है । कोई भाषा के संस्कार हमारे अध्ययन से, संस्कार से आते हैं, ये अलग बात है । तो मेरी जो भाषा है वो सप्रयास नहीं है ।[2]

परसाई ने साहित्यिक रचनाओं की भाषा के स्वरूप पर यदा-कदा चिंतन किया है । और स्वयं भाषा के प्रयोग पर अपार संयम और सावधानता को बनाये रखा है । भाषा मात्र संवहन का माध्यम ही नहीं अपितु एक जाति, वर्ग की संस्कृति और संस्कारों का भी प्रतिफलन करती है अतः परसाई भाषा-प्रयोग में आभिजात्यपन को बनाये रखने के बजाय पात्रों, एवं परिवेश के अनुसार भाषा का प्रयोग करने के लिए आग्रह करते हैं । परसाई के शब्दों में "भाषा विषय, अनुभूति और संस्कार और परिवेश के अनुसार होती है । दो दलित आदमी जब लड़ते हैं, तब विश्वविद्यालय के हिन्दी और संस्कृत विभाग से भाषा नहीं लाते...यह भाषा उनकी नहीं है । इस भाषा में घृणा और क्रोध व्यक्त नहीं होते । इस भाषा से लड़ाई का वातावरण भी नहीं बनता.. दलित कवि भी, यदि वह सच्चा है, उसकी अनुभूति गहरी है, उसे वास्तविक क्रोध है तो अपनी कविता में वह इसी भाषा का प्रयोग करेगा, जो उसके संस्कार की, परिवेश की भाषा है । इस भाषा के बिना उसकी कविता झूठी और बनावटी होगी, वह बेअसर हो जायेगी । उसे जिस भाषा में काव्यानुभूति हुई है, उसीमें वह कविता लिखेगा ।..इस वर्ग की छटपटाहट, पीड़ा और क्रोध को व्यक्त करने में नपुंसक अभिजात भाषा सक्षम नहीं है । इसके लिए जीवंत, कड़ी ठेठ और चुटीली भाषा चाहिए । वह भाषा चाहिए जो वर्ग रोजमर्रा की जिंदगी में बोलता है ।[3]

व्यंग्यकार का व्यंग्य तभी प्रभावी हो सकता है जबकि उसकी भाषा तेज हो, सुगठित हो, कम शब्दों में अर्थों के नए-नए आयामों को उद्घाटित करने की क्षमता रखती हो । व्यंग्यकार की भाषा में भावुकता अथवा पंडिताऊपन का कोई स्थान नहीं है क्योंकि वह न सांत्वना के लिए लिखा जाता है न दिल बहलाने के लिए । व्यंग्य आक्रोश की

सजुआ है । यह आक्रोश यदि सही भाषा में अभिव्यक्त नहीं हो पाता है तो वांछित परिणाम नहीं डाल पाता है । मगर परसाई इस भाषा-सूक्ष्म से अच्छी तरह परिचित हैं । व्यंग्य स्थलों को पहचानने और उन्हें सशक्त ढंग से रेखांकित करने की कला में ये अत्यंत कुशल हैं । समाज में न्याय की माँग अन्यायियों, अधर्मियों से नहीं की जा सकती है - इस आशय को द्योतित करने के लिए कौए और हंस जैसे दो विरुद्ध स्वभाव के प्राणि-बिंबों का उपयोग करते हैं - जैसे, कौआ अगर न्यायाधिकार लेकर बैठ जाय तो हर उज्ज्वल हंस को कोढ़ी कहकर तिरस्कृत करेगा । मालिकों ने इसके साथ ऐसा ही किया । जगह-जगह से तिरस्कृत होना हुआ । उसे अपनी योग्यता का मूल्य नहीं मिला । निपट मूर्खों को ऊँचे आसमान पर प्रतिष्ठित किया ।[4] मूर्खों के राज्य में बुद्धिमान का अपमान किस प्रकार होगा, इसका व्यंग्य सादृश्यमूलक उपमा से कुशलता से किया है ।

एक प्रसिद्ध उक्ति है कि श्रेष्ठ और कलात्मक व्यंग्य एक मुहावरे के रूप में होता है, यानी व्यंग्य अभिधार्थ में नहीं किन्तु व्यंग्यार्थ में सार्थक रूप में प्रयुक्त होता है । यह व्यंग्यार्थ तभी सिद्ध हो सकता है जबकि व्यंग्य की भाषा जीवंत हो, मुहावरेदार हो और नोकदार हो । परसाई का कहना है कि "हर पुनरुत्थानवादी और पूँजीवादी व्यवस्था के आंतरिक संघर्ष से उत्पन्न नये मुहावरे, नई उक्तियाँ और कहावतें, लोकोक्तियाँ और मुहावरे अभिव्यंजना संस्कृति के गूढ़ार्थ को व्यंजित करनेवाले सूत्र कथन हुआ करते हैं । ये परिवर्तनशील होते हैं । युग और इतिहास के जीवन की नाटकीय स्थितियों के प्रतीक होते हैं । हर मुहावरे, हर उक्ति और कहावत की रचना सामाजिक अभिव्यंजना के अनुरूप होती है ।[5] भाषा बहता नीर है, चिरंतन परिवर्तनशील है, अपना रूप स्वयं बदलती जाती है । सृजनशील रचनाकार इसकी धड़कन पकड़कर उसके द्वारा बोलता है । परसाई के व्यंग्यों की सफलता का प्रमुख कारण यह है कि वे भाषा के जीवन-प्रवाह से जुड़े हुये हैं । इसलिए ही उनकी भाषा में ऐसे अनेकों मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं जोकि हिन्दी मुहावरे कोश में अभी जुड़ने हैं । इस दृष्टि से हिन्दी मुहावरे कोश को समृद्ध करने में परसाई का महत्वपूर्ण योगदान है । परसाई की भाषा की सफलता की ओर संकेत करते हुए नंदकिशोर नवल ने कहा है - "परसाईजी के व्यंग्यात्मक निबंधों की असाधारण सफलता का एक कारण उनकी भाषा भी है । यह न

केवल सरल और धारदार है, बल्कि उसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और स्थितियों के वर्णन की अद्भुत क्षमता है। बिना इस क्षमता के कोई लेखक अथवा व्यंग्यकार नहीं हो सकता, कारण यह है कि व्यंग्य लेखन में भी भाषा के कई स्तरों के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है।"[6]

परसाई प्राचीन साहित्य की सुंदर और सार्थक उक्तियों या अंशों को इतने सार्थक ढंग से इस्तेमाल करते हैं कि ऐसा लगता है कि मानों उक्त अंश को इसी संदर्भ के लिए ही लिखा गया है। अपने पात्रों की विसंगतियाँ दिखाने और उनके स्वभाव का व्यंग्य करने के लिए इन अंशों का उपयोग अनेक स्थानों पर किया है। परसाई के पात्र इतने चालाक हैं कि वे अपनी बुद्धिमत्ता का उपयोग स्वार्थसिद्धि के लिए अत्यंत कुशलता से करते हैं, प्रसिद्ध उक्तियों की अपनी ही विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत करते हैं -

1. "वैष्णव की फिसलन" का वैष्णव अपने होटल में मांसाहार शुरू करने के संदर्भ में वह अपने आराध्य देव से प्रार्थना करता है तो उसकी शुद्ध आत्मा की आवाज़ ऐसी रही - "गांधीजी से बड़ा वैष्णव इस युग में कौन हुआ है? गांधी का भजन है - वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर परायी जाणी रे। तू इस होटल में रहनेवालों की पीर क्यों नहीं जानता? उन्हें इच्छानुसार खाना नहीं मिलता। इनकी पीर तू समझ और उस पीर को दूर कर।" (वैष्णव की फिसलन प.ग्रं.7 पृ.166)

2. गीता की प्रसिद्ध उक्ति का उपयोग शोषक वर्ग किस प्रकार अपने हितों की रक्षा करने के लिए करता है, इसकी सुंदर व्याख्या परसाई ने की है - "गीता न कृष्ण ने कही, न व्यास ने लिखी।

गीता को फेडरेशन आफ द इंडियन चेम्बर आफ कामर्स एंड इण्डस्ट्रीज़' के अध्यक्ष ने लिखा है या पैसा देकर लिखवाया है। प्रमाण मुझे मिल गया है। गीता में लिखा है "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" अर्थात् तुम्हारे अधिकार में सिर्फ़ काम करना है, तुम फल की इच्छा मत करो। हे मज़दूरों, भगवान का आदेश है कि काम करते जाओ, तनख्वाह मत मांगो। यह उपदेश मज़दूरों की हड़ताल तोड़ने के काम आ सकता है। (प.ग्रं. 7 निठल्लेपन का दर्शन पृ.220)

3. आज के साहबों की शोषण-प्रवृत्ति का व्यंग्य पौराणिक पात्रों के द्वारा मार्मिक ढंग से इन पंक्तियों में किया गया है - "जब आप द्रौपदी को एक के बाद एक सैकड़ों साड़ियाँ देते ही गए, तो मैं आपका भक्त क्या साहब को कमीज नहीं पहना सकता ? हे प्रभु, ये साहब लोग ही आज की द्रौपदी हैं, महँगाई के दुःशासन ने जिनके कपड़े छीन लिये हैं । ।बेताल की अट्ठाइसवीं कथा - 7 ग्रं - T पृ.सं. 345।

अंग्रेज़ी शब्दों व शब्दावलियों का प्रयोग संदर्भानुसार इतने सार्थक रूप में परसाई करते हैं कि चरित्र के आवेगों की सफल अभिव्यक्ति हो जाती है -

1. "हिरोइन" एक दिन एकांत में बोली - "मिस्टर मनीषी,

मैंने कहा -

यस, मैं भाग आया ।प.ग्रं T मनीषी पृ.34।

2. शांति ?

यह शब्द झूठा है । ।प्रतहमता - प.ग्रं.1, पृष्ठ सं. 43।

परसाई को तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास अत्यंत प्रिय और आत्मीय कवि रहे हैं जिनकी अनेक मार्मिक उक्तियों का उपयोग वर्तमान संदर्भ की असंगतियों एवं मानवचरित्र की गुत्थियों को समझने और समझाने के लिए किया है । ऐसे ही अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध लेखकों का भी यथास्थानों पर भरपूर प्रयोग किया है । इन उक्तियों की सार्थकता इस बात में है कि ये उक्तियाँ मूल संदर्भ में जितना सार्थक रह रहीं, उतने ही सार्थक रूप में यहाँ चरितार्थ हुई हैं ।

1. रामप्रसाद ने महात्म्य का प्रयोग किया । उसने भी बचपन में पिता के मुँह से नीति पढ़ी थी -

ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी ।
ये सब ताड़न के अधिकारी ।

पूज्य पिताजी ने अनेक बार रामप्रसादजी की माँ को उसी के सामने पीटकर इस नीति का ठीक अर्थ समझाया था ।प.ग्रं. घेरे के भीतर - पृ.249।

2. कुलाधिपति की कृपा पाने के लिए कुलपति बनने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति ऐसा

करता था - "हमारे राज्यपाल बहुत अच्छे हैं। वे मछली, सुअर का गोश्त खाते हैं - पर एक घंटा भगवान की पूजा करते हैं। अपनी जेब में माचिस और अगरबत्ती लेकर जाता था। अगरबत्ती जलाकर उनकी आरती करता था और उन्हें भजन सुनाता था। मैं सुनाता था -

"जय जगदीश हरे

भक्त जनों के संकट पल में दूर करे" और "पाप हरो देव" - याने हम तो पाप करते ही जायेंगे लेकिन उन पापों का हरण आप करो। राज्यपाल खुश हो गए, और मुझे बना दिया कुलपति [एक कुलपति से भेंट - प.ग्रं.6 - पृ.सं. 107]

3. भारत सेवक समाज के सेवक को कबीर का उपदेश - जो कि आधुनिक सेवक समाज की कुत्सितता का द्योतक है -

भारत सेवक ने कबीर के चरण पकड़ लिये। कहने लगे - कोई मैसेज उपदेश ? कबीर ने कहा - क्या उपदेश दूँ ? तू ब्राम्हण, मैं काशी का जुलाहा। फिर भी सुनो -

"झूठ बराबर तप नहीं, साँच बराबर पाप

जाके हिरदय झूठ है, ताके हिरदय आप।" [भारतसेवक समाजी से भेंट - प.ग्रं.6 पृ.सं. 122]

व्यंग्य के सौंदर्यशास्त्र से परसाई अच्छी तरह परिचित हैं। वाच्यार्थ से कम किन्तु ध्वन्यार्थ से वे जिनका व्यंग्य करना चाहते हैं, इस तरह करते हैं कि इस व्यंग्य का जो शिकार होगा वह यदि समझेगा तो जरूर अपनी उस आदत या कला को छोड़ देगा। यानी इनका ध्वन्यार्थ उतने प्रभावकारी होते हैं। इसके कुछ नमूने हैं -

1. एक गवैये के गाने पर परसाई का व्यंग्य इस प्रकार है - "एक बहुत वृद्ध पक्के गायक ने आँखें बंद करके दो घंटे गाया। मैं सोचने लगा, इनकी इतनी लंबी उम्र और ऐसे अच्छे स्वास्थ्य का कारण क्या है ? समझ में आ आया, वे आँखें बंद करके गाते हैं। अगर आँखें खोलकर गाते तो अपने श्रोताओं का हाल देखकर जवानी में ही वे हाय खाकर मर जाते। [प.ग्रं. 7 - तरय साधक मंडल पृ. 190]

2. एक स्वामीजी का महिमा गान करते हुए परसाई का व्यंग्य है - "अफसर के यहाँ 15 साल के बाद लड़का तब हुआ जब स्वामीजी ने अनुष्ठान किया। लड़का 15-16

सामने से पेट में से अनुष्ठान मांग रहा था, मगर साहब उसे दवाएं दे रहे थे। स्वामीजी ने उसकी सच्ची मांग सुनी। (प.ग्रं T स्पशलिस्ट्ज आत्मा पृ.383)

व्यंग्य की उद्भावना करने में परसाई का कोई प्रतिद्वंदी नहीं दिखाई पड़ता है। वे जहाँ देखते हैं, वहाँ व्यंग्य मूर्तवत् दिखायी पड़ता है -

1. बड़े बड़े बंगलों के गेट पर टंगा हुआ "कुत्ते से सावधान" नेम प्लेट पर इनका व्यंग्य है -

मैं उनके बंगले पर पहुँचा तो फाटक पर तख्ती टंगी दीखी - "कुत्ते से सावधान"। मैं फौरन लौट गया। कुछ दिनों बाद वे मिले तो शिकायत की - "आप उस दिन चाय पीने नहीं आये ?

मैंने कहा - माफ करें मैं बंगले तक गया था। वहाँ तख्ती लटकी थी - "कुत्ते से सावधान"। मेरा ख्याल था, उस बंगले में आदमी रहते हैं। पर नेमप्लेट कुत्ते की टंगी दीखी। (प.ग्रं.T सम्माननीय कुत्ता पृ.25)

2. दुनिया को पार कर जाने की साधारण उक्ति में व्यंग्य की उद्भावना इस प्रकार है - "वह उसी भाव से बोला - हाँ बात तो करनी ही पड़ेगी, क्या हम कुत्ते या बिल्ली नहीं है, मनुष्य हैं, और यही मजबूरी है। तो सुनिये

(मैं दुनिया के छोर तक जा रहा हूँ।

उसकी आँखों में बड़ी वेदना और निराशा आ गई। मैंने वातावरण को हल्का करने के लिए कहा, -"लेकिन गाड़ी तो नागपुर तक ही ले जायेगी।" वह खिन्न हंसी हँसकर बोला, "गाड़ी के ऊपर बैठूँगा तो नागपुर ले जायेगी और अगर गाड़ी के नीचे बैठा तो दुनिया के अंत नहीं ले जायेगी ? (प.ग्रं. । - एक घंटे का साथ पृ.120)

3. लड़की छज्जे पर आयी। इतना लंबा चौड़ा और गहरा सिन्दूर मांग में भरा था, कि मील भर से दिखाता था। घर के सामने भीड़ सी लग गयी। राहगीर पूछते - क्या बात है ? कोई मौत हो गई क्या ? दूसरे राहगीर ने कहा - "हाँ, लगता है कि कोई मौत होगई है। तभी मोहल्ले के एक मसखरे ने कहा - एक नहीं, चार पाँच मौत हो गई है।

(एक लड़की - पाँच दीवाने प.ग्रं. T पृ.84)

2. एक स्वामीजी इस प्रकार अपने और भक्तों के बीच के अंतर को स्पष्ट करते हैं

मैंने पूछा - "स्वामीजी, कहाँ जाना हो रहा है ?"
स्वामीजी बोले - "दिल्ली जा रहे हैं, बच्चा ।"
मैंने कहा - "स्वामीजी, मेरी काफी उम्र है । आप मुझे "बच्चा" क्यों कहते हैं ?"
स्वामीजी हँसे । बोले - "बच्चा, तुम संसारी लोग होटल में साठ साल के बूढ़े "बेरे" को "छोकरा" कहते हो न । उसी तरह हम तुम संसारियों को "बच्चा" कहते हैं । यह विश्व विशाल भोजनालय है जिसमें हम खानेवाले हैं और तुम परोसनेवाले हो । इसलिए हम तुम्हें "बच्चा" कहते हैं ।(प.ग्रं.2 - एक गोभक्त से भेंट पृ.155।

3. पत्नी के पिटने की घटना पर व्यंग्य की उद्भावना है - वैसे तो अनेक भारतीय कुलवधुएँ पति के हाथ से पिटना अपना अधिकार और गृहस्थ-जीवन का जरूरी दस्तूर मानती हैं । अगर उन्हें यह अधिकार न मिले, तो वे बुरा मानती हैं । हमारी चाची को चाचा कभी नहीं मारते थे, इसलिए चाची को मुहल्ले के स्त्री समाज में बड़ा नीचा देखना पड़ता था । उन्हें लगता कि उनमें कोई बड़ी खराबी है । एक दिन उन्होंने जान-बूझकर गरम चाय चाचा के पाँव पर गिरा दी । उन्होंने गुस्से में चाची को दो बार घूँसे और चाँटे जमा दिए । उस दिन चाची पड़ोसिनों के समाज में बड़े ठाट से आयीं । गर्व से उनका चेहरा खिला था, उनकी हीनता की भावना तिरोहित हो गई थी । और वे पड़ोसिनों से किसी भाँति खुद को कम महसूस नहीं करती थीं । (प.ग्रं.II - घेरे के भीतर पृ.246।

4. एक मास्टर जोकि सर्वे आफ इंडिया में नौकरी न पाने का खेद प्रकट करते हुए इतना पागल हो चुका है कि उसके पागलपन का व्यंग्य करते हुए इस प्रसंग की उद्भावना यों करते हैं - "ये साहब घर से बढ़िया कपड़े पहनकर जाते हैं और घंटों सर्वे के दफ्तर के पास खड़े होकर उसे ललचायी नजर से देखते हैं । फिर उसके फाटक को चूमकर घर आ जाते हैं । रात को नींद नहीं आती । घरवाले परेशान हैं कि ये रात को "सर्वे-सर्वे" क्यों चिल्लाते हैं । मैंने उनके परिवारवालों से कह दिया है- उनकी भक्ति जाग उठी है । सर्वेश्वर का लघु रूप "सर्वे" कहकर भगवान का भजन करते हैं " (प.ग्रं. - II सर्वे और सुंदरी - पृ.319।

5. समारोह-संयोजकों की संयोजकधर्मिता की गंध को पहचानने की कला में व्यंग्यकार निष्णात है । 'संयोजक' - शीर्षक के व्यंग्य में इसका मार्मिक उद्घाटन करते हैं और सहज-सीधे संवाद द्वारा व्यंग्य की उद्भावना करते हैं -
मैंने कहा - आप किसी समारोह के संयोजक मालूम होते हैं ।'
उन्होंने ऊपर देखा । पूछा - 'आपने कैसे जाना ?'
मैंने कहा - आपकी संयोजन धर्मी/गंध चारों दिशाओं में फैल रही है । वह हँसे और बोले - 'हो सकता है । मैं चार दिनों से नहाया नहीं हूँ । मैंने कहा - 'सो तो देख रहा हूँ । लेकिन यह गंध पसीने की गंध से भिन्न होती है । यह संयोजन धर्मी होती है । आप इसे नहीं जान सकते क्योंकि यह आपके ही शरीर की उपज है । कस्तूरी मृग कस्तूरी को नाभि में रखे रहता है, मगर समझता है कि गंध घास से आ रही है । अपने को कस्तूरी मृग समझकर वह खुश हुआ । (प.ग्रं. - I, संयोजक पृ. 129)

6. सरकार 'शिष्टाचार सप्ताह' मनाने के द्वारा पुलिसों को शिष्टाचार सिखाने का निर्णय करती है, पुलिस का इस सप्ताह में कैसा व्यवहार जनता से होगा ? इस संबंध में परसाई का व्यंग्य है - 'कहा गया कि इस सप्ताह पुलिस सप्ताह पुलिस कर्मचारी नागरिक से शिष्ट वार्तालाप करेंगे । उनका 'श्रीमानजी' से संबोधन करेंगे । बेचारे पुलिसवालों को बड़ी कठिनाई महसूस हुई । साथी, मैं ने पुलिस शिष्टाचार के मजेदार दृश्य देखे । कुछ नमूने देखो - 'बायें चल, पूरी सड़क तेरे बाप की क्या, श्रीमानजी।' 'साले, श्रीमानजी, ठीक-ठीक पता लिखा।' 'जूते पड़ेंगे तो सब बता दोगे श्रीमानजी', 'अबे, श्रीमानजी के बच्चे, यहाँ क्यों घूम रहा है?' - साथी इस तरह पुलिस की परंपरा भी नहीं टूटी और शिष्टाचार सप्ताह भी मन गया ।
(प.ग्रं. - II मक्खीमार सप्ताह - पृ. 28)

7. जनसंघ के सिद्धांतों के परसाई तीव्र आलोचक रहे हैं । और उसके नेता देवरस की आलोचना परसाई ने कड़े शब्दोंमें की है । निम्नांकित प्रसंग के व्यंग्य में देवरस औरश्र उनकी पत्रिका पर परसाई का व्यंग्य मार्के का है । इस संवाद में व्यंग्य की सुंदर व्यंजना हुई है -
'मैं देवरस का भक्त हूँ । उनसे मिले नागपुर पहुँचा ।

वे मुझे देखकर खुश हुए । बोले मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । जितना प्रचार तुम संघ का करते हो, उतना हमारे पेपर भी नहीं करते । तुम हमारे पत्र "आर्गेनाइजर" में क्यों नहीं आ जाते ? मैंने कहा - मैं योग्य नहीं हूँ । मैं उतनी बुरी अंग्रेजी नहीं लिख सकता ।" ।देवदासजी से संवाद प.ग्रं. II पृ.380।

परसाई की कहानियों और निबंधों के शीर्षक ही इतने अनोखे होते हैं कि जिस वस्तु को लक्ष्य बनाकर व्यंग्य करना चाहते हैं वह वस्तु उसके शीर्षक में ही निर्दिष्ट हो जाती है । यानी इनके शीर्षक इतने सार्थक और बहुत ही ध्वनिपूर्ण हैं, प्रभावकारी हैं, गागर में सागर भरने की अपूर्व क्षमता रखनेवाले हैं । उदाहरण के लिए कुछ शीर्षक देख सकते हैं - कर कमल हो गए, एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया, वाक्-आउट । स्लीप आउट । हैंड आउट । इतिहास रिसर्च, विकलांग राजनीति, मुक्तखोर, ठंडा शरीफ आदमी, सबटेनेंट की कथा, मास्टर साहब पान खाते जाइये, यमदे की दिल्ली यात्रा, कुत्ता: अंदर का और बाहर का, गणेशजी और मथाजी, बेटा, घर लौट जाओ, चरणसिंह चरणदास हो गए, बोल जमूरे, इस्तीफा देगा दुर्गापुर में जेबकतरे, वैष्णव की फिसलन, और रानी "नागफनी" उपन्यास के अध्यायों को दिए गए सभी उपशीर्षक परसाई का शीर्षक नामकरण विधान ही ऐसा है कि वे आदि शीर्षक से लेकर अंतिम वाक्य तक व्यंग्य का प्रभाव बनाये रखने में सफल हुए हैं । ये शीर्षक कहीं-कहीं इतने काव्यात्मक हुए हैं कि ये शीर्षक ही रोमांच खड़ा कर देते हैं ।

परसाई शब्दों की परिभाषाएँ देने में इतने कुशल हैं कि वे परिभाषाएँ वाच्य होते हुए अपने व्यंग्यार्थ के संदर्भ में अर्थों का उद्घाटन करने में अपना जवाब नहीं रखती दरअसल ये परिभाषाएँ व्यंग्य को एकदम उसके समस्त तेवर के साथ प्रेषित करती हैं ।
उदा ।. धर्म धंधे से जुड़ जाय, इसीको "योग" कहते हैं । योग का आध्यात्मिक-साधनापरक अर्थ यहाँ विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । ।वैष्णव की फिसलन - प.ग्रंथावली पृ.165।
2. धर्मपितना की पहचान साधारण संवाद द्वारा करने का ढंग - "आप लोग" और "हम लोग" ये दो वर्ग उसने स्पष्ट कर दिये हैं । मेरी नौकरी लगी है । मुझे हर

महीने कुछ रुपये मिल जाते हैं इसलिए मैं "आप लोगों" में शामिल हूँ । उसके पास नौकरी नहीं है उसे हर महीने नियमित रूप से रुपये नहीं मिलते, इसलिए वह "हम लोगों" में शामिल है । इस प्रकार के वर्ग भेद पर आधारित वर्ग चेतना उसमें हर क्षण जागृत रहती है । (प.ग्रं. - I एक घंटे का साथ पृ. 120)

3. कुलटा होगी वह जो अपने पति को और तुमको एक साथ ही प्रेम-पत्र लिखती है । (प.ग्रं. II, घेरे के भीतर - पृ. 250)

4. सहानुभूति की परिभाषा - दूसरों के दुख को मान्यता देना ही तो सहानुभूति है । (तट की खोज - परसाई ग्रंथावली - भाग - II - पृष्ठ संख्या 10)

परसाई की शैली में जो प्रभाव शक्ति है, उसका मूल कारण है उनकी उपमायुक्त शैली । ये उपमाएँ उनकी सृजनधर्मिता के साक्षी के रूप में हैं । अपने परिवेश का व्यंग्य करने के लिए वहीं के उपादानों का उपयोग बड़ी कुशलता से परसाई करते हैं । इनकी उपमाओं में ताजगी है, उल्लास है, जीवन की विसंगतियों को देखकर स्वस्थ मन से हँसने और करुणा का स्रोत बहाने की अपूर्व क्षमता है । कुछ उदाहरण हैं -

1. सरस्वती का सम्मान करते हुए आज हमारे हृदय वैसे ही खिल रहे हैं, जैसे कि बनारसी सिल्क की साड़ी देखकर भारतीय नारी का हृदय खिलता है । आज इस हमारे यहाँ जो आपके स्वागतार्थ रंग-बिरंगे बंदनवार लगे हैं - वे केलिको, रेयन सिल्क, मद्रासी चीथ, जार्जेट और फ्लालेन के हैं । वर्षों से हमारे मन में आपका सम्मान करने की इच्छा वैसे ही छिपी थी, जैसे कि विद्वी का सही हिसाब । पर यह आयोजन वैसे ही खिसकता जाता था, जैसे कपड़ा नापने समय गज पीछे खिसकता है ।
(साहब का सम्मान - परसाई ग्रंथावली - I पृ. 209)

2. अच्छी आत्मा को समझाने के लिए दी जानेवाली उपमा - अच्छी आत्मा "फोल्डिंग" कुर्सी की तरह होनी चाहिए, जरूरत पड़ी तो तब फैलाकर उस पर बैठ गए, नहीं तो मोड़कर कोने में टिका दिया । (पगडंडियों का जमाना हरिशंकर परसाई पृ. 75 प.ग्रं. I)

3. पुरुषों से भरी बस में स्त्री । जैसे विस्तृत रेगिस्तान में एक झरना (प.ग्रं.-I राम-विराम - पृ. 335)

4. मुसीबतों को तो उसने पालतू पशु की तरह पाल रखा था (प.ग्रं.-I एक घंटे के साथ पृ. 12)

5. लेकिन आसमान और जमीन सरीखे कोई उतार नहीं है । न ऊपर से आसमान की छाया हटती है, और न नीचे से जमीन खिसकती है । ।प.ग्रं.छः घंटे का साथ - पृ.122।

6. इस छोर पर बरातियों की स्त्रियाँ बैठी थीं । एक-दो ऐसी थीं, जिनके यौवन के साम्राज्य में बुढ़ापे के गुप्तचर सफेद बालों के रूप में घुस आए थे । शेष बाल माताएँ थीं, जिनकी खुद की अवस्था माँ की गोद में खेलने की थी, पर जो गोद में बालक खिला रही थीं । ।प.ग्रं.II किताब का एक पन्ना - पृ.220।

7. जब कोई कुलवधु पिटती है, तब मुहल्ले की स्त्रियों को ऐसा लगता है, जैसे कोई त्योहार मनाया जा रहा हो ।।प.ग्रं.II पेड़ के भीतर पृ.246।

8. जब गधे घास चरकर उल्लास से चीपों चीपों/करते, तो कुत्तों को झूमट राग का मजा आता । ।प.ग्रं.II गधा और मोर पृ.362।

9. साहित्य सम्मेलन के संयोजकों की हालत कैसी होती है, इसकी व्यंग्य-शेषनागजी जब संघ के लिए जाते हैं तब किसी समारोह के संयोजक के कंधे पर पृथ्वी को रख जाते हैं हमारे विभागीय साहित्य सम्मेलन के संयोजक पृथ्वी को तीन दिन कंधों पर रखे रहे थे, जब शेषनाग जी को फालू हो गया था ।।प.ग्रं.I संयोजक पृ.129।

10. पांडुलिपियों पर इनाम देने में बड़ा सुभीता होता है । अप्रसूत पुत्र का बीमा कराने की तरह है - यह । ।सरकारी पुरस्कार -प.ग्रं.खं.6 पृ.189।

11. मैंने दलितों का यह भला किया है कि मैं उनके नाम से 33 सालों से मंत्री हूँ दलित या किसान बाद हैं । दलितों के बाद पर फूला हुआ एक गुलाब हूँ मैं । ।दलितों के मसीहा - प.ग्रं.5 पृ.363।

12. पानी के गिरने से कण-कण हवा में तैरते रहते हैं और धुआँ सरीखा छाया रहता है । उसे देख ऐसा लगता है, मानो किसी विधानसभा के सदस्य एक दूसरे पर धूल झोंक रहे हों । ।रानी नागफनी की कहानी - परसाई ग्रंथावली - भाग दो पृ.सं.24।

13. वे डूबते सूरज को इस तरह देख रहे थे जैसे वह उनका चपरासी हो । उन्होंने आसमान को ऐसे देखा जैसे वह उनके सामने कर्मों का इंटरव्यू देने आया हो । ।शिवशंकर का केस - प.ग्रं.I, पृ.सं.226।

परसाई अपने पात्रों का नामकरण करने में एकदम पारखी हैं। जैसा चरित्र वैसा नामकरण इनकी विशेषता है। इस दृष्टि से इनके संपूर्ण कथासाहित्य में जितने भी पात्र आए हैं वे सब अपने अपने नामकरण को सार्थक सिद्ध करने के लिए क्रियाशील रहते हैं। वैसे ये सभी सहज नामकरण उन पात्रों के असंगत और असहज स्वभावों को रेखांकित करते हैं।

कुछ नामकरणों की चर्चा और उनकी सार्थकता की चर्चा आगे की जा रही है :
1. चंचल मना का विश्वास है कि विमला झरोखे स में से किसी को झाँकती है, इसलिए चिढ़ती है। (यहाँ चंचल मना स्वयं चंचल है)
2. निगुनी का ख्याल है कि विमला को संतान नहीं होती इसलिए रामप्रसाद उसे मार पीटकर, भगाकर दूसरा ब्याह करना चाहता है। (निगुनी स्वयं बाँझ है)

3. कूकड़ समझती है कि विमला बेशऊर है और उसे रोटी तक सेंकना नहीं आता। (यहाँ स्वयं कूकड़ बेशऊर है। अपनी अपनी सामर्थ्य ह और अपनी अपनी रुचि।
(प.ग्रं. II घेरे के भीतर पृ. 247)
4. सभी नामकृती में प्रयुक्त व्यक्तिवाचक नामकरण अपने स्वभाव का प्रतिनिधित्व अत्यंत सार्थक ढंग से करते हैं - असमान, मुफ्तलाल, विद्यारिपु, ज्ञानरिपु, करेलामुखी निर्बलसिंह, भयभीतसिंह, - ये सारे पात्र वर्तमान युवापीढ़ी के असावधान शोषण का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैसे नाम वैसे करनी है इनकी।
चित्रवाहन - एक राजा का नाम।
कुलकीर्ति (एक वकील का नाम) - (वर्य लोक कथाएँ - प.ग्रं. II पृ.सं. 344)
चंदाराम (चंदा उगाहनेवाला) - (चंदाराम से भेंट) प.ग्रं. II - 137
अभिनंदनी (अभिनंदन करनेवाला) (अभिनंदनी से भेंट - प.ग्रं. II 141)।

परसाई ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए नये मुहावरों, लोकोक्तियों और कहावतों का निर्माण किया है। राजेश्वर सक्सेना का कहना है कि खड़ीबोली हिन्दी में उक्तियों, कहावतों और मुहावरों का पुरातन भंडार है। परसाई ने इस भंडार की साफ सफाई की है और सड़े-गले को निकाल फेंका है। उन्होंने नये युग की आवश्यकता के अनुरूप खड़ीबोली की संप्रेषण - क्षमता और अभिव्यंजना क्षमता को आगे बढ़ाया

है, प्रौढ़ बनाया है । उनकी हर रचना में नये-नये मुहावरों का प्रयोग हुआ है।[7]

ये संदर्भ और पात्रों के चरित्र के स्वभाव को रेखांकित करने में सार्थक हुए हैं ।

4. साथ ही परसाई अच्छे शब्द गढ़ते हैं, शब्दों के खिलाड़ी हैं, इनसे प्रयुक्त अनेकों शब्दावलियाँ कहावतों के जैसे प्रयुक्त हुई हैं । उदाहरण के लिए -

1. साधुसन्यासियों का महत्व बताने के लिए उन्होंने इन कहावतों का प्रयोग किया है, पुराना चावल और पुराना सन्यासी - दोनों कीमती होते हैं तभी "बेचुआ" बरत पटावही जोगी बरत बहुरि ।
2. विश्वास जितना पक्का होता है, उसके टूटने में उतना ही दर्द होता है ।
3. हिलता हुआ दाँत एक झटके में बाहर आ जाता है, पर जमा हुआ दाँत जब "डेंटिस्ट" निकालता है, तो सारे शरीर को हिला देता है । (प.ग्रं. II - पैसे के भीतर - पृ.243)
4. स्त्री के आँसू और पुरुष का पीटना (प.ग्रं. पैसे के भीतर पृ.249)
5. 'अब क्या करें', अपना ही माल खोटा हो, तो परखैया का क्या कसूर । (प.ग्रं. II तट की खोज पृ.104)
6. दिल्ली की अपनी अर्थनीति नहीं है, वैसे ही अपना मौसम भी नहीं है । (प.ग्रं. II ठिठुरता हुआ गणतंत्र पृ.75)
7. चतुर आदमी हमेशा चलनेवाली दुकान पर बैठता है । (प.ग्रं. II किताबों की दुकान और दवाओं की पृ.52)
8. जिस युग में किसी समय गाली का चलन था, उसमें राम नाम का चलन है । (प.ग्रं. II भगवान की घूस पृ.370)
9. आँखों में घंटे का हिसाब लिखा रहता है । (प.ग्रं. I संयोजक पृ.129)
10. काम करनेवाला दुखी और काम न करनेवाला सुखी (स्वर्ग से नरक - प.ग्रं. भाग पृ.सं. 298)
11. गाली वही दे सकता है जो रोटी खाता है । पैसे खानेवाला सबसे डरता है जो सरकारी कर्मचारी जितना नम्र होता है, वह उतने ही पैसे खाता है । (राम भरोसे का इलाज - प.ग्रं. I, पृ.सं.228)
12. राजधानी की एक अति हमारी साख आँखों से तेज होती है । (तट की खोज प.ग्रं. पृ.संख्या -

11. पाप के साथ में हमेशा पुण्य की पताका फहराती है ।
(तट की खोज - प.ग्रं.पृष्ठ संख्या -
12. कनोडिटी ने कहा - "किसी डीन से क्यों नहीं मिल लेते ? कबीर ने कहा - यह डीन नहीं, "दीन" होता है । उससे बड़ा कुलपति होता है । कोई कोई कुल-नाशपति भी होते हैं । (एक कुलपति से भेंट प.ग्रं. 4 - पृ.संख्या 106)

परसाई की रचनाओं में जीवन का जीवंत रूप पाते हैं । व्यापक जीवनानुभवों से पोषित जीवन-दृष्टि यहाँ साकार हो उठी है फलतः इनकी रचनाओं प्रयुक्त वाक्य मानो लोकोक्तियों के जैसे प्रगाढ़ चिंतन के प्रतीक रूप में है -
1. भीड़ का हृदय होता है, मस्तिष्क नहीं । (प.ग्रं. II तट की खोज पृ.101)
2. प्रतिष्ठा बड़ी भयंकर चीज़ है । (प.ग्रं.II तट की खोज पृ 101)
3. सच्चरित्र और दुश्चरित्र में कुल इतना फर्क है कि पहिला कलुष को छिपाने में समर्थ है, दूसरा असमर्थ (वही)
4. दूसरे के मामले में हर कोई मजिस्ट्रेट हो जाता है । (वही)
5. राधा और कृष्ण के यमुना के कुंज-मिलन के गीतों से भक्ति विभोर हो जानेवाले लोग आदमी के बारे में बड़े कंजूस होते हैं (प.ग्रं. II तट की खोज पृ.103)
6. जैसे विवाह में शहनाई, वैसे मृत्यु में रोना । (प.ग्रं.II, तट की खोज, पृ.105)
7. साथी, सलाम करनेवालों से हमेशा सावधान रहना चाहिए । जो सलाम देता है, वह वोट नहीं देता । (चुनाव के नक्षत्र - प.ग्रं.5 - पृ.41)
8. सत्य की साधना में असत्य के घर जाना ही पड़ता है । (भीड़ में एक भेंट - प.ग्रं. 5 पृ.377)

परसाई के भाषा-प्रयोग में अद्भुत काव्यात्मकता एवं व्यंजक शक्ति है जहाँ वस्तु और भावों की अभिव्यंजना के अनूठे रूप विद्यमान हैं - उदाहरण के लिए -
1. कान के पास काले बालों के बीच से झाँकते इस पतले रजत तार ने सहसा मन को झकझोर दिया (सफेद बाल के लिए "रजत-तार" का प्रयोग करते हैं ।
2. सिर पर सफेद कफन बुना जा रहा है, आज पहिला तार डाला गया है (सफेद बाल जो निकल रहे हैं, वे बाल नहीं मगर कफन है, इस कफन का पहला तार यह पहला सफेद बाल है।

3. उम्र चुकती जायेगी ।व्यंग्य यहाँ उम्र बढ़ नहीं रही है किन्तु उम्र स्वयं चुकती जा रही है।
4. किले में आज बिजली सुरंग लगी है । दुश्मन को आते अब क्या देर लगेगी। ।शरीर किला है, सफेद बाल का आना सुरंग लगने के बराबर है ।।पहिला सफेद बाल - प.ग्रं. III पृ.सं. 195-198।
5. भूख को इस प्रकार संगीत बनाकर आत्मसात की अविवेकता है । यहाँ भूख ही संगीत का रूप लेता है । ।[illegible] प.ग्रं.I पृ.सं.33।

परसाई की रचनाओं में अनेकों स्थलों पर यौन भावनाओं का खुला वर्णन मिलता है, नग्नता पाई जाती है, गालियों का तो भरपूर प्रयोग किया गया है जोकि कभी कभार मर्यादा का उल्लंघन करती सी लगती हैं किंतु योग्य एवं सार्थक रूप में प्रयोग हुई हैं । ऐसे कुछ स्थलों की ओर यहाँ संकेत किया जा रहा है -
1. अंधी है क्या ? देखकर भी नहीं चलती ? खड़े हू गई हरामजादी । न जाने कौन बात की है । ।प.ग्रं.II किताब का एक पन्ना - पृ.220।
2. यह भिखारिन नहीं दिखती । कभी अच्छी रही होगी । खंडहर बताते हैं इमारत बुलंद थी । ।प.ग्रं. II किताब का एक पन्ना , पृ.221।
3. सुंदरियाँ नक्शे लेकर चलने लगीं तो साहब ने कहा - आधी रात को अब कहाँ जायेंगी । जमाना खराब लगा है । सुबह चली जाइयेगा । वे रुक गईं । थोड़ी देर बाद एक बोली - "नहीं नहीं यह क्या करते हैं ?" साहब ने कहा- सर्वे का आदमी हूं न । सर्वे करना मेरी आदत बन गई है । जरा तुम्हारे जिस्म का सर्वे कर रहा हूं । नक्शा बनाऊंगा ।

रात गुजारकर सबेरे सुंदरियाँ नक्शे लेकर चलीं । साहब ने कहा - आज और रह जातीं तो कुछ नक्शे और दे देता । ।प.ग्रं. II सर्वे और सुंदरी - पृ.315।
4. मेरे लिए राजनीतिक दल अण्डरवीयर हैं, ज्यादा दिन एक ही को नहीं पहनता, क्योंकि बदबू आने लगती है । ।हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं, प.ग्रं.I पृ.सं 2
5. उसने देखा कि उसकी थाली में गोश्त खाया जा रहा है । उसे गुस्सा आया । उसने कहा - तुम मेरी थाली में गोश्त खा रहे हो, मैं तुम्हारी

परसाई अपने व्यंग्यों में कभी कभार नैतिकता के बंधनों का अतिक्रमण करके चित्र प्रस्तुत करते हैं । ऐसे संदर्भों में नग्नता स्पष्ट उभर आती है । और यह नग्नता उस प्रसंग के व्यंग्यांश को दबाकर स्वयं अपना साम्राज्य बताती है - "एक लड़की, पाँच दीवाने" के ये वाक्यांश इस दृष्टि से देखने योग्य हैं - "मुहल्ला ऐसा है कि लोग 12-13 साल की बच्ची को घूर/घूर कर जवान बना देते हैं । वह समझने लगती है कि कहाँ घूरा जा रहा है । वह उन अंगों पर ध्यान देने लगती है । ब्लाउज़ को ऊँचा करने लगती है । नीचे कपड़ा रख लेती है । कटाक्ष का अभ्यास करने लगती है । परन्तु कब ललचाना और कैसे ललचाना - यह अभ्यास करने लगती है । घूरने से शरीर बढ़ता है ।

परसाई की कहानियों में अनेकों स्थलों पर प्रेम का बड़ा ही विकृत रूप, यहाँ तक कि माँ और बेटी के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने की विकृत कामना रखनेवाले कामुक हैं और एक से अधिक पुरुषों के साथ संबंध रखनेवाली स्त्रियाँ भी हैं । यह नग्नता कितनी भयानक लगती है, जबकि माँ अपनी बेटी को पचास रुपये के लिए दूसरे के संग भेजने को भी तैयार होती है । कथा के संदर्भ में इस घटना का महत्व होने पर भी ऐसी घटनाएँ सामाजिक-मर्यादा का उल्लंघन तो अवश्य करती हैं ।

परसाई की शैली में चित्रात्मकता की अनूठी योजना है । किसी भी चरित्र का रूप वर्णन करते समय ये ऐसी शब्दावलियों का प्रयोग करते हैं जिससे उस चरित्र की खुशी अथवा परेशानी जीवंत बन जाती है । व्यक्तिचित्र याने रेखाचित्र लिखते समय परसाईए ऐसी नोकदार चलती और सूक्ष्म भाषा का प्रयोग करते हैं कि वह प्रेत चरित्र एकदम आँखों के सामने उतर आता है - उदाहरण के लिए -

1. मुख गोरा थाऔर सुंदर थी, पर उस पर पीलापन छाया था ।आपने कोई ऐसा पौधा देखा है जो जो बढ़ते ही ढाँक दिया जाए, उसे खुला प्रकाश, हवा न मिले तो वह बढ़ता तो है पर कैसा पीला पीला सा, मरा-मरा-सा जैसे उसकी खुलकर बढ़ने की उग्र उमंग रह गयी हो । ऐसी ही वह नारी थी । (प.ग्रं. 1 किताब का एक पन्ना पृ.220)

2. मनुष्य के स्वभाव की तुलना कुत्तों से करते समय - यों चौपड़ा साहब और साहबी

साहनी साहब का स्वभाव और व्यक्तित्व ऐसा था कि उन्हें अलग से कुत्ता रखने की जरूरत नहीं थी । वे ही काफी थे । उग्र अभिनेत्री की उग्र ऐसी चौकें बाद और स्थिर । (प.ग्रं.II - लड़ाई - पृ.348)

3. मनीषी का चित्रण - घुटनों तक खादी की धोती, खादी की मिरजाई, पाँव में फटी चप्पलें, ऐसा कि पाँवों की रक्षा कम करें, इज्जत की ज्यादा - आँखों पर चश्मा, काले धागे से जेब में लटकी घड़ी, बायें हाथ में छड़ी, कंधों पर खद्दरवाला कांग्रेसी भक्तिन की साड़ी की तरह बेल बूटेदार का चद्दर ।...स्वस्थ लम्बा शरीर, रंग खूब गोरा, बड़ा सिर जिस पर लंबे लंबे घुंघराले चिकने केश, उन्नत मस्तक, प्रशस्त ललाट, नुकीली नाक, बड़ी बड़ी पानीदार आँखें जिनमें एक क्षण में दार्शनिक सी चिंता और दूसरे क्षण मधु सी शून्यता, चौड़ा चेहरा जिस पर पहाड़ी झरने सी निर्मल हँसी तथा बड़प्पन और सद्भावना की झलक (प.ग्रं.I मनीषी, पृ.सं.31)

परसाई की भाषा इतनी मोहक है कि कुछ स्थलों पर वह एकदम कविता का रूप धारण कर चुकी है । एक सुंदर कविता को पढ़ते समय जो आनंद होता है वैसा ही आनंद इनकी गद्य-पंक्तियों में के पढ़ते समय होता है -

पत्तों पर किरण का नर्तन देख रहे थे, रजनीगंधा की सुगंध ले रहे थे, मेघों के साथ आसमान में घूम रहे थे, तरंगों का संगीत सुन रहे थे । अनेक इस कुतूहल में मग्न थे कि विद्युत में कौन चमकता है ? कुसुम में कौन हँसता है ? और पूर्वाकाश से प्रातःकाल कौन झांकता है ? (साहित्यकार का साहस साहस प.ग्रं.6 पृ.196)

ग्रामीण युवति "कला" के सौंदर्य का निम्नांकित वर्णन ग्रामीण परिवेश की समस्त संपदा को जीवंत रूप देने में समर्थ हुआ है । परसाई का कवि हृदय अपनी समस्त सरलता के साथ यहाँ उस युवति का वर्णन करता है जिसे पढ़ना अपने में एक विशिष्ट अनुभव है -

"स्त्री का नाम था - "कला"

शुभ्र वस्त्रों से सज्जित, सौम्य स्वरूपा इस नारी के नयनों से शुभ्र स्नेह झरता था, मंगल की वर्षा होती थी । उसकी दृष्टि जहां जहां पड़ जाती, मंगल पड़ते ही कुसुम खिल जाते, पत्ते लहराने लगते, उषा का सौंदर्य बढ़ जाता. संध्या में अधिक गाढ़ा

रंग भर जाता और चंद्रिका अधिक स्निग्ध, अधिक उज्ज्वल हो जाती । प्रातःकाल वीणा पर भैरवी के स्वर छोड़कर वह ग्रामवासियों को जगाती । उसकी आँख मधुर संगीत के बीच खुलती । संगीत की धुन पर कदम बढ़ाते, गीत गाते, ग्रामीण जन काम पर जाते और जब वे काम करते तो समस्त दिशाओं से संगीत उठता, और उसकी ताल पर हँसिये चलते, चरखे खटखटाते , हथौड़े गिरते और चरखे घूमते ।
(तीन सयाने - परसाई ग्रंथावली - भाग II पृ.संख्या 259)

परसाई की भाषा में अनुभवों को आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता है और इन अनुभवों को सुसम्बद्ध भाषा में प्रवाहित करने की विशिष्ट कला है । अनुभव और कला के विशिष्ट संगम से जो भाषा बनी है और जो शैली निर्मित हुई है वह आधुनिक हिन्दी को परसाई की विशिष्ट देन है । आज हम देख रहे हैं कि परसाई की शब्द संपदा, उनके मुहावरे, अनुभव के घनीभूत रूप है, में अभिव्यंजित उक्तियाँ लोकजीवन में इस प्रकार घुलमिल गई हैं कि परसाई लोक रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं । भविष्य की पीढ़ियों के ओंठों पर परसाई की भाषा और उक्तियाँ परंपरागत लोकोक्तियों के रूप में आदर पायेंगी, इस में कोई संदेह नहीं है । एक लेखकीय व्यक्तित्व की सार्थकता का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है ।

<u>संदर्भ-सूची</u>

1. परसाई ग्रंथावली - 4 पृ.सं. 234
2. व्यंग्य शती - अप्रैल - जून 1986 पृ.सं. 14
3. परसाई ग्रंथावली - 6 पृ.सं. 211
4. व वही - T पृ.सं. 121
5. निठल्ले की डायरी - हरिशंकर परसाई, पृ.सं. 10
6. आंखिन देखी सं. - कमला प्रसाद पृ.सं. 120
7. वही वही पृ.सं. 247

अष्टम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

आधुनिक युग में व्यंग्य का विकास साहित्य की अन्यान्य विधाओं की भाँति एक विधा के रूप में हुआ है और इस विधा में रचित साहित्य का स्वतंत्र रूप से विवेचन हो रहा है जिसके अंतर्गत मानवीय संसार के अंतर्विरोधों, विषमताओं और मूल्यों का मार्मिक चित्रण समाहित है और व्यंग्य शाश्वत मानवीय मूल्यों का आग्रह के साथ प्रतिपादन करता है ।

व्यंग्य को भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्रों में प्रयुक्त किस शैली का या सिद्धांत-विशेष का पर्याय माना जाना चाहिए, इस पर काफी मतभेद है । व्यंग्य की भावभूमि का विवेचन करने पर एक बात स्पष्ट होती है कि हास्य और व्यंग्य एक सिक्के के दो पहलू हैं किंतु अंतर इस बात में है कि जिस बिंदु पर हास्य अपना लक्ष्य साधकर सार्थकता का सुख अनुभव करता है, उस बिंदु से व्यंग्य की यात्रा शुरू होती है । हास्य का उद्देश्य निर्मल हँसी और मजाक है तो व्यंग्य का उद्देश्य लोकमंगल की कामना है । हास्य बुद्बुद् होकर समाप्त होता है जबकि व्यंग्य विसंगतियों पर कटाक्ष करके लोक मानस को झकझोर देता है । हास्य की हँसी शरद् की शुभ्र चाँदनी है तो व्यंग्य उफनता है समुद्र का गर्जन है । जो भी व्यंग्य-प्रहार का शिकार होता है वह ऐसा आहत होता है कि वह अपनी जीवन-यात्रा में इसे भूल नहीं पाता है ।

व्यंग्य का मूल स्रोत भारतीय काव्यशास्त्र के अंतर्गत हास्य, वक्रोक्ति और ध्वनि में और पाश्चात्य काव्यशास्त्र में ह्यूमर के अवयवों में देखा जा सकता है । इन दोनों काव्य शास्त्रों में प्रयुक्त शब्दावलियों के गंभीर अध्ययन से स्पष्ट होनेवाली बात यह है कि दोनों चिंतन-धाराओं में ध्वनितत्त्व को ही प्रधानता दी गई है और वही हास्य और व्यंग्य का मूलाधार है । भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने हास्य के भेद-विभेदों और ध्वनि और वक्रोक्ति आदि सिद्धांतों का विवेचन किया है तो पाश्चात्य विद्वानों ने विट, ह्यूमर, सटायर, आइरनी इत्यादि की विस्तार से

चर्चा की है । वे सारे अपने में अलग-अलग सिद्धांत होते हुए भी, इन सबका साध्य विकृतियों, विसंगतियों, विद्रूपों, ढोंगी आचरणों पर कटाक्ष करना ही है । यह कटाक्ष व्यंग्य है । यानी व्यंग्य इन सबका समग्र रूप है । इस व्यंग्य के मूल में हास्य है, वक्रोक्ति है, ध्वनि है, सटायर है, आइरनी है, ह्यूमर है, विट है ।

व्यंग्य लोकरंजनकारी भाव नहीं, अपितु लोकोपकारी भाव है । व्यंग्य आक्रोश की जननी है क्योंकि जहाँ भी विसंगतियाँ एवं असामाजिक तत्वों का अस्तित्व होता है वह अपना फन खोलकर डंके की चोट मारता है, तिलमिलाने को मजबूर करता है । व्यंग्य समाज की दवा है जो कि कडुवा तो है ही, किन्तु मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य के लिए वह नितांत आवश्यक है । व्यंग्य आकुल मानसिकता का जबरदस्त संवहन माध्यम है ।

आधुनिक विद्वानों ने व्यंग्य को एक अलंकार के रूप में नहीं अपितु स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकार किया है । प्राचीन साहित्य में व्यंग्योक्ति एक शब्द-शक्ति केरूप में, नाना अलंकारों के माध्यम से अभिव्यक्त होती थी जबकि आधुनिक साहित्य में उसका कायापलट हुआ है और वह एक स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त कर चुकी है । आधुनिक संदर्भ में व्यंग्य एक जीवन दृष्टि है जिसे जो अपनाता है वह अपनी चिंतनधारा, सत्य-असत्य को परखने की तीक्ष्णमति और उदार मानवतावादी दृष्टिकोण से सामाजिक यथार्थों को परखता है । परसाई के अनुसार व्यंग्य की प्रतिष्ठा इस बीच साहित्य में काफी बढ़ी है - वह शूद्र से क्षत्रिय मान लिया गया है । व्यंग्य साहित्य में ब्राह्मण बनना भी नहीं चाहता, क्योंकि वह कीर्तन करता है ।8... सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है । वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है, अपने से साक्षात्कार करता है । चेतना में हलचल पैदा करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असामंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है । यह आधुनिक व्यंग्य का स्वरूप है ।

इस शती के आरंभ से ही भारतीय जनजीवन को झकझोर करनेवाली सामाजिक,

आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र की विसंगतियों के कारण साहित्यकारों को व्यंग्योन्मुख होना पड़ा । यह व्यंग्य कविता और गद्य में समांतर रूप में अभिव्यक्त हुआ है । वस्तुतः इस सदी के गद्य और काव्य में अभिव्यक्त व्यंग्य का सूक्ष्मावलोकन करने पर हमें इस देश के सामाजिक-राजनीतिक इतिहास का परिचय मिलता है ।

मध्ययुग के कबीर से आधुनिक युग में बदले हुए सामाजिक राजनीतिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में इन क्षेत्रों में उभर आई विसंगतियों, वर्जनाओं और नये विचारों के आलोक में भारतेंदु मंडल के लेखकों से लेकर अद्यावधि के रचनाकारों ने व्यंग्य को सुनिश्चित एवं सशक्त माध्यम के रूप में उपयोग करने के साथ ही उसे एक जबरदस्त विधा के रूप में भी अलग पहचान देने में अपना विशिष्ट योगदान दिया है । आधुनिक हिन्दी गद्य में व्यंग्य जो अपना स्थान स्थापित कर रहा है, उसके मूल में इन साहित्य कारों का विशिष्ट योगदान है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र, पं.प्रताप नारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाल मुकुंद गुप्त, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, श्रीलाल शुक्ल, नरेन्द्र कोहली तथा अन्यान्य लेखकों ने अपनी विशिष्ट रचनाओं में व्यंग्य का अत्यंत सार्थक उपयोग करके इस अंश को रेखांकित करने का प्रयत्न किया है कि व्यंग्य सामाजिक अस्त्र है और यह सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है ।

हिन्दी साहित्य की इस समृद्ध परंपरा का पाथेय परसाई को वरदान के रूप में प्राप्त हुआ है । इस परंपरा को आत्मसात करने के साथ जगत के विशिष्ट लेखकों के गंभीर अध्ययन से इनकी विचारधारा में परिपक्वता आई है । विशेषकर हिन्दी के विशिष्ट विद्रोही कवि कबीर के व्यक्तित्व से प्रभावित परसाई की व्यंग्यचेतना में कबीर की व्यंग्य चेतना और उसकी मस्ती तथा निर्भीकता अंतःसलिला की भाँति जागृत ही नहीं सक्रिय भी रही है । कबीर के प्रभाव को स्वीकार करते हुए परसाई ने अपने को उनका भक्त स्वीकार किया है : - "कबीर के सीधे, बेलौस, चोखा, अक्खड़, पगड़ी उतार मस्ती, फक्कड़पन से भरे व्यंग्यों का मैं भक्त रहा हूँ ।" कबीर और वैसे ही अन्य प्रतिभावानों के संस्कार परसाई को विरासत के रूप में प्राप्त हुए हैं ।

जातीय परंपरा का प्रभाव ग्रहण करने के बावजूद भी परसाई ने अपनी निजी प्रतिभा-चिंतन-मनन एवं सूक्ष्म ग्राह्य शक्ति से हिन्दी व्यंग्य पर परसाई-मुद्रा लगाई है । इस दृष्टि से परसाई आधुनिक हिन्दी व्यंग्य साहित्य के परम उत्कर्ष के सार्थक हस्ताक्षर हैं ।

हरिशंकर परसाई आधुनिक हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य व्यंग्यकार हैं जिन्होंने व्यंग्य का एक हथियार के रूप में प्रयोग करके इस युग के नकारात्मक तत्वों पर प्रहार किया है । परसाई सर्जनात्मक व्यक्तित्व के धनी हैं । इनका सर्जनात्मक व्यक्तित्व अतीत का सम्यक्बोध, वर्तमान के प्रति सजगता और भविष्य के प्रति आस्था का संगम है । परसाई ने अपने व्यक्तिगत जीवन के अनेकों अभावों के बावजूद भी उनकी चिंता नहीं करके अपने "स्व" के बाहर जो पीड़ाएं तथा यातनाएं हैं, उन्हें अत्यंत सहानुभूति से देखने के द्वारा अपनी पीड़ा का उदात्तीकरण करने का अपूर्व साहस दिखाया है । यही कारण है कि परसाई का व्यक्तित्व पराजय को एक मूल्य के रूप में कभी स्वीकार नहीं करता, बदले में पराजित एवं हताश व्यक्तियों की धमनियों में आशा और उत्साह संचार करने की प्रबल शक्ति उनके सर्जनात्मक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी उपलब्धि है । साथ ही सामाजिक परिवेश के संदर्भ में हर कहीं दिखायी पड़नेवाली विघटनकारी प्रवृत्तियों को देखकर निराश, पलायनवादी एवं समझौतावादी होने के बजाय उनसे लड़ने का संकल्प परसाई की रचनाओं में बराबर मिलता है । इस अर्थ में परसाई का व्यक्तित्व संघर्षों की अग्निभट्टियों पर फूटा हुआ ज्वालामुखी है ।

परसाई ने लेखन-कर्म को भावुकता से मानव तथा मानवीयता की गरिमा का गायन करने के लिए अथवा अमूर्त सत्ता की स्तुति अथवा उससे मिलने की उत्कंठा को अभिव्यक्त करने के लिए अथवा तत्कालीन साहित्यकारों की भाँति भारतमाता के स्तवन के लिए अपितु मानवता का ह्रास, दरिद्रों की पीड़ा एवं भ्रष्ट होते सामाजिक मूल्यों को देखकर उनका संवेदनशील मन इस प्रकार द्रवित हो उठा कि लिखना उनके लिए अनिवार्य हो गया । परिणामस्वरूप झूठ की आराधना को अपना लक्ष्य बनाया परसाई ने एक संदर्भ में लिखा है कि "मैं तो हमेशा झूठ की तलाश में रहता हूं ।

कोने कोने में झूठ को ढूंढता फिरता हूँ । झूठ मिल जाता है तो बहुत खुश होता हूँ । भारत माता की सेवा के नाम पर देश को दीवाल बनानेवाले नेताओं, पूंजीपतियों और महात्माओं के मुखौटों को निर्ममता से उघाड़ने को ही उन्होंने अपने लेखन का मकसद बनाया । कविता लिखने की उम्र में परसाई ने यथार्थ को वाणी दी, युगबोध को स्वर दिया, झूठ का अनावरण किया । परसाई मानते हैं कि "लेखक की दो नहीं सौ आँखें होती हैं।" उन सौ आँखों से समाज की तमाम हालातों को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया । इस दृष्टि से परसाई के व्यंग्यों में नियति की गाथा नहीं अपितु नियति के बंधन से मानव को मुक्त करके उसे नितांत वैचारिक धरातल पर सोचने और आत्मबोध को प्रेरित करनेवाला यथार्थ चिंतन है ।

परसाई स्वभाव से भावुक और निर्मल अंतःकरण के हैं, साथ ही गंभीर व्यक्तित्व के धनी भी हैं । मानवता के पक्षधर परसाई में कठोरता, उग्र स्वभाव एवं गंभीरता तब उभर आती हैं जबकि असामाजिक एवं मानव विरोधी तत्त्व अपने सिर उठाने लगते हैं । कबीर के कृतित्व एवं कृतित्व से तीव्र रूप से प्रभावित परसाई में कबीर का संवेदनशील हृदय और उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व आश्चर्यजनक एवं अद्भुत संगम है । जैसे कबीर के हाथ में, वैसे परसाई के हाथ में व्यंग्य की लकुटिया है जिसका उपयोग परसाई ने जिस ढंग से किया है उस ढंग से तत्कालीन लेखकों में शायद ही किसी लेखक ने किया है ।

परसाई की रचनात्मक अभिव्यक्ति की खास विशेषता इस बात में है कि कहीं भी द्वंद्व या विरोधाभास नहीं है, अपने विचारों और चिंतन के प्रति वे एकदम प्रतिबद्ध हैं । परसाई की कोई भी रचना हो, वहाँ महज कहानी या घटना नहीं है अपितु एक दर्शन होता है, वैचारिकता होती है, मनोवैज्ञानिक तथ्य होता है । इस दृष्टि से परसाई का कृतित्व मानव इतिहास का अविभाज्य अंग बन गया है । उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में इतनी अभिन्नता है कि उनके व्यक्तित्व को किनारा करके उनके व्यक्तित्व की कल्पना तक नहीं की जा सकती है । भारतीय सर्वहारा

शोषित वर्ग परसाई में अपने और उनके कृतित्व में अपने समाज की विसंगतियों के दर्शन कर रहा है ।

परसाई के लेखकीय व्यक्तित्व की यात्रा की विशेषता इस बात में है कि वे निरंतर अपने समय की तमाम विसंगतियों से जूझते, नए सही मूल्यों के लिए संघर्ष करते आ रहे हैं, "सत्य" की खोज में अपनी जान जोखिम में डालकर खेलते आ रहे हैं । समय के साथ इनकी यह "लड़ाई" इनके व्यक्तित्व और कृतित्व का प्राणपुंज रही है जिसके बिना इनका अनस्तित्व में परिवर्तन होने की संभावना है ।

परसाई जी के कृतित्व में हम उनके जीवन दर्शन को ढूंढ सकते हैं। जिस प्रकार टालस्टाय और उन जैसे विश्व के महान कलाकारों में युग का अंधकार और उसकी भूख के दर्शन कर सकते हैं, उसी प्रकार परसाई की रचनाओं में भी युग के अंधकार एवं भूखे दर्शनों का पर्दाफाश होते देख सकते हैं । इस दृष्टि से आधुनिक भारत की समस्याओं एवं वैचारिक सिद्धांतों के बारे में परसाई के अपने विचार हैं, सिद्धांत हैं जिनके परिपक्व चिंतन और मंथन से इनका अपना जीवन दर्शन विकसित हुआ है । इस बिंदु पर परसाई महज लेखक न रहकर मानव नियति के मसीहा बन जाते हैं ।

परसाई मार्क्सवादी दर्शन से तीव्र रूप से प्रभावित हैं । राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, कला और साहित्य के संबंध में मार्क्स की चिंतनधारा को अत्यंत वैज्ञानिक स्वीकार कर उस परिप्रेक्ष्य में आधुनिक समाज की तमाम भ्रांतियों का, व्यवस्था के क्रूर रूपों का, अमानवीय अंशों तथा शोषण का, एक ही शब्द में समस्त "झूठों" का एक-एक करके परसाई ने अनावरण किया है । परसाई ने अपने संपूर्ण कृतित्व में मार्क्सवादी जीवन-दर्शन को वाणी दी है । प्रतिगामी शक्तियों, फासिस्ट शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते समय अपनी मान्यताओं एवं सिद्धांतों से किसी भी हालत में समझौता न करके ऐसे समाज की स्थापना के लिए लालायित और प्रतिबद्ध हैं जहाँ आम आदमी और सर्वहारा वर्ग के लिए दो-जून की रोटी नसीब हो । मार्क्सवाद को "वैज्ञानिक समाजवाद" कहनेवाले परसाई अपने को "वैज्ञानिक समाजवादी" मानते हैं । यही कारण है कि परसाई के जीवन दर्शन में कोई दुविधा नहीं है, द्वंद्व नहीं है, अस्पष्टता नहीं है, सबसे बढ़कर विरोधाभास नहीं है ।

परसाई मानव-जाति की मुक्ति के लिए एक ऐसी संस्कृति की परिकल्पना करते हैं जहाँ क्षुद्र सांप्रदायिकता, जातिवाद, और प्रादेशिकता की जंजीरों से बाहर आकर मनुष्य की पहचान मनुष्य के रूप में होगी, उसकी 'उपाधियों' की यहाँ परवाह नहीं की जाएगी । परसाई की विचारधारा के अनुसार इस संस्कृति का स्वरूप इस प्रकार है - 'इधर सांस्कृतिक क्षेत्र में देश में ऐसी ताकतें हैं, संगठन हैं, जो भारतीय संस्कृति का नारा बुलंद करते हैं । पर इनकी संस्कृति का अर्थ है पुरातनवाद, जड़ मानव विरोधी संस्कारों, परंपराओं और मान्यताओं की स्थापना संस्कृति मनुष्य को जकड़ती नहीं, मुक्त करती है । संस्कृति वह जीवन मूल्य है जिसे अपनी विकास यात्रा में मनुष्य समाज विकसित और अंगीकार करता है । संस्कृति मनुष्य का उदात्तीकरण करती है । उसे क्षुद्रता से ऊँचा उठाती है । यानी परसाई जिस संस्कृति का प्रतिपादन करते हैं उस संस्कृति में शोषण नहीं है सामाजिक असमानताएँ नहीं हैं, धर्म के नाम पर कोई शोषित नहीं होगा और धन आपसी मानवीय-संबंधों में दरारें पैदा करने में समर्थ नहीं होगा । इस संस्कृति में मानव-संबंध मधुर होंगे । मानव को संकटों से मुक्ति दिलाना ही परसाई का लेखन-धर्म है, जीवन दर्शन है ।

परसाई का व्यंग्य समूचे विश्वको अपनी कैनवास बनाकर चलता है । विश्वबोध ही इनका युगबोध है । समूची मानवजाति की ह्रासशील संस्कृति में, उसके संकट में, अमानवीयता की नंगी नाच में परसाई करुणा की अजस्र स्रोतस्विनी के दर्शन करते हैं । मानवीयता के रुदन में अमानवीय पाशवीतत्त्व ठहाका मारकर हँसते हैं तो परसाई का संवेदनशील हृदय उसे सह नहीं पाकर दुखित हो उठता है तब इनकी व्यंग्याग्नि का स्फोट होता है । जीवन और जगत के और मनुष्य के प्रति परसाई का मानवीय अंतःकरण और स्वस्थ मन, दोनों हमेशा जागृत रहे हैं । क्योंकि इस प्रकार जागरण करनेवाला ही रो सकता है, सोनेवाला देख भी नहीं पाता है । परसाई इस समाज की यथार्थताओं के प्रति सदैव जागृत रहे हैं ।

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध करनेवाले कथाकारों में हरिशंकर परसाई का अपना विशिष्ट स्थान है जिनकी कहानियों में व्यंग्य अपनी संपूर्ण सामर्थ्य

के साथ, मात्र "स्पिरिट" के रूप में नहीं, अपितु जीवंत चेतना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है । परसाई की कहानियों को मात्र कहानियों का अभिधान देना और उसी परंपरागत अर्थ में पढ़कर एक किनारे पर रख देना किसी भी पाठक को इसलिए संभव नहीं हो पाता है कि यहाँ कहानी से बढ़कर विचार हैं, मनोरंजन की अपेक्षा जीवन का साक्षात्कार है, इस दृष्टि से परसाई की कहानियाँ जीवन तथा हमारी व्यवस्था के दस्तावेज़ हैं ।

परसाई ने एक संदर्भ में स्वीकार भी किया है कि "मैं शाश्वत साहित्य लिखने का संकल्प करके लिखने नहीं बैठता । जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं होता, वह अनंतकाल के प्रति कैसे हो सकता है, मेरी समझ से परे है ।" अपने इस समय के साथ ईमानदारी और प्रतिबद्धता परसाई की रचनाधर्मिता में सर्वत्र देखी जा सकती है । इनकी कहानियों में समसामयिक जगत की समस्त संवेदनाएँ अपनी प्रखरता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं । परसाई जिस समाज के हिस्सेदार हैं उस समाज की तमाम विसंगतियों को नंगा करने के लिए उन्होंने इस कथा माध्यम का अत्यंत सफलतापूर्वक उपयोग किया है ।

परसाई की कहानियाँ दादा-दादी की कहानियाँ नहीं हैं । उनकी हर कहानी किसी न किसी जीवन-दर्शन का, नैतिक दायित्व का, उच्च जीवन मूल्य का प्रतिनिधित्व करती है । कहानीकार समाज विरोधी शक्तियों का पीछा करता है, उनकी क्रूरता का पर्दाफाश करता है - व्यंग्य की चाबुक से । व्यंग्य इनकी कहानियों का स्थायी भाव है जोकि पाठक या अपराधी को तिलमिलाने को मजबूर करता है ।

परसाई की कहानियों में मानवता को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ है, इस दृष्टि से वे मानव-गरिमा के गायक हैं, व्यवस्था के विध्वंसक हैं, समस्याओं के चिकित्सक हैं उनकी समस्त कहानियों में व्यक्ति की दुर्बलताओं और व्यवस्था की विसंगतियों और वहाँ के दोषों को रेखांकित किया गया है और उनका अत्यंत मनोयोग के साथ व्यंग्य किया गया है । परसाई की कहानियों के व्यंग्य में आँच है, कटुता है, कोप है, ताप है और सबसे बढ़कर व्यवस्था में परिवर्तन लाने का आग्रह है ।

परसाई की कहानियों को पढ़ने का मतलब इस सदी के भारतीय समाज से साक्षात्कार करना है, दूसरे शब्दों में यहाँ घटनाओं का वैयक्तीकरण नहीं है, कल्पना की उड़ान नहीं है, अतिरंजिता नहीं है किन्तु यथार्थ है, नग्नता है, अन्याय-अत्याचार हैं, शोषण है, धोखा-फरेब है, जाति पाँति की संकुचित मनस्थितियाँ हैं जोकि आधुनिक समाज के जीवन-विधान बन गए हैं जिनको नकारने तथा उन पर व्यंग्यात्मक सु निर्भीकता से चलाने का साहस परसाई ने सफलतापूर्वक किया है । उनकी किसी एक कहानी को चुनकर उसका नाम या उद्धरण देने के बजाय उनकी संपूर्ण रचनाधर्मिता को इस बात के सबूत के रूप में देख सकते हैं । यही कारण है कि इनकी कहानियाँ अपने से प्रतिपादित तथ्यात्मयों के कारण इतिहास का अंग बन गई हैं । इस अर्थ में परसाई मानव संकट के लिपिकार हैं ।इनकी कहानियों की प्रासंगिकता इस देश के संदर्भ में तो कभी खाली नहीं पड़ती है ।

परसाई की कहानियों में सुधारवादी प्रवृत्ति नहीं है, उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि सुधारक बनना उनका लक्ष्य भी नहीं है ।व्यवस्था में परिवर्तन लाना परसाई का उद्देश्य और उनकी रचनाधर्मिता का लक्ष्य है । उनकी संपूर्ण कथाराशि में इस परिवर्तनकामी जीवन दृष्टि को देख सकते हैं। यहाँ ऐसे आदर्श समाज और मनुष्य की परिकल्पना की गई है कि जहाँ उसका आदर इस शर्त पर होना चाहिए कि वह मनुष्य है । वह मनुष्य क्या है, उसकी हैसियत क्या है, इसकी चिंता वे नहीं करते हैं ।

परसाई की कहानियों में मनुष्य की मुग्धता उसकी भावुकता, उसकी व अच्छाई अपनी सर्वोच्च गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुई है । खासकर सर्वहारा वर्ग यानी गरीबों, शोषितों एवं मध्यवर्गीय परिवारों की जिंदगी का वर्णन करते समय परसाई बड़े अत्यंत सहानुभूति, संयम और मानवीय अनुकंपा से लिखते हैं । मानवता के पक्षधर होने के कारण इन सारे गुणों में परसाई की अटूट आस्था है । समाजविरोधी शक्तियों का हमला इन लोगों पर होता है तो परसाई अत्यंत दुखी होते हैं और व्यंग्य-बाणों से इनपर वार करने लगते हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि परसाई की समृद्ध कथाराशि आधुनिक भारतीय जीवन की प्रतिच्छवि है ।

परसाई हिन्दी के महत्वपूर्ण निबंधकार हैं जिन्होंने अपने प्रखर चिंतन के द्वारा वैचारिक निबंध साहित्य को और अपने सरस और सात्विक चिंतन के द्वारा ललित निबंध साहित्य को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी निबंध साहित्य को सब अत्यंत लोकप्रिय बनाने का श्रेय भी परसाई को जाना चाहिए। परसाई की महत् निबंधराशि के अवलोकन से उनकी अपार विद्वत्ता का परिचय पग-पग पर मिलता है किन्तु उनकी विद्वत्ता पाठकों पर बोझ कभी नहीं बनती है। पांडित्य समृद्ध जीवन-अनुभव, अपार लोकानुभव और प्रखर आलोचनात्मक दृष्टि ने परसाई के निबंधकार-व्यक्तित्व में मानवीय संवेदना को अक्षय स्रोतस्विनी के रूप में जीवंत रखा है।

परसाई के निबंधों में वर्णित विषय, उठाए गए मुद्दों का दायरा इतना व्यापक है कि आश्चर्य होता है कि वर्तमान जगत कितनी समस्याओं, संकटों, तनावों और संघर्षों का शिकार है और परसाई की सूक्ष्म दृष्टि इन सबको आत्मसात करने में कितना मनोबल धारण कर पाई है। इन तमाम तनावों के बावजूद भी परसाई के वैचारिक एवं ललित निबंध मानव में आस्था और अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए एक सुगठित भूमिका तैयार करने में निश्चित रूप से सफल हुए हैं।

स्थानीय राजनीति से अंतर-राष्ट्रीय राजनीति की चर्चा, पंचायत के नेता से देश-विदेश के महान नेताओं के मुखौटों को उघाड़ने की निर्भीक चेष्टा, सामाजिक जीवन में व्याप्त शोषण, शोषित और शासित वर्ग की यातनाओं को अत्यंत मानवीय अनुकंपा देखने की स्नेहिल दृष्टि परसाई के निबंधों को आम जनता के निकट ले जाने में सफल हुई है। जैसे कि कहानी साहित्य में, वैसे निबंध साहित्य में परसाई की व्यंग्य-दृष्टि का साम्राज्य छाया हुआ है। परसाई-शैली की छाप सर्वत्र देखी जा सकती है। इस शैली के कारण ही परसाई के निबंध आस्वाद्य बन जाते हैं, इनके निबंधों में पुनरावर्तन का दोष भी है वह लुप्त हो जाता है।

परसाई के ललित निबंधों में उनके सृजनात्मक पक्ष की चरमसीमा देखी जा सकती है। यहाँ मानव स्वभाव की संकीर्णताओं, उसके भाव और मनोविकारों पर लेखक की चिंतनधारा प्रवाहित हुई है। इनके ललित निबंध भी सोद्देश्य हैं। इन निबंधों

को पढ़ते समय ऐसा अनुभव होता है कि एक बहुश्रुत, लोकानुभव से संपन्न व्यक्ति से हम संवाद कर रहे हों । परसाई के ये निबंध अपनी सरल प्रांजल शैली एवं भाषा के सुंदर प्रयोग से पाठकों को स्वतः आस्वाद्य बन जाते हैं ।

वर्तमान भारत का ऐसा कोई महत्वपूर्ण विषय नहीं है जिसपर परसाई ने अपने निबंधों में चर्चा नहीं की हो । व्यक्ति की अस्मिता से लेकर विश्वचेतना तक परसाई का उन्मुक्त एवं वस्तुनिष्ठ चिंतन इन निबंधों में प्राप्त होती है ।

परसाई के विचारों, मान्यताओं, सिद्धांतों और उनकी रचनाधर्मिता के संदर्भ को समझने के लिए नाना स्तंभों, भूमिकाओं, के रूप में प्रकाशित निबंध निश्चित रूप से महत्वपूर्ण योग देते हैं ।

व्यंग्य भाषा के द्वारा प्रस्फुटित होता है । भाषा के प्रयोग में व्यंग्यकार को अत्यंत सचेत रहना आवश्यक है । भाषा के अत्यंत बारीकी, प्रयोग से परसाई ने व्यंग्य-शैली का निर्माण किया है जिसका अनुकरण अपेक्षित है । भाषा की अंतःध्वनियों से, लोकजीवन के हृदय की भाषा से अच्छी तरह परिचित परसाई व्यंग्यस्थलों को पहचानने और उन्हें सशक्तियों के द्वारा चित्रित करने की कला में कुशल हैं । परसाई व्यंग्य के सौंदर्यशास्त्र से अच्छी तरह परिचित हैं, वे शब्दों के शिल्पी हैं, व्यंग्य-स्थलों के चितेरे हैंxx । इनकी भाषा-शैली अनूठी बिंब योजना, अपूर्व उपमायोजना के कारण इस प्रकार आकर्षक बन गई है कि परसाई की गद्य रचनाओं को पढ़ते समय कविता पढ़ने का सा अनुभव होने लगता है । वास्तव में यह एक गद्य लेखक की महत्वपू उपलब्धि है । हरिशंकर परसाई आधुनिक हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं । हिन्दी कथासाहित्य और निबंध साहित्य के उन्नयन में परसा का योगदान असंदिग्ध है ।

सहायक ग्रंथ-सूची

हरिशंकर परसाई की ग्रंथावली - खंड 1-6

1. अशोक के फूल - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. अतीत के चलचित्र - महादेवी
3. आँखन देखी - सं. कमला प्रसाद
4. आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य - डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी
5. आधुनिक राष्ट्रीयता - डा. राजकमल बोरा
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
7. आधुनिक हिन्दी काव्य में पाश्चात्य चिंतन - डॉ. रामविलास सैनी
8. औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ - डा. आदित्य नारायण त्रिपाठी ।
9. कल्पलता - हजारी प्रसाद द्विवेदी
10. कबीर - हजारी प्रसाद द्विवेदी
11. कला का जोखिम - निर्मल वर्मा
12. कामायनी : एक पुनर्विचार - ग.मा. मुक्तिबोध
13. काव्य के रूप - बाबू गुलाब राय ।
14. कुटज - हजारी प्रसाद द्विवेदी
15. जायसी ग्रंथावली - सं. रामचंद्र शुक्ल
16. दृष्टि अभिसार - कुबेरनाथ राय
17. प्रेमचंद के कथा साहित्य में हास्य-व्यंग्य - डॉ. मिश्र ।
18. निबंध नवनीत - महावीर प्रसाद द्विवेदी
19. प्रगति और परंपरा - रामविलासशर्मा
20. नरेन्द्र कोहली - व्यक्तित्व और कृतित्व - सं. प्रेमजनमेजय
21. बालमुकुंद गुप्त : एक मूल्यांकन : डॉ. विष्णुकांत शास्त्री ।
22. बालमुकुंद गुप्त निबंधावली
23. भ्रमरगीत सार की भूमिका - रामचंद्र शुक्ल
24. भारतेंदु ग्रंथावली - पहला और दूसरा भाग
25. भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा - सं. डॉ. नगेन्द्र

26. भारतीय परंपरा - हुमायूं कबीर
27. महामहिम - प्रदीप पंत
28. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ - नरेन्द्र कोहली
29. रिमझिम - डॉ. रामकुमार वर्मा
30. राजदर्शन का अध्ययन - सी.एल. वेकर
31. लेनिन - समाज वादी विचारधारा और संस्कृति
32. वाङ्मय विमर्श - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
33. व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न - डॉ. शेरजंग गर्ग ।
34. व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यों ? - सं. श्यामसुंदर घोष
35. लेनिन का मूल सिद्धांत : स्टालिन
36. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य - डा शेरजंग गर्ग
37. साहित्य : विविध संदर्भ - सोठार सोट्टे
38. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर
39. स्मारिका - महादेवी
40. हिन्दी की प्रगतिशील कविता- डॉ. रणजीत ।
41. हिन्दी जाति का इतिहास - डॉ. रामविलासशर्मा ।
42. हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - डा. प्रेमनारायण टंडन
43. हिन्दी गद्यशैली का विकास - डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ।
44. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल
45. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र
46. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवशंकर भट्ट
47. हिन्दी रेखाचित्र - हरिवंश लाल शर्मा
48. हिन्दी रेखाचित्र - डॉ. प्रकाशचंद्र गुप्त ।
49. हिन्दी काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथमिश्र

<u>कन्नड</u> - कलासुंदरी - कुवेंपु

50. कन्नड साहित्यदल्लि हास्यरस - डॉ. एम. एस. सुंकापुर

51. भारतीय मत्तु पाश्चात्य काव्य मीमांसेय तौलनिक अध्ययन - डॉ॰ चिक्कदुस्वामी ।
52. साहित्य मत्तु विमर्श - द॰रा॰ बेन्द्रे ।
53. साहित्य मत्तु जीवन - अ॰न॰कृ॰
54. बांडकमलन - कुवेंपु

अंग्रेजी
----

55. कामेडी - एल॰ जे॰ पोट्स
56. नोट्स आन वर्स सटायर - हम्बर्ट वोल्फ
57. सटायर - हेजवर्थ
58. द आइडिया आफ कॉमेडी - मेरिडिथ ।
59. ए॰ थियरी आफ लाफ्टर - कृष्ण मेनन ।

पत्रिकाएँ

आजकल
साक्षात्कार
सारिका
व्यंग्ययात्री

G3802